विश्व हिंदी सम्मेलन
मॉरीशस 18–20 अगस्त 2018

विश्व हिंदी साहित्य
2018

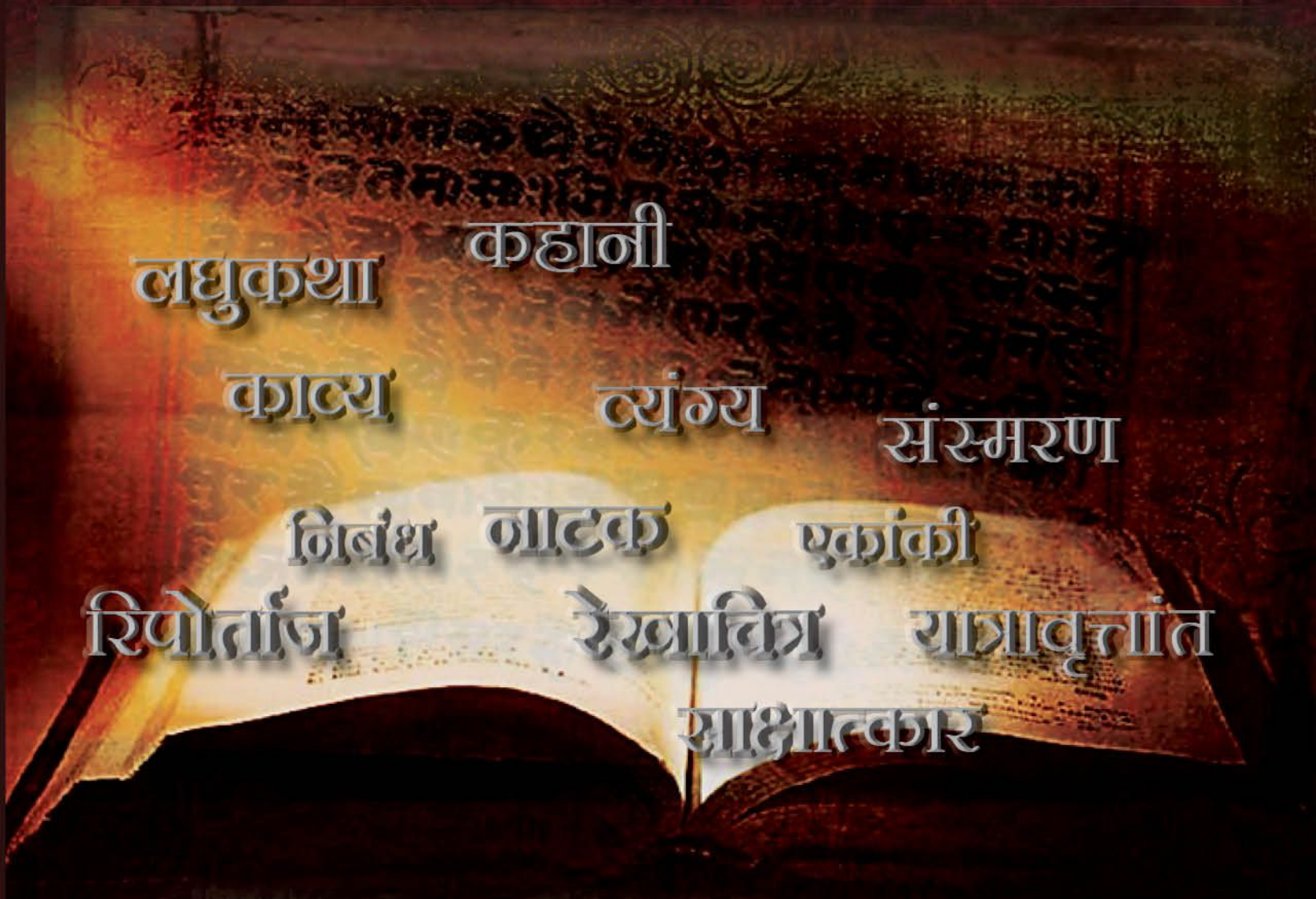

विश्व हिंदी साहित्य 2018

विश्व हिंदी साहित्य
2018

प्रधान संपादक
प्रो. विनोद कुमार मिश्र

संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

संपादक-मंडल
डॉ. बीरसेन जागासिंह
डॉ. देवभरत सिरतन
डॉ. संयुक्ता भुवन-रामसारा
डॉ. देविना अक्षयवर

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फेनिक्स, 73423
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
Website : www.vishwahindi.com
Phone : 00-230-6600800

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

टंकण टीम
श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती उषा देवी आकाजिया-राम,
श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु, सुश्री जयश्री सिबालक, सुश्री मोक्षणा नावोसा

निवेदन

'विश्व हिंदी साहित्य' में प्रकाशित रचनाओं के तथ्यों के उत्तरदायित्व रचयिताओं के ऊपर है। विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक-मंडल का तथ्यों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
श्वेता चौधरी

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., ४/५ बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली ११०००२ (भारत) द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

		लघुकथा		
भारत	1.	अमीर आदमी	श्रीमती हेमा चंदानी 'अंजुलि'	03
	2.	पहचान	श्रीमती रेणुका बर्थवाल	04
	3.	मौत	डॉ. पल्लवी प्रकाश	05
	4.	मृगमरीचिका	श्री जानकी बिष्ट वाही	06
	5.	आस्था	श्री लवलेश दत्त	06
मॉरीशस	6.	प्लास्टिक के नोट	श्री राज हीरामन	07
	7.	सदा सुखी रहो!	श्री अरविंदसिंह नेकितसिंह	07
	8.	छुट्टी वाली सीख	श्री वशिष्ठ कुमार झमन	08
	9.	मैं बिटिया हूँ तुम्हारी	श्रीमती करिश्मा देवी रामझीतन–नारायण	09
अमेरिका	10.	घरौंदा	श्रीमती रीनू पुरोहित	10
	11.	सपने का मरना	श्री अशोक ओझा	11
	12.	मृगतृष्णा	श्रीमती कविता मालवीय	12
	13.	कंजूस मक्खीचूस	श्री अनुराग शर्मा	12
यूरोप	14.	तब से गुलाब लाल होने लगा	श्रीमती उषा वर्मा	13
	15.	परछाईं	श्री दीपक कुमार चौरसिया	14
	16.	महाकवि	श्री प्राण शर्मा	15
एशिया	17.	अभाव	सुश्री रिद्मा निशादिनी लंसकारा	16
	18.	एक नयी किरण	सुश्री आद्या शुक्ला	17
	19.	माला की समझदारी	श्रीमती गीता चतुर्वेदी	18
ऑस्ट्रेलिया	20.	कुछ नहीं	श्रीमती आरती शर्मा	19
	21.	निःशब्द	श्री प्रगीत कुँवर	20
	22.	परिंदे	श्रीमती रेखा राजवंशी	20
	23.	निन्यानबे का फेर	श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'	21
		कहानी		
भारत	24.	राग–विराग	श्रीमती उर्मिला शिरीष	23
	25.	अंजान बच्ची	श्री विकास कुमार गुप्ता	26
	26.	अमृत वृद्धाश्रम	श्री विजय कुमार सप्पत्ति	28
	27.	अकेला	श्री अजय ओझा	35
मॉरीशस	28.	ठौर कहाँ पर?	डॉ. अलका धनपत	39
	29.	सीमांत	श्री रामदेव धुरंधर	41
	30.	मैं वचन निभा न सकी	डॉ. देवमत रिरतन	46
अमेरिका	31.	परछाइयों का जंगल	श्रीमती देवी नागरानी	48
ऑस्ट्रेलिया	32.	ग्यारहवें घर से वापस	श्री विवेक आसरी	51
एशिया	33.	बहता पानी	श्री उस्मान खान	56

कविता / गजल / दोहे / छंद / गीत

		कविता		
भारत	34.	रक्तबीज अभिमन्यु	डॉ. संगीता सक्सेना	62
	35.	मैं वर्णन और वर्णनातीत...	श्री सुनील जाधव	63
	36.	यह एक सच है!	श्रीमती रश्मि प्रभा	64
	37.	अनुभव के रंग	श्रीमती पूनम माटिया	65
	38.	कौन हो तुम	श्री सुधीर कुमार सोनी	66
	39.	वह घर कुछ कहता है	श्री रमेश यादव	67
	40.	21वीं सदी का आदमी	श्री आशीष कुमार कंधवे	68
मॉरीशस	41.	चटाई से चिता तक	श्री फारुख रुजुल	69
	42.	बीज का सपना	श्री सोमदत्त काशीनाथ	70
	43.	परी तालाब की अप्सराएँ	श्री मोहनलाल बृजमोहन	71
	44.	मेरे पिता	श्रीमती मधु गजाधर	72
	45.	शान	श्रीमती कल्पना लालजी	74
	46.	संगमयुगी–शांतिदूत	डॉ. संयुक्ता भुवन–रामसारा	74
अमेरिका	47.	याद आता है अब घर अपना...	श्रीमती बिंदेश्वरी अग्रवाल	75
	48.	इंतज़ार	श्री अनील पुरोहित	75
	49.	आँखों का उलाहना	श्री कृष्ण वर्मा	76
कनाडा	50.	स्वरूप सत्य का	श्रीमती रेखा मैत्रा	76
	51.	पाठशाला	श्री परिपूर्ण सिंह रौतेला 'आनंद'	77
यूरोप	52.	हर साँस	श्री गौतम लियु	79
अफ्रीका	53.	व्यथा सींग की	श्रीमती चंपा बोसिट्सुमुनी	80
	54.	फिर से मानव	श्रीमती संगीता महाराज	80
एशिया	55.	निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों?	श्रीमती प्रेरणा मित्तल	81
	56.	लेखकों से	सुश्री एस.एच.एन. दुलांजलि	81
मध्य पूर्व	57.	अवर्णीय विषमता	श्री जगराज सिंह	82
	58.	हिमाद्रि हूँ, तुंगभद्रा हूँ	श्रीमती समीक्षा तैलंग	82
ऑस्ट्रेलिया	59.	नोबल पुरस्कार के सौ साल	डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव	83
	60.	जरा रोशनी मैं लाऊँ	डॉ. भावना कुँवर	83
	61.	चल पड़ी है वेदना	श्री हरिहर झा	84
भारत	62.	बेटियों का अब जमाना आ गया	डॉ. पूर्णिमा राय	84
		गज़ल		
भारत	63.	दर्द दिल का	श्री मनोज भावुक	85
मॉरीशस	64.	एक राह के मुसाफिर	श्री घनराज शंभु	85
		दोहे / छंद		
अमेरिका	65.	राष्ट्रीय दोहे	डॉ. कविता वाचकनवी	86
भारत	66.	शृंगार छंद	श्रीमती सुनीता काम्बोज	86

भारत	67.	आधार छंद–रूपमाला व दो लावणी छंद	श्री शेख शहज़ाद उस्मानी	87
		गीत		
भारत	68.	सखी री	डॉ. रश्मि कुलश्रेष्ठ 'रश्मि'	87
	69.	अब घर आ जाओ	डॉ. राम गरीब 'विकल'	88
	70.	जीवन–एक गीत	श्री अनुराग शर्मा	88
		नाटक / एकांकी		
भारत	71.	भानू का सूर्यास्त	श्रीमती वन्दना चावला	91
मॉरीशस	72.	सत्य की खोज	श्रीमती विद्वंती शंभु	97
	73.	इच्छा–शक्ति	श्री विश्वानंद पतिया	103
अमेरिका	74.	जीत	श्री दीपक कुमार चौरसिया	108
		निबंध		
भारत	75.	खुले आकाश का खिला हुआ चाँद है हिंदी	श्री रितेंद्र अग्रवाल	111
	76.	उपनिवेशकाल में लिखित हिंदी का प्रवासी साहित्य	डॉ. राकेश कुमार दूबे	113
	77.	चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की हिंदी सेवा	श्री उमेश चतुर्वेदी	116
मॉरीशस	78.	हिंदी के विकास में बैठकाओं की भूमिका	श्री प्रेमदत्त मंगरा	119
	79.	आज की युवा पीढ़ी और हिंदी	श्री विश्वानन्द पतिया	121
	80.	गांधी दर्शन में निहित मानव–मूल्य	प्रो. हेमराज सुंदर	123
अमेरिका	81.	विदेशी धरती कैलिफोर्निया में पनपती हिंदी	श्रीमती नीलू गुप्ता	125
	82.	विदेशों में हिंदी के प्रचार में योग का योगदान	डॉ.मृदुलकीर्ति	128
कनाडा	83.	मेरे देश का हिंदी प्रचारक –स्नेह ठाकुर	सुश्री ऊषा रानी शाक्य	130
एशिया	84.	ल्वादिवोस्तोक की हिंदी संस्था	सुश्री ओल्गा गपोनोवा	134
ऑस्ट्रेलिया	85.	ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के प्रणेता – डॉ. दिनेश श्रीवास्तव	सुश्री पूर्णिमा पाटिल	136
		संस्मरण		
भारत	86.	स्मृति में कोरिया	डॉ. विजया सती	139
	87.	हिंदी के विकास पुरुष:फादर बुल्के	डॉ. केदार सिंह	142
	88.	हिंदी के विदेशी छात्र–मित्रों के साथ मेरे अद्वितीय अनुभव	सुश्री लतिका चावड़ा	146
	89.	नायिका ने कंबल क्यों ओढ़ा?	डॉ. गीता शर्मा	150
मॉरीशस	90.	अग्निग्नु अनत का सान्निध्य–सुख	डॉ. बीरसैन जागासिंह	152

मॉरीशस	91.	अनत विनय अनुराग – देश, काल और अन्तश्चेतना – एक संस्मरण	डॉ. कुमारदत्त विनय गुदारी	156
	92.	दो यादें	श्री देवानंद गरवा	158
	93.	मोहन महर्षि	श्री महेश रामजियावन	159
	94.	पहली से छठी कक्षा में हिंदी की पढ़ाई	सुश्री आरती लोचन	161
यूरोप	95.	गोवा से कुछ अपनी भी...	डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र	163
एशिया	96.	'मुड़मुड़ के देखता हूँ' हैदराबाद विश्वविद्यालय की ओर	डॉ. साईनाथ विट्ठल बपले	172
		यात्रावृत्तांत		
भारत	97.	नेतरहाट बांस का जंगल या बीड़ वनश्रीमती	रश्मि शर्मा	175
अमेरिका	98.	साँची का सफर	डॉ. कुसुम नैपरिक	178
यूरोप	99.	बुद्ध से साक्षात्कार	श्री प्रताप सहगल	179
		रेखाचित्र		
भारत	100.	घर का जोगी	श्री आत्माराम शर्मा	190
मॉरीशस	101.	रूप बदलता मॉरीशस	श्रीमती सविता तिवारी	197
		व्यंग्य		
भारत	102.	सम्मानित करने का टुकड़ा	डॉ. अशोक गौतम	201
	103.	प्रसादमहात्म्य	श्री सीतारामगुप्ता	203
	104.	एक नेता का कबूलनामा	श्री राजीव मणि	206
	105.	मिलना न मिलना केमिस्ट्री का	श्री विनोद साव	209
	106.	खमीर–सा उठता ज़मीर	श्री मलय जैन	211
	107.	डॉगी का फिटनेस ट्रेकर	श्री राजशेखर चौबे	212
अमेरिका	108.	शुद्ध हिंदी में बता दूँ?	डॉ. हरि जोशी	213
		रिपोर्ताज		
भारत	109.	विश्व हिंदी सम्मेलन : एक विहंगम दृष्टि	डॉ. श्याम नारायण कुंदन	217
	110.	साहित्य का महातीर्थ : हिंदी भवन भोपाल	श्री गोवर्धन यादव	229
मॉरीशस	111.	महाशिवरात्रि	डॉ. लक्ष्मी ज़मन	232
		साक्षात्कार		
भारत	112.	श्री यशपाल निर्मल से बातचीत	सुश्री वंदना ठाकुर	235
	113.	साहित्य अकादमी के सचिव डॉ. के. श्रीनिवासराव से बातचीत	श्री प्रदीप सरदना	240
	114.	डॉ. विमलेश कांति वर्मा से बातचीत 'बेबाक मन की बात'	श्रीमती सुनंदा वर्मा	243
	115.	रचनात्मक लेखन वादों में बँधकर नहीं लिखा जाता	श्रीमती मृदुला गर्ग	246
मॉरीशस	116.	पंडित राजमन रामसाहा जी से बातचीत	डॉ. उदय नारायण गंगू	250
	117.	जो लिखा जाएगा वही रह जाएगा–सुरजन परोही	श्रीमती भावना सक्सैना	256

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES,
TERTIARY EDUCATION AND SCIENTIFIC RESEARCH

संदेश

विश्व हिंदी सचिवालय की ओर से प्रकाशित 'विश्व हिंदी साहित्य' के इस पहले अंक के माध्यम से विश्व हिंदी प्रेमियों को अपना संदेश देते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है।

एक विश्व भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार–प्रसार का आंदोलन बहुत लम्बे समय से चलता आ रहा है। भाषा की अपनी शक्ति से और इस आंदोलन की बदौलत हिंदी का फैलाव पूरी दुनिया में हो चुका है। ऐसे में बहुत बार हमारा ध्यान भाषा के उन आयामों की ओर पहले जाता है, जिनको बाज़ार या फिर मीडिया का ज्यादा सहारा मिलता है, जिससे बहुत बार भाषा का साहित्यिक रूप पीछे छूट जाता है, जबकि यही रूप किसी भी भाषा की आत्मा होती है।

हिंदी के उभरते विश्व साहित्य के जरिये दुनिया भर में फैले हिंदी समाज की गहरी पहचान हो सकती है। भारत और गिरमिटिया देशों के अलावा पूरी दुनिया की संस्कृति, समाज और भाषा के साथ हिंदी का संगम हमारी भाषा को और अधिक समृद्ध भी बना रहा है। इसलिए भाषा का यह रूप अपनी संपूर्णता में संसार भर के पाठकों और विद्वानों के सामने लाना बहुत जरूरी हो जाता है। साहित्य के जरिये विश्व हिंदी समाज में पुरानी पीढ़ी के हिंदी प्रेमियों की भावनाएँ हमारे सामने आएँगी ही, इसके साथ ही उस नई पीढ़ी के हिंदी लेखकों के विचार दुनिया भर तक पहुँच सकते हैं, जो दुनिया के किसी एक देश या समाज में रहते हुए भी बचपन से ग्लोबल नागरिक है। इस नई पीढ़ी के लेखकों की कलम से ही विश्व हिंदी साहित्य का नया चेहरा बनेगा।

इस दृष्टि से मुझे खुशी है कि विश्व हिंदी सचिवालय ने विश्व हिंदी साहित्य पत्रिका के प्रकाशन द्वारा इस काम को पूरा करने की दिशा में बहुत अच्छी पहल की है। यह प्रकाशन विश्व हिंदी साहित्य का रूप स्पष्ट करने के साथ–साथ हिंदी को विश्व भाषा के रूप में उभारने के प्रयास में भी योगदान देगा।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मॉरीशस ने हिंदी को भारत के बाहर का सबसे समृद्ध साहित्य दिया है और हमारे लेखक आज भी इस दिशा में पूरी लगन से काम कर रहे हैं। मॉरीशस से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ भी दुनिया भर के साहित्यकारों के लिए मंच का काम करती रही हैं। मेरी दृष्टि में इस प्रकाशन का महत्व इसलिए भी है, क्योंकि यह हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार में मॉरीशस की ऐतिहासिक भूमिका, हमारे हिंदी प्रेम और हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में उचित स्थान दिलाने की हमारी प्रतिबद्धता का एक प्रमाण देने जा रहा है।

मॉरीशस में इस वर्ष होने वाला 11 वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन हमारी इस प्रतिबद्धता को दुनिया के सामने रखने का एक और मौका देने वाला है। इस संदेश का अवसर पाते हुए मैं आप सभी हिंदी प्रेमियों को हिंदी के उस महान जुटाव के लिए सादर आमंत्रित करती हूँ।

इस विश्वास के साथ कि 'विश्व हिंदी साहित्य' का विश्व भर में स्वागत होगा, मैं इस प्रथम अंक के लिए सचिवालय को बधाई देती हूँ और इस प्रकाशन को सम्भव बनाने वाले सभी लेखकों को मेरी ओर से बधाई एवं शुभकामनाएँ।

लीला दूकन

श्रीमती लीला देवी दूकन-लछुमन

भारतीय उच्चायोग,
पोर्ट लुइ, मारीशस

High Commission of India,
Port Louis, Mauritius

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा एक नई वार्षिक पत्रिका, 'विश्व हिंदी साहित्य' का प्रकाशन प्रारंभ किया जा रहा है। देश–विदेश के विभिन्न साहित्यकारों द्वारा लिखे जा रहे साहित्य को हिंदी जगत के समक्ष प्रस्तुत करना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम है। समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध होता है और साहित्य की सामाजिकता को बनाए रखने और उनकी पारस्परिकता को सुदृढ़ करने हेतु सचिवालय के इस प्रयास को एक रचनात्मक और सार्थक शुरुआत माना जा सकता है।

साहित्य निरंतर बदलते किसी समाज की संस्कृति, परंपरा, रीति–रिवाज, संगतियों–विसंगतियों और उस समाज के नागरिकों की मनोवृत्तियों को उद्घाटित करने का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है, इसीलिए समाज को मर्यादित, व्यवस्थित और अनुशासित बनाने में साहित्य की भूमिका को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। पाश्चात्य विद्वान डिकॉंसी के अनुसार साहित्य का मूल उद्देश्य एवं प्रयोजन मानव–समाज और मानव–जीवन की सब प्रकार की प्रगतियों का मार्ग प्रशस्त कर उसे आनंदमय बनाना है। देखा जाए तो, साहित्य का मूल उत्स जीवन और समाज की संकरी और विस्तृत वीथियों से होकर ही निकलता है और इन्हीं गलियों से गुजरते हुए सृजनशील चिंतक अपनी रुचि के अनुसार सामग्री ग्रहण कर अपनी उर्वर सर्जना–शक्ति से उसे समाजोनुकूल धरातल देकर जनरंजक और जनोपयोगी बना देता है।

देश, काल, वातावरण और परिस्थितियों के चलते समाज पर अनेक विध प्रभाव देखने को मिलते हैं, लेकिन इतिहास साक्षी है कि जन मन पर साहित्य का जितना त्वरित, दूरगामी और दिशा परिवर्तक प्रभाव पड़ता है, उतना किसी अन्य का नहीं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनुसार तीर, तोप और गोलों में भी वह शक्ति नहीं जो कि साहित्य में छिपी रहा करती है। ऐसी स्थिति में जागरूक और चिंतनशील साहित्यिक खेमे का यह कर्तव्य बनता है कि समाज के भदेस और विकृत रूप का परिष्कार करके उसके उज्ज्वल रूप के माध्यम से यथासंभव उत्कृष्ट साहित्य रचे और आधुनिक प्रगतिवादी सोच के साथ एक स्वस्थ और विकसित समाज के निर्माण में अपना सार्थक योगदान दे।

हिंदी अपनी मनोनुकूल धरती को प्राप्त कर निरंतर फलती फूलती रहे, इसी शुभेच्छा के साथ पत्रिका के संपादन–मंडल के सभी सदस्यों को एक बार फिर अनंत शुभकामनाएँ एवं साधुवाद।

अभय ठाकुर

अभय ठाकुर

6th Floor, LIC Building, John Kennedy Street, Port Louis, Mauritius
Tel: (230)208 3775/6 Fax: (230)208889 / 2086859
Email: coined@intnet.mu hciadm@intnet.mu
Website : www.indiahighcom-mauritius.org

सृजन के बहाने

'विश्व हिंदी साहित्य' के प्रथम अंक का प्रकाशन 11वे विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर हो रहा है। तीन–चार वर्षों के अन्तराल पर होने वाला हिंदी का यह महोत्सव मॉरीशस में तीसरी बार हो रहा है। प्रत्येक सम्मेलन हिंदी के वैश्विक विस्तार की नयी इबारत लिखता रहा है। यह सम्मेलन भी हिंदी के विस्तार की अनंत संभावनाओं के बीच हम हिंदी वालों को आत्मालोचन और आकलन का अवसर प्रदान करेगा। यह सम्मेलन केवल एक उत्सव मात्र नहीं होगा वरन् इस दौरान हिंदी के अतीत, वर्तमान और भविष्य को लेकर चिंतन और विमर्श के कई गवाक्ष खुलेंगे। हिंदी की विकास–यात्रा में भाषा से साहित्य और फिर ज्ञान की अन्य शाखाओं तक का सफर अभी मंजिल से कितनी दूर है? इस यक्ष–प्रश्न का उत्तर तलाशने का इससे बेहतर मंच कहाँ मिल सकता है?

हिंदी की समृद्धशील सृजन–परम्परा का गौरवशाली अतीत रहा है। हमारी सामाजिक–सांस्कृतिक स्मृतियों में सरहपा, अमीर खुसरो, सूर, कबीर, तुलसी, मीरा, रैदास, रसखान, रहीम व जायसी आदि का सृजन–कर्म आज भी जीवंत और प्रासंगिक बना हुआ है तथा जातीय पहचान, संगीत, कला और आचार–विचार को एक जाग्रत स्वर दे रहा है। सामुदायिक ज़िन्दगी की कलात्मक अभिव्यक्ति भी यहीं सुनाई पड़ती है।

भारतीय साहित्य की चिंतनधारा एकांगिता को स्वीकार नहीं करती, वरन् इहलोक और परलोक, दोनों को समग्रता में स्वीकृति प्रदान करती है। लोक मात्र अवधारणा नहीं बल्कि कर्म–क्षेत्र है। हिंदी की 22 जनपदीय बोलियों में लोक रचा–बसा है और लोक–संग्रह का पथ ज्ञानी, देही–विदेही, सब के लिए है। लोक द्वारा अस्वीकृत शायद ही कभी स्वीकार्य हो।

"यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं न करणीयम् न करणीयम्"

लोक–जीवन के सार्वकालिक सरोकारों को साहित्य बखूबी परिभाषित करता है तथा तरोताज़ा भी रखता है। यह सिद्धि को नहीं, साधना को महत्व देता है क्योंकि सिद्धि में ठहराव है और साधना में निरंतरता। निरंतरता में ही संभावनाओं की आकाशगंगा की तलाश की जा सकती है, तभी जाकर हिंदी के व्यापक विकास और विस्तार में सृजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्धारित की जा सकती है, यद्यपि इसके अस्तित्व के संघर्ष की गाथा बड़ी लम्बी है। फारसी और अंग्रेज़ी के चंगुल से बचते–बचाते अपनी धारा को अबाध गति से बढ़ाती हुई, विश्व–क्षितिज को संस्पर्श करने की दिशा में यह सतत अग्रसर है।

साहित्यिक परिवेश ही साहित्य–सृजन और विकास की आधारभूमि का निर्माण करता है और परिवेश के अनुकूल ही सृजन–कर्म प्रकट होता है। हर युग में सत्ता और समाज को दिशा–निर्देश देने का काम साहित्य ने किया है और साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ महत्त्वपूर्ण कारक का काम करती रही हैं, साथ ही साथ, साहित्यिक वातावरण के सृजन, प्रचार–प्रसार एवं नियंत्रण में दक्षता का परिचय देती रही हैं।

साहित्यिक पत्रकारिता ने आरम्भ से ही इस तरह की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का ज़िम्मा उठाया है। आज एक बार फिर एक बड़ा प्रश्न सामने खड़ा हो उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है, क्योंकि वर्तमान पत्रकारिता दिशाविहीन हो गयी है। नवजागरण से अब तक का साहित्य खेमेबाज़ी का

शिकार रहा है। कोशिश यह होनी चाहिए कि बहस–मुबाहिस, वाद–विवाद और संवाद की संभावना हमेशा बनी रहे। लोकतंत्र की यह अनिवार्य शर्त है। अन्यथा साहित्यिक क्रियाशीलता के अभाव में चुनौती की संभावना क्षीण हो जायेगी और जहाँ चुनौती ही न हो, फिर वहाँ घालमेल, छद्म महानता, आत्ममुग्धता आदि का होना सुखद लक्षण नहीं है। ऐसे में साहित्यिक पत्रकारिता का तटस्थ मूल्यांकन होना चाहिए नहीं तो फिर साहित्यिक धुंध और बाजारुपन की सड़ांध आने से शायद ही रोका जा सके। साहित्य की कोई भी विधा तभी समादृत हो सकती है जब उस सृजन के केंद्र में मनुष्य हो, अन्यथा साहित्य के स्थापित मूल्यों में उपभोक्तावाद की काली छाया मंडराती हुई दिखेगी तथा सम्पूर्ण जनमानस की जड़ें विखण्डित हो जायेंगी। फिर भावनात्मक फासला बढ़ेगा। जब भावनाओं और संबंधों की कोई अहमियत नहीं रहेगी, तब अनुभवजन्य साहित्य–सृजन का प्रतिफलन भी डरावना होगा। इतना ही नहीं, उपभोक्तावाद का इतना कुप्रभाव पड़ेगा कि मनुष्य का आंदोलनधर्मी चरित्र बदल जाएगा। भाषाएँ एवं उनमें लिखे साहित्य संघर्ष, क्रांति की पूर्वपीठिका तैयार करने में पूर्ण रूप से अक्षम हो जायेंगे क्योंकि श्रेष्ठ साहित्य ही संघर्ष की उर्वर जमीन तैयार करता है और उससे पोषित निधियाँ चिरंजीवी हो संपूर्ण चेतना को मुखरित करती हैं तथा अनुसंधान व सृजन के विविध द्वार खोल, विश्व मानव को अभिव्यक्ति देती हैं।

आज आर्थिक–प्रगति, प्रतिस्पर्धा और मानसिक अशांति से उत्पन्न संघर्ष, रचनात्मक मानव–मूल्य से ओतप्रोत सृजन–संपदा की माँग करता है। विश्व हिंदी सचिवालय का सृजनात्मक लेखन की दिशा में यह प्रथम प्रयास है। इस पत्रिका में विश्व भर के रचनाकारों से विभिन्न विधाओं में रचनाएँ आमंत्रित की गई हैं ताकि वैश्विक स्तर पर हिंदी की रचनाधर्मिता को गतिशील, सक्षम और समृद्ध बनाया जा सके।

सूचना एवं संचार क्रांति की दस्तक की आहट साहित्य में भी सुनाई देने लगी है। इसका लाभ उठाते हुए साहित्यिक विस्तार को अप्रत्याशित गति प्रदान की जा सकती है। संभावनाओं के व्यापक क्षेत्र तक सृजन की धारा का प्रवाह अविरल गति से बढ़ता रहे, आम जन को समर्थ बनाने के लिए समर्पित भाव से जुड़ते हुए –"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।।" के आदर्श पर चलते हुए साहित्य जनोन्मुखी हो, गंगा की तरह कल्याणकारी हो तभी सही अर्थों में सृजन–कर्म सामर्थ्यवान बन सकेगा।

प्रो. विनोद कुमार मिश्र
महासचिव

हिंदी में सृजन का सुदृढ़ीकरण

विश्व हिंदी सचिवालय का विराट लक्ष्य हिंदी का अंतरराष्ट्रीय सन्नयन करना है। इस लक्ष्य की संपूर्ति की अनेक प्रविधियों में से दो अत्यधिक कारगर माध्यम हैं–

(क) हिंदी में सृजनात्मक लेखन को बढ़ावा देना

(ख) हिंदी में सृजित रचनाओं का प्रकाशन करना

विश्व हिंदी सचिवालय मार्च 2008 से त्रैमासिक सूचना–पत्र 'विश्व हिंदी समाचार' और जनवरी 2009 से वार्षिक पत्रिका 'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन करता आ रहा है। 'विश्व हिंदी समाचार' में मॉरीशस, भारत तथा प्रवासी देशों में आयोजित हिंदी संबंधी गतिविधियों पर प्रकाश डाला जाता है तथा 'विश्व हिंदी पत्रिका' में हिंदी विद्वानों द्वारा प्रणीत शोध–लेखों को प्रकाशित करके हिंदी की वैश्विक यात्रा और हिंदी के संवर्धन की भावी संभावनाओं का बोध कराया जाता है। चर्चित दोनों ही प्रकाशनों द्वारा विश्व भर में हिंदी के प्रति समर्पित व्यक्तियों एवं संस्थाओं की मेहनत को उजागर करने और वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का गौरवांवित रूप प्रस्तुत करने में विश्व हिंदी सचिवालय कटिबद्ध है।

11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के संदर्भ में, जहाँ विश्व की विभिन्न हिंदी प्रचारिणी संस्थाएँ अपनी हिंदी पत्रिकाओं के विशेषांक निकाल रही हैं, वहीं विश्व हिंदी सचिवालय ने अपनी प्रकाशन–योजना का विस्तार करते हुए एक नयी वार्षिक पत्रिका 'विश्व हिंदी साहित्य' के प्रथम अंक का प्रकाशन किया है। 'विश्व हिंदी समाचार' एवं 'विश्व हिंदी पत्रिका' से भिन्न 'विश्व हिंदी साहित्य' भारत, मॉरीशस, अमेरिका, कनैडा, यूरोप, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, एशिया, मध्यपूर्व तथा पैसिफिक क्षेत्रों में रची जा रही कहानियाँ, लघुकथाएँ, कविताएँ, नाटक, एकांकी, निबंध, संस्मरण, यात्रावृत्तांत, रेखाचित्र, व्यंग्य, रिपोर्ताज और साक्षात्कार को प्रकाश में लाते हुए हिंदी में हो रहे सृजनात्मक लेखन को विश्वव्यापी हिंदी प्रेमियों के लिए सर्वसुलभ और सुग्राह्य बनाने के उद्देश्य की पूर्ति करेगी ।

विश्व के आधुनिक हिंदी साहित्य का चित्र प्रस्तुत करने वाली एक विशिष्ट पत्रिका की आवश्यकता कई वर्षों से महसूस की जा रही थी। विश्व भर के हिंदी लेखकों के प्रति हम कृतज्ञ–भाव से विनत हैं, जिन्होंने अपना सहयोग देकर पत्रिका के प्रकाशन को संभव बनाया है। इस प्रथम अंक में गत आधी शताब्दी से साहित्य की साधना में तपते आ रहे अनेक सशक्त हस्ताक्षरों का योगदान पाकर पूर्णता का अनुभव होता है। साथ ही, नवोदित लेखकों का सहयोग 'विश्व हिंदी साहित्य' के उज्ज्वल भविष्य का आनंदप्रद बोध कराता है।

कुल मिलाकर 117 लेखकों की बहुरंगी साहित्यिक रचनाएँ इस पत्रिका में सम्मिलित हैं। अधिकांश रचनाओं में निहायत सरल शब्दों में सुंदर भाव अभिव्यक्त हुए हैं। भाषा में स्थानीयता का रंग स्पष्टतः परिलक्षित होता है। प्रवासी देशों से प्राप्त रचनाओं की हिंदी स्थान, विषय, क्षेत्र, प्रयोगकर्ता तथा आवश्यकता के अनुरूप विविधता ली हुई है। यद्यपि कुछ रचनाओं में बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है, तथापि साहित्यिक भाषा की पूर्ण अवहेलना भी नहीं हुई है। कुल मिलाकर इस पत्रिका द्वारा भाषा की दृष्टि से हिंदी साहित्य में हो रहे प्रयोगों की महत्वपूर्ण झलकियाँ प्राप्त होती हैं।

जो भाषा विविध गुणों से अलंकृत होती है, वही साहित्य की भाषा बनती है। सर्वगुणसम्पन्न हिंदी विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अग्र श्रेणी में आसीन है। भक्तिकाल में कबीर, सूर और तुलसी के साहित्य हिंदी के लिए वरदान सिद्ध हुए। रीतिकालीन दरबारी कवियों के साहित्य से हिंदी को राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। भारतेंदु के साहित्य ने हिंदी में नए प्राण फूंके। प्रेमचंद के साहित्य ने हिंदी को गति दी और प्रसाद के साहित्य ने हिंदी को परिनिष्ठित किया। साठोत्तरी हिंदी साहित्य द्वारा हिंदी का लचीलापन सिद्ध हुआ और प्रवासी हिंदी साहित्य ने हिंदी को विश्व भाषा बनाने में अपनी आहूति दी।

साहित्य जैसे–जैसे विकसित हुआ, वैसे–वैसे हिंदी भी विकसित हुई और साहित्य के बल पर ही हिंदी ने पूरे विश्व में व्यापक भ्रमण किया। हिंदी सदा साहित्यकारों की ऋणी रहेगी। आशा है कि 'विश्व हिंदी साहित्य' द्वारा वर्तमान साहित्यकारों को भावी लेखन की ऐसी प्रेरणा प्राप्त होगी कि हिंदी में जो अब तक सृजित नहीं हुआ है, उसका सृजन हो, अलग–अलग देशों के हिंदी साहित्य का स्तर बढ़े और विश्व हिंदी साहित्य का एक नया रूप उभरे ऐसा रूप जो भाषा की वैश्विक छवि और सम्मान में वृद्धि करे।

विश्व हिंदी साहित्य' में निहित रचनाओं द्वारा वैश्विक हिंदी साहित्य के सबल और दुर्बल पक्षों का आकलन करते हुए, हिंदी में सृजन की सुंदर विशेषताओं का सुदृढ़ीकरण तथा दुर्बलताओं का निर्मूलन किया जाए, तो इस प्रकाशन की सार्थकता अवश्य सिद्ध होगी। हिंदी साहित्य की विपुलता एवं विविधता दर्शाना और अलग–अलग देशों में फैले हिंदी समुदाय को साहित्य के माध्यम से बाँधना भी इस प्रकाशन के उद्देश्य हैं।

पाठकों को 'विश्व हिंदी साहित्य' का यह प्रवेशांक भाए और इस पत्रिका द्वारा साहित्य के अध्येताओं की साहित्यिक चेतना प्रभावित हो, शोधार्थियों को भिन्न देशों के हिंदी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन एवं सही मूल्यांकन करने की प्रेरणा प्राप्त हो, आलोचकों में आलोचना की नयी दृष्टि का विकास हो तथा हिंदी साहित्य की गुणवत्ता के माध्यम से हिंदी विश्व की व्यापक भाषा बनकर संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का स्तर पाए।

इन कामनाओं के साथ 'विश्व हिंदी साहित्य' सुधि पाठकों एवं साहित्य प्रेमियों को विश्वासपूर्वक सुपुर्द किया जाता है।

डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

लघुकथा

७

अमीर आदमी

—हेमा चंदानी 'अंजुलि'

आज अमीर आदमी का जन्मदिन था। हर रात की तरह इस रात भी वह मंदिर के बाहर पहुँच गया, भिखारियों में खाना और कपड़े बाँटकर पुण्य कमाने के लिए। मगर आज तो कमाल ही हो गया। आज मंदिर के बाहर उसे एक भी भिखारी नहीं मिला। अमीर आदमी परेशान हो गया कि अब वह पुण्य कैसे कमाएगा? फिर उसने फूलवाले से पूछा कि सारे भिखारी कहाँ चले गए। तब फूल वाले ने बताया कि कल रात सारे भिखारी अमीर हो गए और यहाँ से चले गए। पगला गए हो क्या तुम! ऐसे कोई रातों-रात अमीर बनता है क्या? जरूर पुलिसवालों ने भगा दिया होगा।" वह बोला।

फिर अमीर आदमी ने अपनी कार गरीबों की कच्ची बस्ती की तरफ मोड़ ली और जब वह गरीबों की कच्ची बस्ती पहुँचा, तो हैरान रह गया। कल तक जहाँ कच्ची बस्ती हुआ करती थी, आज वहाँ पक्के घर थे, गंदे-फटे कपड़ों में घूमने वाले लोग आज साफ-सुथरे कपड़े पहनकर घूम रहे थे। पूछने पर वहाँ भी उसे यही जवाब मिला कि कल रात सारे गरीब अमीर हो गए। अब अमीर आदमी और भी परेशान हो गया। इस तरह से अमीर आदमी शहर की हर उस जगह पर गया, जहाँ-जहाँ गरीब और भिखारी लोग रहते थे, पर हर जगह उसे निराशा ही हाथ लगी। पंडित जी ने कहा था कि राहु की दशा है, दान करो, पुण्य मिलेगा! पर अब किसे दान करे वह? कैसे पुण्य कमाए? परेशान होकर उसने अपने मंत्री मित्र को फोन करके पूछा कि शहर के सारे गरीब-भिखारी कहाँ चले गए? उसकी बात सुनकर मंत्री जी भी परेशान हो गए कि अगर शहर में कोई गरीब नहीं रहा, तो उनके चुनाव का क्या होगा? किससे झूठे वादे करके चुनाव जीतेंगे वे?

इधर अमीर आदमी की बीवी भी परेशान थी, क्योंकि आज उसकी काम वाली बाई ने काम छोड़ दिया था। अब वह भी अमीर हो गई थी। इसीलिए नौकरानी का काम नहीं करेगी। आज से मालकिन को खुद झाड़-बर्तन करना होगा। आज अमीर आदमी के दफ्तर का चपरासी भी नहीं आया था, उसका ड्राइवर भी गायब था। आज तो कार भी उसे खुद ड्राइव करनी पड़ी और फिर अचानक उसने देखा कि सड़क पर जैसे कारों का हुजूम निकल आया है। शहर का हर गरीब आदमी कार में सफर कर रहा है। उसका चपरासी, उसके घर की काम वाली बाई, होटल का वह वेटर, जिसे वह दस रुपए की टिप देकर एहसान जताने वाली नजरों से देखा करता था। आज वे सब उसकी बराबरी करते हुए उसकी ही कार के साथ रेस लगाते दिख रहे थे। उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि अचानक यह क्या हो गया? उसे लगा कि उसका अस्तित्व महत्वहीन होने लगा है। अमीर आदमी चिल्ला उठा "नहीं, यह नहीं हो सकता!" कितनी मेहनत की थी उसने बड़ा आदमी बनने के लिए और आज सारी मेहनत मिट्टी में मिल गई। शहर का वह तबका, जो उसे झुककर सलाम किया करता था, अगर उसके बराबर में आकर खड़ा हो गया तो फिर उसे बड़ा आदमी कौन मानेगा? जो काम वेटर, चपरासी, नौकर, ड्राइवर किया करते थे, वे सब काम अगर अमीर आदमी खुद करेगा, तो फिर उनमें और उसमें क्या फर्क रह जाएगा? माना कि वह खुद भी गरीबों का उद्धार चाहता है, लेकिन ऐसे नहीं कि उसका अपना अस्तित्व ही महत्वहीन हो जाए। फिर वह रोने लगा, चिल्लाने लगा "नहीं, यह नहीं हो सकता! हे प्रभु, यह तू ने क्या कर दिया? सब खत्म हो गया, सब खत्म हो गया!"

फिर अचानक उसकी नींद खुल गई। उसने देखा कि उसकी पत्नी घबराई हुई-सी उसके पास खड़ी उससे पूछ रही थी, "क्या हुआ? क्यों चिल्ला रहे हो? कोई बुरा सपना देखा क्या?" अमीर आदमी बोला, "हाँ! बहुत बुरा सपना था!" पत्नी बोली, "सपने कभी सच थोड़े ही न होते हैं?" तब अमीर आदमी की जान में जान आई और वह बोला, "शुक्र है खुदा का कि सपने सच नहीं होते वरना पता नहीं क्या होता।" पत्नी बोली, "सपने को भूल जाइए और जल्दी से तैयार हो जाइए। आज आपका जन्मदिन है। आपको मंदिर जाना है, गरीबों और भिखारियों को खाना बाँटने।" यह सुनकर अमीर आदमी के चेहरे पर पसीना उभर आया। सपने का भय अब तक उसके चेहरे पर साफ नजर आ रहा था।

पहचान

—श्रीमती रेणुका बर्थवाल

फोर्ब्स की सूची में आठ भारतीय महिलाएँ (चैनल एक)... महिला खेलों में ही पदक नहीं जीत रहीं, यू.एन. पीस कीपिंग में भी महिलाओं की भागीदारी देखते ही बनती है (चैनल दो)... तीन राज्यों की बागडोर महिला मुख्यमंत्रियों के हाथों में (चैनल तीन)... मेरी अंगुलियाँ टी.वी. के रिमोर्ट पर थिरक रही हैं, पर हर चैनल पर महिलाओं के यशोगान को सुनकर भी मन उलझन में है... मेरी नजर उलझी लटों के पीछे, ज़रा आँख के पास नीला धब्बा लिए रसोई में काम करती मेरी माँ पर पड़ी। वह तल्लीनता से उस राक्षस की भूख का इंतज़ाम करने में जुटी थी, जो हर रात नशे में धुत होकर उनकी बोटी–बोटी नोचता था। नया जीवन देने वाली उनकी पहचान ही उनका गुनाह बन गई, क्योंकि वे बेटा नहीं जन सकी।

मैं माँ के कंधे पर हाथ रखकर कुछ कहना चाहती हूँ– "माँ! आज हमारा दिन है। आज रात काली तो क्या, नीली और लाल भी नहीं होगी," पर मैं कहे बिना ही कॉलिज के लिए निकल पड़ी।

एक के बाद एक फोन पर मैसेज... हैप्पी वूमंस डे। तभी फर्राटे से गुजरती बाइक पर सवार एक नौजवान ने मेरा दुपट्टा खींचने की कोशिश की और मैं ज़मीन पर गिर पड़ी। झलक सफ़ेद सलवार–कमीज पर कीचड़ की छींटें और मुझपर भी छींटाकशी... आखिर क्यों? शायद मेरी पहचान इंसान से ज़्यादा उस बदन से है, जो औरत का बदन है!

महिला सशक्तीकरण पर कॉलिज में समारोह आयोजित। शहर के आला पुलिस अधिकारी का प्रेरक भाषण... उत्साह जगाने वाली बातें... विश्वास करूँ या न करूँ... क्योंकि एक पुरुष मेरे घर पर भी है... वह भी रैलियाँ करता है... महिलाओं के अधिकार और सम्मान की बातें भी, पर घर की चारदीवारी में वह मेरी माँ के साथ जानवरों से भी बदतर सलूक करता है। तो क्या ये अधिकारी भी? संदेह हमेशा सही हो यह भी जरूरी तो नहीं!

मैं घर पहुँची... आज हमारा दिन है। माँ फिर भी कराह रही है। गरदन पर बंधी नील और होंठों से निकलती वह लाल लकीर... न जाने कहाँ से मुझमें हिम्मत आई? घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण कानून की याद आई और मैंने थाने फोन लगाया। माँ को इस पिंजरे से बाहर निकालने की एक अदद कोशिश!

दरवाज़े पर दस्तक हुई तो मुझे अपने ऊपर नाज़ हुआ– आखिर मेरी हिम्मत रंग लाई, पर यह क्या? दरवाज़ा खुलने के साथ ही हर रंग बदरंग होता नज़र आया। भूल गई मैं कि मेरे पिता खद्दरधारी हैं और खद्दर–खाकी की सांठ–गांठ भला कैसे छुप सकती है? इधर माँ की कराह और उधर खाकी–खद्दर का अट्टहास! कानून बनाने वाले और कानून लागू करवाने वालों के सामने ही मैंने कानून की धज्जियाँ उड़ते हुए देखा। नीले–लाल रंग में सनी माँ से मेरी नज़रें टकराईं। कोशिश करते हैं हम दोनों एक दूसरे की आँखों में अपनी पहचान तलाशने की! वही पहचान, जो पूरे दिन किसी न्यूज़ चैनल पर अपनी जगह नहीं बना पाई!

मौत

— डॉ. पल्लवी प्रकाश

शहर के प्रसिद्ध उद्योगपति अमरकांत शर्मा के पिता का आज श्राद्ध था। सुबह से उनके घर लोगों का तांता लगा हुआ था, जिसमें शहर के सभी प्रतिष्ठित और गण्यमान्य लोग थे। लोगों की आव–भगत में लगे शर्मा जी के नौकर मंगतू को सुबह से सांस लेने की फुर्सत भी नहीं मिली थी। दोपहर होते ही उसे याद आया कि न तो सुबह से उसने कुछ खाया है, ना ही अपने गाँव फोन कर वहाँ का हाल–चाल पूछा है। अपना मोबाइल तो वह सर्वेंट रूम में ही छोड़ आया था। तभी शर्मा जी का ड्राईवर गणेशी वहाँ दौड़ता हुआ आया, जिसके हाथ में मंगतू का मोबाइल था। गणेशी को देखते ही मंगतू एक अज्ञात आशंका से घिर गया, उसके माथे पर पसीने की बूंदें चुहचुहाने लगीं। गणेशी ने जोर से आवाज लगाई, "अरे मंगतू, अपना फोन कहाँ छोड़ आया था? देखो, अब तक कम से कम दस कॉल आ चुकी हैं।" मंगतू ने कॉपते हाथों से मोबाइल लिया और फिर से उसी नंबर पर कॉल किया, जो गाँव के धुन्नू भइया का था। "हैलो, हैलो... हाँ! भइया, मंगतू बोल रहा हूँ? सब ठीक है न?" "कुछ ठीक नहीं है मंगतू। आज सुबह ही तुम्हारे बाबू गुज़र गए। कितने दिनों से तो बीमार चल रहे थे। तुम रोज आज–कल की तरह बात करते रहे, मगर छः महीनों से गाँव नहीं आए। अब जल्दी से दोपहर वाली बस पकड़ो, तो रात तक पहुँच जाओगे। चाची रो–रोकर बेहाल हुए जा रही हैं।" मंगतू की रुलाई उसके गले में ही रुक गई। छः महीनों से गाँव जाना चाह रहा था, मगर नौकरों को घर जाने के लिए साल में एक ही बार महीने भर की छुट्टी मिलती थी। अपनी नौकरी अगर वह दाँव पर लगाता, तो बाबू की दवा–दारू और अस्पताल का खर्चा कैसे उठा पाता? पिछले पंद्रह दिनों से बाबू की बीमारी और बढ़ गई थी। मगर इधर शर्मा जी के पिता भी अस्पताल में भर्ती थे, जिनकी मृत्यु और फिर मृत्योपरांत के सारी रस्मों–रिवाजों की वजह से वह मालकिन से छुट्टी की बात नहीं कर पाया था। मंगतू ने दिमाग को जोर का झटका दिया और मालकिन के पास हाँफता हुआ पहुँचा। मिसिज शर्मा घरेलू श्रमिकों के अधिकारों के लिए लड़ने वाली संस्था 'श्रमशक्ति' की प्रेसिडेंट थीं। आए दिनों अखबारों में उनके जोशीले भाषणों की चर्चा होती थी, जिसमें घरेलू श्रमिकों की बदहाली पर चिंता व्यक्त की जाती थीं, उनकी स्थिति को सुधारने के संकल्प के साथ। "मालकिन, मुझे अभी दोपहर की गाड़ी से गाँव जाना है, मेरे बाबू गुजर गए हैं", मंगतू रूंधे गले से बोला। मिसिज शर्मा ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और बोलीं, "मंगतू, बड़े अफसोस की बात है, मगर तुम कल सुबह की गाड़ी से चले जाना। वैसे भी, जो होना था वो हो ही चुका है, लेकिन तुम्हारे अभी चले जाने से यहाँ बड़ी परेशानी हो जाएगी। तुम हमारे सबसे पुराने आदमी हो और बाबू जी के श्राद्ध के दिन अचानक कैसे जा सकते हो? अभी चलो गेट पर, सेठ रामजीमल को अंदर लाकर बैठाओ।" मालकिन के शब्द मानो गर्म हथौड़े की तरह मंगतू के सीने पर पड़ रहे थे। मालिकों और नौकरों की ज़िंदगियों का फर्क तो उसे मालूम था, मगर दोनों की मौत में भी कितना फर्क है, यह आज उसे मालूम हुआ।

मृग मरीचिका

– श्री जानकी बिष्ट वाही

हल्की धुंध में लिपटे गाँव में बिजली के बल्ब जुगनुओं की भाँति टिमटिमा रहे हैं। घरों की चिमनी से निकलता धुआँ पेड़ों के पीछे विलीन हो रहा है। थान पर जानवर सोने की तैयारी में जुगाली कर रहे हैं। रोटी की आस में बच्चे किताब की ओट से माँ को निहार रहे हैं। बाहर बाखली में तम्बाकू की खुशबू से लिपटे मर्द दुनिया–जहान की बातों में मग्न हैं।

"वाह! लाजवाब, अपने जादुई हाथों से अद्भुत चित्र उकेर डाला मृणाल तुमने? कितना खूबसूरत गाँव है। इसके रंग इतने जीवंत हैं कि दिल चाहता है अभी उड़कर वहाँ पहुँच जाऊँ।

"तुमने भी चित्र को देखकर गजब का वर्णन कर दिया, नीलपर्णिका! अब गाँवों को महसूस ही कर सकते हैं। तुम वहाँ जाओगी तो ज़िंदगी ढूँढ कर भी नहीं मिलेगी।" मृणाल की आवाज़ मानो मंदिर के गर्भ–गृह से आ रही हो।

"क्यों?" उत्सुकता से नीलपर्णिका की आँखें फैल गईं।

"क्योंकि अब गाँवों के ये सुंदर मंजर केवल तस्वीरों में सिमटकर धनवान लोगों की कोठियों में सजते हैं। देखो! मैं तुम्हें दूसरी तस्वीर दिखाता हूँ। गाँवों का दूसरा पहलू।"

"यह क्या? कैसी तस्वीर बनाई है तुमने? खण्डहर घर, उजड़े खेत, सूनी पगडण्डी और आसमान में जड़ी दो बूढ़ी आँखें! कितना नीरस और जीवन विहीन है यह चित्र! मानो इसकी आत्मा ही मर गई हो। कहाँ गए इसके सुंदर चरित्र और रंग?"

"वे, वे तो, मृग मरीचिका के पीछे महानगरों की सड़ाँध मारती झोंपड़–पट्टियों में जीने की चाह में मरने चले गए, नीलपर्णिका!"

"मैं समझी नहीं मृणाल!"

"जिस दिन यह बात सब समझ जाएँगे उस दिन से गाँव केवल चित्रों में ही सुंदर नहीं लगेंगे... नीलपर्णिका!"

आस्था

– डॉ. लवलेश दत्त

अपना समय निकट जानकर माँ ने सारी जायदाद, पुराने गहने और पीतल के भारी बर्तन गुप्ता जी के नाम कर दिए। सभी बहुत पुराने थे इसलिए गुप्ता जी ने उन्हें बेचकर सबसे पहले अपना घर बिल्कुल बदल डाला। बाप–दादाओं की संपत्ति को क्या रूप दिया है, बिल्कुल महल बनवाया है। पिछले दो दिनों से अनुष्ठान चल रहा है। गुप्ता जी की माँ, भगवती में बहुत आस्था है। इसीलिए घर का नाम 'मातृछाया' रखा है। आज दिन में कन्या भोज हुआ और अब रात्रि में देवी जागरण होगा। सचमुच बहुत बड़ा आयोजन है। घर की सारी महिलाएँ नए कपड़ों और गहनों से सजी–धजी घूम रही हैं। घर की कामवाली दुलारी और उसकी चारों बेटियाँ लगातार घर की साफ–सफाई और चौका–बर्तन में लगी हैं।

घर में चार लोग इकट्ठे हुए हैं। पूरा घर मेहमानों से भरा है। ऐसे में बुढ़िया की देख–रेख कौन करता? इसलिए 94 वर्षीया माँ को गाँव भिजवा दिया गया।

प्लास्टिक के नोट

– श्री राज हीरामन

इस बार के आम चुनावी अभियान में दोनों, सत्तारूढ़ और विपक्षी पार्टियों, दोनों का मुद्दा एक था और जबरदस्त था। पिछले चुनाव में जीत हासिल कर सत्तासीन हुई पार्टी आज सत्ताहीन होने जा रही थी क्योंकि उसने झूठे वायदे किए थे। एक हजार और दो हजार के नोट तो मतदाताओं में खूब बाँटे थे! मगर सभी नोट आधे–आधे फाड़कर बाँटे थे! आज जनता उन आधे–अधूरों की माँग कर रही थी सूदसमेत! बहस, अन्याय, शोषण, धोखाधड़ी, चोरी, अत्याचार, व्यभिचार, चालबाजी के कलंक और अपने फाड़न के दर्द से इन नोटों ने उम्मीदवारों को कह दिया था "हम तो डूबे! पर तुम्हें भी ले डूबेंगे सनम!"

विपक्षी पार्टी तो इसी एक मुद्दे को अपना हथियार बना चुकी थी। कह रही थी, "हम आप से न कभी झूठ बोले हैं न कभी बोलेंगे! हम आप को आधे नहीं, पूरे नोट देंगे।" जब मतदाता कहते कि यह भी ठग है! तो यह दलीलें देते, "पिछले चुनाव के आधे नोट का बकाया न मिलना तो ठग से विपक्ष ने इस तरह से मतदाताओं को भड़काऊ बातें बताते हुए कहा था, "मुख्य मंत्री ने पिछले आम चुनावी अभियान के दौरान दो करोड़ नोट तो बँटवाए थे पर दो करोड़ आधे नोट कहाँ हैं, स्वयं उन को पता नहीं!"

पर जनता का भरोसा दोनों पार्टियों से उठ गया था! इस बार जनता ने अपने वोट से किसी एक तीसरी पार्टी को सत्ता सौंपी जिसने नोट की इस बुराई को जड़ से उखाड़ देने का वचन दिया था, "हम प्लास्टिक के नोट बनाएंगे जिन्हें कोई फाड़ न पाएगा!"

सदा सुखी रहो!

– श्री अरविंदसिंह नेकितसिंह

–हेलो!

–हेलो! तुम्हें शर्म नहीं आती!

–आती है, पर किस बात की?

–बनने की कोशिश न कर शाम! तुम जैसे पुरुष के साथ मैं अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकती। मेरे घर में कोई तुम्हें पसंद नहीं करता। न मेरी माँ, न मेरे पिता, न मेरी बहनें, न मेरा कुत्ता। खुद पर शर्म आती है कि तुम से प्यार हुआ है।

–पर इतना तो बता दो मैंने किया क्या है?

–ये भी मुझे बताना पड़ेगा? तुम सोच नहीं सकते कि तुम ने क्या किया?

–ये ही तो नहीं सोच पा रहा हूँ कि किया क्या मैंने।

–किया क्या तुमने? बेगैरत, जाकर कहीं डूब मरो। तुम्हारे जैसे पुरुष की औरत ही जाकर बाहर पुरुष ढूँढती हैं।

–ऐसा क्या?

–चुप रहो.....। आज के बाद तुम्हारा और मेरा रिश्ता खतम। तुम मरोगे, सड़ोगे। तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी बेटी कुल्टा होंगी। तुम कभी खुश नहीं रहोगे। तुम अकेला रह जाओगे। तुम रोओगे, पछताओगे और तड़पोगे।

आखिर बताओगी भी कि किया क्या मैंने?

–तुमने मेरी माँ को दीपावली अभिनन्दन क्यों नहीं कहा....?

छुट्टी वाली सीख

— श्री वशिष्ठ कुमार झमन

पौने बारह बजे स्कूल की घण्टी बजी और बच्चे पैंतीस मिनट की छुट्टी के लिए कक्षा से निकले। रोज की तरह तीन अध्यापक मित्र स्कूल के बाहर एक विशाल पेड़ की छाँव में जा खड़े हुए और अपनी दैनिक गोष्ठी आरंभ की। उस दिन किसी के हाथ में रोटी न थी। बस, सिगरेट का पाकेट था और माथे पर लकीरों की फौज उनकी चिन्ताओं की गवाही दे रही थी।

विषय गंभीर था। पी.आर.बी. की रिपोर्ट में कम्पेनसेशन के नाम पर केवल तीन सौ रुपये मिले थे। तीनों दोस्तों के स्वरों में उनकी निराशा साफ सुनाई दे रही थी। कभी सरकार को कोसते, कभी जीवन को, कभी नेताओं को गाली देते तो कभी खुद को। मूलतः अनके वार्तालाप में सुखी जीवन से संबंधित हर विषय को स्वर मिल रहा था। कोई अपने बच्चे के खान-पान से लेकर उसकी पढ़ाई के खर्चे की बात करता तो कोई अपनी गाड़ी पर खर्च किए गए पैसों का जिक्र करता। कोई सब्जियों के दाम पर बात करता तो कोई बिजली, पानी, फोन आदि के बिल की चर्चा करता। ऐसा लगता था, उन्होंने अपने मन में जीवन भर असंतोष के पटाखे ही जमा किए थे। पी.आर.बी. की इस रिपोर्ट ने उन्हें आग दी और ये पटाखे फटते जा रहे थे।

रास्ते पर कई लोग आ-जा रहे थे पर तीनों अध्यापकों का ध्यान किसी पर नहीं जा रहा था। उनको तो अपनी ही चिंताओं के अलावा कुछ भी नहीं दिख रहा था। परंतु शिकायतों की दुनिया में उनका अधिक रहना शायद ठीक नहीं था। कुछ दूर से एक अजीब-सी आवाज आ रही थी जो धीरे-धीरे तीव्र होने लगी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई सुपरमार्केट में अपना 'काजी' ढकेल रहा हो। इस आवाज ने तीनों का ध्यान आकृष्ट किया और वे आवाज का स्रोत ढूँढने हेतु इधर-उधर देखने लगे। रास्ते की एक ओर एक आदमी एक अपाहिज व्यक्ति को व्हीलचेयर पर लेकर उनकी ओर आ रहा था। जैसे-जैसे वे नजदीक आते गए, अपाहिज की स्थिति अधिक स्पष्ट होती गयी। विचित्र काया थी उसकी। उसकी पतली-सी टेढ़ी गरदन पता नहीं किस माया से उसके सिर का बोझ संभाल पा रही थी। उसका एक हाथ तो जैसे पीठ में घुसा हुआ था और छाती इतनी फुली हुई थी मानो किसी भी समय वह फट सकती थी। दूसरा हाथ गोद में निर्जीव पड़ा था। उसके घुटने एक-दूसरे से जुड़े हुए थे और पैर रस्सी पर लटकते गीले कपड़ों-सा लटक रहे थे।

इन सब से होते हुए तीनों की नजरें उसके चेहरे पर आकर रुकीं। उसका काला चश्मा शायद उसकी आँखों की खराबियों को छुपाने के लिए था। पर उस व्यक्ति के मुख पर ऐसी मुस्कान थी जैसे उसे मोक्ष का आनंद महसूस हो रहा है। जैसे-जैसे वह रास्ता तय कर रहा था उस पर बारी-बारी से कभी धूप तो कभी छाँव पड़ती थी। हर बार जब उसके चेहरे पर धूप पड़ती, वह अपना चेहरा आसमान की ओर करता और चेहरे पर पड़ती धूप से और अधिक आनंदित हो जाता था। वह इतना खुश था कि तीनों उसको देखते ही रहे। इस तरह करते-करते वह तीनों अध्यापकों के सामने से गुज़रकर चला गया।

अब तीनों अध्यापक पेड़ की छाँव में चुपचाप बैठे थे। बस, अपना-अपना सिगरेट पी रहे थे। कक्षा में जाने का समय भी हो रहा था तो तीनों उठे और ढीली चाल में पूरे आराम के साथ चलने लगे। फिर उनमें से एक ने अपने दोनों मित्रों की ओर देखकर कहा —

"एक बात बोलूँ..? आज हमें बहुत बड़ी सीख मिली है!"

मॉरीशस

मैं बिटिया हूँ तुम्हारी

– श्रीमती करिश्मा देवी रामझीतन–नारायण

'मेरा जन्म हुआ तेरे आँगन में, दिन-रात तू मुझको डांटता,
सुबह-शाम तू मुझको मारता, फिर भी मैं आह नहीं भरती।
जबकि है तू मेरा, मेरे दो छोटे भाइयों और दो छोटी बहनों का पिता है तू
मेरी माँ का देवता है तू, उसका सुहाग है तू।'

ये पंक्तियाँ, मेरे जीवन की सच्चाई हैं। मैं उस घर की बिटिया हूँ, जहाँ एक शराबी बाप अपने 5 बच्चों के साथ रहता है। उस घर में पत्नी की कोई पहचान नहीं है, वह तो सिर्फ पैसे कमाने का एक कारखाना है। मेरी माँ 50 साल की एक महिला, अकेली अपने पूरे घर का बोझ लिए इस दुष्ट समाज से लड रही थीं। मैं 10 साल की एक छोटी सी लडकी थी। मेरे दो छोटे भाई 3 और 5 वर्ष के थे। मेरी दो बहनों की उम्र 6 और 2 की थी। हमारे घर में शायद लक्ष्मी का वास नहीं परन्तु हमारी माँ का साथ था।

छोटे भाई–बहनों के जन्म के बाद उनकी देख–भाल के लिए मुझे अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। मैं दिन–भर पूरे घर का काम करती, खाना पकाती, पास के जंगल से लकड़ियां तोड़ने जाती, अपने नन्हे भाई–बहनों को पास के तालाब में ले जाकर नहलाती, उनका ख़याल रखती और उनको स्कूल छोड़ने जाती। मेरी माँ दो मील दूर गन्ने के खेत में काम करती थीं। शाम को जब वह थकी–हारी घर लौटतीं तब वह पूरी रात बैठकर कपड़े सीतीं और वह प्रति रविवार को पास की मंडी में जाकर उन कपड़ों को बेचती थीं।

मेरे पिताजी शराब में धुत्त घर लौटते, मुझे गालियाँ देते और मेरी माँ को पीटते थे। फिर भी मेरी माँ ने कभी हार न मानी और ना ही अपने पति को कुछ कहा क्योंकि उनके लिए उनका पति उनके देवता थे। मैं रोज इस तमाशे को देखती और सोचती कि यह कब खत्म होगा? एक दिन मुझे पता चला कि माँ अपने दिल मे दुखों का सागर लिए जी रही थीं, वह अंदर ही अंदर घुटती जा रही थीं और अंत में ईश्वर ने उनका कष्ट मिटाने हेतु उन्हें अपने पास बुला लिया।

माँ की मृत्यु के बाद घर की पूरी जिम्मेदारी मुझ पर आ गई थी। 12 वर्ष की उम्र से मैं कारखाने में काम करके अपना और अपने पूरे परिवार का पेट पालती थी और उन बच्चों को अच्छा जीवन देने के लिए स्कूल भेजती थी। न चाहकर भी मैं शराबी बाप को पीने के लिए पैसे देती थी। कई सालों की मेहनत के बाद मेरे अच्छे दिन आने वाले थे। मेरे छोटे भाई साहब बन गए थे : एक डॉक्टर और एक इंजीनियर बन गए थे। एच.एस.सी. करने के बाद मेरी दोनों बहनों की शादी हो चुकी थी और वे अपने घर–संसार में खुश थीं। मुझे उनपर नाज़ था। मेरा दिल तो खुशी से गद–गद् हो गया था ।

मैं फूला न समा रही थी, मैंने जल्द ही दोनों भाइयों की शादी कर दी । बहुओं के आने से घर भरा–भरा सा लगने लगा। रोज–रोज घर पर दावतें होने लगीं, पार्टियाँ चलने लगीं लेकिन मुझे और पिताजी को कमरे से बाहर निकलने से मना कर दिया गया था। मुझ लाचार बहन को क्या पता था कि यह अनपढ़ बहन और वे गंवार बाप उन्हें गवारा नहीं थे। दोनों बहनों को इस बड़ी दीदी से बात करना अच्छा नहीं लगता था, उनकी मान–प्रतिष्ठा को चोट लगती थी। एक रात भाइयों और बहनों ने मेरी अच्छी सेवा की। पिताजी जो हमेशा गाली–गलौज करते थे, उन्होंने स्नेह पूर्वक मेरे सर पर अपना हाथ रखा । मैं तृप्त हो गई । पूरे परिवार के सदस्यों ने मुझे खाना खिलाया और प्यार किया। उन्होंने मुझे सारे जहान का सुख उस पल में दे दिया। काश... उफ्... नसीब...मुझ बेवकूफ़ को क्या पता था कि पिताजी को शराब का लालच देकर मेरे अपनों ने उन्हें मेरे दूध में जहर मिलाने को कहा था। पहली बार पिता के कोमल हाथों से दूध पीकर मैं ऋण मुक्त हो गई। मेरी आत्मा परमात्मा में लीन हो गई। सवेरे उन्होंने मेरे शव को जलाया। राख के ठंडे होने की प्रतीक्षा किये बिना, उसी दिन पिताजी को वृद्धाश्रम में डाल दिया गया।

अमेरिका -

घरौंदा

— श्रीमती रीनू पुरोहित

बिखरे तिनकों को समेट, नन्हे वरदान का हाथ पकड़, देश, रिश्ते, दोस्ती सभी को पीछे छोड़ इतनी दूर दोबारा अपना घरौंदा बनाने यहाँ अनजाने देश में, अनजाने लोगों के बीच चली आई हूँ।

आकाश नाम कैसी विशालता का एहसास देता है, पर नहीं.. 'गूंगा–बहरे बच्चे का बोझ सारी जिंदगी नहीं उठा सकता.. दम घुटता है मेरा।' कह कर... मेरी छोटी–सी गृहस्थी तिनका–तिनका कर चले गए। कोस भी नहीं पाती हूँ ठीक से आकाश को... वरदान की आँखों में देखती हूँ तो... आकाश पर दया ही आती है।

माँ, पापा, भैया–भाभी, भतीजे–भतीजियों से भरे–पूरे परिवार में भी वरदान के लिए घर नहीं बना पाई। माँ बेचारी तय नहीं कर पाती थी कि वरदान पर दया करे या पिछले जन्मों के पापों को कोसे। बच्चे वरदान की हँसी न उड़ाएँ, उसे तंग न करें, इसलिए भाभी बच्चों पर कड़ाई करती... नतीजा, बच्चों की सारी सजाओं, सारी डांटों का कारण वरदान बनने लगा।

दुनिया में सुनकर भी समझने वालों की कमी नहीं है। पर वरदान न सुन सकने पर भी सब समझता है। मेरे छोटे से समझदार बेटे को मेरी असमर्थता और दूसरों की नासमझी की सजा न ढोनी पड़े, इसलिए उसे इतनी दूर यहाँ कनाडा ले आई।

शादी से पहले एक मल्टीनेशनल कंपनी में सीनियर प्रोग्रामर थी। शादी के बाद फ्री लांस कन्सल्टेशन शुरू कर दिया था। इन्हीं कॉण्टैक्ट्स में से एक ने यहाँ टोरंटो हाईपार्क इलाके में फर्निश्ड अपार्टमेंट छः महीने की लीज़ पर दिलवा दिया है।

वरदान का स्कूल में एडमिशन भी हो गया है। अगले हफ्ते से उसका स्कूल जाना शुरू होगा। सुबह शाम हम दोनों यहाँ के विशाल पार्क एक्सप्लोर करने निकल जाते हैं। वरदान को पेड़–पौधे, बगीचे बहुत पसंद हैं। इंडिया में घर से निकलते ही आसपास के सभी पेड़–पौधों की पहचान शुरू हो जाती थी। यह कृष्णा चूड़ा, यह नीम, यह पलाश, यह अमलतास, यह गुलमोहर। हम आपस में साइन लैंग्वेज में बातें करते हैं. . वैसे अब वरदान कुछ लिप रीडिंग भी करने लगा है। बाहर निकलते ही उसका पेड़ों के नाम पूछना शुरू हो जाता। इस बदले देश की बदली वनस्पति में केवल एक मेपल ट्री को ही पहचान पाती। अभी तो आए हफ्ता भी नहीं हुआ और यह नया देश और भी पराया लगने लगा है।

हर प्रश्न का हल बता देने वाला गूगल भी बहुत काम नहीं आया। यहाँ पाए जाने वाले पेड़ों के नाम तो मिले पर फिर भी सड़क के किनारे या बाग–बगीचों में खड़े पेड़ों से परिचय नहीं हो पाया।

इस नए देश में अपने बेटे के लिए घर बनाने आई हूँ, पर उसके इन मूक साथियों से उसकी पहचान करने के पहले ही पायदान पर असम खड़ी हूँ।

आज घर लौटते समय लायब्रेरी का बोर्ड देखा तो हम दोनों वहाँ चले गए। वैसे तो वरदान को लोगों से मिलना अच्छा लगता है पर अब लोगों की असहजता उसे भी असहज करने लगी है। किताबों से दोस्ती करने लगा है मेरा बेटा, जो बिना बोले उसे नई–नई कहानियाँ सुना देती हैं।

किताबें टटोलते पेड़–पौधों की एक किताब हाथ लगी। इसमें उत्तरी अमेरिका में पाए जाने वाले पेड़–पौधों के बारे में जानकारी है। पेड़ के नाम व विवरण के साथ पत्तों, फूलों, फलों की तस्वीरें भी हैं। पन्ने पलटते–पलटते मालूम हुआ कि लाइब्रेरी के बाहर हरे पत्तों पर सफेद किनारी वाला पेड़ हरक्युलिस मेपल है।

घर आकर वरदान के साथ किताब की तस्वीरों से अब तक देखे पेड़ों की तुलना की.. शाम की सैर के समय पार्क में झूलों से ज्यादा समय हमने ओक, चैरी ब्लौजम, पाइन व स्प्रूस पहचानने में लगाया।

हमें कनाडा आए तीन महीने हो गए हैं। वरदान को अपना स्कूल बहुत पसंद है। मुझे दो पार्ट टाइम कंसलटेशन जॉब मिल गए हैं। आज स्कूल से लौटते समय वेल पर गहरे नीले रंग के तारे की शक्ल का बड़ा सा फूल देखकर वरदान ने अपनी उंगलियों से साइन लैंग्वेज में बताया C-L-E-M-E-N-T-I-N-E! सड़क पर निकलने पर अनजाने लोगों को देखकर 'हैलो' कहने में झिझक नहीं होती, कोने के कनविनियंस स्टोर का बूढा इटेलियन अकेले जाने पर वरदान के लिए पूछता है, एक दिन पार्क में न जाने पर रोज वहाँ मिलने वाले बच्चे और उनकी माताएँ 'सब ठीक है..' पूछती हैं। वरदान और मैं स्प्रूस और पाइन में अंतर जानने लगे हैं। हमने यहाँ इस अजनबी अनजाने देश में अपना घर बना लिया है।

सपने का मरना

— श्री अशोक ओझा

वह सपने देखा करता था। सपनों के लिए लड़ता था, उन्हें पूरा करने के लिए तड़पता था।

पहली बार अर्जुन मुझे मिला था एक मैक्सिकन रेस्तरां में।

उससे बहुत सी बातें हुईं, ज्यादातर उसके सपनों के बारे में थीं। कुछ सपने यहाँ के गरीबों के लिए थे, जिन्हें वह हकीकत में बदलने में लगा था और एक सपना उसका भारत के किसी पिछड़े इलाके में कोई उद्योग खोलने का था, किसी मुनाफे के लिए नहीं, कुछ कर दिखाने की इच्छा पूरी करने लिए, अपने मूल देश में।

मैंने उस पर व्यंग्य कसा "क्या भारत जाकर लोकसभा चुनाव लड़ने का इरादा है?"

"वह मेरी बात पर मुस्कुरा दिया। उसने कहा," चुनाव लड़नेवालों की भारत में क्या कमी है, जो मैं वहीं चुनाव लड़ने जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि कम से कम अपने देश के लिए इतना तो करूँ कि कुछ लोगों को रोज़गार दे सकूँ। वैसे यह काफी नहीं है, मगर कुछ न करने से बेहतर है। हमारे–तुम्हारे जैसे यहाँ बहुत हैं, जो भारत की हालत पर आँसू तो बहाते रहते हैं, मगर कुछ करते नहीं। मेरी कोशिश है, कुछ करने की।"

मुझे अच्छा लगा, कुछ अपने आप से भी मैंने सवाल किए कि क्या मैंने भी अपने उस देश के लिए कुछ किया है?

खैर, फिर मिलने के वायदे के साथ हम विदा हुए। वायदा था, अगली बार उसके घर मिलने का।

अगली बार न्यू जर्सी के यू. एस. हाई–वे 1 पर जाते हुए मैंने कार की स्टीयरिंग बाईं तरफ घुमाई, जहाँ से विंडसर की ओर रास्ता जाता था। इरी गाँव में तो रहता था मेरा नया दोस्त अर्जुन, जिसने कहा था अगली बार उसके घर मिलेंगे।

सड़क की दोनों तरफ हरे–भरे खुले मैदान, लेकिन दूर–दूर तक लोगों का पता नहीं। वेस्ट विंडसर का यह इलाका न्यू जर्सी के उन संभ्रांत इलाकों में गिना जाता है जहाँ पड़ोसियों के मकान एक दूसरे से सैकड़ों फीट की दूरी पर बने होते हैं, उनके बीच हरे–भरे घास की कालीन बिछी होती है। संपन्न निवासियों के ड्राइव–वे में हौंडा या टोयोटा जैसे लोकप्रिय ब्रांडों की कारें नहीं, बल्कि, लेक्सास, मर्सिडीज, लैंडरोवर या बीएमडब्ल्यू जैसी लग्जरी कारें खड़ी होती हैं।

खुले मैदान को चीरती हुई सड़क पर संपन्न परिवारों के अहातों का मुआयना करते हुए, मेरी निगाह उस गेट पर टंगे उस नंबर पर अटक गई, जो कि अर्जुन के घर का नंबर था। गेट के भीतर नज़र दौड़ाई और गाड़ी अंदर मोड़ ली। अहाते में कुछ घोड़े चर रहे थे।

"अच्छा, तो जनाब को घोड़े पालने का शौक था – हो सकता है, रेस के घोड़े हों_" मैंने सोचा।

अहाते के भीतर कुछ लोग खड़े थे और चुप्पी थी। मेरी ओर सबने खामोश निगाहों से देखा।

मैं गाड़ी खड़ी कर उन लोगों की तरफ बढ़ा। भीड़ में से एक आदमी मेरे पास आया। उसने हाथ मिलाते हुए अपना परिचय दिया– "मैं हूँ अर्जुन का भाई।"

मैंने अपना नाम बताया और हाथ मिलाकर चुपचाप उस भीड़ का हिस्सा बन गया। मकान के अंदर कुछ लोग जा रहे थे, कुछ बाहर आ रहे थे। सब चुप थे।

वह व्यक्ति, जिसने अपने को अर्जुन का भाई बताया था, मैंने उससे पूछा– "पुलिस ने कुछ बताया?"

"नहीं, अभी तो कुछ नहीं, सिर्फ जाँच पड़ताल हुई है।"

"वे क्या रोज़ वहाँ जाते थे?"

"नहीं, कभी–कभी।"

अर्जुन का दवाखाना जिस इलाके में था, वह गरीब तबके के लोगों का इलाका था, जहाँ अपराधिक गतिविधियाँ भी चलती थीं। अर्जुन मोहल्ले के लोगों की मदद भी किया करता था, कभी बिना पैसा लिए भी दवा दे देता था। कल किसी सिरफिरे ने उसे इसलिए गोली मार दी थी, क्योंकि उसने बिना प्रेस्क्रिप्शन के दवा देने से मना कर दिया था।

लोगों की भीड़ धीरे–धीरे बढ़ रही थी और मेरे अंदर अर्जुन के मरने से ज्यादा उसके सपने के मरने का अहसास गहरा हो रहा था। इनमें से पता नहीं किस–किस को अर्जुन के सपनों का पता था और उसके मरने का गम था?

मृगतृष्णा

– श्रीमती कविता मालवीय

भाग १ (गंध)

शायराना अंदाज़ था उसका, बात–बात पर उसके मुँह से काफ़िये निकला करते थे। उसकी शेल्फ़ में सजी ढेर सारी जीवन दर्शन की किताबों में से पढ़ी एक–दो किताबों के अनुभव से ही उसकी अभिव्यक्ति में बौद्धिकतावाद छल–छल छलका करता था। छोटे से शहर में विश्वविद्यालय के टेंडर के लिए अखबारों की रद्दी को साइकिल पर ले जाने से लेकर 10 करोड़ की कंपनी का मालिक होने तक उसकी आदतों में सोलह कलाओं की वृद्धि हो चुकी थी पर अपने पुराने मोहल्ले की सड़क के नुक्कड़ पर बनी गुमटी पर बैठ चाय की चुस्कियों में न जाने कौन सी गंध ढूंढता रहता था।

शायद यही कारण था कि आज वह एक शानदार कैफ़े में अपनी पत्नी के सामने सिर झुकाए बैठा था। शीशे की तितलियों के झाड़ फानूस का प्रकाश छन–छन कर पत्नी के गालों के आँसुओं के कणों को थरथरा रहा था। वह इस धक्के से नहीं उभर पा रही थी कि उसका पति अभी–अभी उस के हाथों की गिरफ्त से अपने हाथ छुड़ा कर जा रहा था। वह चला गया, पत्नी की पसीजती हथेलियों की नमी की परवाह किए बिना। पत्नी की दर्द से गुंथी हुई प्रश्नात्मक निगाहों का उसने कोई जवाब नहीं दिया पर उसे खुद मालूम था कि वह पिछले कई सालों से इस संबंध में कोई एक पुरानी गंध ढूंढ रहा था जो उसे नहीं मिली थी, सब कुछ रेशा–रेशा कर आज उसी गंध से मिलने की आस में उसके कदम तेजी से एक पुराने रास्ते की तरफ बढ़ रहे थे।

भाग २ (स्पर्श)

आज इतने सालों बाद वे दोनों स्वतंत्र हुए थे। इस बीच के गुजरे तूफानों के चिह्न उनके चेहरों की रेखाओं में जीवित थे। पुरुष ने अपना आदिकाल से प्यासा चेहरा धीरे से स्त्री के आँचल में घुसा दिया और स्त्री ने पुरुष की हथेलियों को अपने थरथराते गालों पर रख दिया। आवेग का पल गुजरने के बाद तृप्तिमय एहसास को महसूस करने के बदले वे भौंचक्के से एक दूसरे के सामने खड़े हुए थे।

पुरुष बोला – तुम्हारे अंदर से एक गंध आती थी, वह कहाँ गई? मैं उसे बरसों से ढूंढ रहा हूँ।

स्त्री बोली – तुम्हारे हाथों की खुरदुराहट भरी गर्मी कहाँ गई जो मेरे गालों को सहलाती थी? उस खुरदुरे स्पर्श की चाह में मैंने न जाने कितने मखमली आशियाने छोड़ दिए।

वे ठगे–से खड़े थे। जिन जड़ों की तलाश में खोदते–खोदते वे इतनी दूर निकल आए, उन जड़ों की दूसरी तरफ़ हरे भरे कई वृक्ष उग आए थे, जिससे वे पूर्णतया अनभिज्ञ थे।

दोनों जिन अलग–अलग रास्तों से आए थे उनकी तरफ़ अपने मुँह करके खड़े थे।

कंजूस मक्खीचूस

– श्री अनुराग शर्मा

दिवाली मिलन के समारोह में जब सुरेखा जी मुस्कुराती हुई निकट आईं, तो खुशी के साथ मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली? शहर की सबसे धनी और प्रसिद्ध भारतीय डॉक्टर। बड़े–बड़े लोगों से पहचान। बिना अपोइंटमेंट के एक मिनट की बात भी संभव नहीं और बिना कनेक्शन के अपोइंटमेंट भी संभव नहीं।

अरे, इन्हें तो मेरा नाम भी पता है। यह भी मालूम है कि मैं दिल्ली में रहता हूँ और परसों छुट्टी पर भारत जा रहा हूँ। दो मिनट की बातचीत में ही इतनी नजदीकी? लोग यूँ ही इन्हें नकचढ़ी और घमंडी बताते हैं। जलते हैं सब इनकी समृद्धि से। ऐसी सुंदरी को काले दिल वाली और इतनी धनाढ्य होने पर भी एक नंबर की कंजूस मक्खीचूस बताते हैं। जलें, मेरी बला से।

समारोह के बाद घर आकर पैकिंग आदि करके सोया तो सुबह देर से उठा। अलसाई नींद में ऐसा लगा था, जैसे किसी ने घंटी बजाई हो। सोचा, उठकर देख ही लूँ। कहीं कोई सचमुच आया ही हो, थक हारकर लौट न गया हो। दरवाजा खोला तो बाहर पोलीथीन का एक बड़ा-सा लिफाफा रखा था। साथ में एक नोट भी था। 'बुरा न मानें, अपना समझकर यह हक जता रही हूँ। इस पैकेट में कुछ रेशमी साड़ियाँ हैं। आप भारत जा ही रहे हैं। वहाँ से ड्राइक्लीन करवा लाइए, यहाँ तो बहुत महँगा है। वापसी पर बिल के अनुसार भुगतान कर दूँगी।'

तब से गुलाब लाल होने लगा

– श्रीमती उषा वर्मा

एक बुलबुल थी। अपने नीड़ में बहुत सुखी थी। एक दिन वह अपने बच्चे के लिए सारे दिन खाना खोजते-खोजते थक गई। कहीं से दो-चार दानों का जुगाड़ न हो सका। घर वापस आ रही थी कि उसे एक श्वेत गुलाब दिखा, गजब का आकर्षण था। वह जरा देर उसके आस-पास का चक्कर लगाती रही फिर घर वापस आई। चिड़ा पहले से ही उदास बैठा था। उस रात सब भूखे ही सो गए। दूसरे दिन बड़े सुबह ही चिड़िया घर से निकली, खाना खोजते-खोजते अचानक उसे गुलाब की याद आई। दोपहर हो रही थी। चिड़िया एक अजीब खिंचाव से बेबस हो कर उड़ते-उड़ते श्वेत गुलाब के पौधे पर जा बैठी। थकी तो थी ही, झपकी आ गई। जरा देर बाद जब आँखें खुलीं तो उसे लगा जैसे वह श्वेत गुलाब उसे अपनी गोद में छुपा लेना चाहता है। गुलाब के कांटे उसके सीने में धंसाते जा रहे हैं। कांटों की चुभन प्यार के नशे को गहरा कर रही है। उसका सोना और जागना क्या, उसे तो सफेद गुलाब से पागलपन की हद तक प्यार हो गया। मन मार कर किसी तरह उड़ी, लेकिन सारे घरों में उदास हो-हो कर देखती रही। चिड़ा थोड़ा सा खाना आज लाया था। वह अब क्या करे? चिड़ा से क्या कहे, क्या करे? बच्चों का ध्यान आते ही कलेजा मुँह को आ जाता। अब क्या हो? घर छूटा, साथी छूटा, बच्चे छूटे। सब कुछ छोड़ कर प्यार में पागल बुलबुल उड़ चली, सफेद गुलाब की तरफ। प्यार की पेंगें बढ़ने लगीं। बुलबुल आकाश में उड़ती और गाती, फिर जा कर सफेद गुलाब पर बैठ जाती। गुलाब के कांटे उसके सीने में चुभते, लाल-लाल खून टपकता, पीड़ा से कराहती, तौबा करती। अब क्या करूं, पर फिर आकर जोर-जोर से गाती और गुलाब से सट कर बैठ जाती। खून की, कांटों की, किसे परवाह? प्यार परवान चढ़ता रहा। बुलबुल सोचती, यह कैसा प्यार है जो पीड़ा को सहने की ताकत देता जा रहा है? प्यार ही निश्चय इस शक्ति का स्रोत है। बहता है तो बहने दो खून। और बुलबुल श्वेत गुलाब के पास आते ही सब कुछ भूल कर बेतहाशा गाती, गाती रहती। उसके लाल रक्त से श्वेत गुलाब भीगता रहता।

एक दिन श्वेत गुलाब बोला, बुलबुल रानी तुम्हारा रक्त अब मेरी शिराओं में बहने लगा है। देखो, तुमसे प्यार कर मैं कितना रक्तिम हो गया हूँ। तुमने सुना है न 'लाली मेरे लाल की?' बुलबुल घबड़ा गई। अरे यह तो सर्वनाश। बुलबुल ने ध्यान ही नहीं दिया था। वह अधीर हो कर गुलाब के गले से लिपट गई, कहाँ गया मेरा श्वेत गुलाब जिसे मैंने प्यार किया था? इस आलिंगन से रहा-सहा श्वेत अंश भी लाल हो गया। तुम बदल गए। अब मैं किसे प्यार करूं? मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं रहा। इसके पहले कि गुलाब यह कहता कि मैं तो तुम्हारे लिए ही तुम्हारे रक्त से रक्तिम बना हूँ, इतनी बड़ी सजा न दो मुझे, बुलबुल श्वे.....त गुलाब श्वे...त कहती जमीन पर गिर गई। और तब से गुलाब लाल होने लगा।

यूरोप -

परछाईं

– श्री दीपक कुमार चौरसिया

"हैलो, मोहन जी, कैसे हैं आप?"

'अच्छा दौरे पर हैं, गलत समय पर फ़ोन तो नहीं कर दिया आपको? जी, आप जानते ही हैं कि यहाँ और वहाँ के समय में पूरा बारह घंटे का अंतर है। इसलिए समझ में नहीं आता कि कब बात की जाए? मुझे फ्री होते-होते करीब रात के दस बज ही जाते हैं। मुझे लगा कि अभी आप ऑफिस पहुँचे ही होंगे, सोचा बात कर ली जाए।'

'अजी, अगर हर ज़िलाधिकारी आप जैसा हो तो अपना भारत भी यहाँ की तरह न हो जाए?'

उसने चिरौरी करते हुए कहा, 'अच्छा, क्या है कि एक जरूरी काम आ पड़ा था आपसे, वो... मेरे एक पारिवारिक मित्र हैं, उनके बन्दूक के लाइसेंस का प्रार्थना-पत्र पड़ा होगा आपके ऑफिस में। संभव हो तो प्लीज उसे प्राथमिकता देकर देख लें।"

"जी, शुक्रिया मोहन जी, यही उम्मीद थी आपसे। शुभकामनाएँ आपके दौरे के लिए।"

उसने फ़ोन रखा ही था कि एक और काम याद आ गया। अँगुलियाँ अब अंकों के एक दूसरे संयोजन को मोबाइल स्क्रीन पर उभार रही थीं। टाई ढीली करते हुए उसने स्पीकर फोन चालू कर दिया।

"राणा साहब नमस्ते, मैं सुशील बोहरा, यू.एस. से। जी... जी... कैसे हैं आप?"

'आपकी व्यस्तता समझता हूँ लेकिन एक इमरजेंसी की वजह से इस समय डिस्टर्ब कर रहा हूँ। असल में मेरे एक रिश्तेदार के पड़ोसी ने उनके खिलाफ मार-पीट का झूठा केस दर्ज कर दिया है। उनका कहना है कि आरोपकर्ता ने आपके नए एसपी से भी गिली भगत कर रखी है। सो, वह भी उन लोगों की नहीं सुन रहा। मैं तो वहाँ आपको ही जानता हूँ और मुझे यकीन है कि वह एसपी भी किसी की सुने, या ना सुने अपने अफ़सर की जरूर सुनेगा, तो एक बार आप बोल देना उसे जरा।'

'हाँ हाँ, जी... जी... बाकी सब बिल्कुल ठीक है। अगली बार भारत आने पर ही आपसे मुलाकात होगी। उम्मीद है, तब तक आप भी आई. जी. बन चुके होंगे। भाभी जी को प्रणाम कहिएगा" उसने आवाज में जोश लाते हुए कहा।

दोनों काम होने का आश्वासन मिल चुका था। उसकी नज़र सामने टेबल पर पड़ी फोर्ब्स पत्रिका पर टिक गई, जिसके कवर पर शीर्षक था 'विश्व के सौ प्रभावशाली व्यक्ति'। उसकी मुस्कान चौड़ी होने लगी। बाईं तरफ नीचे की ओर रखे टेबल लैम्प की रौशनी से दीवार पर पड़ती उसकी परछाईं सीलिंग को छू रही थी।

तभी उसका मोबाइल मिनमिनाया, उसने फिर से फोन कान से लगा लिया।

'हाँ माँ, कैसी हैं? सब ठीक तो है?'

'अरे इतनी सी बात पर परेशान हो जाती हैं, आप! डॉक्टर को फ़ोन कर लीजिए न और जो दवा दें, किसी से मँगवा कर खिला दीजिए पिता जी को। कल तक ठीक हो जाएँगे। आप नाहक परेशान होती हैं और मुझे भी करती हैं। मैं? मैं कब तक आऊँगा, यह कुछ कह नहीं सकता माँ। देखिए, शायद साल के आखिर में। अच्छा रखता हूँ माँ, आप ध्यान रखना अपना उसकी आवाज बहुत धीमी हो गई।

नजर अब दीवार पर टंगी पेंटिंग से चिपक गई। पेंटिंग में पत्थर की बड़ी और भारी गेंद पर एक शक्तिशाली नग्न पुरुष चिंतामग्न बैठा हुआ था। पुरुष का एक पैर लोहे की जंजीर से उसी भारी गेंद से बँधा था। हाथ पीछे ले जाकर उसने नाइट लैम्प बुझा लिया। सीलिंग तक पहुँचती उसकी परछाईं कमरे के अंधेरे में खो चुकी थी।

यूरोप -

महाकवि

– श्री प्राण शर्मा

मंच पर एक से बढ़कर एक कवि विराजमान थे। सारा का सारा सभागार श्रोताओं से भरा हुआ था।

संचालन के रूप में नगर के प्रसिद्ध व्यापारी दाता राम ने माइक संभाला। उन्होंने अपनी मधुर वाणी में कवि–सम्मेलन की महत्ता के बखान के पश्चात् घोषणा की, "भाइयो और बहनो! आज विराट कवि–सम्मेलन है और इस विराट कवि–सम्मेलन का शुभारंभ एक महाकवि से हो तो कार्यक्रम में चार–चाँद लग जाएँगे। मैंने सही कहा न?"

"सही कहा है।" सभी श्रोता एक स्वर में बोल पड़े।

"भाइयो और बहनो! कवि–सम्मेलन का शुभारंभ करने के लिए मैं महाकवि हितेश जी को आमंत्रित करता हूँ। आइए हितेश जी। भाइयो और बहनो, तालियाँ बजाकर उनका स्वागत कीजिए।"

सभागार श्रोताओं की तालियों से गूँज उठा।

महाकवि हितेश जी का अहम जाग पड़ा। वे क्रोध से लाल–पीले होते हुए खड़े हुए और वहीं खड़े–खड़े शेर की भाँति संचालक, दाता राम पर दहाड़े "कवि–सम्मेलन का आरंभ मैं करूँ? असंभव, कदापि नहीं। मैं महाकवि हूँ, महाकवि! सदा कवि–सम्मेलन के अंत में पढ़ता हूँ। तुमने मेरा अपमान किया है, घोर अपमान।"

संचालक दाता राम ने क्षमा माँगी।

आयोजक दौड़े–दौड़े मंच पर आए। हाथ जोड़कर उनसे सभी ने क्षमा माँगी।

महाकवि हितेश जी नहीं माने। क्रोध से भरे वे मंच से उतरे और द्रुत गति से बाहर निकल गए।

कुछ ही दिनों बाद एक प्रकाशन से एक काव्य संकलन छपा। वर्णमाला के अनुसार ही उसमें बड़े–बड़े कवियों के नाम थे।

महाकवि हितेश जी ने काव्य–संकलन देखा।

उनका अहम फिर जाग पड़ा। क्रोध से लाल–पीले होते हुए वे बड़बड़ा उठे "मेरी कविताएँ संकलन के अंत में? घोर अज्ञानता, घोर अन्याय।"

महाकवि हितेश जी ने दाएँ हाथ से माथा पीटा था।

मुंशी प्रेमचंद की लघुकथा राष्ट्र का सेवक' पाठकों के नाम----------

राष्ट्र के सेवक ने कहा- देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीच नहीं, कोई ऊँच नहीं।

दुनिया ने जय-जयकार की - कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय!

उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर में डूब गई।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जाति के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा - वह फरिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जाति के नौजवान को मन्दिर में ले गया, देवता के दर्शन करा, और कहा - हमारा देवता गरीबों में है, जिल्लत में है, पस्ती में है।

दुनिया ने कहा- कैसे शुद्ध अन्तःकरण का आदमी है! कैसा ज्ञानी!

इन्दिरा ने देखा और मुस्कुराई।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली- श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा - मोहन कौन है?

इन्दिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा - मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मन्दिर में ले गए, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आंखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

अभाव

– सुश्री रिद्‌मा निशादिनी लंसकारा

आज दिवाली है। राजधानी की हर किसी बस्ती में दिवाली की तैयारियाँ खूब देख सकते हैं। कनॉट–प्लेस के फव्वारों का उछलता हुआ पानी रंगीन नहीं है, पर रोशनियों की वजह से वह रंगीन होने का भ्रम पैदा कर रहा है। चारों ओर खड़ी इमारतों को लिपटीं चमकनेवाली बिजली की रंग–बिरंगी बत्तियाँ उनकी नग्न कुरूपता को ढक लेने की कोशिश कर रही हैं। हो सकता है, यह सब ऊपरी दिखावे, भड़कीली–चमकीली फालतू चीजें दुनिया को लुभाती जरूर है, पर मैं इस दुनिया से बेफ़िक्र नहीं हूँ। सरकार एक रात को लाखों बत्तियाँ जलाकर करोड़ों रुपये उड़ाते नहीं थकती, पर एक रोटी के टुकड़े के लिए लाखों सिसकियाँ भरनेवालों की क्या परवाह है उसे? आदमी का जीवन कितना सस्ता हो गया है? नई दिल्ली में एक रात को हजारों रुपये फूँकनेवालों के बीच में ऐसे बेचारे भी कितने रहते हैं जो ज़िन्दा रहते जीवन भर हज़ार रुपये नहीं कमा सकते। अचानक याद आ गई – 'सारी–की–सारी व्यवस्था शोषण पर टिकी है' ऐसा आज सवेरे का समाचार–पत्र पढ़ते हुए देखा गया।

आज सवेरे मैं यह सोचकर घर से निकला कि दिवाली के लिए न सही, हमारे विवाह की पहली वर्षगाँठ के लिए बेचारी सुषमा के लिए कुछ लेकर ही घर लौटूँगा। कनॉट–प्लेस से होकर मैं और आगे बढ़ा। मेरे दोनों हाथ खाली हैं। अपनी ही बेचारगी के बारे में सोच–सोचकर दिल निराशा के सागर में डूब रहा है। नौकरी करने के बावजूद मैं आर्थिक तंगी में जकड़ गया हूँ। हिंदी साहित्य में प्रथम श्रेणी में एम.ए. पास करने पर भी दो–तीन साल इधर–उधर भटकने के बाद ही यह मामूली क्लर्क की नौकरी मुझे मिली। मेरे और सुषमा के रहने के लिए केवल एक कमरा ही है। रसोई, बैठक, शयनकक्ष सब उसी में ही हैं। शादी के बाद सुषमा को भी मेरी इस अभाव भरी ज़िन्दगी की आदत पड़ गई।

इस आर्थिक तंगी में आज, दिवाली का दिन हम दोनों के लिए तो कोई विशेष आनंद लाता ही नहीं किंतु आज हमारे विवाह की पहली वर्षगाँठ है। शादी के प्रथम 365 दिन बीत गए हैं। आज तक मैं सुषमा को एक फिल्म तक दिखाने बाहर नहीं ले जा सका, कम–से–कम एक नई साड़ी तक खरीद न पाया उसके लिए। मैं अक्सर सोचा करता था कि उसे लेकर शहर घूमूँ और उसके लिए खरीदारी करूँ, लेकिन कभी ऐसा संभव नहीं हो पाया। हमारे अभावों की आँच में छोटी–छोटी खुशियाँ भस्म हो रही थीं। सुषमा भी मेरी इस दुर्दशा के कारण अपने मन में उत्पन्न होनेवाली छोटी–छोटी इच्छाओं को अंदर–ही–अंदर मार डालती और मेरे सामने इसका अभिनय करती कि वह इस जीवन से संतुष्ट है। आज सवेरे जब मैं ऑफिस जाने की तैयारियाँ कर रहा था तब वह बार–बार मेरे कपड़े पहनने की ओर देख रही थी। पर मैं पहनने के लिए मेरे पास कोई कमीज़ नहीं थी। बनियान में जगह–जगह छेद हो गए थे। जूते–मोजे पहनते समय मोजे के गीले हो जाने के कारण बदबू आ रही थी। मेरे पास मोजे की एक ही जोड़ी है, वह भी फटी–पुरानी और जूते पहनते समय सामने से फट जाने का डर मालूम हो रहा है। सुषमा को भी घर में पहनने के लिए एक ही सलवार–कमीज़ थी जिसकी चुन्नी के जगह–जगह पर भी छेद हुए हैं। जब कभी उसको मेरे सामने चुन्नी को सँभालना पड़ता था तब वह मेरी आँखों से बचकर चुन्नी की फटी जगहों को छुपा लेती। मैं हमेशा उसे अनदेखा करता। सिवाय इसके मैं कर भी क्या सकता हूँ? पर आज मुझपर टिकी सुषमा की निराश नज़रों को देखते ही मुझे लगा कि मेरी आँखें चकाचौंध हो गईं।

शादी से पहले सुषमा जब भी मुझसे मिलने आती थी शृंगार–सज्जा सहित ही आती थी। उन दिनों उसकी चूड़ियों पर मैं मरा करता था। पर शादी के बाद हमारे अभावग्रस्त जीवन में दिन–ब–दिन सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रति सुषमा का आकर्षण कम होता रहा। उसका कारण पूछने पर सुषमा ने बड़े नटखट स्वभाव से कबीर की एक साखी को मेरे सामने रखा –

'पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम। दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन का काम।।'

और मेरे प्रश्न को टालकर वह भाग चली। उस दिन मुझे लगा कि इस बेचारी ने मेरी गरीबी को कितना आत्मसात कर लिया है।

"बाबू जी... बाबू जी..."

मेरी कल्पना–शृंखला की कड़ियाँ झनझना कर टूट गईं। एक बूट–पॉलिशवाला छोकरा पॉलिश कराने के लिए पूछ रहा था, लेकिन मेरे जूते इतने जीर्ण हो चुके थे कि पॉलिश कराने के लिए उसमें कुछ बचा ही नहीं था। मैं बोला –

"ऐं... छोटू दिखता नहीं क्या? पॉलिश करने को क्या बचा है इसमें?"

लड़का घूम-घूमकर मेरे जूतों की ओर देख रहा था और बोला –

"नहीं साहब, ये तो अच्छे हैं। टिकाऊ चमड़े से बने हुए हैं। फेंक देना मत... मेरे चाचा को दे देंगे तो चमड़े के लिए पैसे मिलेंगे।"

छोकरे के मुँह से निकले इन दो-चार शब्दों से मुझमें नया उत्साह छा गया। मैं छोकरे के साथ उस बूढ़े चमार के पास गया और दोनों जूतों को बेचकर सुषमा के लिए एक सुंदर-सी लाल रंग की चुन्नी खरीद ली। अब मेरे सामने एक प्रश्न खड़ा है कि नंगे पावों को लिए सुषमा के सामने कैसे जाऊँगा? वह पूछेगी – "जूते बेचकर ऑफिस कैसे जाएँगे?" ऑफिस जाने के लिए चप्पलें भी काफी हैं। वैसे शादी के पहले मामा की दी हुई चप्पल की नई जोड़ी मेरे पास है। ऑफिस में जूते न पहनने से क्या फर्क पड़ेगा? आजकल बूँदा-बाँदी भी शुरू हो गई है तो बारिश में चप्पल पहनना बेहतर है। न गीले पड़ जाने का डर है और न बदबू निकलने का। ये सब सोचते-सोचते न जाने मैं कब कॉलोनी में पहुँचा। कमरे के पास आकर बिना दस्तक दिए मैं सुषमा को चौंका देने के मन से चुन्नी को भी हाथ में लिए यूँ ही कमरे में घुसा कि मेरे सामने खड़ी सुषमा को देख मैं खुद चौंक गया।

असल में मैं सुषमा को न पहचान सका। लाल रंग के फूलोंवाली उस हरी सलवार-कमीज के बदले एक पुराना व बड़ा घेरवाला लंबा गाउन उसके सुडौल बदन को ढका हुआ था जिसे मेरे साथ शहर में बसने आते समय उसकी माँ की याद में अपने साथ ले आई थी। उसके हाथों में नए मोजों की दो जोड़ियाँ थीं और उस समय उसकी खाली नजरें मेरे नंगे पावों पर पड़ी थीं।

सुषमा के लिए चुन्नी को लिए खड़ा था और मेरे बेचे दो जूतों के लिए मोजों को लिए वह उस ओर खड़ी थी। हम दोनों के बीच में.... अभाव...

एक नयी किरण

– सुश्री आद्या शुक्ला

अंधेरे ने धरती को कंबल की तरह लपेटा हुआ था। आकाश काले रंग से सजा हुआ था। तारे हीरों की तरह चमक रहे थे। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। सबकुछ शांत था। दिवाली को दो दिन थे। सुबह से रात हो गई पर पटाखे बजते ही जा रहे थे। अब कहीं जाकर शांति छाई हुई थी। पर यह शांति बारह वर्ष की चंदा के लिए अकेलापन था। काँच की खिड़की के पास वह अकेले छात्रावास में बैठी हुई थी। छात्रावास में कोई कैसे होता? त्यौहारों की रानी, दिवाली जो आने वाली थी। एक त्यौहार जो आप धूम-धाम से अपने परिवार के साथ मनाते हैं। वहाँ सब बच्चों की माँ, पापा, दादी-दादा, यहाँ तक कि परनाना-परनानी भी आ गए, पर चाँदनी का तो कोई नहीं था। चाँदनी के अंदर मानो दर्द का ज्वालामुखी फट गया हो। धीरे-धीरे वह पिघल कर आंसुओं में निकलने लगा। इस दुनिया में अब उसका था भी कौन? एक दूर के चाचा ने उसे छात्रावास में भरती करवा दिया था।

अब यही उसका घर था। तभी उसकी नजर चमकते हुए सितारों पर पड़ी। वह उसके नाम की तरह ही चमक रहे थे। उन तारों में पता नहीं क्या था कि अचानक उसे लगा उनमें उसकी माँ थी, उसे उनकी लोरियाँ सुनाई देने लगीं। उसके पापा की आवाज, उनकी हँसी चारों ओर गूँजने लगी। चाँदनी बस तारों को देखती रह गई। तभी पीछे से आवाज आई– 'मेरे माता-पिता भी अब तारे हैं! शायद वे तुम्हारे माता-पिता को जानते हों।' चाँदनी हैरान रह गई, उसने चौंककर पूछा, 'मीरा, मुझे लगा कि मैं ही अकेले रह गई हूँ, क्या तुम भी मेरी तरह अकेली हो?' मीरा मुस्कुराई और बोली – 'मैं अनाथ थी पर अब नहीं हूँ।' चाँदनी के होंठों पर एक अद्भुत मुस्कान छा गई। उसको एक नई जिंदगी मिल गई थी। नई जिंदगी जिसमें वह अकेली नहीं थी। अब मीरा भी उसके साथ थी।

एकिया -

माला की समझदारी

– श्रीमती मीता चतुर्वेदी

असलसम नामक एक गाँव था। यह गाँव इतना छोटा था कि दुनिया के मानचित्र पर कहीं भी अंकित नहीं था। लेकिन एक बार एक ऐसी घटना घटी कि इस गाँव का भविष्य पूरी तरह से बदल गया। असलसम नामक इस गाँव में एक सौदह साल की लड़की रहती थी। इस लड़की का नाम माला था। इतनी छोटी–सी उम्र की होने के बावजूद, माला के सपने बहुत महत्वाकांक्षी थे। उसको हमेशा से ही असलसम की चार दीवारों के बाहर की ज़िंदगी देखनी थी। अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह असलसम में बनी हुई औरतों की टकसाली छवि को तोड़ना चाहती थी।

एक दिन, माला की माँ ने उसे आवाज़ लगाई, 'माला! बेटा एक बार आना ज़रा।' माला भागकर अपनी माँ से मिलने गई। वह माला के पिता के साथ बैठी हुई थी। माला की माँ ने उसे देखकर अपने होंठ दबाए। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। फिर माला की माँ ने कहा, 'बेटा हमने तय किया है कि अब से तुम विद्यालय पढ़ने नहीं जाओगी।' यह सुनकर माला निस्तब्ध हो गई क्योंकि उसको पढ़ने का बहुत शौक था और उसके माता–पिता यह हक उससे छीन रहे थे। अबकी बार माला के पिता ने कहा कि लड़कियों को ज्यादा पढने की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उन्हें घर पर ही रहना है ना, तो हम तुम्हारी पढाई पर पैसे क्यों बर्बाद करें। क्यों सही है ना?

माला को यकीन ही नहीं हो रहा था कि उसके माता–पिता की सोच भी ऐसी होगी। उसने कहा, 'लेकिन मैं आगे पढना चाहती हूँ। मेरे तो हर विषय में अच्छे अंक भी आते हैं और मैं अपने विद्यालय की अव्वल विद्यार्थिनी भी हूँ। लेकिन आप मुझे मेरी पढाई बंद करने के लिए कह रहे हैं। क्यों पिता जी? मैं शहर जाकर अपनी आगे की पढाई करना चाहती हूँ और शुभ भी तो शहर में पढ रहा है, तो मैं क्यों नहीं?" इस बात पर उसके पिता गुस्से से आग बबूला हो गए और माला को पीटने लगे। उसके पिता उसकी माँ को कहने लगे कि "देखो सरला, अपनी पुत्री को देखो। यह एक लड़की होकर अपनी बराबरी एक लड़के से कर रही है। खबरदार माला, जो तुमने अपनी बराबरी मेरे बेटे से की।" यह कहकर उन्होंने यह बात खत्म कर दी।

यह सुनकर दुखी मन से माला पड़ोस के खेत की तरफ भाग गई। उसके बाद उसने कभी इस बात की चर्चा नहीं की, परंतु वह अपने माता–पिता की बात से खुश भी नहीं थी। वह मन ही मन सोच रही थी कि क्या लड़की होना एक गुनाह है? क्या लड़कियाँ लड़कों की तरह अधिकार की हकदार नहीं हैं? उसके मन में बहुत सारे प्रश्न चल रहे थे। तभी किसी ने उसको उसका नाम लेकर पुकारा। उसने देखा कि वह उसकी चकोरी जीजी थी। उनका अभी कुछ महीने पहले ही ब्याह हुआ था। माला ने उनसे पूछा "क्या हुआ जीजी, आप ठीक तो है न?" जीजी ने उत्तर दिया– 'हाँ, मैं बिल्कुल ठीक हूँ माला। मैंने घर पर हुए झगड़े को सुन लिया तो मैं तुम्हें समझाने चली आई। देखो माला, यहाँ किसी भी लड़की को ऐसी ज़िंदगी नहीं गुजारनी थी। मुझे भी इस उम्र में शादी नहीं करनी थी। परंतु, कभी–कभी हम लड़कियों को ही सबसे बड़े बलिदान देने होते हैं। यह ही हमारा कर्तव्य है। तुम्हें मेरी बात समझ आई? तो चलो, पिता जी से माफ़ी माँगकर आओ।' माला को यकीन ही नहीं हो रहा था। तब भी, उसने वही किया जो उसको कहा गया था। जब उसने अपने पिता के चेहरे पर संतुष्टि देखी, तब उसको समझ आया कि असलसम जैसे गाँव में उसको वहाँ की हर लड़की की तरह ही अपनी पूरी ज़िंदगी जीनी पड़ेगी।

एक दिन, पूरा गाँव संकट में पड़ गया। वर्षा रुक गई थी और गाँव वाले मुसीबत के करीब थे। एक तरफ पूरे गाँव में सूखा पड़ा था और दूसरी तरफ असलसम गाँव सेठ लालाजी के भारी कर्जे पर था। सेठ लालाजी बहुत ही दुष्ट आदमी थे। वे असलसम की सारी जमीन के मालिक थे। उन्होंने गाँव वालों को कुछ पैसे उधार दिए थे, ताकि गाँव में लड़कों के लिए एक पाठशाला खुल पाए। परंतु जब पैसे लौटाने की बारी आई तब वे असमर्थ थे क्योंकि वे फसल के पैसे से उनका कर्ज लौटाना चाहते थे और फसल बारिश की कमी की वजह से खराब होने जा रही थी। वे सब बहुत चिंतित थे।

इन सब समस्याओं से निपटारा पाने के लिए उन्होंने एक बैठक रखी। माला और उसका परिवार भी इसमें शामिल हुआ। सभा शुरू हुई और गाँव के सरपंच जी ने बोलना शुरू किया "हम सब एक बहुत बड़ी मुसीबत में हैं। इसी समस्या का हल पाने के लिए हम सब आज यहाँ एकत्रित हुए हैं। उन्होंने गाँव वालों को भगवान को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करने का सुझाव दिया। गाँव वाले उनके इस सुझाव से सहमत हो गए, सिवाय माला के। माला को यह सुझाव बिल्कुल पसंद नहीं आया क्योंकि वह जानती थी कि यह केवल एक मौसम का बदलाव है। उसने सुझाव देने के लिए अपना हाथ उठाया तो पहले लोगों ने उसकी निंदा की, लेकिन सरपंच जी के कहने पर उसने अपना सुझाव लोगों के सामने रखते हुए कहा– "मुझे अफ़सोस

है कि मैं आप सब के इस निर्णय से प्रसन्न नहीं हुई क्योंकि यह केवल एक मौसम का बदलाव है।" "यह तुम्हें कैसे पता?" तभी एक आदमी ने पूछा।

माला ने उत्तर दिया, "ये सब मैंने स्कूल में सीखा और पूजा-पाठ करने के अलावा हमें कुछ और भी सोचना चाहिए ताकि हमारा समय और पैसा बर्बाद न हो।"

तभी किसी ने पूछा, "कैसा उपाय?"

माला ने उत्तर दिया, "हम वर्षा के बिना भी अच्छी फसल पा सकते हैं और अपनी समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं। इसके लिए हम नहर का पानी भी इस्तेमाल कर सकते है, जोकि हम अपने नौका विहार के लिए इस्तेमाल करते हैं। हम इस पानी को अपने खेतों और फसलों की सिंचाई के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।"

उसके इस सुझाव पर गाँव वाले मुस्काए और सहमत हो गए। फिर सरपंच जी बोले "ठीक है, हम कल से इस पर काम शुरू करते हैं।"

अगले दिन सुबह गाँव वालों ने काम शुरू कर दिया।

सभी आदमी और औरतें एक साथ मिलकर काम कर रहे थे और माला के सुझाव को सराह रहे थे। कुछ महीनों के कठिन परिश्रम और धैर्य के बाद फसल काटी गई और उच्च दामों में बेची गई। सभी ने माला को शाबाशी दी और लड़कियों की पढाई पर भी ध्यान दिया। उस दिन से गाँव वालों ने लड़कों और लड़कियों में कोई अंतर नहीं किया। उसके बाद उस गाँव का भाग्य ही बदल गया और माला सभी लड़कियों के लिए एक प्रेरणा बन गई।

कुछ नहीं

– श्रीमती आरती शर्मा

मिन्नी और मुन्ना दोनों भाई-बहन घर के दालान में खेल रहे थे। पापा भी पास में कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे।

किसी बात को लेकर मुन्ना ने मिन्नी को दो-चार घूंसे जमा दिए। बड़ी होने पर भी उसने मुन्ना को कुछ नहीं कहा और 'मम्मी-मम्मी' करती हुई भाग खड़ी हुई। मुन्ना अब भी उसके पीछे घूंसा ताने भाग रहा था।

"क्या बात है, मिन्नी?"

"कुछ नहीं, पापा!" मिन्नी का मातृ-प्रेम जाग चुका था।

"मुन्ना, ऐसे नहीं करते। वह तुम्हारी बड़ी बहन है। लड़कियों को मारते नहीं।" पापा ने मुन्ना को हाथ से पकड़ कर भागने से रोकते हुए समझाया।

"पर पापा, आप भी तो मम्मी को...।"

तड़ाक...। "चुप, बहुत जुबान लड़ाने लगा है...!"

अब मुन्ना भी रोने लगा था। दोनों बच्चों की रोने की आवाज सुनकर बच्चों की माँ बाहर आ गई।

"क्या हुआ, जी?"

"कुछ नहीं।" पति ने अखबार में पढ़ते-पढ़ते अनमना-सा उत्तर दिया।

"क्या हुआ, बेटा?" उसने दोनों सुबकते बच्चों को बाहों में भरते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, माँ!" सहमे हुए बच्चे माँ के आँचल में दुबकते गए। अचानक माँ के नीले पड़े चेहरे को देख दोनों बच्चों ने अपने नन्हे हाथों से माँ का चेहरा छूते हुए पूछा, "यह क्या हुआ?"

नन्हे हाथों का दुखते चेहरे पर स्पर्श मानो मरहम बन गया था। माँ अपना दर्द भुलते हुए बोली, "कुछ नहीं।"

नि:शब्द

– श्री प्रगीत कुँवर

सत्यप्रकाश कुछ देर के लिए भी ऑफिस में न दिखाई दे तो ऑफिस का सारा काम तो मानो ठप्प ही हो जाता है। हर एक की जुबान पर हर वक्त बस एक ही नाम। 'लाया साबजी' या 'आया साबजी' और उत्तर में उसकी प्रतिध्वनि 'सत्यप्रकाश, सत्यप्रकाश'। सारा रिकॉर्ड रूम जैसे उसकी उँगलियों पर रहता है। किसी भी साल का कैसा भी रिकॉर्ड क्यों न हो, जो माँगो सत्यप्रकाश पता नहीं एक ही पल में कहाँ से और कैसे तुरंत ले आता है।

आज जब पता चला कि सत्यप्रकाश ऑफिस मे कुछ देर के लिए नहीं है तो एक पल के लिए तो परेशान हो गया कि वह दो साल पहले की फाइल रिकॉर्ड रूम में कहाँ होगी। फिर अगले पल सोचा कि क्यों न उसका इंतज़ार किया जाए। क्यों न खुद ही रिकॉर्ड रूम में जाकर फाइल खुद ही ढूँढ लूँ। रिकॉर्ड रूम में घुसते ही मेरा गुस्सा सातवें आसमान पर था। सब कुछ इतना अस्त–व्यस्त था कि कदम रखने के लिए भी जगह मुश्किल से मिल रही थी। जनवरी की एक फाइल इस शैल्फ में तो दूसरी दूर वाली शैल्फ में। नंबर वन ऊपर तो नंबर दू दूर कहीं ज़मीन पर। मुझे अपनी फाइल ढूँढते पूरा एक घंटा हो चला था मगर कहीं से कोई सुराग हाथ ही नहीं लग रहा था। तभी कदमों की आहट के साथ सत्यप्रकाश ने रिकॉर्ड रूम में प्रवेश किया और मुझे देखकर तुरंत बोला "साबजी, आप यहाँ क्या कर रहे हैं? मेरा थोड़ा इंतजार ही कर लेते। बताइए कौन सी फाइल चाहिए। मैं आगबबूला होते हुए बोला, "तुम्हें किसने रिकॉर्ड कीपर बना दिया?_ रिकॉर्ड क्या ऐसे लगाए जाते हैं। पूरा एक घंटा बर्बाद कर दिया मेरा। तुमसे अच्छा रिकॉर्ड तो मेरा पाँच साल का बच्चा लगा लेगा।"

उसने कुछ पल मुझे एकटक देखा और अगले ही पल पता नहीं कहाँ से मेरी फाईल ढूँढकर मेरे हाथ में रख दी। फिर भरे हुए कंठ से बोला "साबजी यदि सब रिकॉर्ड करीने से लगाता तो आज आप लोगों को मेरी ज़रूरत ही क्या रह जाती? साबजी, बच्चों का पेट पालना है, तो आप सब साब लोगों को अपने ऊपर आश्रित करके अपाहिज तो बनाना ही पड़ेगा, वरना आप सब कब का कोई नया सस्ता–सा लड़का लाकर सत्यप्रकाश को लात मार चुके होते।"

मैं निःशब्द, चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गया और सोचने लगा– कितनी सच्चाई है सत्यप्रकाश के कथन में! क्या सभी अपने को ऐसा ही असुरक्षित नहीं महसूस करते और कहीं न कहीं अपनी नौकरी बचाने के लिए ऐसा ही कुछ रोज नहीं करते?

परिंदे

– श्रीमती रेखा राजवंशी

वक्त जाने कहाँ उड़ गया, पता ही नहीं चला। अब रामकुमार सत्तासी वर्ष के हो गए थे। उन्होंने अखबार में नज़र गड़ाई। आज 21 नवंबर है, बीस साल पहले जब इकलौता बेटा ऑस्ट्रेलिया आया था, तब वे फूले नहीं समाए थे। शीघ्र ही उसने रामकुमार जी को बुला लिया। घर में सभी सुख–सुविधाएँ थीं। बहू, बच्चों के साथ वक्त अच्छा कट रहा था। बहू उनका ख्याल रखती, काम पर जाती तो खाना बना जाती, फोन करके हाल पूछती रहती। काम–काज से जितना वक्त मिलता, बेटा उनके साथ बिताता। रामकुमार खुश थे।

वक्त बीतता गया, पर पिछले दो वर्षों ने पूरा शरीर झिंझोड़ डाला, बीमार रहने लगे। बच्चों की पढ़ाई, बहू–बेटे की नौकरी, अचानक अकेले से हो गए। बेटे ने कुछ दिन नर्स रखी, फिर डॉक्टरों के कहने पर उन्हें नर्सिंग होम आना पड़ा। हफ्ते में चार–पाँच बार बेटा, बहू, बच्चे आ जाते, फोन पर बात होती रहती। पर जब रात होती तो भारत के सपने दिखने

लगते। तीन बेटियाँ भारत में थीं, उनको देखने का मन होता। मन मजबूत था लेकिन शरीर में ताकत नहीं थी। मन परिंदे–सा उड़कर जाता और उन्हें प्यार से सहलाकर आ जाता।

इस नर्सिंग होम में सभी व्यक्ति टर्मिनल अवस्था में भर्ती किए जाते हैं। चाहे–अनचाहे शायद सभी मौत की प्रतीक्षा कर रहे थे, उससे ज़्यादा ज़िंदगी की लड़ाई लड़ रहे थे। कमरे में दो पलंग थे। पास वाले पलंग पर लैरी नाम का एक एबॉरिजिनल व्यक्ति था। कभी–कभी उससे बतिया लेते, उसकी जिंदादिली उन्हें अच्छी लगती।

एक रात रामकुमार किसी के रोने की आवाज से उठ गए। लैरी रो रहा था, पहली बार...। डगमगाते पैरों से रामकुमार उठे, उन्होंने लैरी को पानी दिया, टिशू का डिब्बा दिया। लैरी ने उन्हें बताया कि वह 'स्टोलेन जेनेरेशन' का व्यक्ति है, यानि कि उस पीढ़ी का, जिसे अंग्रेज़ उनके माता–पिता से छीन कर ले गए थे। तब वह सिर्फ दो साल का था। उसके बाद उसने अपने माता–पिता, भाई–बहन किसी को नहीं देखा। लैरी एक बार अपना गाँव जाना चाहता था। वह घर, जिसमें वह कभी रह नहीं सका, ढूँढना चाहता था। वे लोग जिन्हें वह जानता तक नहीं था, उनसे जुड़ना चाहता था। कभी वक्त नहीं था, तो कभी पैसे नहीं थे, और अब..।

रामकुमार हतप्रभ–सा देखते रहे, जाने कब लैरी की पीड़ा उनकी पीड़ा बन गई, उसका दर्द उनके मन में उतर आया। उनकी आँखों से आँसुओं की धार बह निकली। वे आगे बढ़े और लैरी के गले लग गए।

नर्सिंग होम के सन्नाटे में अब दो लोगों के सुबकने की आवाजें गूँज रही थीं।

निन्यानबे का फेर

– श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'

एक आदमी पैदल जा रहा था। तभी उसने एक साइकिल देखी। साइकिल देखकर उसके मन में साइकिल प्राप्ति की इच्छा हुई और मिल गई। फिर, उसे स्कूटर पाने की इच्छा हुई, वह भी मिल गया। फिर, उसे कार पाने की इच्छा हुई.... वह भी मिल ही गई। और फिर यह सिलसिला जीवन भर यूँ ही चलता रहा...।

दूसरे आदमी ने कार की इच्छा की, तो उसे नहीं मिली। स्कूटर की इच्छा की, वह भी प्राप्त न हुआ। मजबूरी में उसने साइकिल की ही इच्छा ज़ाहिर की, परंतु वह भी नहीं मिली। अंततः वह आदमी पैदल ही चलता गया।

लेकिन जिस दिन उस आदमी को साइकिल प्राप्त हो जाएगी, उसकी मनोवृत्ति पुनः उसी घटनाक्रम का गुलाम बन जाएगा। सांप–सीढ़ी के खेल में जिस तरह निन्यानबे पर सांप के डसने से खिलाड़ी जीत पाने के लिए पुनः चक्कर लगाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए गोल–गोल घूमता रहता है। जीवन का खेल इसी तरह निराला है। अति की इच्छा मनुष्य को नित्य सताती रहती है। इस खेल को ही तो निन्यानबे का फेर कहते हैं...!

कहानी

राग-विराग

–श्रीमती उर्मिला शिरीष

घर में सन्नाटा पसरा है... ऐसा सन्नाटा, जो उसके मन से लेकर घर की दरो-दीवार तक को अपनी चुप्पी में समेटे हुए है। आज सुबह ही बेटा और उसका परिवार गया है। साल में एक महीने के लिए आते हैं वे। यह एक महीना उसके जीवन में सारे उत्सवों के रंग और खुशियाँ बिखेर देता है। दुनिया-जहान की खुशियाँ बिखर जाती हैं। हर पल खुशी की तरंगों पर नाचता मन... ढेर सारी बातें... भाँति-भाँति के शोर, संगीत, डांस, खाने-पीने का ढेर... लोगों का आना-जाना, बेटे की सबसे मेल-मुलाकात। कब दिन होता था और कब रात, पता ही नहीं चलता था। समय को इतनी जल्दी बीतते उन्होंने कभी नहीं देखा था... न महसूस किया था, लेकिन उसकी रवानगी के पहले का एक हफ़्ता... धूप, चाँदनी, दिन-रात... बातों को धीमा कर देता था। उन्हें लगने लगा था, वे नदी की धार में धीरे-धीरे बह रही हैं। अलमारियों पर रखे खाली बैग उतारे जाने लगते, उनकी धूल साफ की जाने लगती। शॉपिंग से आए थैलों का सामान उनमें जमने लगता। जैसे-जैसे बैगों में सामान जमता, उसका मन भारी होने लगता... साँस कहीं अवरुद्ध होने लगती, तो गले में कुछ फँसने लगता। आँसू भीतर ही भीतर उमड़ने लगते... पानी भरे मेघ आकाश में एकाकार होने लगते, कुछ-कुछ वैसा ही वे महसूस करतीं। आँसू निकलकर वक्ष की कमानी से रुक जाते। बेटा इधर-उधर आते-जाते माँ की आँखों को देख लेता... उसने अपनी माँ की आँखों को सबसे ज्यादा समझा और आत्मसात किया है... 'यह क्या माँ?' वह उनके छोटे-छोटे कन्धों को थामकर अपनी चौड़ी छाती से लगा लेता। 'बस बेटा, यूँ ही...।' वे कहकर अपने काम में लग जातीं। बेटा उनके ही जीवन का अंश है, जो आज अपने समग्र रूप में खड़ा है... उनके सपनों को साकार करता... उनकी आत्मा की प्रतिछाया है...

उन्होंने मन को समझा लिया था कि बेटे को विदा करते वक्त आँसू की एक बूँद तक नहीं आने देंगी... पर जब लौटकर आईं... तो... उनकी सिसकियाँ थम नहीं रही थीं। सिसकियाँ रुलाई में बदल गईं और रुलाई... पानी की तरह फैलने लगी।

पड़ोसिन बाहर निकलकर आई – 'यह क्या रोहिणी जी, सँभालिए अपने आपको! बुरा तो लगता ही है... बच्चों के बाहर जाने पर।'

उन्होंने स्वयं को सँभाल लिया था। यह क्या... इतनी कमज़ोर तो वे कभी न थीं...

दिन भर यूँ ही बेचैन सी तड़पती रहीं। बिखरा सामान समेटते हुए हाथ-पाँव काँप रहे थे। अलमारियों में सामान जमा करना था, सहेजकर रखना था... पर... हर तरफ... हर कोना झाँय-झाँय करता नजर आया। बेजान चीजें भी सजीव होकर दुख-सुख का बोध करवाने लगती हैं...। वे... बाहर निकल आईं। बाहर जो बाहर से बाहर दिखाई दे रहा था... वह भी उन्हें बाहरी ही लगा। दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं दिया... थोड़ा और आगे चलीं... उनके नाजुक पतले पाँव स्वतः ही सड़क पर चलते चले जा रहे थे... क्षण भर के लिए रुकीं... वर्मा जी के बगीचे में माली दिखाई दिया। उसकी पीठ उनकी तरफ थी और चेहरा गमलों की तरफ। मन ने कहा, माली को आवाज लगाई जाए, लेकिन जानती हैं माली नाराज है, रूठा हुआ। बेटे ने डाँटकर भगा दिया था – 'जब चाहे तब चले आते हो। कोई एक दिन तय कर लो, समय तय कर लो। माँ को कितनी परेशानी होती है...?' इतना कहना भर था कि वह गमलों की मिट्टी को यूँ ही छोड़कर चला गया था। गमले सूख रहे थे। खुरपी वहीं पड़ी थी और वो उपेक्षा और अपमान से भरा चला गया था। वे बुलाती ही रहीं थीं – मनोज... मनोज, लेकिन वह नहीं रुका था... उसका लंबा दुबला-पतला शरीर... हवा की तरह लहराता हुआ अदृश्य हो गया था।

'जाने दो न। दिमाग खराब है। दस बार आएगा। आप क्यों परेशान होती हैं?' बेटा भी अपने ताव में आ गया था।

और यह क्या... यह घर है या आने-जानेवालों की धर्मशाला...? दिन भर कोई न कोई आता ही रहता है। सुबह दूधवाला जोर-जोर से घंटी बजाएगा। भीतर से बाहर तक जाने में चार घंटियाँ बजा देगा। फिर पेपरवाला... माँ को चाय के साथ पेपर पढ़ने के लिए होना चाहिए... साप्ताहिक पत्रिकाएँ... फिर कुत्ता घुमानेवाला लड़का... फिर प्रेसवाला... फिर कामवाली बाई... फिर कपड़े धोनेवाली बाई... फिर कोई माँगनेवाला... फिर कोई सामान बेचनेवाला... फिर कोई सर्वे करनेवाला... फिर कोई बच्चा... आंटी, छत पर बॉल चली गई है या पतंग गिरी है...। उनकी कूद-फाँद अलग।

'माँ, यह सब क्या है? घर में एक पल की शांति नहीं रहती। कोई समय है जब तुम आराम कर सको, सो सको? ये गिलहरियाँ और

चिड़ियाँ सुबह–सुबह नींद खराब कर देती हैं। एक साथ तीन–तीन बाइयाँ यहीं आकर पूरी कॉलोनी के समाचार सुनाती हैं और तुम भी सबसे कितनी बातें करती हो? घर में औरतें ही औरतें नज़र आती हैं... मेरा तो दिमाग ही काम नहीं कर रहा है हर पल चीं–चीं पैं–पैं... माँ मैं आपसे बातें करना चाहता हूँ, इन सबसे नहीं।"

वे हल्के–से मुस्कुरा देतीं... मासूम–सी उजली मुस्कान... जिसकी प्रशंसा उनके पापा किया करते थे और जिस मुस्कान के लिए पति और बच्चे उनको हाथों में रखते थे, पर वे कैसे बतातीं कि उनकी बोरियत को, उनके अकेलेपन को भरनेवाले यही सब तो हैं... इनकी चीं–चीं.. पैं–पैं, इनकी बेढंग सी बातें... इनके हँसी–मज़ाक। सुबह–सुबह गिलहरियों का भागना–दौड़ना, चीखना... चिड़ियों का चहचहाना, उनको बाँधकर रखता है...। इन सबके बीच वे व्यस्त रहती हैं। रात्रि में पहरेदारी करनेवाला चौकीदार जो सुबह–सुबह चाय पीने आ जाता है। रात का बचा खाना वह यूँ खुश होकर ले जाता है गोया कि अमृत की बूँदें ले जा रहा हो। कुत्ते को घुमानेवाला लड़का स्कूल जाने के पहले आता है। वे बिला नागा पूछतीं– उसकी पढ़ाई कैसी चल रही है? वह स्कूल ही जाता है? फीस कब भरती है? पढ़ाई के लिए उसे किसी चीज़ की कमी तो नहीं है? कई बार ऐसा भी होता है कि उनका शैतान चुलबुला कुत्ता भागकर सड़क पर आ झुग्गी–झोंपड़ी में चला जाता, तब वहाँ के बच्चे उसका पट्टा, कपड़े..उसको घसीटते हुए... उससे बतियाते हुए एक साथ आ धमकते। उनकी भीड़ बरामदे में बिखर जाती। दुनिया विकास के रास्ते पर चलने के कितने भी आँकड़े गिनाएँ..कितनी बड़ी बिल्डिंगें बनाने का दावा करे या... गरीबी मिटाने का नारा बार–बार दोहराये, पर ये सभी बच्चे मैले–कुचैले कपड़े पहने, बिना नहाये–धोये, धूल–मिट्टी में लिथड़े... सीधे आकर उनके महँगे सुंदर सोफों पर बेझिझक बैठ जाते। वे उन सबको एक–एक टॉफी देती या एक–एक सिक्का... या मिठाई। बेटे ने इन नए मेहमानों को देखा तो हतप्रभ रह गया।

"यह कैसा तमाशा है?"माँ, हद करती हो। किसी दिन घर का सारा कीमती सामान चोरी हो जाएगा। इनकी हिम्मत तो देखो, सीधे अंदर घुसकर सोफे पर बैठ जाते हैं। चलो भागो। अब दिखना नहीं, समझे...।" बेटे की दहाड़ से वे सब सहमकर बाडर जाकर खड़े हो गए...

"घिन नहीं लगती माँ... इतना पानी बहता है, क्या ये नहा नहीं सकते, मुँह नहीं धो सकते?... आदतें बिगड़ी हैं... ये जानबूझकर कुत्ते को ले जाते हैं ताकि तुमसे पैसे ले सकें।"

"ठीक है न, एक–एक सिक्का या टॉफी पाकर उनके चेहरे पर जो खुशी आती है.. वह देखी तुमने?"

"माँ, तुमसे कोई नहीं जीत सकता।" बेटा गुनगुनाता दरवाजा पटकता अपने कमरे में घुस गया। माँ का पूरा ध्यान कवायद में लगा रहता कि हर आनेवाला व्यक्ति बिना किसी शोर–शराबे के अपना काम करके चला जाए। आखिर बेटा यहाँ आराम करने आता है, माँ से मिलने आता है, इन पचड़ों में पड़ने के लिए नहीं। वैसे भी उसके गुस्से से सब डरते हैं। 'छोटे भैया... छोटे भैया' करते सबकी ज़बान नहीं थकती थी। जब से वह गया था तभी से सबने अपना–अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

वे सड़क के किनारे आकर खड़ी हो गईं। सड़क जो जीवन के अनेक किनारों की तरह फैली थी, जिसपर कभी हज़ारों कदम दौड़ रहे होते हैं... तो कभी हज़ारों कदम खरामा–खरामा चल रहे होते हैं। ये सड़क कदमों का जीवन है... राग रंग है, मन के भावों की अनकही दास्ताँ है... उसी सड़क पर वे भारी कदमों से हल्के–हल्के चल रही थीं। धूप की तपिश कम हो गयी थी। आसमान कुछ–कुछ धुँधला हो हो चला था, बच्चे सड़क के किनारे खेल रहे थे दूर... हमेशा की तरह चीख–चिल्ला रहे थे। वे एकटक उनकी तरफ देखती रहीं... शायद कोई उन्हें देख ले और आ जाए। एक–दो बार उन्होंने हाथ भी हिलाया, पर वे यानी बच्चे जिस तेज़ी के साथ दिखते थे उतनी ही तेज़ी के साथ अदृश्य भी हो जाते थे। वे हवा थे या हवा के झोंके? वे शोर थे या शोर के पाइप... वे उन्हें देख रहे थे या न देखने का झाँसा दे रहे थे, यानी वे भी उन्हें एहसास करवा रहे थे कि ऐसा नहीं होगा कि जब चाहे आप भगा दें और जब चाहे आप पुचकार लें, यानी बच्चे आज की दुनिया का प्रतिरूप थे। उन्हें चारों तरफ वैसा ही सूनापन लग रहा था, जैसा घर के भीतर था जबकि गाड़ियाँ आ–जा रही थीं। लोग भी आ–जा रहे थे। थोड़ी दूरी पर चाट के ठेलों पर लड़कियों का गोल–गोल हुजूम गोल–गप्पे खा रहा था। वे जोर–जोर से हँस रही थीं। खिलखिला रही थीं। खट्टे–मीठे पानी का भरपूर मज़ा ले रही थीं। उनके लिए जीवन की खुशी फिलहाल इतनी ही थी...। उनका मन किया, वहाँ तक जाना चाहिए... लड़कियों से थोड़ी हँसी... थोड़ी खिलखिलाहट और थोड़ा–सा आनंद ले लेना चाहिए। यद्यपि उनका चलने का अभ्यास कम हो गया था। एक महीने से योग क्लास नहीं गयी थीं। उन्हें लगता था योग तो पूरे साल करती हैं, बेटा तो एक महीने

के लिए ही आया है। वे उसके साथ हर पल जी लेना चाहती थीं। गुनगुनाना चाहती थीं। बहुत बातें करना चाहती थीं। उसकी उपस्थिति की ऊष्मा को सालभर के लिए अपने भीतर समेटकर सहेज लेना चाहती थी।... सड़क की बत्तियाँ जल चुकी थीं। आकाश में छाया अँधेरा तेजी के साथ नीचे फैलता जा रहा था। तेज हवा चलने लगी। उन्होंने कुत्ते को पकड़ा और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आ गयीं। लगा, महीनों की थकान से देह पस्त हो गयी है। इतनी थकान! इतनी सुस्ती! फिर भी जाकर मंदिर में दीपक जलाया। बाहर खिड़की पर बिल्ली बैठी थी। सुबह का उण्डा दूध उसके सामने रख दिया...। कुत्ते भौंक-भौंककर अपना एकाधिकार जता रहे थे, पर वे बिल्ली से उसका हालचाल पूछ रही थीं... यह भी शिकायत कर रही थीं कि वह इतने दिनों से कहाँ थी? क्यों नहीं आई। कुत्ते की गुर्राहट से दीवार के पीछे घोंसलों में बैठे गिलहरी के बच्चे भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। बेटे ने गिलहरी और उसके बच्चों का वीडियो बनाया था... बस, यही एक चीज उसे बेहद पसंद आई थी... उसने पहली बार गिलहरी के बच्चों को देखा था...।

उन्होंने बेटे को फोन लगाया... नॉट रीचेबल आ रहा था... अभी तो वह फ्लाइट में होगा...। सुबह ही तो गया है... सुबह से लेकर अब तक का समय लम्बा क्यों लग रहा है... क्यों लग रहा था कि वह हफ्तों पहले चला गया है? कमरे में उसका लाया सामान नएपन के कारण चमक रहा था- एलसीडी... बर्तन धोने की मशीन...। मना करती रहीं, मगर नहीं माना। उसे यह देखकर कितना कष्ट हुआ था कि माँ को बर्तन धोने पड़ रहे हैं। बाईयाँ जब देखो, तब चली जाती हैं। कभी बीमार हो जाती तो कभी उनके रिश्तेदार मर जाते। उनके सौ-सौ रिश्तेदार होते... वे उन सौ रिश्तेदारों में से कभी भी किसी को भी मृत घोषित कर देतीं...। सौ-सौ व्रत-त्योहार करतीं... वे ऐसा जतातीं गोया इस पृथ्वी के तमाम विधि-विधान, तीज-त्योहार, नाते-रिश्ते उन्हीं की बदौलत चल रहे हों।

"गीता... मैं बोल रही हूँ...कैसी हो?"

"ठीक हूँ, मैडम जी।" उधर से उदास आवाज आई।

"अरे, ऐसे भी कोई उदास होता है? तुमने भी तो भैया की शर्टें खराब कर दी थीं, देखो मैंने कहा था उसके आने पर नागा मत करना। यह सब तो चलता ही रहता है। बुरा नहीं मानते। कल से आ जाना। ठीक है?"

उधर से उसका भर्राया हुआ स्वर सुनाई दिया- " जी मैडम जी, भैया ठीक से पहुँच गए? आपको रात-बिरात जरूरत पड़े तो फोन कर लेना...।"

"अरे हाँ, भैया तेरे और बच्चों के लिए कुछ सामान छोड़कर गए हैं।" उन्होंने बात को न सिर्फ सँभाला, बल्कि एक भावनात्मक और खूबसूरत रूप भी दे दिया।

दूसरे-तीसरे दिन से उनका प्रेसवाला, उनका माली, उनका कुत्ता घुमाने वाला... उनके माँगने वाले... उनके सामान बेचनेवाले... सबका आना-जाना शुरू हो गया। वे सबको कोई न कोई सामान दे रही थीं... यह कहते हुए कि भैया देकर गए हैं। खाती चार रोटियाँ हैं...। उसकी दोनों बेटियाँ कॉलेज में पढ़ रही हैं। बर्तन निकलते हैं चार-छह पर गीता ही माँजेगी, उसके ऊपर तीन छोटे-छोटे बच्चों की जिम्मेदारी जो है। कपड़े धोने की मशीन है पर धोयेगी मंजू ही, उसका पति जो नहीं है... अकेली कहाँ जाएगी...? घर में मात्र आठ-दस गमले हैं... स्वयं सफाई-गुडाई- निंदाई कर सकती हैं, मगर माली की बेटी स्कूल में पढ़ रही है, एक घर छूटता नहीं कि उसकी फीस... नहीं भरी जाती। आना-जाना कितना और कहाँ-कहाँ है, मगर ड्राईवर को नहीं छुड़ातीं। दिनभर पेड़ के नीचे बैठा गप्पें मारता रहता है... बहुत हुआ तो तोते का पिंजरा साफ कर देता या कभी-कभार... बिलों का भुगतान कर आता... क्वार्टर खाली करके कहाँ जाएगा...? बेटा तो बस यही चाहता था कि इन सबके कारण माँ को बार-बार भागना पड़ता है... दिन में आराम तक नहीं कर पातीं। ये लोग माँ को धोखा न दे दें अकेला पाकर, कुछ ऐसा-वैसा न करा दें... पर माँ को इन सबसे कभी भय नहीं लगता... उन्हें तो यही सब अच्छा लगता है...। हाँ, उन्हें भय लगता है शांति से...। उन्हें अकेलेपन से डर लगता है। उन्हें घर के सन्नाटे और घर में फैली वीरान की स्थिति से घबराहट होती है। सच तो यह है कि उन्हें इन सबके बिना नींद नहीं आती है...। वे इन सबके साथ ही हँस पाती हैं...। खिलखिला पाती हैं। कुछ बना-खा पाती हैं।

"माँ, कैसी हो'? हाँ हम लोग ठीक से आ गए थे। आपने सब चीजें इंस्टाल करवा लीं? और सुनो माँ...वो सब... यानी आपका परिवार कैसा है?" बेटा हँसा... छोटी-सी शरारती हँसी। इस तरह वह हँसता है तो उसके एक गाल में डिम्पल पड़ता है।

"कौन–सा परिवार... मेरा परिवार तो तुम लोग हो बेटा।"

"नहीं माँ। वो परिवार... कुत्ता, बिल्ली, तोता, गिलहरियाँ... छत पर आनेवाली चिड़ियाँ... शीला... गीता... धन्नो, पुष्पा, मनोज, बबलू और वे ढेर सारे बच्चे...।" वो हँसा... ज़ोर से हँसा... उसकी आवाज में... गहरी मिठास, आत्मीयता, संगीत–सी मधुरता थी, जो उनके मन को छू गई... क्या ये तमाम लोग कितनी सुंदर कविता या गीत के पात्र नहीं होते... अन्यथा क्यों बेटे की आवाज़ में इतनी लय है... इतनी कोमलता है... इतनी आत्मीयता है?

"हँसी उड़ा रहे हो? माँ ने उलाहना दिया।"

"नहीं माँ... हँसी नहीं उड़ा रहा हूँ। माँ, उन सबको बुला लेना और कुछ न कुछ दे देना। मैंने सबको डाँट दिया था, आने के लिए मना कर दिया था... पर बाद में लगा वहाँ... वे सब ही तो आपका खयाल रखते हैं।" बेटे की आवाज़ भारी होने लगी... वह गला साफ करने का बहाना बनाने लगा... क्षणिक खामोशी के बाद वह बोला, "सुन रही हो न माँ... क्या हुआ?" उसने अपनी आवाज को सामान्य रखने की कोशिश की। जानता हूँ, माँ की आँखें आँसुओं की दहलीज़ पर खड़ी है।

"हाँ बोलो... सुन रही हूँ" माँ ने अपनी रुलाई को भरसक दबाया!

"सबको बुला ही लेना माँ... गीता की लड़की को सुला लिया करो।" बेटे की चिंता और दुलार भरी आवाज़ उनके कानों से होती हुई छाती में लहरों की तरह थप–थप कर रही थी। दो छोरों पर खड़े वे दोनों रो रहे थे, मानो दोनों अपनी–अपनी जगह खुश हैं।

भोपाल, भारत

अंजान बच्ची

– श्री विकास कुमार गुप्ता

आगरा शहर के खंदारी चौराहे पार करके जब मैं दौड़ते–भागते एक रिक्शा पकड़ने के लिए श्री भागीरथी देवी मार्ग पहुँचा, तब मुझे रिक्शा तो मिला पर वह एकदम खाली था। तो मैं भी द्वंद्व में पड़ गया कि इस रिक्शे से जाऊँ या दूसरे से! अब यह रिक्शावाला तो बिना सात सवारी लिए यहाँ से खिसकेगा नहीं और आगरा शहर के ऑटो–रिक्शावालों का यह रिवाज़ है कि छह–सात सवारी लेकर ही आगे बढ़ेंगे। अब मैं जाकर सीधे रिक्शे में ऐसे जाकर बैठा जैसे वह मेरा हो... फिर अपने लक्ष्य तक पहुँचने की सोच में डूब गया कि आखिर यह रिक्शा कब भरेगा और कब मैं पहुँचूंगा! तभी मेरी नज़र दाईं ओर पड़ी। मैंने देखा कि कुछ लोहार की झोंपड़ियों के बाहर लोहार काम कर रहे थे और उनकी पत्नी माथे पर आँचल रखे उनका हाथ बटाते हुए हथौड़ों की चोट से लोहे पर प्रहार कर रही थीं। वहीं, आस–पास दो छोटे–छोटे बच्चे खेल रहे थे। शक्ल–सूरत से बच्चे उन्हीं के लग रहे थे, एक तीसरा बच्चा, जो ज़्यादा छोटा था, वह खाट पर सोए हुए अपने नन्हे–मुन्ने पैरों को हिला रहा था। उसके हाथ–पैर हिलाने का कारण वहाँ बैठी चालीस से पचास मक्खियाँ थीं, जो उसके साथ खेल रही थीं। उसके गालों, हाथों और माथे को घुम–घुम कर उड़ रही थीं। मुझे उस समय ऐसा आभास हुआ कि मक्खियाँ तो बीमारी का कारण हैं तो यह बच्चा ऐसे इनके बीच क्या कर रहा है? बचपन से मैं यही सुनते आ रहा हूँ कि मक्खियों से बीमारी फैलती है और इसमें कोई शक भी नहीं है! पर यहाँ तो इतनी सारी मक्खियाँ एक साथ! मैं आश्चर्यचकित रह गया। फिर जब मैंने बच्चे की ओर ध्यान से देखा तो दिखाई दिया कि वह तो अच्छा–खासा हँस–खेल रहा है। तब मेरे मन में यह खयाल आया कि बच्चा खुशी से खेल रहा है, रो नहीं रहा, तब ये मक्खियाँ भी इसके साथ खेल रही हैं। शायद यह उसका रोज़ाना का खेल हो, पर मेरे गले से यह बात उतर ही नहीं रही थी! मक्खियाँ जिन्हें हज़ारों बीमारियों का कारण माना जाता है इस प्रकार बच्चे को परेशान कर रही थीं और उसके माता–पिता को कुछ फिकर ही नहीं! ऐसा लग रहा था जैसे कोई उसे खटिए पर खेला रहा हो और उसके माता–पिता अपनी दिनचर्या में व्यस्त थे।

रिक्शे में बैठे–बैठे ही मेरे मन में एक दूसरा सवाल उत्पन्न हुआ.. अमीर और गरीब का अंतर! अमीर के घरानों में किस प्रकार छोटे बच्चे को छोटी–छोटी मच्छरदानियों के अंदर रखा जाता है कि मेरे फूल जैसे बच्चे को कोई मक्खी या मच्छड़ चूम न ले और यहाँ इस गरीब के बच्चे को रोजाना कितने मक्खी–मच्छड़ चूम रहे हैं। फिर मैं इस सदियों से चल रही अमीरी–गरीबी की प्रथा को लेकर जूझना नहीं चाहता था। इस बात को यहीं छोड़ दिया और आगे बढ़ा, तो देखा कि बच्चा मक्खियों के साथ बड़े प्रेम से खेल रहा था। जैसे ही वह दो–तीन को भगा रहा है, वैसे ही उस पर बैठने के लिए दो–चार और तैयार थी। यह दृश्य मानो ऐसा लग रहा था जैसे बैंक में लोग कतार में खड़े अपने नंबर आने की राह देख रहे हों। उसी प्रकार मक्खियों में भी होड़ लगी थी कि बच्चे को पहले मैं चुमूँगी.. बच्चे की बगल में खाट पर बैठी दस–बारह मक्खियाँ आपस में, झगड़ रही थी कि बच्चे को मैं पहले स्पर्श करूँ, मैं चूमूँ, मैं पहले उसके साथ खेलूँ..। यह देखकर पता नहीं मन में कैसे ये सोच उभर रहे थे और इसी सोच में, मैं रिक्शे से उतर गया। उसी पल रिक्शेवाले ने कहा 'भैया, बस दो मिनट।'

मेरा मन तो अभी अपने मन में चल रहे इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए उतावला था। मैंने बस इतना ही कहा 'भैया, आप सवारी जल्दी ढूँढकर उठाइए, मैं यहीं हूँ।' मेरे विनम्र स्वभाव से वह चकित रह गया। उसके भाव कुछ ऐसे थे मानो कुछ अजूबा देख लिया.. इतनी देर बैठने से तो कोई भी नाराज हो जाता पर यह क्या! 'अच्छा भैया' कहकर जल्दी–जल्दी वह ग्राहक के लिए चिल्लाने लगा।

मेरे पैर अपने आप उस बच्चे के पास जाने को चल पड़े। बच्चे के पास पहुँचा तो उसकी माँ ने तुरंत पूछा कि क्या हुआ.. क्या काम है? थोड़ा रुककर मैंने जवाब दिया 'यह आपका बच्चा है?'

'हाँ... क्यों?'

'इसपर इतनी मक्खियाँ बैठकर इसे परेशान कर रही हैं। क्या आपको पता नहीं कि मक्खियाँ बीमारियों की जड़ होती हैं?'

'नहीं! यह तो रोज़ का है।'

'आपको ध्यान देना चाहिए, कहीं वह बीमार न पड़ जाए!'

माता–पिता ने एक स्वर में जवाब दिया 'नहीं यह तो रोज का है।'

'क्या?'

'हम सड़क के किनारे रहते हैं। यहाँ पर इतनी गंदगी है तो मक्खियों का आना तो स्वाभाविक है। बच्चों को क्या होगा? वे इसी में पैदा हुए और इसी में खेल–कूद कर बड़े होंगे। उनको कुछ नहीं होगा। हमें तो काम करना होता है, इसीलिए उसे खटिए पर लेटा देते हैं। वह खेलता रहता है।'

'आप लोग इतने छोटे बच्चे के साथ ऐसा कैसे कर सकते हैं? वह अगर थोड़ा बड़ा होता तो और बात होती। यह तो सिर्फ दो–तीन महीने का ही लड़का लग रहा है।'

बच्चे की माँ ने तुरंत व्यग्र स्वर में कहा 'लड़का नहीं, लड़की है'।

मैं एकदम चुप हो गया। मन ही मन मैंने सोचा कि आखिर कैसे हैं ये लोग! क्या लड़का होता तो उसे ज्यादा लाड–प्यार करते, उसका ज्यादा ध्यान रखते, क्या लड़के और लड़की में इतना अंतर या गरीब की दयनीयता या.. पता नहीं! इन्हीं सवालों को मन में दबाए मैं वापस रिक्शे में बैठ गया।

अभी हम सिर्फ पाँच ही लोग थे... पता नहीं मैं कब तक पहुँचूँगा..?

आगरा, भारत

अमृत वृद्धाश्रम
एक नयी शुरुआत

– श्री विजय कुमार सप्पत्ति

मैंने धीरे से आँखें खोलीं, एम्बुलेंस शहर के एक बड़े हार्ट अस्पताल की ओर जा रही थी। मेरी बगल में भारद्वाज जी, गौतम और सूरज बैठे थे। मुझे देखकर सूरज ने मेरा हाथ थपथपाया और कहा, "ईश्वर अंकल, आप चिंता न करें, मैंने अस्पताल में डॉक्टरों से बात कर ली है, मेरा ही एक दोस्त वहाँ पर हार्ट सर्जन है, सब ठीक हो जाएगा।" गौतम और भारद्वाज जी ने एक साथ कहा, "हाँ, सब ठीक हो जाएगा।" मैंने भी धीरे से सर हिलाकर हाँ का इशारा किया। मुझे यकीन था कि अब सब ठीक हो जाएगा।

मैंने फिर आँखे बंद कर लीं और बीते वर्षों की यात्रा पर चल पड़ा। यादों ने मेरे मन को घेर लिया।

कुछ वर्ष पहले

कार का हॉर्न बजा। किसी ने ड्राइविंग सीट से मुंह निकाल कर आवाज लगाई, "अरे चौकीदार, दरवाज़ा खोलना।"

मैंने आराम से उठकर दरवाजा खोला। एक कार भीतर आकर सीधे पार्किंग में जाकर रुकी। मैं धीरे-धीरे चलता हुआ उनकी ओर बढ़ा। कार में से एक युवक और युवती निकले और पीछे की सीट से एक बूढ़ी माता। युवक कुछ बोलता, इससे पहले ही मैंने कहा, "अमृत वृद्धाश्रम में आपका स्वागत है, ऑफिस उस तरफ है।"

मैंने गहरी नज़रों से तीनों को देखा। यह एक आम नज़ारा था इस वृद्धाश्रम के लिए। कोई अपना ही अपनों को छोड़ने यहाँ आता था। सभी चुप थे पर लड़के के चेहरे पर उदासी भरी चुप्पी थी। लड़की के चेहरे पर गुस्से से भरी चुप्पी थी और बूढ़ी अम्मा के चेहरे पर एक खालीपन की चुप्पी थी। मैं इस चुप्पी को पहचानता था। यह दुनिया की सबसे भयानक चुप्पी होती है। खालीपन का अहसास, सब कुछ होते हुए भी डरावना होता है और अंततः यही अहसास इंसान को मार देता है।

तीनों धीरे-धीरे मेरे संग ऑफिस की ओर चल दिए। मैं बूढ़ी अम्मा को देख रहा था। वह करीब करीब मेरी ही उम्र की थी। बहुत थकी हुई लग रही थी, उसके हाथ काँप रहे थे। उससे ठीक से चला भी नहीं जा रहा था। अचानक चलते-चलते वह लड़खड़ाई तो मैंने उसे झट से सहारा दिया और उसे उसकी लाठी दे दी। लड़के ने खामोशी से मेरी ओर देखा। मैंने बूढ़ी अम्मा को सांत्वना दी। "ठीक है, अम्मा। धीरे चलिए, कोई बात नहीं। बस, आपका नया घर थोड़ी दूर ही है।" मेरे ये शब्द सुनकर सब रुक से गए। युवती के चेहरे का गुस्सा कुछ और तेज हुआ। लड़के के चेहरे पर कुछ और उदासी फैली और बूढ़ी माँ की आँखों से आँसू छलक पड़े। युवती गुर्राकर बोली, "तुम्हे ज़्यादा बोलना आता है क्या ? चौकीदार हो, चौकीदार ही रहो"। मैंने ऐसे दुनियादार लोग बहुत देखे थे और वैसे भी मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता था। मैं इन जमीनी बातों से बहुत ऊपर आ चुका था। मैंने कहा, "बीबीजी, मैंने कोई गलत बात तो नहीं कही। अब इनका घर तो यही है। युवती गुस्से से चिल्लाई, "हमें मत समझाओ कि क्या है और क्या नहीं।" युवक ने उसे शांत रहने को कहा। बूढ़ी अम्मा के चेहरे पर आँसू अब बहती लकीर बन गए थे।

ये शोर सुनकर ऑफिस से भारद्वाज और शान्ति दीदी बाहर आये। उन्होंने पूछा, "क्या बात है ईश्वर किस बात का शोर है ?" मैंने ठहर कर कहा" जी, कोई बात नहीं, बस ये आये हैं बूढ़ी अम्मा को लेकर।" युवती फिर भड़क कर बोली, "तुम जैसे छोटे लोगो के मुंह नहीं लगना चाहिए।" भारद्वाज जी सारा मामला समझ गए। उन्होंने शांत स्वर में कहा, "मैडम जी, यहाँ कोई छोटा नहीं है और न ही कोई बड़ा। यह एक घर है, जहाँ सभी एक समान रहते हैं। और मुझे बड़ी खुशी होती अगर ऐसा ही घर समाज के हर हिस्से में भी रहता !"

युवती कसमसा कर चुप हो गयी। युवक ने सभी को भीतर चलने को कहा। जाते-जाते बूढ़ी अम्मा ने मुझे पलटकर देखा। मैंने उसे आँखों ही आँखों में एक अपनत्व भरी सांत्वना दी !

ऑफिस में मैंने बूढ़ी माता के लिए कुर्सी लाकर रख दी। मैं उन सभी को और इस फानी दुनिया के खत्म होते रिश्तों को देखते हुए खुद दरवाज़े के पास खड़ा रहा। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद युवक धीरे से बोला, "भारद्वाज जी, आपसे कल बात हुई थी, मैं अमित हूँ, ये मेरी माँ है। इनके बारे में आपसे बात की थी।" इतना बोलने के बाद वह चुप हो गया। वह असहज सा था। उसका गला रुक-रुक जाता था। मैंने अपने लम्बे जीवन में ये सब बहुत देखा था। मैंने युवती की ओर देखा। वह अभी भी गुस्से में ही थी। बूढ़ी अम्मा अपने बेटे की ओर देख रही थी, इस आशा में कि अब जो होने वाला है, वह नहीं होगा और वो फिर वापस चल देगी। लेकिन मैं जानता था, यह नहीं होने वाला था।

मैंने चुपचाप अलमारी से रजिस्टर और रसीद बुक निकाल कर भारद्वाज जी के सामने रख दिया। भारद्वाज जी ने अमित को वृद्धाश्रम के खर्चे के बारे में बताया। अमित ने चुपचाप अपने पर्स से रुपये निकाल कर दे दिये और जरुरी कागजात पर दस्तखत कर दिए।

बूढ़ी अम्मा की आँखों से आँसू बहे जा रहे थे वह अब भी अपने बेटे को देखे जा रही थी। भारद्वाज जी ने धीरे से कहा, "अब सब ठीक है जी।" ये सुनते ही युवती उठकर खड़ी हो गयी, चलने के लिए। बूढ़ी अम्मा ने अपने आँसू पोंछ दिए और युवती से कहा, "बहू, अमित का खयाल रखना।" युवती ने कोई जवाब नहीं दिया और बाहर की ओर चल दी। युवक बैठा रहा चुपचाप। फिर उसकी आँखों में से भी आँसू टपक पड़े। बूढ़ी अम्मा ने कहा, "जाने दे बेटा, सब ठीक है। यहाँ ये सब मेरा खयाल रखेंगे। तू अपना खयाल रखना, समय पर खाना खा लिया करना।"

युवक, बूढ़ी औरत के पैरों पर गिर पड़ा और रोने लगा, "माँ, मुझे माफ़ कर दे।"

माँ बेचारी क्या करती? वह तो है ही ममता की मूरत। उसने उसे उठाया और कहा, "अमित, कोई बात नहीं। चलो, अपना घर-बार संभालो, मेरा क्या है, आज हूँ, कल नहीं। तू जा। हाँ, अब कभी मुझसे मिलने मत आना।" युवक अवाक-सा चुप खड़ा रहा। ये खामोशी विदाई की थी। ये खामोशी रिश्तो के टूटने की थी। यह खामोशी इंसान की इंसानियत के मरने की भी थी। इतने में दो आवाज़ें एक साथ आईं। उस युवती की, जो बाहर से चिल्ला रही थी, "अब चलो भी, यहाँ नहीं रहना है मुझे" और दूसरी आवाज शान्ति की थी, जिसने बूढ़ी अम्मा को सहारा देकर अन्दर चलने के लिए कहा था।

युवक चुपचाप हार और बेचारगी को अपने चेहरे पर लिए बाहर की ओर चल दिया। बाहर जाते हुए उसने मुझे कुछ रुपये देने चाहे और कहा, "चौकीदार भैया, माँ का खयाल रखना" मैंने उसके पैसे वापस लौटाते हुए कहा, "माँ का खयाल तो हम रख लेंगे अमित बाबू। आप सोचो, आपका माँ जैसा खयाल अब कौन रखेगा। और यहाँ पैसे नहीं, प्यार का सौदा होता है"। युवक खामोशी से मुझे देखता रह गया।

युवक-युवती कार की ओर चल दिये, बूढ़ी अम्मा शान्ति दीदी के साथ भीतर की ओर चल दी। भारद्वाज जी मुझे देखते हुए अलमारी की ओर चल दिए और मैं फिर से अपनी जगह गेट पर चल दिया।

मेरे लिए ये कहानी लगभग हर महीने की थी जब कोई न कोई किसी न किसी अपने को यहाँ छोड़ जाता है। हाँ, आज की गाथा थोड़ी अलग सी थी। लड़का जिन्दगी की झंझट में था, पर कायर था। खैर! मैंने मन ही मन गिनती की, अब यहाँ छब्बीस लोग हो गए थे। ये वो बूढ़े थे, जिनमें से किसी का कोई नहीं था, इसीलिए वह यहाँ थे और किसी का हर कोई होते हुए भी यहाँ था। कोई गरीब था, कोई अमीर था, पर एक बात सब मे एक समान थी, वह ये कि सबके सब इस जगह पर अकेले ही बन कर आये और यहाँ आकर एक दूसरे से मानसिक और भावनात्मक रूप से जुड़ गए। यहाँ की बात कुछ और है। यहाँ सबको एक अपनापन मिलता है। घर से अलग होकर भी यहाँ घर जैसा प्रेम और अपनत्व मिलता है।

बहुत वर्ष पहले

इस जगह का नाम अमृत वृद्धाश्रम था और मेरा नाम ईश्वर। पता नहीं मेरी माँ ने क्या सोच कर मेरा नाम इतना अच्छा रखा था? जब मैं बीस बरस का था, तब मैं अपनी माँ के साथ अपना गाँव छोड़कर यहाँ आया था, तब यह एक छोटा सा अस्पताल था। डॉक्टर अमृतलाल नामक सज्जन इस जगह के मालिक थे। इस अस्पताल में माँ का इलाज होने लगा और फिर मुझे भी कहीं नौकरी चाहिए थी, सो मैं इस अस्पताल का वार्ड बॉय, चौकीदार, सारे बचे हुए काम करने वाला बन गया था। माँ का बहुत इलाज हुआ, उसे टी. बी. थी

पर वह बच नहीं सकी। करीब एक साल के बाद वह चल बसी। अब मेरा इस दुनिया में कोई नहीं था, सो मैं यहीं का होकर रह गया। धीरे–धीरे अमृतलाल जी का मैं विश्वसनीय बन गया। अस्पताल बड़ा होने लगा, लोग आने लगे। अमृतलाल जी का यहाँ कोई न था जो यहाँ रह सके। एक अकेला बेटा गौतम था जो कि डॉक्टर बनने की चाह में चंडीगढ़ में एम.बी.बी.एस. कर रहा था। यह उसका आखिरी साल था। अमृतलाल जी चाहते थे कि वह यहीं इसी जनता अस्पताल में आकर काम करे। लेकिन उसके इरादे कुछ और थे। वह आगे की पढ़ाई के लिए लन्दन जाना चाहता था और इसी बात पर अक्सर दोनों पिता–पुत्र में तेज बहस हो जाती थी।

अस्पताल बढ रहा था, सस्ता अस्पताल होने की वजह से बहुत से गरीब यहाँ आते थे। अमृतलाल जी की पुश्तैनी संपत्ति से ये अस्पताल चल रहा था। मैं अस्पताल का हर काम कर लेता था। सब मुझे पसंद भी करते थे। मै मेहनती था और माँ के गुजरने के बाद हर किसी की सेवा करता था और सभी इसी सेवाभाव से खुश थे। अमृतलाल जी मेरा खयाल रखते थे। मैं उन्हीं के साथ उन्हीं के घर पर रहता था। एक दिन उनके मित्र भारद्वाज जी उनसे मिलने आये। दोनों बहुत सालों के बाद मिले थे। मैंने उनके लिए खाना बनाया। खाने के दौरान भारद्वाज जी ने अमृतलाल जी से कहा कि उनकी बहू उनसे ठीक बर्ताव नहीं करती है और वह बहुत दुखी है अमृतलाल ने बिना सोचे कहा कि वह यही आकर रहे और उनके साथ इस अस्पताल की देखभाल करे। भारद्वाज को जैसे मन चाहा वरदान मिल गया। वह यहीं रह गए। अमृत जी का घर बड़ा सा–था। मैं उनके लिए खाना बनाता, घर का रखरखाव करता और वहीं रहता। दोपहर में अस्पताल के छोटे–बड़े काम करता। बस, जिन्दगी कट रही थी। ये अस्पताल एक बहुत बड़े परिवार का अहसास दिलाता रहता था।

मेरे मन में कभी शादी करने का खयाल भी नहीं आया। काम इतना रहता था कि और बातों के लिए समय ही नहीं मिल पाता था। इतने सारे लोगों की सेवा में मुझे बहुत खुशी मिलती। बदले में मुझे आशीर्वाद और प्रेम ही मिलता। सबने मुझे हमेशा अपना ही समझा।

समय के साथ भारद्वाज जी ने उस अस्पताल के पिछले हिस्से में एक वृद्धाश्रम खोला जहाँ उन बूढ़े व्यक्तियों को रहने की व्यवस्था की गयी थी, जिनका सबकुछ होकर भी कोई नहीं था, कहीं कुछ नहीं था। मैंने धीरे–धीरे ये हिस्सा संभालना सीख लिया। मेरे विनम्र और दयालु स्वभाव की वजह से सब मुझे अपना ही मानने लगे।

एक दिन भारद्वाज का लड़का आया अपनी पत्नी के साथ, जायदाद मांगने के लिए। खूब हंगामा हुआ, भारद्वाज जी ने गुस्से में सारी जायदाद इस वृद्धाश्रम के नाम लिख दी और उसी वक्त से अपने बेटे–बहू से रिश्ता तोड़ लिया। मैं अवाक था। मैंने अक्सर यहाँ एक घर को टूटते और दूसरे घर को बनते देखा है।

हम तीनों, मैं अमृतलाल जी और भारद्वाज जी दीन–दुखियों की सेवा में ही अपना सारा सुख ढूँढते थे। फिर वह दिन भी आ ही गया जो मुझे कभी पसंद नहीं था। अपनी पढ़ाई पूरी करके अमृतलाल जी का लड़का लन्दन जाने की तैयारी के साथ आया और अमृतलाल जी को अपना फैसला सुना दिया। अमृतलाल जी ने कहा, "ठीक है पढ़ाई पूरी करके वापस आ जाओ और यह अस्पताल संभालो", लड़के ने मना कर दिया। लड़के ने खुले रूप से कहा कि वह इन गरीबों के लिए नहीं बना है और न ही वह कभी यहाँ आना चाहेगा। उसने पिताजी से कहा, या तो वह उसके साथ चलें या यहीं रहें। अमृतलाल जी अवाक रह गए। उन्होंने कहा, "ये मेरा घर है, ये सभी मेरे अपने लोग, मैं इन्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ? मैं ही इन सबका सहारा हूँ।' लड़के ने कहा, "आपने इन सबका ठेका नहीं लिया हुआ है। मैं आपका अपना बेटा हूँ, आपका खून हूँ। आपको मेरा साथ देना चाहिए"। अमृतलाल जी ने कहा, "डॉक्टर तू बना है, लेकिन सेवाभाव मन में नहीं आया है"। लड़के ने कहा, "सेवा करने के लिए मैंने पढ़ाई नहीं की है। मैंने एक सुख भरे जीवन की कल्पना की है, जो कि यहाँ रहने से नहीं मिलेगा। आप मेरे साथ चलिए।" पर अमृतलाल जी नहीं माने। मैं चुप था। भारद्वाज जी भी चुप थे। अमृतलाल जी ने उसकी पढ़ाई के लिए पैसों की व्यवस्था कर दी और चुपचाप सोने चले गए। लड़का दूसरे दिन चला गया अकेला ही बिना अपने पिता को साथ लिये, हमेशा के लिए।

अमृतलाल जी उसको पैसा भेजते रहे। वह पढता रहा, उसने वहीं लन्दन में अपने साथ काम करने वाली डॉक्टर लड़की से शादी कर ली और फिर बीतते समय के साथ, उसे एक बेटा भी पैदा हुआ, उसका नाम सूरज था। ये नाम अमृतलाल जी ने ही सुझाया था।

फिर वो दिन भी आ ही गया, जिसे मैं कभी भी याद भी नहीं करना चाहता।

उस दिन अमृतलाल जी का जन्मदिन था। उन्हें सुबह से ही सीने में दर्द था। उनका बेटा गौतम लन्दन से आया हुआ था और

वह शाम को आकर मिलने वाला था। अमृतलाल जी की उससे मिलने की बहुत इच्छा थी, क्योंकि उनका पोता सूरज भी साथ आया हुआ था। उन्होंने अब तक उसे नहीं देखा था। अस्पताल में उस दिन कोई नहीं था। हम सब उनके कमरे में थे, मैंने और भारद्वाज जी ने उनके कमरे को सजाया। शाम को एक वकील साहब आये। अमृतलाल जी, वकील साहब और भारद्वाज जी के साथ अपनी बैठक में चले गए। करीब एक घंटे बाद वे सब बाहर निकले। अमृतलाल जी के चेहरे पर परम संतोष था।

फिर वे इन्तज़ार करने लगे अपने बेटे, बहू और पोते का। मैंने सभी के लिए अच्छा सा खाना बनाया हुआ था और हाँ, उनके लिए केक भी ले कर आया था। हम सब इन्तजार ही कर रहे थे कि अचानक शहर में तेज बारिश होने लगी, बर्फ के ओले भी गिरे, और आंधी–तूफान का माहौल हो गया। बिजली भी चली गयी, मैंने और भारद्वाज जी ने लालटेन जलाई। हम इन्तजार कर ही रहे थे कि उनका बेटा गौतम अपने परिवार के साथ आये लेकिन कुछ ही देर बाद उसका फ़ोन आ गया कि वह इस आंधी–तूफान में नहीं आ सकता। यह सुनकर अमृतलाल जी का चेहरा बुझ गया। उन्होंने हमें सो जाने को कहा और वापस अपनी बैठक में जाकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। हम दोनों चुपचाप थे। रात गहराती जा रही थी। मैंने भारद्वाज जी से कहा कि वे भी सो जाएँ। उनके सोने के बहुत देर बाद, रात करीब दो बजे मैंने हिम्मत करके अमृतलाल जी की बैठक में झाँक कर देखा, वे चुपचाप बैठे थे। बार–बार वे अपने फोन की ओर देख उठते थे कि शायद वह बजे और संदेशा आये कि उनका गौतम आ रहा है। लेकिन उसे न बजना था सो न बजा। केक वैसा ही पड़ा रहा। खाना किसी ने भी नहीं खाया।

मैं वहीं बैठक के बाहर बैठे–बैठे सो गया। सुबह–सुबह भारद्वाज जी ने मुझे उठाया। वे और अमृतलाल जी दोनों रोज़ सैर को जाते थे। रात बीत चुकी थी। आंधी–तूफान भी ठहर गया था। मैंने दरवाजा खटखटाया। दरवाजा अन्दर से बंद था, कोई आवाज नहीं आई हम दोनों आशंकित हो उठे और जोर–जोर से दरवाजा ठोका। फिर नहीं खुला तो तोड़ दिया। वही हुआ जिसका डर था। अमृतलाल जी चल बसे थे। मैं और भारद्वाज जी रोने लगे। इतने में गौतम अपनी पत्नी और सूरज के साथ आ पहुंचा। उसे सब कुछ समझते हुए देर नहीं लगी। वह अचानक ही चुप हो गया। भारद्वाज जी ने कहा, "गौतम, तुम यहीं बैठो। इतने बड़े इंसान है, बहुत–से लोग आएँगे। बहुत–सा काम करना होगा, हम सब इंतज़ाम करते हैं।

अंतिम संस्कार हुआ, सारे शहर से लोग आये। मुझे भी उस दिन पता चला कि अमृतलाल जी की इस शहर में कितनी इज्ज़त थी। गौतम चुपचाप बैठा रहा, बहू भी चुपचाप ही थी। हाँ, पोता सूरज थोड़ा परेशान–सा था, विचलित था। उसने दादा को पहले कभी नहीं देखा था और जब देखा तो इस अवस्था में देखा था। वह बार–बार रो उठता था। गौतम चुप इसलिए था कि उसने शहर के लोगों की भीड़ देखी थी और उसे समझ में आ गया था कि उसने क्या खो दिया है? मैं खुद हैरान–सा था कि कितने सारे लोग उनसे प्रेम करते थे और कितनों का रो–रोकर बुरा हाल था।

रात को सारा कार्यक्रम निपटाने के बाद हम जब बैठे तो सिर्फ झींगुरों की आवाज़ें ही सुनाई दे रही थीं। सभी लोग चुप थे। मैं था, भारद्वाज जी थे और गौतम था। बहू, सूरज के साथ सोने चली गयी थी। सूरज को हल्का–सा बुखार आ गया था और वह मन से भी परेशान था। इतने में वकील साहब आये। वे अमृतलाल जी के पुराने मित्र थे। उन्होंने कहा, "कल रात को शायद अमृत को आशंका हो गयी थी कि वह शायद ज्यादा दिन नहीं रहेगा। उसने अपनी वसीयत करवा ली थी। मैं उसे आप सब को बताना चाहता हूँ।"

मैं उठकर खड़ा हो गया। वकील ने मुझे बैठने को कहा। वकील ने कहा "जायदाद के तीन हिस्से हुए हैं। एक बड़ा हिस्सा इस अस्पताल और वृद्धाश्रम को दिया गया है। दूसरा हिस्सा पोते सूरज के लिए दिया गया है और तीसरा हिस्सा चौकीदार ईश्वर के नाम है।"

ये सुनकर मैं बहुत जोर से चौंका। मैंने कहा, "साहब, कोई गलती हो गयी होगी, मुझे कोई पैसा रकम नहीं चाहिए। मैं तो यहीं रहूँगा। सब कुछ मेरा अब यहीं है। अमृत साहब मेरे पिता जैसे थे। उनके बाद अब मेरा कौन है?" कहकर मैं रोने लगा।

वकील ने समझाया, "भाई, जो उन्होंने कहा, वो मैंने किया, भारद्वाज भी थे वहाँ। पूछ लो।"

मैंने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा हिस्सा भी सूरज को ही दे दीजिये।" वकील ने मेरा सर थपथपाया। मैं चुपचाप आँसू बहाने लगा।

गौतम चुपचाप उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा,"कल सुबह मिलते हैं, राख को नदी में बहाने जाना है"

रात बहुत गहरी हो रही थी और मेरी आँखों में नींद नहीं थी। कल तक मैं कुछ भी नहीं था और आज इस जायदाद के एक हिस्से का मालिक। लेकिन मैं इस रुपये का क्या करूँगा? मेरे तो आगे–पीछे कोई है ही नहीं। नहीं नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो इसी जगह के एक कोने में पड़ा रहूँगा।

सुबह हुई। हम सब वहीं पास में मौजूद नदी के किनारे चले, रास्ते में श्मशान घाट से अमृत जी की चिता में से राख ली और नदी में जाकर उसे बहा दिया। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। भारद्वाज भी रोने लगे। उनका सबसे पुराना और गहरा मित्र जो चला गया था। लड़का, जो कल तक कुछ नहीं बोला, आज रोने लगा, उसकी पत्नी भी रोने लगी और सूरज भी रोने लगा। कुछ देर के शोक के बाद सब वापस आये। गौतम पास के ट्रेवल एजेंट के पास गया और वापसी की टिकट करवा ली। वो अचानक ही बहुत शांत हो गया था। अब उसे समझ आ गया था कि जो उसने खोया था वो कभी भी वापस नहीं आने वाला था।

तेरहवीं के भोज के बाद गौतम मेरे और भारद्वाज के पास आया, उसने उन्हें एक लिफाफा दिया और कहा "मैं सारी वसीयत, जो पिताजी ने सूरज के नाम की है, उसे इस वृद्धाश्रम और ईश्वर को देता हूँ। इसके सही हकदार यही दोनों है। "मैं शांत था। मैंने एक बार कहा, "गौतम भैया, अगर यहीं रुक जाते तो हम सभी को बहुत खुशी होती। "गौतम चुपचाप रहा, कुछ नहीं कहा। शायद कुछ कहने के लिए था ही नहीं।

दूसरे दिन गौतम वापस चला गया शायद हमेशा के लिए। शायद कभी भी वापस नहीं आने के लिए।

कुछ दिनों बाद मैंने वकील से कहकर सारी जायदाद जो कि मेरे नाम थी, उसे उस वृद्धाश्रम के नाम कर दिया। अब चूँकि अमृत जी नहीं रहे तो धीरे–धीरे अस्पताल बंद हो गया और फिर कुछ दिनों के बाद सिर्फ, आज का ये 'अमृत वृद्धाश्रम' ही रह गया। भारद्वाज जी सारा काम–काज संभालते और मैं सबकी सेवा करते रहता।

मैंने भारद्वाज से वचन लिया कि वे किसी से इस बारे में नहीं कहेंगे कि इस वृद्धाश्रम में मेरा क्या योगदान है। मैंने कहा कि मैं इसी चौकीदार वाले रूप में खुश हूँ और मुझे यहीं बने रहने दीजिये। भारद्वाज जी नहीं माने, मैंने फिर उन्हें अपनी कसम दी, वे चुप हो गए। उन्होंने कहा, "बेटा, तू सच में ईश्वर है। भगवान हर किसी को तेरे जैसी ही औलाद दे"।

वृद्धाश्रम चल पड़ा। यहाँ हर महीने कोई न कोई आ जाता, कोई न कोई गुजर जाता। मैं इन बातों का अभ्यस्त हो चुका था। जिन्दगी चल रही थी, सब एक–दूसरे के सुख–दुःख बाँटते थे। मिलकर काम करते थे। हमने कुछ नर्सें रखी हुई थीं। कुछ लोग रखे हुए थे। सब इस आश्रम की देखभाल करते थे और भारद्वाज जी ने सभी से कह दिया था कि ईश्वर की बात हर कोई माने। बहुत कम लोग मुझे ईश्वर कहकर पुकारते थे। ज्यादातर लोग मुझे सिर्फ चौकीदार ही कहते थे और मुझे इससे कोई शिकायत भी नहीं थी।

कुछ वर्ष पहले

एक दिन शान्ति दीदी का फोन आया। शान्ति हमारे पुराने अस्पताल में नर्स थी। उसके आगे–पीछे कोई नहीं था। एक भतीजा था, जो कि उसकी नौकरी पर अपनी जिन्दगी के मजे ले रहा था। फिर शान्ति को एक दिन एक्सीडेंट में पैर में चोट लग गयी। वह अब काम पर नहीं आती थी। फिर भी अमृत जी ने इंतजाम करवाया था कि उसे हर महीने उसकी तनख्वाह मिल जाए।

उस दिन उसका फोन आया कि उसके भतीजे ने उसका घर ले लिया है और उसे घर से निकल जाने को कह रहा है। अब वह बेसहारा है। मैंने और भारद्वाज जी ने कहा कि वह बेसहारा और बेआसरा नहीं है। वह यहाँ आ जाए और फिर मैं उसे लाने के लिए आश्रम की गाड़ी लेकर उसके घर पहुँचा। मैं जब उसे लेने गया तो देखा कि वह घर के बाहर एक छोटी सी पेटी लेकर चुपचाप बैठी है। मुझे देखकर वह उठी। पैर की चोट की वजह से वह लड़खड़ा गयी, मैंने दौड़कर उसे संभाला। मैंने उससे कहा और कोई सामान, जो ले जाना हो। उसने कहा, "कुछ नहीं, जो कुछ कमाया, वह यह घर ही था। वह भी छिन गया। अब कहीं कुछ नहीं रहा। लेकिन हाँ, वृद्धाश्रम जाने से पहले मुझे तुम कुछ जगह ले जा सकते हो तो मुझे बहुत खुशी होगी।"

मैंने कहा "कोई बात नहीं, आप चलो तो।"मैंने उसे गाड़ी की पिछली सीट पर बिठाकर उससे पूछा, "बताओ, कहाँ जाना है?" उसने कहा, "मैं हर जगह एक बार जाना चाहती हूँ जहाँ मैंने अपनी जिन्दगी का कोई हिस्सा जिया है।" मैंने धीरे से पूछा, "अब इस बात का

क्या मतलब है?" उसने शायद रोते हुए कहा था, "मुझे पता है, मैं उस वृद्धाश्रम में आखिरी दिन बिताने जा रही हूँ जहाँ से अब कभी भी नहीं लौट पाऊंगी।" मैं चुप हो गया। मेरे गले में कुछ अटक–सा गया था। मुझे भी शायद रुलाई आ रही थी पर मैंने चुपचाप गाड़ी आगे बढा दी। उसने रास्ते में रुककर कुछ फूल खरीदे।

सबसे पहले वह एक मोहल्ले में, एक बड़े से घर के पास मुझे लेकर गयी। उसे देखते ही उसकी आँखों में बड़ा दर्द–सा उमड़ आया। उसने मुझे बताया कि वह ब्याह कर इसी घर में आई थी, फिर इसी घर में उसके पति का देहांत हो गया। और इसी घरवालों ने उसे उसके बच्ची सहित घर से बाहर निकाल दिया।

फिर वह मुझे एक ईसाई अस्पताल ले गई, जहाँ उसने मुझे बताया कि यहाँ एक सिस्टर मेरी थी, जिसने उसे सहारा दिया और यहाँ पर उसे नर्सिंग सिखाया। फिर वह यहीं पर नर्स बनी और इसके बाद हमारे अस्पताल में नर्स बनी।

फिर मुझे एक कब्रिस्तान में लेकर आई उसने रास्ते में जो फूल खरीदे थे, उन्हें लेकर उतर गयी। मैंने उसे एक प्रश्न भरी निगाह से देखा। उसने आँखों में आँसू भरकर कहा, "यहाँ मेरी बच्ची की कब्र है। बचपन में ही कुपोषण की वजह से बीमारियों की शिकार हुई और फिर एक दिन इस दुनिया से चल बसी।" उसी की कब्र पर फूल चढाकर वह आना चाहती थी। मेरे मुँह से कोई बोल न फूटे। वह भीतर चली गयी और मैं फूट–फूट कर रो पड़ा।

कुछ देर बाद वह आई तो बहुत दुखी दिख रही थी। वह शायद जी भरकर रो चुकी थी और अपना मन हल्का कर चुकी थी। वह गाड़ी में आकर चुपचाप बैठ गयी और एक गहरी सांस लेकर कहा, "चलो, मेरे नए घर में मुझे ले चलो।" मैंने गाड़ी को मोड़ते हुए धीरे से पूछा, "एक बार क्या वह अपना घर भी देखना चाहेंगी, जिसे वह छोड कर आ रही है? "उसने एक आह भरी और थोड़ा सोचकर कहा, "हाँ एक बार दिखा दो, मैंने बड़ी मेहनत से उसे बनाया है। पर उसे भी इस दुनिया के मक्कार लोगों ने छीन लिया। "

मैंने चुपचाप उसे उसके घर के पास रोका। वह बहुत देर तक कार में बैठकर उसे देखती रही और रोती रही। फिर उसने धीरे से कहा, "चलो, चलते हैं।" मैं उसे यहीं ले आया, तब से वह यहीं पर है और इसी आश्रम का एक हिस्सा है और मेरी तरह सबकी सेवा करती है।

अब

इसी तरह की कहानियों और किस्सों से भरा हुआ है ये अमृत वृद्धाश्रम। लेकिन एक बात यहाँ बहुत अच्छी है। लोग यहाँ आकर अपने दुःख भूल जाते हैं, और सब एक ही परिवार का हिस्सा बनकर रहते हैं। मेरे परिवार का, हाँ, ये मेरा ही तो परिवार है एक बड़ा–सा भरा हुआ परिवार। मेरा अपना तो कोई है नहीं, लेकिन ये सभी अब मेरे अपने ही बन गए हैं। ये तो परमात्मा की ही कृपा थी कि अमृतलाल जी, भारद्वाज जी और मैं, हम सब की सोच एक जैसी थी और इस सपने को हमने जीवन दिया। यहाँ हर धर्म के लोग रहते हैं और यहाँ हर त्यौहार भी मनाया जाता है। बस जीवन के अंतिम दिनों में सभी खुश रहें, यही हम सबकी एक निरंतर कोशिश रहती है।

बस एक कमी है, और वह है – अस्पताल की सेवाएँ, उसके लिए हमें दूसरे अस्पताल पर निर्भर रहना पड़ता था। अब सभी बूढ़े थे। सो, हमेशा कोई न कोई बीमार ही रहता था। अक्सर हमें किसी न किसी को अस्पताल ले जाना पड़ता था। आश्रम के पास एक एम्बुलेंस था और शान्ति थोड़ी–बहुत प्राथमिक उपचार कर लेती थी, पर हमेशा ही अस्पताल जाना पड़ता था। अक्सर ऐसे मौकों पर एक कसक सी दिल में उठती थी कि, काश, उस वक्त अमृतजी का बेटा, गौतम यहाँ रुक गया होता या पढ़ाई पूरी करके यहीं बस गया होता तो वह अस्पताल कभी भी बंद नहीं होता।

खैर, विधि का विधान जो भी हो।

आज

आज सुबह मैं थोड़ा जल्दी उठ गया हूँ। कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। शायद उम्र का असर था। पता नहीं मेरी उम्र कितनी हो गयी है, आजकल कुछ याद भी नहीं रहता।

भारद्वाज जी ने आकर मुझे देखा और कहा, "ईश्वर, शायद तुम्हारी तबियत खराब है। तुम आराम कर लो।" मैंने कहा"जी कुछ नहीं, थोड़ी सी हरारत है। शायद उम्र थक रही है।

इतने में एक कार आकर रुकी। हम दोनों ने पलटकर दरवाजे की ओर देखा। कार से अचानक एक आवाज आई, "ईश्वर काका!"मेरे लिए यह एक नया संबोधन था। सब मुझे चौकीदार ही कहकर पुकारते थे। बाहर की दुनिया में किसी को मेरा असली नाम पता नहीं था। हम दोनों ने गौर से देखा। कार का दरवाजा खुला और एक सुखद आश्चर्य की तरह अमृतलाल जी का बेटा गौतम, एक नौजवान के साथ उतरा। मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने भारद्वाज जी से कहा, "आज सूरज हमारे आँगन में उगा है, जरूर यह सूरज होगा। अमृत जी का पोता।" पास आकर गौतम ने कहा" हाँ, ईश्वर यह सूरज है। हमारा सूरज, आप का सूरज, हम सब का सूरज। "सूरज ने मेरे पास आकर मेरे पैर छुए तो मेरी आँखें छलक गईं। पहली बार किसी ने मेरे पैर छुए थे। मेरे हाथ काँपते हुए आशीर्वाद देने के लिए उठ गए।

सूरज ने कहा, "ईश्वर काका, मैं आज आपसे अपने पिता जी की तरफ से माफी माँगने आया हूँ और दादाजी का सपना पूरा करने आया हूँ।" मेरी आँखें खुशी से बह रही थीं। सूरज ने आगे कहा, "मैंने भी डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी कर ली है और अब मैं और पिताजी यहीं रहेंगे और दादाजी का सपना पूरा करेंगे।" मैं ने कंपकंपाते स्वर में पूछा, "और माँ ?"गौतम ने कहा, "वह नहीं रही। इसी साल उसका देहांत हो गया और मैंने फैसला कर लिया है कि अब हम यहीं आकर रहें, आपने और भारद्वाज अंकल ने जो निःस्वार्थ सेवा का बीड़ा उठाया है, अब हम भी उसमें अपना योगदान देंगे। यही सच्चे अर्थों में हमारी वापसी होगी, अपने देश के लिए, अपने पिता के लिए, उनके उद्देश्य के लिए और यही हमारा प्रायश्चित्त होगा।" इतना कहकर गौतम ने अपनी आँखों से आँसू पोंछे।

शान्ति, जो इतने देर से पीछे से आकर हमारी बातें सुन रही थी वह अपने आँसू पोंछती हुई वापस मुड़कर आश्रम के भीतर गयी और एक पूजा की थाली ले आई। आरती का दीया जला कर दोनों की आरती उतारते हुए उसने कहा, "पधारो अपने देश बेटा !"हम सबकी आँखें भीग उठीं।

गौतम ने एक लिफाफा निकाल कर मेरे और भारद्वाज जी के हाथों में दिया और कहा, "इसमें मेरी सारी संपत्ति के कागजात हैं, मैंने अपना सबकुछ इस वृद्ध आश्रम को दे दिया है। और इसकी सारी जिम्मेदारी ईश्वर और भारद्वाज अंकल को सौंपी है, सब कुछ अब इस आश्रम की मिट्टी के लिए। "

ये सुनकर मैं रो पड़ा, मेरा दर्द और बढ गया और मैं काँप कर गिर पड़ा। सूरज ने तुरंत मेरी नब्ज को देखा और कहा, अरे आपकी नब्ज डूब रही है। जल्दी इन्हें अस्पताल ले चलो' मैं ने कहा, "बस बेटा, आज का ही इन्तजार था। तुम्हारी वापसी हो गयी और मुझे अब क्या चाहिए? बस अब चलता हूँ। "

सूरज ने कहा, "कुछ नहीं होगा, आपको माइल्ड हार्ट अटैक आया है, सब ठीक हो जाएगा। "

भारद्वाज जी ने जल्दी से आश्रम के एम्बुलेंस का इंतज़ाम किया और मुझे उसमे लिटाकर, शहर के एक हार्ट अस्पताल की ओर चल पड़े।

एक नयी शुरुआत

अस्पताल आ गया था, मुझे स्ट्रेचर पर ऑपरेशन थिएटर के भीतर ले जाया जा रहा था, मैंने चारों तरफ सभी को देखा। मुझे खुशी थी। अमृत वृद्धाश्रम अब बेहतर हाथों में है। अमृतलाल जी का और मेरा सपना सच हो गया था। मैंने सभी को प्रणाम किया और भीतर की ओर चल पड़ा। अब सब ठीक हो गया था। अब कोई दुःख मन में नहीं था, और मुझे यकीन था कि मैं भी ठीक हो ही जाऊँगा, फिर से अपने अमृत वृद्धाश्रम की सेवा करने के लिए।

(हैदराबाद, भारत)

अकेला

—श्री अजय ओझा

'तुम जरा भी घबराना मत मेरे लाल, अकेला नहीं है तू, हाँ!' बचपन में जब पहली बार ये शब्द मेरे कानों ने सुने थे तब बड़े प्यारे लगे थे ये बोल । उस वक्त भी माँ के इस मीठे बोल ने मेरे दिल को सुकून पहुँचाया था। इसलिए नहीं कि ये शब्द माँ के थे, इसलिए भी नहीं कि उस समय मैं बहुत छोटा था, बल्कि इसलिए कि मुझे इन शब्दों में निस्संदेह सत्य अनुभव हो रहा था। जीवन में मेरा खुद का महसूस किया हुआ परम सत्य !

माँ के ये बोल सुनने के बाद बुखार में सुलगती आँखों से मैंने अस्पताल के वॉर्ड में नज़रें घुमाकर ठीक से चारों ओर देखा था, तब पता चला कि यकीनन मैं अकेला कहाँ था ! आसपास के बिस्तरों पर मेरे जैसे कितने बीमार बच्चे स्वस्थ होने का इंतज़ार कर रहे थे। मुझे खयाल हुआ कि अस्पताल केवल बूढ़े-बुज़ुर्गों को अंतिम समय में इलाज देने का ही नहीं, परन्तु हर उम्र के लोगों को बीमारी से बचाने का बहुत पवित्र स्थान है। मूलतः एक बात मेरी समझ में आई कि बीमारियों के सामने लड़ने में मैं अकेला नहीं, और लोग भी हैं।

बस, यही खयाल सुकून देता रहा.. मैं अकेला नहीं।

फिर तो जीवन के हर मोड़ पर मैंने ये बात बराबर समझ कर याद रख ली थी। पढ़ाई में तो यही नियम मुझे सब से अधिक काम आया था वरना अकेले-अकेले पढ़ना मेरे बस की बात कहाँ ? इसी वजह से मैंने अधिक से अधिक दोस्त बना लिये थे। किसी दोस्त के साथ पढ़ने जाना, किसी के साथ हॉस्टेल में रहना, किसी के साथ मूवी देखना, किसी के साथ मिलकर प्रोजेक्ट वर्क खत्म करना, किसी के साथ घूमने जाना, किसी की मदद से काम निपटाना। सारी तकलीफों के हल मिल ही जाते.. अगर एक दोस्त साथ हो तो । समय के साथ दोस्त आते-जाते बदलते रहते। लेकिन उन दोस्तों के बिना जीवन असंभव-सा हो जाये, ये बात मेरे मन में छप गई थी। मैं बराबर समझता था कि बोरिंग सिलेबस के समुद्र को दोस्तों के सहयोग से ही पार कर सका था। आखिर एक अकेला इन्सान बेचारा कितना और क्या-क्या कर सकता भला ?

कोई एक कसौटी में फेल हो जाऊँ तो पीठ थपथपा कर दोस्त हँसा देते, 'दोस्त, तू अकेला नहीं, हाँ.. अपनों ने भी दो सब्जेक्ट में खिल्ली उड़ाई है !'

प्रोजेक्ट बिगड़ जाते तब और किस-किस के प्रोजेक्ट हो ही नहीं पाये, उनकी बातें दोस्त बताते तब अहसास होता कि मैं अकेला नहीं हूँ। जेब खाली हो जाने पर कोई मदद न कर सकते तब अपने आप इतना तो पता चल ही जाता कि खाली जेब वाले भी तो इस दुनिया में हम अकेले नहीं !

हाँ, मयूरी के किस्से में मैं जरा अकेला पड़ गया था लेकिन असल में ऐसा था ही नहीं। क्योंकि तब मुझे एक नई बात मालूम पड़ी कि दोस्तों का साथ सहज और सरल है, परंतु एक लड़की का साथ दुर्लभ और रोमांचकारी होता है!

सही मायने में किसी का हमारे साथ होना कितना सुहावना लगता है। ये मयुरी के मेरे जीवन में आने से ही समझ सका हूँ। एक स्त्री का हमारे साथ होने का खयाल ही कितना रोमेन्टिक महसूस होता है। मयूरी सब से अलग थी, – ऐसा मैं सोचता था। उसकी बातों में खो जाना पसंद आता था। हमारे विचार मिलते थे, दोनों की कैमेस्ट्री काफी मेल खाती थी। हम दोनों समझो मेड फॉर ईच अदर ही हो गये थे।

वह साथ हो तब जीवन अपना सर्वोत्तम समय जी रहा होता। वह साथ हो तब अकेलेपन की हवा तक न लगने देती । हर छोटी-बड़ी बात पर उससे पूछना, उसकी पसंद-नापसंद जानना, उसकी मरज़ी के मुताबिक चलना... सब कुछ बड़ा अच्छा लगता। इस तरह उसे खुश होती देखते-देखते मैं भी खुश हो जाऊँ। ऐसे ही कोई खुशहाल समय में कभी बहुत खुश होकर मेरे कंधे पर सर रखकर आँखें नचाती हुई वह बोल उठती, एय.. डियर, मैं हमेशा तेरे साथ ही रहूँगी हाँ, तू अकेला नहीं ! बस, उस क्षण ऐसा लगता कि यही शब्द मेरे जीवन की अमूल्य संपत्ति है। जीवन में बस ऐसे ही किसी का सच्चा साथ है तो जीवन सफल है!

बदकिस्मती से एक स्त्री का साथ दुर्लभ एवं रोमांचकारी होता है – ऐसा मानने वाला भी मैं अकेला नहीं था। बीतते वक्त के ज्ञान

हुआ स्त्री का साथ विचार, तनाव एवं मनोयातनाएँ भी देता है। शुरू–शुरू में स्त्री के आसपास के विश्व में पहुँचकर ही रहने की इच्छा हो तब तक सब बराबर चलता है, लेकिन स्त्री का समग्र विश्व ही खुद बन बैठने की महत्त्वाकांक्षा मन में जाग उठे तब से कठिनाइयाँ भी जागने लगती हैं। प्यार की जगह अहंकार और आधिपत्य के खयालात मजबूत होने लगें तब तूफान तो उठने ही उठने हैं। मयूरी के किस्से में भी कुछ ऐसा ही हुआ।

उस समय जीवन से हारा हुआ मैं खुद को अकेला महसूस करता था। लेकिन जीवन की वह मायूसी भी एक बात सिखा गई कि ब्रेक-अप हुआ हो ऐसा इस दुनिया का सबसे पहला इन्सान मैं नहीं था! पता चला कि कई दोस्तों के तो चार–चार बार संबंध–विच्छेद हो चुके है – ये बात पता हुई तो एक बार फिर मुझे आत्मसंतोष हुआ कि इस मामले में भी मैं अकेला हूँ ही नहीं !

पीठ पर चपत लगाते कोई मित्र कहता कि, 'देख इतना सारा टेंशन ले के नही घूमने का । यहां तो एक जाती है तो तीन आती हैं । हर सात मिनट में एक लोकल मिल ही जाती है सबको । अभी तक किसी स्टेशन पर कोई पैसेंजर अकेला रहा नहीं, तू भी अकेला रहनेवाला नहीं.. समझा क्या !'

बस... जीवन चलता ही रहता है, और मैं अकेला पड़ता ही नहीं हूँ । पढाई के बाद नौकरी की दौड़ में भी..., नौकरी न मिलने से धंधे को सँभालने में भी..., अच्छी-सी लड़की को ढूँढकर ब्याहने में भी..., धंधे को सँभालने के बाद घर संसार चलाने में भी..., संसार चलाने के बाद उसे निभाने की दौड़ में भी..., हर जगह.. हर समय.. हर वक्त.. मैं अकेला नहीं था । मेरे जैसे कई लोग मेरी तरह मेरे साथ गिरते–कूदते और फिर से खड़े होकर आगे बढ़ते.. इसी तरह.., किसी तरह जी लेते मैंने देखे हैं । बस.. जीवन चलता ही रहता है ।

जो हो सकी उतनी पढ़ाई करने के बाद, नौकरी के आवेदन और परीक्षाएँ देता रहा.. देता ही रहा । पहचानवालों को जगाया, साक्षात्कार दिये, परीक्षा पास की, सिफारिशें करवाई, सब से बिनती करता रहा । सब ने सकारात्मक बातें की, 'देखते हैं, मेरिट क्या होता है, कहीं न कहीं तो चान्स लग ही जायेगा, हम तेरे साथ ही है, कुछ तो करेंगे ही ।'

परंतु किसी से भी कुछ भी न हो सका । कहीं मेरिट, कहीं वेकेन्सी, कहीं आरक्षण, कहीं क्वालिफिकेशन, कही गड़बड़ी, कहीं तकदीर.. मुझे नौकरी से दो कदम दूर ही रखते रहे ! अच्छा हुआ कि रिश्तेदारों ने समझाया कि नौकरी से वंचित रहनेवाले मैं अकेला ही नहीं, पर दुनिया में मेरे जैसे कई बेरोज़गार इन्सान रहते है सो मैंने छोटा–सा धंधा आरंभ कर दिया ।

लेकिन जीवन इतना सरल कहाँ भैया ? इतने सारे लोगों का साथ, दोस्तों का समर्थन, पत्नी का सहयोग, रिश्तेदारों की सहानुभूति होने के बावजूद... शायद इतना सब कुछ भी एक जीवन जीने के लिए काफी नहीं था! धंधा ठीक से चले न चले कि शादी हो गई। गृह संसार और धंधे के दोहरे घोड़े की सवारियाँ करने के दुःसाहस का परिणाम पूरी तरह निष्फल रहा। परिणामतः न तो कुछ कमा सका और न ही पत्नी का प्यार–सम्मान पा सका। गरीबी की साथ पहचान और गहरी होती चली गई। माँ बनने के सपने देख रही पत्नी को एकाएक कोई महामारी लग हो गई।

आर्थिक हाल–बेहाल रहा और माँ न बन पाई मेरी पत्नी लंबी बीमारी से ग्रस्त रहने लगी । हर महीने उसकी दवा के लिए शहर के बड़े अस्पताल में जाना पड़ता । दवा के खर्च बढ़ने लगे । मनोयातना इतनी बढ़ जाए तब कोई साथ हो न हो क्या फर्क पड़ता ?

इस बार बड़े अस्पताल में उसके इलाज के लिए गये तो हम दोनों पर बिजली गिराते हुए डॉक्टर ने कहा, 'अब आप लोग कभी माँ–बाप नहीं बन पाओगे, लेकिन उतना ही नहीं, अगर समय पर इलाज नहीं होता रहा तो आपकी पत्नी की जान बचाना संभव नहीं होगा ।

मैं सुन्न पड़ गया । मेरी पत्नी भी डॉक्टर की बात सुन रही थी । डॉक्टर के मुताबिक कम से कम दस लाख रुपये की जरूरत थी उसके इलाज के लिए । रिश्तेदारों और दोस्तों को फोन कर के पूछ लिया, लेकिन रुपयों का इंतज़ाम न हो सका । सब सांत्वना देते, 'पैसो की ही तो कमी है उसना.. हम सब लोग तेरे साथ है, तुम ज़रा भी फिकर ना करना.., सब ठीक हो जायेगा.., तू अकेला नहीं, बस कुदरत पर भरोसा रखना ।'

मेरे मन में निराशा और आघात की सिलवटें उभरने लगीं । हालात को समझ रही मेरी पत्नी भी बहुत दुखी होकर रोने लगी। अस्पताल से ट्रेन में वापस घर आ रहे थे तब वह बोली, 'कब तक मेरे लिए खर्च करते रहोगे ? और कितने इलाज करवाओगे ?'

'क्यों ? ऐसा क्यों बोल रही हो ?' मैंने पूछा । अपने पास भी जब कोई उत्तर न हो तब वापिस सवाल पूछना ही आखिर एक

रास्ता बचता है । सच बताऊँ तो मेरे खुद के मानसिक हालात भी भारी डावांडोल हो चुके थे ।

रोनी सूरत से वो बोली, 'बहुत हो चुका अब, थक चुकी हूँ मैं । चलती ट्रेन से कूद पड़ते है.. सारी परेशानी का खेल ही खत्म..!' उसकी आवाज में भयंकर निराशा दबी थी.., ऐसा लग रहा था, शायद उसने तो निर्णय भी लेकर लिया था !

कमज़ोर क्षण में ऐसी-वैसी बात भी सही लग सकती है। मुझे भी लगा कि उसकी बात कहीं गलत है ? एक छलांगभर दूर मौत मिल सकती है, सारी परेशानियों के हल जैसी नर्म-मर्म हँसती हुई सुहावनी मृत्यु ! और अगर मैं शायद न कहूँ तो भी वह अकेली इस दुःसाहस को ठान के तो बैठी ही है, अगर ऐसा हुआ तो ? एक ही छलांग भरने से कितनी समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है ! आहा, - उसकी बात बिलकुल सही है ।

मन को मजबूत कर के मैंने एक निर्णय लिया । ट्रेन के दरवाजे से बाहर बह रहे दृश्यों को देखते हुए मैंने कहा, 'पूरी जिंदगी में तूने कभी मुझे अकेला रहने नहीं दिया, मैं भी तुझे अकेले कैसे जाने दूँ ? देख, अभी एक पुल आ रहा है, पहले मैं छलांग लगाऊँगा, मेरे पीछे तुम कूद जाना।' बड़ी जल्दी से मैने निर्णय ले लिया और दरवाजे के पास आ गया।

कुछ ही पल में एक लंबे पुल के उपर से ट्रेन दौड़ने लगी कि तुरन्त ही मैंने फुर्ति से छलांग लगा दी... आंख के सामने अंधेरा छा गया। सब कुछ गोल-गोल घूमने लगा। खुद का एहसास भी निकल गया।

आँख खुली तब रोशनी दिखाई रही थी। कुछ समझ में नहीं आता था। मुझे कहीं चोट या पीड़ा का अनुभव भी नहीं हो रहा था। अरे, अपने आपको भी महसूस नहीं कर पा रहा था।

मैं चारों तरफ देखने लगा पर कुछ नजर नहीं आया । शायद मैं मर गया था । यकायक रोशनी के पुंज से एक तेजस्वी आंखोंवाला दूत प्रकट हुआ और बोला, 'यहाँ भी तू अकेला है, तेरे साथ कभी कोई था ही नहीं और यहां भी नहीं है।'

मैं असमंजस में, 'लेकिन... लेकिन... ऐसा क्यों ? मैं कभी अकेला हुआ ही नहीं । यहाँ भी नहीं रहूँगा, मुझे विश्वास है !' कहते हुए मैं मुड़कर देखने लगा।

'वह तेरा भ्रम था.. केवल भ्रम । वक्त आ गया है कि अब तुम उस भ्रम की कैद से मुक्त हो जाओ। तुम्हें उस भ्रम से बाहर निकलना चाहिए । समझ लो ये बात कि इन्सान हमेशा अकेला ही होता है। साथ रहनेवाले भी सब अकेले ही होते है।' दूत उपदेश देने लगा ।

मैं कुछ समझा नहीं, ये उसे समझने मे देर न हुई। बोला, 'पीछे मुड़कर देखोगे तो सब समझ में आ जायेगा । बचपन में जब तुम ज्वर से पीड़ित थे तब अस्पताल के वॉर्ड में तू अकेला नहीं है ऐसे भ्रम का बीज तेरे दिमाग मे बोया गया था, लेकिन ज़रा सोच कि दूसरे मरीजो ने तुम्हें स्वस्थ करने में कौन-सी मदद कर दी थी ? जरा भी नहीं न ? अगर तू अकेला होता फिर भी स्वस्थ तो होने ही वाला था न !'

मैं सोच में पड़ गया । दूत बोला, 'मुझे लगता है कि तुम्हें सत्य बताने का यही समय सही है, तो बताता हूँ । जीवन में कभी कोई हमारे साथ नहीं होता । सही और सरल भाषा में समझाऊँ तो बात इतनी ही है कि हर इन्सान अपने जीवन में अकेला ही होता है.. बिलकुल अकेला! न कोई हमारे साथ होता और न ही हम किसी के साथ होते !

मैं स्थितप्रज्ञ-सा उसकी बातें सुनता रहा । शायद उसकी बहुत-सी बातें मेरी समझ से बाहर थीं । उसको इस बात का अंदाज़ा हुआ लेकिन मुझे अच्छी तरह से समझाये बगैर छोड़नेवाला वह नहीं था सो, उसने बात आगे चलाई, 'किसी के साथ होने से हमको केवल एक कृत्रिम आश्वासन मिलता है। उससे ज्यादा कुछ नहीं। याद करो तुम, दोस्तों ने कभी कुछ मदद की हो, ऐसा एक भी उदाहरण है तेरे पास ? किसी को मदद करने के लिए समान होना ही केवल पर्याप्त नहीं । किसी ने तेरा हाथ थामकर बचाया है कभी ?'

मेरे मानसपटल पर बहुत से चित्र आकार लेने लगे। दूत की बात सच्ची लगी। दोस्त भी मेरे साथ फेल हो ये कोई मदद थोड़े ही है ? मेरी तरह दोस्तों के भी अगर ब्रेक-अप हुए हैं तो उसमें कौन-सी हेल्प ? पत्नी के इलाज के वास्ते किसी रिश्तेदार ने सहायता न की, लेकिन सारे मिलकर कुछ तो कर सकते थे! योग्यता होने के बावजूद नौकरी न मिल सकी, तब कोई तो साथ आ कर सही राह दिखा ही सकता था न ? मेरे लिए लड़ने की इच्छा तो किसी ने न जताई !

अचानक इन सब प्रसंग चित्रों के बीच मयूरी का चेहरा उभर आया और दूत भी वह देख गया हो ऐसे बोला, 'मयूरी ने तुझे क्या

दिया? सच्चे प्यार को कभी टूटना होता है भला ? जो टूटते हैं वह केवल आलंबन होते हैं, प्यार नहीं ! तुम दोनों का रिश्ता भी एक आलंबन बन के रह गया था, सो मयूरी भी तुझे अकेला रख के निकल गई। सूरज जब माथे पर आता है न भैया, तब अपनी परछाईं भी साथ छोड़ देती है, मेरे दोस्त !'

ओह..मेरी समझ में अब कुछ–कुछ आ रहा है। असल में पहले से ही मैं अकेला था पर दूसरे लोग भी साथ हैं ऐसे भ्रम की वजह से मैंने जीवन को भी उसी झूठी कल्पना के सहारे बिताया। बहुत बड़े और जीवन के इस मूलभूत असत्य को ही मैंने जीने का प्रेरक बल मान लिया, जिसकी वजह से आत्मा की ताकत को समझने का मैंने खुद को अवसर ही नहीं दिया । जो महसूस हो रहा था, जो मैं जी गया था, जो मुझे सत्य लगता था, ओह...वह ही तो मेरा भ्रम था.. बहुत बड़ा भ्रम। उसी भ्रम के कारण जीवन बिना जीये ही बीत गया! पहले से ही मैं अकेला हूँ यह बात समझ सका होता तो आत्मविश्वास को जगाने के कई मौके मिल सकते थे और आत्मबल के जोर पर आगे बढ़ सकता था । दूसरा कोई मेरा संघर्ष उठा ले, उसी इंतजार में मैंने खुद को अकेला छोड़ दिया? मैंने ही खुद की मदद नहीं की! तभी मैं अकेला पड़ गया!

अचानक मुझे याद आया, ट्रेन से कूदनेवाला भी मैं अकेला कहाँ था? मैं व्याकुलता से इधर–उधर देखने लगा, पर वहाँ कोई दिख नहीं रहा था।

'किसे ढूँढ़ता है ? तेरी पत्नी को ?' मेरी परेशान निगाहों को परखकर दूत बोला। मैंने सर हिला के 'हाँ' कही। फिर से उसे ढूँढने लगा, लेकिन चारों ओर रोशनी के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

दूत बोला, 'वह तो तेरे पीछे–पीछे ही कूद पड़ने आई थी, परंतु ट्रेन की गति और पुल की ऊँचाई को देखकर उसकी बहादुरी ने जवाब दे दिया । वह नहीं आई तेरे साथ दोस्त ! उसका जीवन और उसका संघर्ष तुम से भी कुछ ज़्यादा होगा शायद । शायद वो तेरे जैसे कायर भी नहीं होगी । हो सकता है, जिंदगी से अकेले लड़ने की हिम्मत तुम से भी ज़्यादा उसके अंदर पड़ी हो !

ये कैसे हो सकता है ? मैं सोच में पड़ गया। दूत ने फिर मुझ से कहा, 'आघात लगा क्या? एक बार फिर से अकेले पड़ जाने का दुःख हुआ ?'

मैं उससे नज़रें मिलाकर बोला, 'न... मैं कभी अकेला नहीं हुआ। हमेशा कोई न कोई तो मेरे साथ रहा है। इस वक्त भी देखो, कोई नहीं है, तो स्वयं आप मेरे साथ है न।'

वह जोर से हँसता है, 'हा...हा.... कदापि नहीं मैं जिस भ्रम से तुझे निकालने आया हूँ उसी भ्रम में फिर से मत पड़ना दोस्त! मैं भी तो जा रहा हूँ। लेकिन हाँ, तुम इतना आश्वासन जरुर ले सकते हो कि एकल वीरों की इस एकल यात्रा में सभी अकेले ही होते है, मतलब इस दुनिया में एकल वीर तू अकेला है ही नहीं...हा...!' कहते हुए दूत रोशनी के बीच अदृश्य हो गया।

उस रोशनी की दिशा में देखते हुए मैंने दृढ स्वरों में कहा, 'नहीं, अब तो मैं सचमुच अकेला नहीं हूँ। आज से, अभी से, इसी क्षण से.. मैं अपने साथ हूँ... हमेशा... निरंतर..!'

गुजरात, भारत

ठौर कहाँ पर?

– डॉ. अलका धनपत

बचपन में उसे अपने चचेरे भाई से एक पुरानी साइकिल मिली थी। वह बहुत खुश था। कब से पिताजी से साइकिल की माँग कर रहा था। पर पिताजी कहते थे, 'दो घंटे के लिए किराए पर साइकिल ले कर चला ले।' किराए पर उसने कई बार साइकिल ली तो थी पर उसमें अपनेपन या अपनी साइकिल का गर्व कहाँ हो पाता था। गुरमीत ने उसे अपनी साइकिल क्या दे दी मानो उसे तो ऐरावत हाथी मिल गया था। गुरमीत की साइकिल में बहुत कुछ टूटा था तो कुछ टूट रहा था पर पहिए ठीक थे। साइकिल के ब्रेक थोड़े ढीले थे । बस, उसके मैकेनिक दिमाग ने कार्य करना प्रारंभ किया। वह जहाँ से साइकिल किराए पर लिया करता था उस दुकानवाले से थोड़ी दोस्ती तो हो ही गई थी। वह अपनी साइकिल वहीं ले जाता। कुछ देख– देख कर सीख रहा था तथा कुछ उसकी रुचि भी उसे 'मैकेनिक' के कामों को समझने में सहायता दे रही थी। दो महीनों में उसने अपने जेब खर्च से साइकिल को ऐसा बना लिया था कि वह गाँव भर में उस पर बैठकर घूमा करता था। घर का कोई काम जो बाहर जाकर करना है वह हमेशा करने को तैयार रहता। पिताजी को दुकान पर खाना पहुँचाना है या बाहर से कुछ खरीद कर लाना है, वह साइकिल पर हवा हो जाता। बस इस तरह अपनी साइकिल चलाते तथा ठीक करते–करते पता ही नहीं चला कि वह कब साइकिल मैकेनिक ही बन गया। अब तो धीरे–धीरे घर में या पास–पड़ोस में कुछ भी ठीक करना होता, कोई बिजली का काम, बोरिंग मशीन, पानी की पाइप आदि सब उसे ही बुलाते। इस तरह के व्यक्तित्व के साथ वह बड़ी ही मुश्किल से दसवीं पास कर पाया और साइकिल वाले की दुकान पर काम करने लगा । साइकिल उसके हाथ में आते ही मानो नया जीवन पा जाती थी। उसने तीन पुरानी साइकिलों के पुराने पुर्जों को जोड़कर एक नई साइकिल भी बना डाली। गाँव में उसके हाथ की इस सफ़ाई की धाक जमने लगी।

एक दिन उसे पता चला कि विदेश में काम के लिए एक एजेंट कुछ नौजवानों को भर्ती कर रहा है। वह भी वहाँ गया। पता चला कि वहाँ जाने पर 'बेकरी' में काम करना होगा। रात के एक बजे से सुबह के दस बजे तक और फिर शाम के दो बजे से रात के दस बजे तक। विदेश में रोटी बनाने के लिए बेकरी में काम करने वाले चाहिए। वह हैरान था कि रोटी बेकरी में बनती है। उसे पता चला कि यह रोटी परौठा या फुल्का नहीं है बल्कि एक तरह की 'ब्रेड' है। कहाँ साइकिल बनाना, कहाँ बेकरी का काम ?

उसके कुछ दोस्त भी जा रहे थे। बस, उसने भी निर्णय ले लिया कि वह भी जाएगा। तैयारी शुरू हो गई। जो जमा पूँजी थी वह तो एजेंट को देनी पड़ी पर साथ ही दो वर्ष की नौकरी के ब्रांड पर हस्ताक्षर भी किये। बाकी की धनराशि वह वहाँ की तनख्वाह से चुकाएगा। उसका पासपोर्ट, परमिट सब मालिक के पास रहेगा। पहले उसका मन डरा पर लगा कि जो डरा वह मरा । माँ तो पहले ही स्वर्गवासी हो चुकी थी । पिताजी ने अपनी दुकान को ही घर बना लिया था। इस कारण चन्नू घर कब आता कब जाता है, वह क्या खाता है इसकी चिंता न तो पिता को थी और न ही नई माँ को। बस, वह विदेश के लिए निकल गया।

दो वर्ष उसने बेकरी में रोटी बनाई। केक , पेस्ट्री, बिस्कुट तथा बेकरी में बनी तरह–तरह की ब्रेड (बागेत, जिपें आदि) के सहारे जीने वाले देश को देखा। सुबह नाश्ते में गोल ब्रेड में मक्खन, तो दोपहर की गोल ब्रेड में एक सब्जी या कुछ नॉन वेज तैयार किया हुआ। शाम को फिर से ब्रेड के लिए लाइन। उसे घर में खाए परातों की सोंधी सुगंध याद आती। गरम–गरम फुल्का, गोभी की सब्जी, मक्खनी दाल और रायता याद आता था। सर्दी में साग और मक्की की रोटी खाने के लिए मन तरस कर रह जाता। हाँ, वह बेकरी से कभी–कभी अंत की आँच पर मैदे की लोइयों से नान जैसी रोटी बना लेता था। अक्सर वह इतना थक जाता था कि स्वयं भी वह ब्रेड ही खा लेता था। इन दो वर्षों में उसने एजेंट का पैसा चुकाया। कुछ कमाया, कुछ खर्च किया तथा कुछ जोड़ा भी। उसके मेहनती स्वभाव एवं अन्य कार्यों की जानकारी के लाभ को समझते हुए मालिक ने उसका कांट्रेक्ट दो वर्षों के लिए पुनः बनवा दिया। अब उसका मन यहाँ रमने लगा था। वहाँ देश में उसके लिए था ही क्या? न पढ़ाई, न काम, न घर और सबसे बड़ी बात वहाँ उसका कोई इंतजार नहीं कर रहा था । वह यहीं रहने के रास्ते ढूँढने लगा।

उसे पता चला कि यह वर्क परमिट बहुत समय तक उसका साथ नहीं देगा। यहाँ स्थायी निवास हेतु उसे यहाँ की किसी कन्या से

विवाह कर लेना चाहिए। पर लड़की कैसे मिलेगी? उसे तो लड़की पटानी भी नहीं आती।

उसके कुछ मित्र शाम को शहर की तरफ़ बाज़ार की ओर जाते हैं। कुछ लड़कियों के बारे में बातें करते हैं । उसने भी उनके साथ जाने का कार्यक्रम बनाया । रात के अँधेरे में बस स्ट्रीट लाइट, दुकानों के बंद शहर पर कोने-कोने में खड़ी मुग्धा नायिकाएँ। यह देश तो चार बजे के बाद अपने सभी कार्यकलाप समाप्त कर देता है । बाज़ार बंद, ऑफिस बंद, सड़क सुनसान, गालियाँ चुप बस, कुछ गाड़ी वाले गाड़ी में या फिर कोई-कोई रेस्टोरेंट या पिज्ज़ा हट या फिर बड़े-बड़े मॉल्स ही खुले हैं । बड़े छोटे, बच्चे, विद्यार्थी, महिलाएँ सभी अपने-अपने दरबों में घुस जाते हैं। हाँ कहीं-कहीं काजीनों है पर वे पैसे वालों को ही एंट्री देते हैं । उनके ड्रेस-कोड भी अलग हैं। ऐसे में ये मुग्धा नायिकाएँ क्या ढूँढ़ रही हैं, वह कुछ-कुछ समझ पा रहा था ।

उसके मित्र ने उसे विजातीय कन्या से मिलवाया। कहा, 'यह बहुत अच्छी है, तुम इसे अपनी दोस्त बना सकते हो ।' छरहरे बदन की पतली, थोड़े गहरे रंग की, घुँघराले बालों वाली यह कन्या अर्द्धनग्न पर कुछ वस्त्रों में उसे आकर्षक तो दिखी पर अच्छी नहीं लगी।

वह जब बात करती थी तो सांकेतिक भाषा का भी प्रयोग करती। दोनों में दोस्ती बढ़ी। वह उसके लिए तोहफ़े लाने लगा। टूटी फूटी हिंदी-क्रियोल बोलने वाली उस लड़की ने स्पष्ट कहा कि हमारे रिश्ते का आधार पैसा है। तुम जब भी मुझसे मिलोगे तुम्हें इस समय का पैसा चुकाना होगा। वह जब भी रोज़ी से मिलता, मिलने के पैसे चुकाता। अब उसके वर्क-परमिट के भी केवल चार महीने रह गए थे। अब रोज़ी से वह हर सप्ताह मिल रहा था। आज उसने हिम्मत करके उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रख ही दिया। रोज़ी ने स्पष्ट शब्दों में कहा यह एक कांट्रेक्ट रहेगा, इस विवाह के लिए उसे हर महीने धनराशि चुकानी होगी। मरता क्या न करता ? सिविल स्टेट्स ऑफिस में आवेदन दिया गया । 21 दिन तक विवाह की सूचना, सूचना पट्ट पर लगी रही और सिविल मैरिज के पेपर मिल गए। दोनों ने गवाही के रूप में अपने मित्रों को खड़ा कर दिया था। विवाह धन और आवश्यकता का हुआ था। वहाँ प्यार कहाँ से पनपता ?

रोज़ी मंझी हुई खिलाड़ी थी। बेकरी का कांट्रेक्ट खत्म हो चुका था। उसके हाथ में हुनर था। इस देश में गाड़ी, आँगन, सीढ़ियाँ धोने के लिए इलेक्ट्रिकल मशीनें इस्तेमाल होती हैं। इसमें से पानी की धार खूब मोटी तथा तेज आती है जो आँगन आदि से धूल, मिट्टी, तक साफ कर देती है। यह मशीन 4 हज़ार से लेकर 20-25 हज़ार तक मिलती है। जब खराब होती है तो इस मशीन को ठीक करवाने के लिए मैकेनिक ढूँढना मानो टेढ़ी खीर है। उसने एक-दो बार बेकरी वाले की खराब मशीन को ठीक किया था। बस, एक दुकान किराए पर लेकर उसने मशीनें ठीक करने का कार्य शुरू किया। मेहनती तो वह शुरू से ही था। काम खूब बढ़ने लगा। दूर-दूर से फैक्ट्री, दुकान, घर आदि के लोग अपनी मशीन ठीक करवाने के लिए उसके पास आते। अब उसने दो सहायक भी रख लिए। कभी-कभी काम की अधिकता के कारण वह रात-रात भर कार्य करता।

रोज़ी देख रही थी उसकी आय बढ़ रही है। रोज़ी का लालच भी बढ़ने लगा। उसने माँ बनना भी स्वीकार नहीं किया और पैसा भी अधिक माँगने लगी। एक ओर चन्नू था जिसकी रात-दिन की मेहनत से कारोबार फूलने-फलने लगा था तो दूसरी ओर रोज़ी की रोज की नई-नई माँगों से वह उकताने लगा था। वह सोचता कि एक बार इस देश की नागरिकता के कागज मिल जाएँ तो वह यह देश छोड़ कर, किसी अन्य टापू या देश में चला जाएगा। नागरिकता के कागज भी तो मिलते-मिलते पाँच वर्ष लग ही जाते हैं। उसने सोचा, उसे अब आवेदन कर देना चाहिए। रोज़ी के मुँह को उसकी इस बढ़ती कमाई का खून लग चुका था। उसकी उदासीनता से रोज़ी थोड़ी सचेत हो गई थी। इधर, चन्नू ने नागरिकता के कागजों के लिए आवेदन-पत्र भेज दिया। रोज़ी को शायद किसी ने कुछ संकेत कर दिया था। एक सप्ताह बाद ही रोज़ी ने तलाक के लिए आवेदन कर दिया।

वह बहुत निराश था कि अब क्या करेगा? साथियों ने अपने-अपने ढंग से परामर्श दिए। उसने दुकान साथियों को सौंपी, स्वयं घर भी छोड़ा तथा देश के किसी अन्य कोने में फिर अपने हुनर के साथ काम शुरू किया है। अब केस कोर्ट में है। उसे नागरिकता तो नहीं मिल सकेगी पर कोर्ट-केस में जितना समय लगेगा, उतने दिन वह इस देश में और रह पाएगा। उसे रोज़ी जैसी तो अनेक मिलेंगी पर सच्ची पुष्पा कब मिलेगी, यह उसकी नियति ही भविष्य में बता पाएगी।

मॉरीशस

सीमांत

– श्री रामदेव धुरंधर

एडोल्फ के देश में इस तरह से मेला लगता नहीं था। वह यहाँ वही तो देखने आया था जो उसके देश में होता नहीं था। उसने माही के साथ मिलकर एक दुकान से काठ की माला खरीदी और दोनों ने एक–एक माला गले में डाल ली। पश्चिमी होने से उनके लिए यह शोभा भी थी, इस देश की संस्कृति और रीति–रिवाज़ में एकलय होने का आनन्द भी था। माही को यहाँ की लड़कियों का पहनावा आकर्षित कर रहा था। उसने बगल वाली गली में इस पहनावे की तमाम दुकानें देखी थीं। तब तो वह यथाशीघ्र यहाँ की पोशाक में ढल जाना चाहती थी। उसने अपने मन की बात एडोल्फ से कही तो वह बोला, 'तुम खरीद आओ मैं यहीं बैठे इस महान नदी की धारा में अपना मन भिगोता हूँ'। माही गई, लेकिन लौटने में उसने देर कर दी। एडोल्फ इस सोच से आश्वस्त था कि माही यहीं बगल की किसी दुकान में होगी। माही ने लौटने में और भी देर की तो एडोल्फ को चिंता होने लगी। संपर्क का आधार मोबाइल होने से वह जैसे बार–बार इससे भिड़ता रहा, लेकिन उधर से उत्तर आता ही नहीं था। उसने जाकर एक दुकान में देखा, दो दुकानों में देखा। इस तरह देखते उसने उस गली की सारी दुकानों में देख लिया। माही उसे किसी दुकान में नहीं मिली। पूछने पर भी किसी दुकानदार ने नहीं कहा कि उनके यहाँ कोई गोरी लड़की आई थी।

एडोल्फ आशंका के मारे कंपित होने लगा कि एक आदमी उसके पास आया। एक धोखा तो हो गया और अब दूसरे धोखे की भयावह तैयारी होने जा रही थी। आदमी ने अपना नाम 'समरत' बताया मानो उसकी चालाकी में आता हो कि नाम बता दो, बेगानेपन से छूट कर एकदम अपना बन जाओगे।' उसने एडोल्फ को एक दुकानदार से बातें करते सुन लिया था। वह अपने धोखे की कड़ी वहीं से जोड़ रहा था। उसे फर्राटेदार अंग्रेजी आती थी। तब तो वह और आसानी से एडोल्फ पर अपना जादू चला सकता था। उसने बातों के अंतर्गत इस तरह से जाला बुन लिया कि आशंका हो उसकी औरत का अपहरण हो गया होगा। एडोल्फ बच्चा न था कि यह वह इस दलील को सहजता से मान लेता। ऐसा भी था कि स्वर्गा घाट के बारे में लिखा हुआ पढ़ने से उसकी भावना में यह पैठा हुआ था यह वह पावन स्थान है जहाँ पैरों से उतारकर रखी हुई चप्पल तक को सुरक्षा मिलती है। पर एडोल्फ अपनी माही को न पाने से कुछ करने के लिए मजबूर तो हुआ। उसे एक ही आधार सूझ रहा था कि वह पुलिस का सहारा ले। उसने गली के उस पार पड़ने वाले पुलिस स्टेशन जाने का विचार कर लेने पर आदमी से यह कहा। आदमी ने उसका अनुमोदन किया, लेकिन मन में काइयाँपन रखने से वह उसका पीछा करना नहीं छोड़ा।

एडोल्फ यहाँ अपनी माही को ले कर एक पाँच सितारा होटल में ठहरा हुआ था। इस होटल को ठीक से जानने वाले समरत को पता था कि इसमें करोड़पति ही ठहर सकते हैं। उसने एडोल्फ को करोड़पति मानने से अपना गणित इस तरह बना रखा था कि एक बार इसे लूट ले शायद सेठ ही बन जाए। यही चोर वृत्ति उसे एडोल्फ के इतने करीब ला रही थी।

समरत ने अपने पेशे के बारे में कहा कि वह छोटी उम्र से नौका चलाने वाला नाविक है। वह स्वर्गा नदी में लोगों को नौका विहार करवाता है। उसने अपना नाम सच बताया तो अपने पेशे के बारे में भी सच ही कह रहा था पर एडोल्फ के प्रति उस की सज्जनता झूठ से झूठ ही थी। एडोल्फ तो उसे जैसे खेल–खेल में मिल गया था। वह एडोल्फ को लूटने के अपने खूंखारपन में इतना तन्मय हो जाना चाहता था कि वह स्वयं से बार–बार कह लेता कि उस की नजर में इस परदेशी की जान की कोई कीमत नहीं।

एडोल्फ को पुलिस स्टेशन में ध्यान से सुना गया। 'माही' नाम तो इस देश में एक साधु के सौजन्य से उन्हें मिला था। एडोल्फ को 'विक्टोरिया' नाम ही लिखवाना पड़ा। पुलिस स्वयं आश्चर्यचकित थी कि यह कैसी समस्या हुई? पुलिस के यहाँ इस ठौर के प्रमाण तो ऐसे बहुत थे, यहाँ चोरी होती है, काला बाजारी भी चलती रहती है। मनुष्य जहाँ भी होता है, वह अपने दुराचारों के साथ ही होता है। इस दृष्टि से स्वर्गा–घाट की भी अपनी छोटी–मोटी खराबियाँ हो सकती थीं। पर यह तो खुले दिन में एक औरत के इस तरह खो जाने की घटना थी मानो हवा ने उसे निगल लिया हो। पुलिस ने एडोल्फ से प्रार्थी भाव से कहा इस बात को अपने पास गुप्त रखें। उससे इसलिए ऐसा कहा जा रहा है क्योंकि स्वर्गा–घाट का अपना यशस्वी नाम है। उन्हें सुनने पर एडोल्फ को निश्चित ही बहुत आशा बंधी। वह पुलिस स्टेशन से बाहर निकला तो समरत उसके सामने था। उस ने सहायता करने का वचन दिया है तो पूरी निष्ठा से अपना कहा निभाएगा। एडोल्फ न जानता था कि वह जैसे उसे अपनी बातों में फँसाने वाला महान जादूगर था। वह अपने संकट की वजह से फँसता ही जाता। कहा भी तो जाता है

कि डूबते के लिए तिनके का सहारा बहुत होता है। माही जब तक न मिले, एडोल्फ को अब तो यहीं रहना पड़ता। उस ने समरत को अपना मोबाइल नंबर दिया और उसका लिया। समरत स्वयं आशंकित तो होता फोन नंबर की इस लेन–देन में खतरा है, लेकिन ऐसे खेलों में माहिर होने से वह जानता था कि कैसे इस का निबटारा कर लेगा।

पुलिस के भरोसे पर रह जाने वाले एडोल्फ के लिए दूसरा कोई भरोसा हो भी नहीं सकता था। इस छोटी सी जगह में एक औरत का इस तरह खो जाना एक रहस्य जैसा था तो यह रहस्य और गहराता चला जा रहा था। एडोल्फ ने कहा था कि उसकी औरत यहीं बगल की दुकान में गई थी पर वह कह नहीं पाया था किस दुकान में गई थी, तब तो पुलिस किसी एक दुकानदार की गिरेबान पर हाथ रख नहीं पाएगी। पुलिस को नहीं लगता कि माही की हत्या की हुई है और लाश को कहीं दफनाया गया है। यदि कोई लाश को स्वर्गा नदी में फेंकने जाए तो यह असंभव होता, क्योंकि घटना दिन में घटित हुई थी और उस वक्त यहाँ विशाल मेला लगा हुआ था। बात यह भी थी कि यहाँ लाश जमीन में दफनाने की प्रथा नहीं थी। यहाँ लाश जलायी जाती थी। पुलिस के पास सोच का एक ही आधार बचता था कि उस औरत को यहीं किसी दुकान के भीतर बंद कर के रखा गया है। पुलिस इसी बिना पर चौकन्नी थी।

दो दिन निकल गए, लेकिन अब तक माही के बारे में कुछ पता न चल पाया था। एडोल्फ जिस देश का आदमी था वहाँ अखबार वालों का बहुत जोर था। यहाँ भी यदि उसी तरह अखबार वाले सक्रिय होते और एडोल्फ की यह बात उन तक पहुँच जाए तो पता नहीं कैसा शोर मच जाए। एडोल्फ इतने संकट का मारा होकर भी पुलिस के इस विश्वास को ठेस पहुँचाने से अपने को बचा रहा था कि यह जगह भयंकर रूप से बदनाम हो जाएगी। अब तक माही के लापता होने की बात बाडर के केवल एक आदमी के कानों में पहुँची थी और वह था, नाविक समरत। एडोल्फ इस सोच से परेशान था कि कहीं ऐसा न हो कि समरत इस बात को सरेआम कर दे। तब तो स्वयं एडोल्फ की अपनी भावना आहत होगी व उसके कारण यह पवित्र स्थान कलंकित हो जाएगा। दूसरी बात यह होती कि पुलिस उस से कह सकेगी कि हमने तुम्हें इतना आश्वासन दिया, लेकिन तुम ने हमें न मानकर अपने मन से ऐसा किया।' पर सच यह था एडोल्फ व्यर्थ में समरत के बारे में सोच रहा था कि वह कुछ कर जाने वाला है। समरत कुछ नहीं करता। उसे केवल एडोल्फ को लूटना था और वह यह काम बेहद चुपके से कर जाने वाला था।

और एक दिन निकल जाने पर अब सही मायने में एडोल्फ को निराशा होने लगी। माही की उसे बहुत याद आती थी और वह रोता था। ऐसे पवित्र स्थान में आकर लुट जाना उसकी आत्मा में अब नश्तर बन कर चुभता था। एक विदेशी औरत से ऐसा कर जाने वाले तो एक ही दुकान के लोग होंगे। एडोल्फ को अब लगता था कि पूरा स्वर्गा–घाट उसका दोषी हो गया है। पर वह इस तौर की मर्यादा को अब भी स्वीकार करता। अपना मौन न तोड़ने वाला दुखी एडोल्फ स्वयं ही वैरागी हो गया। उसे न अपनी दाढ़ी बनाने की सुध रही और ना ही खान–पान की।

माही का सही नाम तो विक्टोरिया था। माही नाम उसे इस देश में मिला। एक बस स्टॉप पर एक साधु से दोनों को बड़ी परेशानी हो रही थी और वे समझ नहीं पा रहे थे कि उससे छुटकारा कैसे हो। कुछ घंटे पहले इस देश में उनका आना हुआ था। वे समझ न पाते कि साधु को कुछ कहने से लोगों पर कैसी प्रतिक्रिया होगी। वे साधुओं का देश जानकर आए थे और उन्हें नहीं लगता था कि अपनी धारणा बुरी है। वह साधु उनका किसी प्रकार का अहित नहीं कर रहा था, लेकिन उनकी तकलीफ यह थी कि वह उनका पीछा कर रहा था। वे होटल में खाने गए तो साधु होटल के द्वार के इर्द–गिर्द घूम रहा था। साधु यदि खाने के लिए उनके पीछे हो तो वे उसे खिला सकते थे पर अजीब लगता एक साधु से पूछें कि तुम्हें खाना चाहिए? दोनों एक मंदिर में चल रहे कीर्तन के समवेत स्वर से प्रभावित होकर रुक गए थे। तब साधु दूर खड़ा उन्हीं की ओर देख रहा था। वे समझ रहे थे कि साधु इसी तरह उनके पीछे लगा रहेगा और न जाने यह सिलसिला कब खत्म होगा। तो क्या, साधु उनसे कोई बात करना चाहता था? बातें करने से दोनों को हर्ज नहीं होता, लेकिन भाषा को लेकर समस्या उत्पन्न हो सकती थी। पर साधु ने दोनों का जब अंग्रेजी में अभिवादन किया और साधु के नाते स्वागतीय शब्दों से उन पर आशीर्वाद की वृष्टि की तो वे खुश हुए। एक समस्या का हल तो हुआ कि बात करना चाहें तो भाषा का व्यवधान न होगा। साधु ने उन से उन का नाम पूछा था तो बिना किसी प्रकार की हिचक में पड़े उन्होंने बताया था 'विक्टोरिया' और 'एडोल्फ'।

साधु ने कहा था –, 'विक्टोरिया' तो इंग्लैंड की शान है।

साधु ने रहस्य खोला था कि वह क्यों उन के पीछे–पीछे चला आ रहा था। उसकी एक बेटी थी जो अभी हाल में ज्वर लगने पर बच न सकी। पिता उस व्यथा को अपने सीने में दबाये बवंडर बना घूमा करता था। उसकी पत्नी बहुत पहले दिवंगत हो गई थी। पर अपनी ऐसी

पीड़ा को लिये उनके पीछे चल कर उन्हें परेशान करना उस का मंतव्य नहीं था। परेशान कर रहा है तो इसलिए क्योंकि विक्टोरिया का चेहरा उसकी बेटी के चेहरे से पूर्ण रूप से मेल खाता है। साधु साँवला था। उस की बेटी उसकी माँ पर गई थी। ऐसा घुमक्कड़ मुरझाया सा साधु तो वह अब हुआ है, इस से पहले वह हँसता–गाता एक जीवंत गृहस्थ हुआ करता था। उस की अच्छी नौकरी थी और वह स्वयं न जानता था कि कब अपने को नौकरी से अलगा लिया। साधु बनकर घूमने में थोड़ा चैन अनुभव होता है तो उसी में रह कर एक दिन मौत के मुँह में समा जाना है।

वह इंग्लैंड पढने गया था। वहीं एलीजा नाम की लड़की से प्यार हो जाने पर उससे शादी कर ली थी। एक विद्यार्थी पढाई के अंतर्गत शादी करे यह तो बड़ा अटपटा लगता था, लेकिन प्यार में सब चलता है। वह पढाई के बाद एलीजा को लेकर अपने देश आ गया था। सब ठीक चलते–चलते जीवन में तरह–तरह के संकट टूटते गए। एलीजा छोटी सी माही को छोड़ कर संसार से चली गई और बाप–बेटी किसी तरह जिये चल रहे थे कि बेटी के जाने की बारी आ गई।

उस की बेटी का नाम माही था।

साधु से दूर होते ही विक्टोरिया ने जैसे बहुत दूर के किसी सपने में खो कर एडोल्फ से कहा था — मुझे विक्टोरिया नाम बहुत भारी लगता है। इसमें इंग्लैंड की राजसी ठाठ भी तो है। मैं एक लेखक की बेटी हूँ। मैं वही रहना चाहती हूँ।

एडोल्फ ने उसके गंभीर दिखने पर गंभीरता से ही कहा था –'लेखक पिता ने इंग्लैंड की शान को ही सोचकर यह नाम रखा हो तो यह उनकी दूर की दृष्टि थी, उन की बेटी विक्टोरिया बने।'

–'पर मैं तो चित्रकार बन गई।'

–"तो भी इसमें शान है। तुम्हारे पिता आज होते तो कहते उनकी बेटी विक्टोरिया चित्रकारिता में शानदार है।'

एडोल्फ की व्याख्या उसे गरिमा प्रदान करने वाली हुई, इसकी उसे खुशी हो रही थी। वह बोली थी – मैं कुछ और सोच रही हूँ।"

–"क्या?"

— मैं सच कहती हूँ 'माही' नाम ने मुझे अपने में समा लिया। तब तो मैं माही हो जाना चाहती हूँ।

एडोल्फ ने उसे 'माही' नाम के प्रति इस तरह समर्पित देखकर पूरी आत्मीयता से कहा था –"तुम मेरी माही हुई। माही, माही और बस माही !

विक्टोरिया ने एडोल्फ के ओठों से जैसे माही ने शब्द की बौछार महसूस की थी। वह एडोल्फ की बाहों में झूल कर माही हो गई थी। अब एडोल्फ भूल गया था कि उसका नाम विक्टोरिया है। अपनी माही को खोने वाले साधु का दुख दोनों दूर तो नहीं कर सकते थे। वे इतना ही कर सकते थे कि अपने माही नाम को गाकर कहा कि होते हमारी श्रद्धांजलि स्वीकार करो, माही।'

समरत ने अब तक एडोल्फ को न लूटा तो इस का मतलब यह नहीं था कि उसने अपना इरादा परिवर्तित कर लिया हो। एडोल्फ अपनी माही के लिए स्वर्गाघाट में घूमता रहता था। वह खाली हाथ रहता था जिसका मतलब होता था कि उसका वैभव होटल में पड़ा हुआ है। तब तो वह एडोल्फ को स्वर्गा नदी में ही अपना शिकार बना सकता था। नहीं एडोल्फ को ठगकर दो – चार दिन बाहर चलने के लिए कहे तो उसे खर्च को ध्यान में रखते हुए वैभव लेकर जाना होगा। वह रोज़ एडोल्फ से कहता रहता था 'चलो कुछ नौका – विहार कर आओ, मन थोड़ा हल्का होगा।' एडोल्फ का मन अब कहाँ हल्का होता? माही के न होने से वह तो शरीर, मन और आत्मा से निचुड़ गया था। कितनी उमंग से इस देश में खूब घूमने के खयाल से हवाई जहाज में दोनों यहाँ पहुँचे थे पर सब खाक में मिला। एक तरह से समरत का बहुत दबाव पड़ते जाने से एडोल्फ ने नौका–विहार करना मान लिया। माही के साथ उस की यह योजना नहीं थी। इस योजना में अकेला होने से उसने एक निर्णय लिया। स्वर्गा नदी अपने अंतिम छोर में जहाँ समुद्र में विलीन होती थी वहाँ बंदरगाह था। एडोल्फ वहीं से जहाज में अपने देश लौट जाता। उसने समरत से यह कहकर मोबाइल से अपना टिकट बुक करवा लिया। उसने कपड़े और दूसरे सामान यहाँ अनाथालय चलाने वाली एक संस्था को दे दिया। समरत ने यह करने में उसे पूरा सहयोग दिया। उसकी कृतज्ञता से प्रभावित एडोल्फ ने अपने हैंड बैग से पैसा निकाल कर उसे देना चाहा तो उस ने लिया नहीं। बस, देखा बैग में पैसा आराम से सो रहा था। उसे लगा, अपना भी भाग्य होता है। उसे जो करना था स्वर्गा नदी में करता। कौन जान पाता उसने एडोल्फ के साथ क्या किया?

दोनों के बीच तय हो चुका ही कि सूर्योदय होते ही नौका–विहार शुरु हो जाना चाहिए। एडोल्फ को सुबह नदी के तट पर आ जाना था। समरत को शंका तो थी कि माही की याद उसे जाने न देगी, लेकिन वह आया। समरत जल्दी से नौका चलाने लगा, क्योंकि अब उसकी आशंका थी कि एडोल्फ कह न पड़े माही नहीं है तो उसे जाना अनुचित लग रहा है। नौका दूर निकल गई। समरत अब जैसे विराट नदी की धार में अपने मन का मालिक स्वयं था। वह एडोल्फ को लग्गी से पीट कर उस का आधा प्राण सोख लेता और मरने के लिए पानी में ध केल देता। समरत को पता था कि इस नदी के किन–किन भागों में मगरमच्छ होते हैं। यात्री नौका से पानी में गिरे तो उस की जीवन लीला समाप्त हो जाए। या मगरमच्छ स्वयं पानी में उफान मचा कर सिर ऊपर करे तब यात्री की समझ में आए यह तो विशाल मगरमच्छ है। पर समरत के लिए एक दिक्कत यह हुई कि एडोल्फ ने अपना बस्ता अपने गले में उलझा रखा था। वह एडोल्फ को धकेल कर पानी में गिराये तो बस्ता उस के साथ में जाएगा। मगरमच्छ उसे लील पड़े तो यहाँ भी वही दिक्कत होगी कि उस के शरीर के साथ बस्ता भी मगरमच्छ के पेट में चला जाएगा।

समरत ने तीन–चार घंटे नौका चला ली थी। नदी के दोनों ओर भयावह रूप से घने जंगल थे। समरत कह रहा था कि हिंसक जानवरों से ये जंगल भरे हुए हैं। यह सच ही था। आदिवासियों की झोंपड़पट्टी दिखाई देने पर समरत ने इस की कहानी बाँची। ये लोग मानवी सभ्यता से बहुत परे हैं। नदी की मछलियों से इनकी भूख मिटती है। अपनी ओर से ये लोग कुछ बो लेते हैं जिससे इनके जीवन की बहुत सारी कमियों की भरपाई हो जाती है। कपड़ों के मामले में इन लोगों की परेशानी तो और अजीब है। इन लोगों के लिए साल में एक बार मानो कपड़ों की फसल उगती है। स्वर्गाघाट में नदी को देवी मान कर कपड़े समर्पित किये जाते हैं। सारे समर्पित कपड़े पानी में बहते आते हैं और ये लोग नदी से निकाल लेते हैं। पर ऐसा भी होता है कि कपड़े अकसर इन्हें मिलते नहीं हैं। बाढ़ के कारण ऐसा होता है। नदी में कीचड़ होने से कपड़े या तो अनदेखे हो कर बह जाते हैं या तेज धारा के कारण चिथड़े हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं। ऐसी हालत में इन्हें नंगे शरीर रहना पड़ता है। समरत का कहना था कि मर्द खासकर औरतों को नंगा देखने के लिए नौका–विहार के बहाने यहीं पहुँचते हैं। शरीर का व्यापार यहीं खूब चलता है। समरत ने छिपी–छिपी बातों से एडोल्फ से जानना चाहा यदि वह यहाँ रात बिताना चाहे तो कहे, वह नौका को किनारे ले चलेगा।

एडोल्फ ने अपनी ओर से कहा–"तुम्हें लगता है अपनी माही का दुख इस रूप में मैं भुला सकता हूँ?"

समरत ने शर्म में पड़कर सिर झुका लिया।

नौका शाम को स्वर्गा नदी के अंतिम छोर पर पहुँची। यहाँ स्वर्गा–घाट जैसा सांस्कृतिक मेला लगता नहीं था। यह व्यापार का शहर था। स्वर्गा नदी मानो यहाँ बहुत ऊपर से विशाल झरने में कूदकर आत्महत्या करती थी। स्वर्गा नदी का सारा पानी सागर में उतर कर खारा हो जाता था। दूर में जहाज़ों ने लंगर गिरा रखा था। विदेशों से व्यापार का खाता इन्हीं जहाज़ों से खुलता था। विदेशी पर्यटक जहाज़ों से आने पर यहीं शहर में पहला डेरा डालते थे और इसके बाद पूरे देश में वे यात्री बन कर घूमते थे। यहाँ टैक्सी, बस, रिक्शा आदि की भरपूर सुविधा थी। एडोल्फ ने लौटने के लिए टिकट तो ले ही लिया था। अब उसे जहाज की ओर बढ़ना था, लेकिन उसने समरत से कहा — मेरा मन नहीं मानता। एक चमत्कार हो जाए कि मेरी माही स्वर्गाघाट में ही हो ! मैं वहाँ लौटना चाहता हूँ। कितना अच्छा होगा वहाँ लौटने पर मुझे पुलिस से यही सुखद सूचना मिले?"

नाविक समरत अब भी उसका बस्ता छीन न पाया था और यह क्षोभ नाग बनकर उसके भीतर फूँफकार मारता था। अब तो एडोल्फ अपने देश जाने की सीमा पर आ खड़ा हुआ था और समरत को नहीं लगता था कि अब वह उसे लूट पाएगा है। तब तो उसने सही सोचा था उसका भी भाग्य होता है। एडोल्फ यहीं रात भर रहता और समरत कल सुबह उसे लेकर स्वर्गाघाट की वापसी के लिए अपनी नौका चला रहा होता। समरत की आखों में जैसे उसका सपना नाच रहा था कि कल एडोल्फ से भिड़ने के लिए स्वर्गा नदी की मौत की भाषा बोलने वाली तेज़ धार अपनी ही तो होगी।

एडोल्फ के लिए महंगा होटल देखना था। समरत अपनी ओर से यह कर देता। इसके बाद वह अपनी नौका की ओर लौट जाता। यही उसका जीवन था। वह यात्रियों को लेकर यहाँ आता था और शाम हो जाने पर रात को अपनी नौका में सो जाता था। पर एडोल्फ अब तो उसे अपना मित्र मानता था। वह मित्र समरत को सारी रात हवा–पानी में न छोड़कर अपने साथ रखता। बीस साल से अधिक स्वर्गा नदी में नौका चलाने वाले नाविक समरत को एक परदेशी के सौजन्य से पहली बार एक बढ़िया होटल में रहने का अवसर मिल रहा था। इसके साथ

उम्दा खाना भी तो जुड़ा होता। एडोल्फ के प्रति उस में अपनापन सा उमड़ आया और वह इस सोच से बहुत हद तक पसीज़ा कि यह वह आदमी है जिसने उसके देश में अपनी औरत को खोया है ! पर आंतरिक दुर्भावना ने उसे फिर से उसे उस के वास्तविक धरातल पर खड़ा कर दिया और उसे चोरी के अब तो और तमाम आसार नज़र आने लगे। एडोल्फ टॉयलेट जाता या उसे नहाना होता तो बस्ता छोड़ कर जाता। उसे नींद आती तो समरत बस्ता उठाकर भागने के लिए जाग रहा होता।

होटल देखकर कमरा बुक करा लिया गया। दूसरी मंजिल पर कमरा था। एडोल्फ ने कहा –"चाय लेते है, फिर इसके बाद कमरे में चलेंगे।"

दोनों ज्यों ही चाय के लिए एक मेज़ की ओर बढ़े कि एक महान अचरज की बेला आई ! माही अपने एडोल्फ की आँखों के सामने थी ! कहाँ बिछड़े और कहाँ मिले? हे विधाता, इस अचरज में किसी और का साझा न हो कर यह केवल हमारा अपना अचरज है!
एडोल्फ ने माही को समरत का परिचय दिया। माही ने उस से हाथ मिलाया। समरत ने पहली बार माही को देखा। उसे विश्वास कैसे हो पाता कि जिस माही के लिए एडोल्फ तड़प रहा था उसी माही से मुलाकात होगी। एडोल्फ को माही से जानने की जल्दी थी कि वह यहाँ कैसे? माही यह तो कहती, लेकिन एक गैर आदमी साथ में था। पर न एडोल्फ को समरत से परेशानी हुई और ना ही माही को। माही ने अपहृत किये जाने की उस विस्मयकारी घटना का खुलासा किया, वह जिस दुकान में कपड़ा खरीद रही थी, साईज की माप लेने के लिए उसे एक कमरे में भेजा गया था। उस कमरे में पीछे खुलने वाला दरवाज़ा था। माही शरीर के कपड़े उतार चुकी थी कि दो मर्द पीछे के उस दरवाजे से उसके सामने आ गए थे। शरीर पर कपड़ा न होने से माही समझ न पा रही थी कि क्या करे। उसकी गर्दन पर छुरी रखकर कहा गया था कि उसके पति को बंधक बनाकर एक घर में रखा गया है। माही ने उनकी बात न मानी तो वहीं उस के पति को खत्म कर दिया जाएगा। वे वहाँ से माही को निकाल कर कहीं और ले जाना चाहते थे। माही जाना न चाहती थी पर उन का कहना था कि वह अपने पति को मरा समझे। माही के दिमाग में एक ही बात थी कि जैसे भी हो सके, एडोल्फ को बचाना है। तब तो माही उन दोनों के लिए शोषण की गुड़िया होती गई। उसे दोनों आदमी गजब के तांत्रिक लगते थे। माही को लगता था कि अपना शरीर सुन्न हो रहा है, तब तो वे जो चाहे उस से कर सकते हैं। माही को वहाँ से बाहर निकाला गया तो स्वर्गाघाट का मेला सामने था। दोनों उससे दूरी बना कर चल रहे थे। माही को समझा दिया गया था कि एक शब्द भी कहे तो वह समझ न पाएगी कहाँ के उसके मर्द का शरीर शव में परिवर्तित होकर उसके सामने पड़ा होगा। माही को नौका में यहाँ लाकर इस होटल में शरीर के सौदे के लिए बेच दिया गया है।

माही के शारीरिक शोषण की इतनी घिनौनी घटना की एडोल्फ पर कोई विस्मयकारी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसे माही मिल गई, उस के चेहरे पर इस का संतोष मानो बेदाग चाँद की तरह खिला हुआ था। समरथ यह अद्भुत दृश्य देखने के बीच सोच रहा था कि ये दोनों उस देश के रहने वाले नहीं थे जहाँ सीता को तन की पवित्रता के लिए अग्नि–परीक्षा देनी पड़े।

बेची जा चुकी माही को वापस पाने के लिए एडोल्फ को पैसा देना पड़ता भी तो वह देता। समरत अब प्रबल आदमी बनकर बीच में पड़ा। उसने जाकर होटल के मालिक से हटकर बात की तो वह हाथ जोड़े दोनों के सामने आकर खड़ा हो गया। समरत का कहा होटल के मालिक के लिए अकाट्य हुआ। दोनों सारी रात यहीं रहते और सुबह जहाज से अपने देश लौट जाते। इतना अच्छा निदान हो जाने से एडोल्फ और माही बहुत खुश थे। समरत ने दोनों को सदा खुश रहने की शुभकामना दी और अपनी नौका की दिशा में चल दिया।

मॉरीशस

मैं वचन निभा न सकी

–डॉ. देवभरत सिरतन

शाम के छः बजे थे। कुछ ही पल हुए ध्रुव घर पहुँचा था। उसकी आहट सुनकर माँ उसकी ओर गई और देखते ही उसपर बरस पड़ी।

– तू कहाँ था? स्कूल से घर आने का यह समय है?

–माँ, मैं दोस्तों के साथ फुटबॉल खेल रहा था। उन्होंने कितनी बार खेलने को कहा। मैं मना न कर सका।

–कहाँ खेल रहा था?

–कॉलिज की बगल में जहाँ, नगरपालिका का जो फुट–रूम है।

–कौन–कौन था तुम्हारे साथ?

–मेरे साथ विहान, सचिन, रुबल आदि थे।

पता नहीं क्यों रुबल का नाम सुनते ही माँ आग–बबूला हो गई। गुस्साए स्वर में कहा ।

–मैंने तुझे कई बार कहा है कि तू इस रुबल से दूर ही रह पर तू है कि मानता ही नहीं।

माँ को पसन्द नहीं था कि ध्रुव रुबल की तरह बेकार में समय बर्बाद करे। माँ ने ध्रुव के पिता को उनकी आखरी साँस पर वचन दिया था कि वह ध्रुव को अच्छी शिक्षा देकर उसे बड़ा आदमी बनाएगी।

माँ को विधवा का पेंशन मिलता है, जो घर चलाने के लिए पर्याप्त नहीं है इसीलिए अपने घरेलु खर्चों को पाटने के लिए उसे रात–दिन कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। वह सुबह पड़ोस में किसी एक मकान में घरेलु काम करती है तो शाम को एक दूसरे मकान में।

ध्रुव एक मेहनती युवक है। वह अपनी कक्षा में सदा अव्वल स्थान पर आता है। क्या मजाल कि कोई अन्य छात्र उसे पछाड़ दे। अगले साल ध्रुव हायर स्कूल सर्टिफिकेट की परीक्षा में भाग लेगा। इस लक्ष्य को पूरा करने में वह रात–दिन एक कर रहा है। वह वक्त जाया न करे, इस वास्ते माँ उसकी करीबी से निगरानी करती है।

ध्रुव अपने कॉलिज के अध्यापक, श्री अजय नौबत से ट्यूशन लेता है, जहाँ उसकी मुलाकात दिशा से हुई। श्री अजय नौबत हमेशा ध्रुव के काम की प्रशंसा करते हैं, जिसका प्रभाव अनायास रूप से दिशा पर पड़ता गया, जिसके फलस्वरूप यह हुआ कि वह ध्रुव की बुद्धिमत्ता की पहचान करने लगी। दिशा ने ध्रुव की ओर पहला कदम बढ़ाया और उन दोनों के बीच नजदीकियाँ बढ़ने में देर नहीं लगी। एक दिन ऐसा आया जब दिशा ने ध्रुव के प्रति अपनी मुहब्बत का इज़हार कर ही दिया। इस तरह दोनों ट्यूशन में मिलते हैं।

जुलाई महीने का अन्त हो रहा था। हर साल की तरह इस साल भी अप्पर सिक्स के छात्रों की विदाई होनेवाली थी। इसकी तैयारी का कार्य–भार रुबल को सौंप दिया गया। लड़कों ने अपने करीब के दोस्तों और अपनी–अपनी प्रेमिकाओं को आमंत्रित किया। कक्षा के सभी छात्र इस दिन का इन्तजार बेसब्री से करने लगे, रुबल ने इसकी तैयारी में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। उसने कह रखा था कि वह किसी को भी शिकायत करने का मौका नहीं देगा और यह विदाई यादगार बनकर रह जायेगी।

आखिर वह दिन आ ही गया। कॉलिज के रेक्टर ने विदाई की इजाजत दे दी थी। दिन के लगभग बारह बजे एक–एक करके सभी लोग पहुँचे, दिशा और ध्रुव भी आ गये। कमरे को इस तरह सजाया गया था कि पता ही नहीं चल रहा था कि किसी कॉलिज का एक कमरा हो। अंग्रेजी और बॉलीवुड के गानों से मस्ती का समाँ बंध गया था जिसकी धुन पर कुछ छात्र नाच रहे थे। थोड़ी देर बाद विभिन्न किस्मों के पकवानों को परोसा गया। कुछ छात्र चुपके से बीयर भी ले आये थे। रुबल कुछ व्याकुल सा दिख रहा था, फिर एकाएक उसका फोन बजा। वह फोन पर बात करते हुए कमरे से बाहर निकला और कॉलिज के प्रांगण में खड़ी हुई एक लाल मर्सिडीज गाड़ी के पास गया। अंदर से किसी ने एक पैकेट उसे देकर कहा यह लो, अपने दोस्तों को खुश कर दो।'

रुबल वह पैकेट लेकर कमरे में आ गया। उसने इने–गिने कुछ लोगों को एक–एक गोली दी। ध्रुव को गोली देते हुए उसने कहा 'यह तुम्हारे लिए।'

"क्या है?" ध्रुव ने पूछा।

–"चख, बाद में बताना।"

गोली देकर रुबल चला गया,दिशा ने रुबल से पूछा।

"यह जाने बिना गोली कैसे ले सकते हो?"

'अरे नहीं क्या हो सकता है?'

ध्रुव ने वह गोली खा ली, कुछ ही पल बाद ध्रुव को अजीब सा नशा होने लगा। उसके सर में भारीपन सा आने लगा। उसे ठीक से पता नहीं हो

रहा था कि उसके साथ क्या हो रहा था। ध्रुव के सामने कभी भी ऐसी स्थिति पैदा नहीं हुई थी। ध्रुव ने दोस्तों से कहा–

"मैं घर जाना चाहता हूँ। मुझे अजीब सा नशा हो रहा है।"

ध्रुव को इस हालत में घर लाते देखकर माँ को तसल्ली नहीं हुई। उसने ध्रुव के दोस्तों से कई सवाल किए। ध्रुव ने कहा दृ मैं सोना चाहता हूँ, पर माँ को एक पल के लिए भी नींद नहीं आई। अगले दिन जब ध्रुव उठा तो नशा खत्म हो गया था। वह कॉलिज गया तो रुबल ने पूछा – "कैसा रहा, खुश हुआ कि नहीं?"

क्या चीज थी यार नशा सा लग रहा था?

रुबल ने ध्रुव को एक और गोली थमा दी और कहा –

"ध्रुव यह रख लो, शायद तुम्हें इसकी जरुरत पड़ेगी, कल मिलेंगे।"

ध्रुव ने बिना सोचे–समझे गोली खा ली। घर पहुँचते–पहुँचते, वह नशा एक बार फिर उस पर हावी हो गया।

माँ ने ध्रुव को झकझोर कर पूछा – ध्रुव,दो तीन दिनों से तू पढ़ाई नहीं कर रहा है?

क्या बात है, मुझे बता। ध्रुव ने कहा – माँ मुझे नींद सी आ रही है।

मैं बाद में बात करूँगा।

वह अपने कमरे में जाकर सो गया।

अगले दिन जब ध्रुव उठा तो उसके चेहरे से ताज़गी गायब हो गई थी। वह सही तरीके से बात भी नहीं कर पा रहा था। उसकी ज़ुबान लड़खड़ाने लगी थी।

वह बीच–बीच में बड़बड़ाने लगा – "मुझे रुबल से मिलना है। मुझे...मुझे बस वह गोली चाहिए।" माँ काम पर जा चुकी थी। ध्रुव कॉलिज चला गया। रुबल उसका इन्तजार कर रहा था। उसने कहा – "ध्रुव, गोली चाहिए तो खरीदना होगा।" ध्रुव के पास ट्यूशन के पैसे थे। उसने उसी पैसे से गोली खरीद ली, वह कक्षा में न जाकर घर वापस आ गया, गोली खाकर बिस्तर पर लेट गया।

माँ जब काम से घर आई तो ध्रुव को देखने गयी पर ध्रुव अलग ही दुनिया में था। वह माँ से कुछ बोलने की कोशिश कर रहा था पर माँ उसे समझ नहीं पा रही थी। माँ बहुत घबरा गई थी। उसने आव देखा न ताव, टैक्सी बुलाई और ध्रुव को अस्पताल ले गई। डॉक्टरों ने उसके साथ कई परीक्षण किये। माँ को तसल्ली नहीं हुई। उसने डॉक्टरों से जाकर पूछा – "मुझे इतना बता दीजिए कि मेरे बेटे को क्या बिमारी है"। एक डॉक्टर ने संकोच से कहा – "माताजी, आप के बेटे को 'ड्रग्स' की लत लग गई है। उसकी हालत नाजुक है"। यह सुनकर माँ के पाँव तले मानो ज़मीन खिसक गई। वह अवाक रह गई और अपने आप से कहा– "आखिर वही हुआ जिसका मुझे डर था"।

कॉलिज में यह बात हवा की तरह फैल गई। उसी दिन शाम को कुछ अध्यापक और ध्रुव के कुछ दोस्त ध्रुव को देखने अस्पताल गए। दिशा भी उसे देखने गई। ध्रुव को पता चल गया था कि वह ड्रग्स का शिकार हो चुका है। दिशा को देखते ही ध्रुव ने कहा – "तुम सही थी, मुझे वह गोली नहीं लेनी चाहिए थी"।

अगले दिन सुबह रेक्टर ने आसेंबली को सम्बोधित करते हुए ध्रुव के मामले का हवाला दिया और कहा– "दुख और शर्म की बात है कि हमारे कॉलिज में कुछ छात्र हैं, जो ड्रग्स का कारोबार कर रहे हैं। उनको पुलिस के हवाले किया जायेगा और सख़्त सज़ा दी जायेगी। ड्रग्स लेने का मतलब है मौत को बुलावा देना। तुम्हारे माता–पिता कितनी तपस्या करके तुम्हें पढ़ाते हैं और तरह–तरह के सपने बुनते हैं। तुम्हें इस बात का ख्याल रखना चाहिए"।

माँ ने ध्रुव को बचाने के लिए मंदिरों में जाकर कितनी मिन्नतें की। वह मन ही मन ध्रुव के पिता से माफी माँग रही थी कि वह अपना वचन निभा न सकी। ध्रुव की हालत गंभीर हो गई थी। उसने आँखें बन्द कर ली थीं।

एक सुबह की बात है जब माँ उसे देखने गई तब ध्रुव ने आँखें खोलीं और दर्द भरे स्वर में कहा,

–"माँ मुझे माफ कर दो!...मुझ से ... भारी गलती हो गई"।

–"तू ठीक हो जायेगा बेटा"।

–"माँ वादा कर... कि मेरे जाने के बाद... तुम आँसू नहीं बहाओगी"।

–"तुझे कुछ नहीं होगा"।

–"माँ बस तुम अपना ख्याल रखना। मैं जानता हूँ तुम्हारा सपना अधूरा रह गया। मुझे माफ कर दो माँ"।

यह कहकर ध्रुव ने हमेशा के लिए अपनी आँखें बन्द कर दीं। माँ अपने आप को कोसने लगी... मैं वचन निभा न सकी।

अमेरिका -

परछाइयों का जंगल

—श्रीमती देवी नागरानी

माँ को बड़ी मुश्किल से सहारा देकर बस में चढाया और फिर मैं चढी। बस धक्के के साथ आगे बढी तो माँ गिरते-गिरते बची। मैं भी उसे न संभाल पाई। एक दयावान वृद्ध ने अपने स्थान से उठकर उसे बैठने के लिए कहा और माँ एक आज्ञाकारी बालक की तरह सीट पर बैठ गई। मैंने टिकट ली और उसके साथ सटकर खड़ी हो गई। टैंकबंड बस स्टॉप पर उतरना था। कंडक्टर ने दो बार जोर से पुकारा 'टैंकबंड, टैंकबंड' पर मैं अतीत की स्मृतियों में खोई रही, जब इसी तरह सहारा देकर माँ ने मुझे पहले चढाया था और बाद में खुद चढी थी। बस चलने लगी पर फिर पाया कि कुछ छूट गया था। कुछ नहीं बहुत कुछ छूट गया था। पिताजी जो साथ-साथ आए थे, पीछे रह गए थे। हड़बड़ी में वे चढ़ नहीं पाये ! माँ का चेहरा जर्द, आँखें फटीं-फटीं, गुमसुम आलम में वह बड़बड़ाते हुए अचानक चिल्लाने लगी – 'अरे बस रोको, बस रोको, मुनिया के पिता पीछे रह गए हैं। अरे भाई, रोको। मुझे उतरने दो, वे पीछे रह गए हैं।' आवाज शोर में लुप्त सी हो गई और हवाओं से बातें करती बस टैंकबंड बस स्टॉप पर आकर ठहरी। माँ ने एक तरह से मुझे धक्का मारकर नीचे उतारा और खुद जैसे चलती बस से ही कूद पड़ी। पाँव जमीन पर टिक न पाए इसलिए वह औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ी, वहीं बस स्टॉप पर लोगों की भीड़ के बीच।

जैसे कोई तमाशा हो मदारी का! लोग चलते-चलते मुड़-मुड़कर तिरछे नयनों से उसकी ओर घूरने लगे। सोचते होंगे, यह कैसा पागलपन है कि बस अभी रुकी भी न थी कि वह कूद पड़ी। खैर _तब मैं 8 साल की थी और आज 18 की हूँ, पहले से अधिक समझ सकती हूँ। याद है, तब मैंने जमीन पर पड़ी माँ का हाथ थामा, और खींचते हुए उसे उठाने का लघु प्रयास किया। माँ सच में उठी और बस की विपरीत दिशा में लगभग दौड़ने लगी और उसका हाथ थामे हुए मैं उसी रफ्तार से साथ-साथ खींची चली जा रही थी। इतना तो मैं समझ ही पाई कि माँ पीछे छूट गए मेरे पिता को खोजना चाहती थी।

"माँ रुको तो, मुझे दर्द हो रहा है।" मेरी रुआंसी सी आवाज फिर से शोर के कोलाहल में खो गई।

"अरी चल, जल्दी चल...तेरे पिताजी न जाने कहाँ चले गए होंगे!"

"कहां जाएँगे माँ? कहीं नहीं जाएँगे, घर लौट जाएँगे।"

"अरी,अब चुप भी कर। बस, जल्दी चल। तू नहीं जानती!"

इसके आगे माँ कुछ न कह सकी। आज उस चुप्पी का अर्थ मेरी समझ में आ रहा है। जो तब नहीं जानती थी अब जानने लगी हूँ। तब आठ आज 18 की हूँ। दस सालों में अपनों का दर्द, उनकी भावनाएँ, उनकी खामोशी में बढते-उतरते लावे के उफान को खूब समझती हूँ। उनकी भावनाओं की हर आहट को दस्तक देते हुए महसूस करती हूँ। बडी होते-होते सच में बडी हो गई हूँ तभी तो माँ को एक बच्चे की तरह हाथ पकड कर पहले बस में चढाया और फिर खुद चढी।

'टैंकबंड, टैंकबंड,' कंडक्टर ने दो बार आवाज दी।

मैं हडबडाकर माँ का हाथ पकडकर उसे उतारने के पश्चात खुद उतरी और उसका हाथ थामे हुए ही बस में चढने और उतरने वाले लोगों की भीड़ से निकली। हाथ छोड़ने का खतरा मैं नहीं ले सकती थी, बिलकुल भी नहीं।

जिंदगी के उतार-चढाव भी ऊंट सी करवट बदलते, हिचकोले खाते हुए जीवन-नौका को आगे तक धकेलते रहते हैं, ठीक उसी तरह जैसे 10 साल पहले माँ मुझे लगभग धकेलते हुए अपने साथ घसीटते हुए, एक पागलपन की हद तक पिताजी को खोज रही थी। यह सच है, जब माँ ने कहा था "तू नहीं जानती" सच में सचमुच नहीं जानती थी कि पिताजी घर न जाकर कहीं और चले जाएँगे। इंसान का ठिकाना तो उसका घर होता है। क्या भूला-भटका, थका-हारा, भूखा-प्यासा इंसान किसी राह पर गुमराह हो जाता है तो इस तरह भी खो जाता है जैसे मेरे पिताजी खो गए थे उस दिन?

घर के पास आकर माँ ने कुंडी खोली। भीतर झाँका, पिताजी वहां नहीं थे। होते भी कैसे? कुंडी बाहर से बंद थी, माँ ने खोली थी!

"हे भगवान! कहाँ गए होंगे? अब मैं कहाँ जाऊँ किससे पूछूँ? उन्हें तो अपनी खबर नहीं, होती तो घर न लौट आते।" और माँ

बिलख–बिलखकर अपना माथा पीटने लगी। मेरी मासूमियत शायद इस दर्द को, उसके अर्थ को न जानते हुए खुद भी सुबक–सुबककर रोने लगी। आज जानती हूँ, माँ ने वह सफर किस तरह अकेले काटा होगा, किस तरह तन्हा–तन्हा उस दर्द के आघात को सहा होगा, जिसने कतरा–कतरा उसे रुलाया। मैंने बस साथ दिया। आज भी वह घर के किसी कोने में चुपचाप बैठे–बैठे न जाने बेरहम जिंदगी के कई किस्सों का गणित करती रहती है। देखकर मेरा रोम–रोम सिहर उठता है।

क्या बेबस आदमी कुछ भी न कर पाने की स्थिति में ऐसा कुछ भी कर बैठता है या ऐसा हो जाता है अपने आप। बदन काँप गया... याद मात्र से। सिहरन तो तब भी हुई थी, जब माँ ने मेरा हाथ झटककर खुद को छुड़ाया और एक क्रंदन के साथ भीड़ को चीरती हुई पिताजी की लाश पर जा कर झुकी। झुकी क्या, उनपर गिर पड़ी। उनके पीछे–पीछे जाते मैंने आँखों के सामने देखा वह नजारा, खून से सने हुए फर्श पर पड़े पिताजी को। तब नहीं जाना, अब जानती हूँ। किसी मोटर कार ने उन्हें टक्कर मारी जिससे वे खुद को न संभाल पाये और गिर पड़े। बस, क्षण भर में जिंदगी की हद पार करके मौत की हद में जा पहुँचे। कितनी महीन रेखा विभाजन करती है जिंदगी और मौत को!

जो होना था वह हुआ। पर बाद में जो हुआ वह नहीं होना चाहिए था। माँ जब भी मुझे अपने सामने पाती, पिता की याद में तिल तिल जीते तिल–तिल मरते, उनकी कही बातों को दोहराती जो दर्द बनकर उनके हृदय में समा गई थीं। पिताजी को मानसिक रोग ने ग्रस्त कर लिया था और वे धीरे–धीरे बहुत कुछ भूलते जा रहे थे... अपने होने की अवस्था को भी। तब मैं 2 साल की थी, ऐसा माँ ने बताया। और उस हालत में वह न मुझे अकेली छोड़ सकती थी न पिताजी को। सदा घर की कुंडी भीतर से बंद कर लेती ताकि वे कभी भूल से भी दरवाजा खोलकर बाहर न निकल जाएँ। कभी पिताजी को लेकर डॉक्टर के पास जाना होता तो मुझे भी साथ ले लेती, क्योंकि मैं छोटी थी। आफताब मेरा बड़ा भाई था, आज होता तो 22 साल का नौजवान होता। मुझसे 4 साल बड़ा था। 'वह होता तो यह सब कुछ न होता, खुदा की उसकी ज़्यादा जरूरत रही होगी, तभी तो!' ऐसा माँ बार–बार कहती रहती है। आजकल वह हर बात बार–बार दोहराती है और पुरानी यादों की पोटलियों से भूली बिसरी बातें उधेड़ कर मुझे सुनाती रहती है। अब तो लगता है जब मैं उसके पास नहीं भी होती हूँ, तब भी वह बस बतियाती रहती है, फिर चाहे कोई सुन रहा हो या न सुन रहा हो। मेरे पास भी कोई चारा नहीं। उसका भ्रम बनाए रखने की खातिर शायद उसके दर्द भरे फफोलों को तोड़ कर उन्हें कतरा–कतरा बहने पर मजबूर करते हुए पूछ लेती हूँ– माँ, पिताजी उस दिन तुमसे क्यों खफा हो गए और नाराज होकर बरस पड़े? क्यों क्यों...?

ऐसे में माँ एक लंबी सांस लेकर मुझे शुरु से आखिर तक वह किस्सा सुनाते हुए कहती 'अरे मुन्नी, तुझे पता है उस दिन तेरे पिता नहाने के लिए गुसलखाने गए, हाथ में अंगोछा और पैजामा लिए, जिसका नाड़ा लटक रहा था। कुछ देर बाद बाथरुम से गुस्से भरी आवाजें आने पर मैं दौड़ती हुई वहां पहुंची। वे आईने में अपनी परछाईं से लड़ रहे थे और लटकते हुए नाड़े को अपनी ओर खींच रहे थे। वही क्रिया परछाईं भी कर रही थी।'

"ऐसा क्या हुआ था माँ?" मैंने माँ के दिल को फिर टटोला।

"मुन्नी, पता है उन्हें गुस्सा किस बात पर आ रहा था?"

"नहीं माँ!" मैं बस इतना ही कह पाई। दर्द को निगलना इतना मुश्किल है तो पचा पाना कितना असहनीय होगा? यही सोचती रही।

"अरी पगली, पागलपन की भी हद होती है। वे सोच रहे थे कि घर में कोई चोर घुस आया है और उनका अंगोछा और पाजामा छीनकर ले जाना चाहता है। वे उन्हें अपनी ओर खींच रहे थे और परछाईं अपनी ओर!'

"फिर क्या हुआ माँ?" मैंने अपनी रुलाई रोकते हुए ऐसे पूछा जैसे किसी कहानी का अंत जानने के लिए उत्तेजित थी।

"मैंने यह देखकर तुरंत गुसलखाने की लाइट बंद कर दी और उनका हाथ थामकर कमरे तक ले आई, और सांत्वना देते हुए मैंने उनसे कहा कि अब चोर भाग गया है, वह फिर कभी नहीं आएगा।' माँ ने अपनी आँखें दुपट्टे के छोर से पोंछते हुए उस किस्से के अंजाम तक सब कुछ सुनाया।

"कभी नहीं आएगा, मुझे तंग भी नहीं करेगा?" ये पिताजी के शब्द थे या उनका डर था, यह न आज तक माँ समझ पाई न मुझे समझा पाई है।

"नहीं कभी नहीं! अब आप लेटें और सोने की कोशिश करें।"

ऐसी हालत में माँ का तन्हा संघर्ष मेरे जीवन का हिस्सा बनता गया। ऐसे कई और वारदात हैं जिनको आज याद करते हुए मेरे रोंगटे भी खड़े हो जाते हैं। क्या आदमी इस कदर अपनी याददाश्त के साथ अपनी पहचान खो देता है कि आभास होने लगता है कि 'हम क्या किसी कागज़ की नाव में सवार हैं? क्या उसमें भी छेद है जहाँ से दर्द रिसता हुआ मन के भीतर घुस जाता है? क्या कोई साधन या तंत्र नहीं, या कोई ऐसा बाँध बाँधा जाए ताकि दर्द कतरा-कतरा बहकर मन के कलश को खाली कर दे। यह कैसी विडंबना है कि आदमी जिंदा हो पर जीता न हो, मरने वाले की याद में खुद को बेखबरी के आलम तक ले आए? ऐसी जिंदगी पिता के बाद मैंने माँ को जीते हुए देखा और साथ रहते-रहते खुद भोगी।

एक दिन माँ ने कुछ रेज़गी अपनी छोटी सी थैली से निकाल कर खटिया पर फैला दी और उन्हें गिन-गिन कर एक-एक उन्हें वापस उसी थैली में डालते हुए कहने लगी। "ये पैसे मेरे हैं, मैंने घर के खर्चे से पाई-पाई करके बचाए हैं, दुख-सुख के वक्त के लिए। मैंने चोरी नहीं की, मैं चोर नहीं हूँ, मैं चोर नहीं हूँ।" मैं निःशब्दता में गुम... क्या कहूँ यह सुनने के बाद! इतना सब कुछ घट जाता है इंसान की जिंदगी में कि उसको भूलने की कोशिश में जीवन टुकड़ों में बंट जाता है। काश! ऐसा कोई यंत्र होता जो अतीत को फिर से यादों में आने से रोक लेता ताकि अतीत का वह हिस्सा परछाईं बनकर आज इस तरह ग्रहण न लगाता एक रविवार को मैंने बड़े प्यार से माँ का मनपसंद खाना बनाया। कुछ गरम उसे अपने हाथ से खिलाए और फिर उसके हाथ दाल-भात लेने के लिए जैसे ही बढ़े, मैंने अपना हाथ खिसका लिया। कुछ समय वह बेहोशी की हालत में ग्रास दर ग्रास खाती रही और आखिर उठते हुए थाली, चमच लेकर रसोईघर की बजाय स्नानघर की हौदी में रख आई। मैं देखकर हैरान हुई कि इस हद तक माँ अपना आप भूल चुकी है। फिर आवाज देते हुए अपने जवाबदार होने का ऐलान करते हुए कहा-"मुन्नी, मैंने खाना खा लिया है और बर्तन रसोईघर में रख दिए हैं। बहुत नींद आ रही है...सोती हूँ।"

जो अपना आप खो बैठे, उसे क्या पता रहेगा कि कौन सी हौदी किस काम के लिए है? यह यादों का कैसा जंगल है, जिसकी भूल-भुलैया में माँ पिताजी का पीछा करते-करते अपना आपा खो बैठी, खुद को खो बैठी, पर उन्हें खोज न पाई?

कभी वह पिताजी की एक टोपी, जो उसके पास अब भी बची थी, सर पर ओढ़ लेती और अपने दोनों हाथ उसपर मज़बूती से धार लेती और कहती-"नहीं, यह उन्होंने मुझे दी थी, मैं अपने साथ ले जाऊँगी। तुम्हारी नहीं है, मेरी अपनी है।"

अपने और पराए के बीच की दीवार इतनी गहन हो सकती है, सोच में, शब्दों में... इस गुत्थी को मैं आज तक सुलझा नहीं पायी हूँ। मैं उनकी अपनी, पराई कैसे हो सकती हूँ और वह जो साथ छोड़ गया वह अब भी अपना है! बस, आज इसी एक चक्रव्यूह में जी रही हूँ। भेदने की कोशिश करूँ, इतनी हिम्मत नहीं मुझमें। बस इस दौर के हर एक क्षण की साक्षी होकर मैं अपने आनेवाले कल से आज ही जुड़ रही हूँ। माँ अपनी व्यथा-गाथा सुनाते-सुनाते मेरे भीतर की न जाने किन सन्नाटों की खलाओं को भर दिया कि आज तक मैं उस कोहरे से बाहर नहीं निकल पाई हूँ। इस कदर कि अब अपना वजूद भी अपना नहीं लगता। जैसे मैं जी रही हूँ परछाइयों के बीच, भाग रही हूँ उन यादों की परछाइयों के जंगल में!

अजीब विडंबना है!

माँ पिताजी का सहारा बनना चाहती थी। बीच सफ़र में साथ छूट गया कुछ यूं जैसे वजूद का कोई हिस्सा काट कर फेंका गया हो। बस, घर का एक कोना खाली हो गया। मैं माँ का सहारा बनकर भी न बन पाई, यह मेरी बेकसी है। माँ का सहारा बनते-बनते लग रहा है... माँ नहीं मैं बेसहारा व असहाय हो गई हूँ!

यू.एस.ए.

ऑस्ट्रेलिया -

ग्यारहवें घर से वापस

– श्री विवेक आसरी

ऊपर से ही खुला दरवाजा नजर आ गया था। कोई और दिन होता तो चौंक जाता लेकिन शनिवार था तो दिव्या ही होगी। उसी के पास कमरे की दूसरी चाबी रहती है। शनिवार को ऑफिस के बाद वह अक्सर मेरे कमरे में चली आती है और संडे हम साथ बिताते हैं। इसलिए मैं निश्चिंत सा कमरे की तरफ़ बढ़ने लगा। कमरा अभी सिर्फ नजर आया था। उस तक पहुँचना इतना आसान नहीं था। पहाड़ी रास्ते इसीलिए मुझे अजीब लगते हैं। उन पर चलते हुए मंज़िल सामने, बहुत करीब नज़र आने लगती है और फिर अचानक आप एकदम उलटी दिशा में बढ़ने लगते हैं। फिर एक मोड़ मुड़ो तो मंज़िल सामने...लेकिन करीब नहीं। जब मैं नया–नया यहाँ आया था, तो इस बात पर बहुत झुंझलाता था। कई बार झुंझलाकर ठहर जाता। कमरे की ओर खड़ा देखता रहता और सोचता रहता कि पहाड़ी उतरकर सीधे ही कमरे तक पहुँच सकता हूँ या नहीं? कमरा सामने ही तो था। मुश्किल से 30–40 फीट उतरना है। इसके लिए एक किलोमीटर लंबे चार चक्कर क्यों लगाए जाएँ? लेकिन कभी उतरने की कोशिश नहीं की। जब भी उतरने के लिए पहाड़ी की ढलान की ओर देखता, गहराई मुझे पीछे धकेल देती और मैं चुपचाप मोड़ की तरफ़ बढ़ जाता। बाद में दिव्या के साथ आते–आते मेरी झुंझलाहट काफी कम हो गई। यूँ भी कह सकते हैं कि उसे देख–देखकर मैंने इन रास्तों से उतरना सीखा। उसे इन रास्तों से जाने क्या लगाव था? जब मैं उसके साथ चल रहा होता तो कई बार हैरान होता था। ढलान के बावजूद कभी उसके कदमों की रफ़्तार बढ़ती नहीं थी। सामने से कोई आ भी रहा होता तो वह कुछ इस तरह से उन लोगों के बीच से निकलती कि रफ़्तार पर रत्ती भर भी फ़र्क नहीं पड़ता। ढलान तेज होते ही मैं अक्सर अपने कदमों पर नियंत्रण खो बैठता और वे रफ़्तार को अपनी मर्जी से बढ़ा देते थे। तब वे मुझे गाड़ी में लगे घोड़े से नज़र आते, जिन्हें हमेशा पता होता है कि लगाम मालिक के हाथ में है या नहीं। अगर मालिक लगाम को छोड़कर बीड़ी सुलगाने लगे तो घोड़ा रफ़्तार को अपने हिसाब से कम या ज़्यादा कर लेता। अपने कदमों की इस मनमर्ज़ी से मुझे दिक्कत नहीं थी। एक यही जगह है जहाँ उन्हें आजादी मिलती है, तो मिले। लेकिन दिव्या के कदमों से मुझे ईर्ष्या जरूर होती थी। उन पर दिव्या का इतना जबरदस्त नियंत्रण कैसे है? अपने कदमों का बढ़ाते हुए मैं जब आगे निकल जाता तो समतल मोड़ आते ही रुक जाता और मुड़कर दिव्या को देखने लगता। वह पीछे उसी रफ़्तार से आ रही होती। ढलान से उतरते वक्त उसका शरीर हल्का सा झुक जाता था। तब मैं यूँ मान लेता कि वह मेरी ओर झुक रही है। मैं इससे आगे कुछ भी सोच पाता तब तक वह मोड़ पर पहुँच जाती और उसकी खिलखिलाहट मेरे ख़्यालों के शोर को दबा देती।

तीसरे मोड़ पर रुका तो इन ख़्यालों का कारवाँ भी रुक गया। कमरा सामने नज़र आ रहा था। दरवाज़ा, जो कुछ देर पहले खुला था, अब बंद कर दिया गया था। दिव्या ने अंदर से बंद कर लिया होगा। जब उसे चाय बनाने के लिए किचन में जाना होता तो वह दरवाज़ा बंद कर लेती थी, क्योंकि किचन दरवाज़े के बिल्कुल सामने पड़ती थी। दरवाज़ा खुला होता तो आती–जाती नज़रें किचन में चली आतीं और पड़ताल करतीं कि क्या पक रहा है। किचन के भीतर पकती चीजों की बजाय उनकी दिलचस्पी कमरे में 'पकती' चीजों में ज़्यादा होती थी।

दिव्या को मेरे आने के वक्त का इतना सही अंदाज़ा था कि जब मैं कमरे में पहुँचता, चाय उबल रही होती थी और जब तक मैं हाथ–पाँव धोकर कपड़े बदलता, चाय के साथ दिव्या बेड पर बैठ चुकी होती। मुझे लगता कदमों की तरह उसका हर चीज पर नियंत्रण है। दिव्या के नियंत्रण का यह विचार आते ही मैं इस तरह डरकर चौंका जैसे किसी शरारती बच्चे ने ठीक मेरे सामने बम फोड़ दिया हो और धमाका मेरे कान के ठीक पास हुआ हो। यह ख्याल तो मुझे खुला दरवाजा देखते ही आना चाहिए था। कुछ पल के लिए मेरी सारी इंद्रियाँ सुन्न हो गईं। उस हालत से बाहर आया तो उस रात का एक एक पल मेरे सामने बर्फ के फाहों की तरह गिरने लगा। अचानक हुए वक्त के इस हिमपात ने मुझे घबराहट से भर दिया। मैं किसी और विचार की पनाह खोजने लगा। मैं उन पलों को याद करने से भी बचना चाहता था। मैंने ध्यान दिया कि आखिरी मोड़ पर खड़ा था और अब कोई और मोड़ नहीं आना था। उलटी दिशा की यात्रा खत्म हो चुकी थी। यहाँ से आखिरी बार कमरे की ओर बढ़ना था। उस रात की याद से बचने के लिए मैं रास्ते के बारे में सोचने लगा। लेकिन रास्ता इतना छोटा था कि बहुत ज़्यादा सोच पाता, इससे पहले ही मैं दरवाज़े के सामने खड़ा था। यूँ लगा कि अचानक दरवाज़ा खुद मेरे सामने आ खड़ा हुआ है। अपने ही कमरे के दरवाजे से मुझे डर लगने लगा था। मुझे लगा था कि मैंने दरवाज़ा खटखटाया तो इसकी बड़ी–बड़ी बाहें उग आएँगी और मुझे भींच लेंगी। दरवाजे के बाहुपाश में होने का ख़याल मुझे अँधेरे तक ले गया। यह अँधेरा उसी रात जैसा लगा। अँधेरे के उस तरफ दिव्या खड़ी थी। अपने आप को छिपाती सी...कह रही थी...क्या कर रहे हो...क्या हो गया है तुम्हें...बिहेव योरसेल्फ। इस ख़याल से ही मैं काँप उठा। कंपकपाहट इतनी हुई जैसे मुझे कोई झिंझोड़ रहा है।

यह सच था। यह वर्तमान था। दिव्या सच में मुझे झिंझोड़ रही थी। दरवाज़ा कब खुला, दिव्या कब आई, उसने मुझे कितना झिंझोड़ा– कुछ भी याद नहीं आ रहा था। मैं जागा, तब तक वह अंदर जा चुकी थी। मुझे उसकी आँखों में नहीं झाँकना पड़ा, इस बात ने मुझे राहत की चादर ओढ़ा दी थी। अपने मन के डर को हम हमेशा अँधेरे कोनों में छिपाए रखना चाहते हैं। धीरे–धीरे डर का अहसास डर से ज़्यादा बड़ा हो जाता है और हम उसका सामना करने की शक्ति खो बैठते हैं। हालाँकि यह बस तब तक होता है, जब तक उस डर से सामना नहीं होता। लेकिन सामना होने तक की यह यात्रा बेहद डरावनी हो सकती है और कभी–कभी अनंत भी।

हर चीज़ पर दिव्या का नियंत्रण बरकरार था। मेरे और दिव्या के बीच में चाय की प्लेट उसी वक्त पहुँची, जब उसे पहुँचना था। उसने उठाकर कप मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने अब तक भी उसकी ओर देखा नहीं था। क्या वह मेरी ओर देख रही होगी? हम करीब 15 दिन बाद मिल रहे थे। दो साल में पहली बार ऐसे 15 दिन गुज़रे, जब हमें एक–दूसरे के बारे में कोई खबर नहीं रही थी।

"मैं घर गई थी।" दिव्या के इन शब्दों ने 15 दिन से जमा हो गए तनाव को बुहारकर थोड़ा सा परे कर दिया।

"अचानक? सब ठीक–ठाक है?" उस रात की घटना के बाद ये सवाल बेहद बेवकूफाना थे। लेकिन तब मैं नज़र भी नहीं आना चाहता था। अपनी बेवकूफी के ज़रिए मैं उस रात वक्त की खाई में धकेल देना चाहता था। लेकिन क्या गुज़रे वक्त की खाई इतनी गहरी होती है कि उसमें गिरी चीज़ें फिर कभी सामने नहीं आतीं? काश ऐसा होता कि हम अपना हर वे पल उस खाई में हमेशा के लिए धकेल पाते, जिससे हम छुटकारा चाहते थे।

दिव्या ने जवाब नहीं दिया। मैंने उसकी ओर देखा, उस शाम पहली बार। वह दीवार से पीठ लगाए बैठी थी। उसकी नज़रें कमरे में नहीं थीं। वे खिड़की से बाहर टहल रही थीं। नहीं, टहलना सही शब्द नहीं होगा। वे तो एक ही दिशा में बढ़ी चली जा रही थीं। दिशाहीन सी। अचानक दिव्या उठी और टी.वी. के ऊपर रखा अपना पर्स ले आई। उसने उसमें से एक लिफाफा निकाला। कागज़ का यह लिफाफा ज़रूर कभी सफेद रहा होगा। लेकिन अब इस पर वक्त की पीली परत इस कदर जम चुकी थी कि प्रकाश के रंगों का कोई मिश्रण इसे सफेद नहीं कहलवा सकता था। दिव्या ने लिफाफा मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने पकड़ा, एक बार उलट–पलट कर देखा। अजीब सा रहस्य इस लिफाफे पर मढ़ा हुआ था। रहस्य शब्द में जितना रोमांच है, उतना ही हिस्सा डर का भी है। उसी डर के साथ मैंने धीरे–धीरे लिफाफा खोला। यूं लग रहा था कि यह बूढ़ा लिफाफा ज़रा सी भी तेज़ी सहन नहीं कर पाएगा। लिफाफे के अंदर एक फोटो था और एक कागज का टुकड़ा। पोस्टकार्ड साइज फोटो के पीछे यह कागज का टुकड़ा किसी से छिपकर बैठा सा नज़र आया। चार तहों में सोया पड़ा यह मरणासन्न कागज खत होने का अहसास दे रहा था। मैंने पहले फोटो को पलटा। ब्लैक ऐंड व्हाइट। 70 के दशक में कभी लिया गया होगा। उसमें एक लड़की खड़ी थी, पेड़ की एक टहनी पकड़े। मेरा पहला ध्यान उसकी नाक में लगी उस नथ पर गया जो ज़रूरत से ज़्यादा ही बड़ी थी। मुझे वह बिल्कुल पसंद नहीं आई। फिर नज़र चेहरे पर पड़ी, तो मैंने नथ को माफ कर दिया क्योंकि उसके होते हुए भी चेहरा बेहद खूबसूरत लग रहा था। कुछ देर तक उसकी खूबसूरती को निहारते रहने के बाद अचानक मुझे ध्यान आया कि दिव्या भी वहीं थी। वह अब भी खिड़की से बाहर खड़ी अपनी नज़र से बातें कर रही थी लेकिन मैं जानता था कि उसका ध्यान मेरी ओर ही था। मेरी नज़रों ने खुद–ब–खुद कुछ सवाल उसकी ओर उछाल दिए।

"मेरी माँ है।" उसने मेरी तरफ देखे बिना कहा। ये तीन शब्द मेरे ऊपर न्यूज चैनल की ब्रेकिंग न्यूज जैसे पड़े। मैंने फौरन फोटो को दोबारा बेहद गौर से देखा। यह दिव्या की माँ कैसे हो सकती हैं? मैं उनसे मिला हूँ। कई बार मिला हूँ। उनके साथ बातें की हैं, खाना खाया है। वह तो 25 साल पहले ऐसी नहीं हो सकती थीं। शक्ल–ओ–सूरत तो शायद बदल भी जाए, लेकिन कद...मैंने फिर से दिव्या की ओर देखा। इस बार मेरी निगाहें चौंकी हुई थीं...और परेशान भी। अब तक मुझे लग रहा था कि दिव्या के चेहरे पर यह खामोशी उस रात से ही बची हुई है, लेकिन नहीं। मसला कुछ और था। हर वक्त खिलखिलाती रहनेवाली उसकी आँखें भी आज चुप थीं। उनमें मटमैला सा कुछ तैर रहा था जिसे ध्यान से देखा तो वह उदासी जैसी नज़र आई। एक बार दिव्या को छूते हुए मुझे डर तो लगा, लेकिन मैंने हिम्मत करके हाथ उठाया और उसका चेहरा अपनी ओर घुमा लिया। दिव्या की लाख कोशिशों के बावजूद एक बूंद उसे दगा दे गई। दो साल में पहली बार मैंने बर्फ से सफेद गाल पर पानी की एक बूंद देखी।

"बात क्या है दिव्या?" अब मेरे शब्दों में कोई डर नहीं था क्योंकि अब उस रात की बात नहीं हो रही थी।

"मेरी माँ मेरी असली माँ नहीं हैं। यह औरत मेरी असली माँ है। जब मैं एक साल की थी, तभी मुझे और पापा को छोड़ गई थी। फिर मेरे पापा ने दूसरी शादी कर ली। इस बार घर गई तो पुरानी किताबों के बीच यह लिफाफा मिला। पापा से पूछा तो उन्होंने सब बताया। लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि माँ हमें क्यों छोड़ गई थी। शायद उन्हें भी मालूम नहीं था।" दिव्या ने पूरी बात कह डाली और नज़रें वापस खिड़की की ओर घुमा लीं। शायद वह किसी तरह के सवाल–जवाब नहीं चाहती थी। उसने ताज़ा ज़ख्म को तुप्पी के दुपट्टे से ढक रखा था और वह नहीं

चाहती थी कि मेरे सवालों की हवा बार-बार उस जख्म को कुरेदे।

मैं कुछ देर हैरान-सा उसकी ओर देखता रहा। फिर तस्वीर को उलट-पलटकर देखने लगा। उसके पीछे एक तारीख और कुछ अक्षर लिखे हुए थे। अक्षरों को ध्यान से देखा तो हिमालय फोटो स्टूडियो समझ में आया। कोई तारीख थी, लेकिन इतनी पुरानी थी कि शायद अपने होने के मायने खो चुकी थी। फिर मेरा ध्यान उस खतनुमा कागज़ की ओर गया। मैंने बहुत ही ध्यान से उसे खोला मानो सदियों पुराना कोई बेशकीमती ताम्रपत्र मेरे हाथ में हो। वहीं एक पता लिखा हुआ था। किसी कस्बे का पता था। मैंने उस कस्बे का नाम भी नहीं सुना था।

मैं दिव्या की ओर देखना चाहता था। मेरे अंदर कई सवाल पैदा होकर इतने बड़े हो गए थे कि उन्हें उसी वक्त जन्म दे दिया जाना चाहिए था। मैंने उनके जन्म के लिए दिव्या की सहमति की खातिर उसकी ओर देखा। उसने मेरी ओर नहीं देखा। कुलबुलाते सवाल मुरझा गए। मैं थोड़ा पीछे सरका और दीवार से टेक लगा ली। रजाई ओढ़ने के लिए मैंने टांगें फैलाईं तो दिव्या जिस तरह बैठी थी, यूं की यूं लेट गई और अपना सिर मेरी गोद में रख दिया। मैंने उसके ऊपर रजाई ओढ़ा दी। उसने घुटने और कस लिए और अपने दोनों हाथों को घुटनों के बीच दबा लिया। मुझे वह खुद के भीतर सिमटती सी नजर आई। छिपने की सबसे सुरक्षित जगह अपने भीतर ही मिलती है शायद। जब डर लगता है तो हम इसी तरह सिमट जाते हैं और अपने ही भीतर घुस जाने की कोशिश करते हैं। शायद इसलिए कि वह जगह ज्यादा जानी-पहचानी महसूस होती है। हमें लगता है कि वहीं अंदर क्या-क्या है, मालूम है। लेकिन क्या सच में? क्या दिव्या को मालूम था कि उसके भीतर जो माँ का खयाल पलता रहता था, वह इस तरह सच हो जाएगा?

अजीब संयोग था कि वह अक्सर कहती थी, मुझे लगता है, मेरी माँ मेरी असली माँ नहीं है। यह महज उसका ख्याल था, जिसकी वजह थी माँ के व्यवहार का रूखापन। इस रूखेपन की वजह उसे नहीं मालूम थी। इसलिए उसने अपने ख्याल को कभी गंभीरता से लिया भी नहीं। मैंने तो खैर इस बात पर ध्यान देना भी जरूरी नहीं समझा। माँ-बाप कितने भी रूखे-सूखे हों, उनके होने पर हम कहाँ सवाल उठाते हैं? मैंने भी तो कभी अपने पापा के होकर न होने और माँ के होने और फिर न होने पर सवाल नहीं उठाए।

पता नहीं कैसे और कहाँ से उस वक्त ख्यालों में माँ चली आई चुप सी, सोचती सी। कभी पापा की ओर देखती..कभी मेरी ओर। पापा को देखकर मरती रहती और मुझे देखकर जीती रहती। फिर मैं चला गया। पढ़ने के नाम पर उस घर से छुटकारा पा लिया, जहाँ या तो पापा की चुप्पी थी या माँ की बेबसी। जब दो लोग साथ नहीं रह सकते तो उन्हें क्यों बाँध दिया जाता है..इस सवाल का जवाब खोजना मैंने बंद कर दिया था, इसलिए वहाँ से चला आया। इसके बाद माँ पापा को देखकर मरती तो रही, लेकिन जीती किसे देखकर? सौ रोज मरती मरती...एक दिन खत्म हो गई। मैं लौटा तो माँ नहीं थी। बस एक सवाल था कि "क्यों चले गए थे तुम"? इस सवाल का जवाब अब मैं किसे देता? पापा तो अपने चुप, रूखे से लबादे में घुसे बैठे थे। वे बैठे ही रहे। उनकी चुप्पी चुभने लगी। उनके रूखेपन के लबादे में काँटे उग आए थे। उन सबका मुँह मेरी ओर था। मैं नहीं बैठ पाया, चला आया और फिर कभी जाने के बारे में नहीं सोचा। पापा के बारे में भी नहीं सोचा। सोचा तो बस उनकी चुप्पी के उसी काँटेदार लबादे के बारे में जिससे मुझे डर लगता था।

डरों और उलझनों में लिपटी वह रात जागती रही। वहाँ की कोई चीज़ नहीं सोई। हर चीज़ परेशान सी थी। जब तक सुबह जगती और चारों ओर पहाड़ी से घिरी उस छोटी सी कॉलोनी के आखिर में खड़े मेरे कमरे तक पहुँचती, हम दोनों निकल चुके थे। किसी ने कुछ कहा नहीं, लेकिन हम दोनों जानते थे कि कहाँ जाना है। चार घंटे से कुछ ज्यादा का वक्त लगा होगा उस कस्बे तक पहुँचने में और दिव्या कुछ नहीं बोली। पूरा रास्ता सिर्फ बस की खिड़कियाँ बोलती रहीं। मैं बाहर घाटी, उसकी की तलहटी में सरकती नदी की धारा और नदी के उस तरफ उदास खड़ी पहाड़ियों से बात करने की कोशिश करता रहा, लेकिन कोई नहीं बोला। सब चुप थे। सब उदास थे। सब उलझन में थे।

वह जगह कस्बा कम, गाँव ज्यादा था। शायद हम मैदानी लोगों के लिए कस्बे और गाँवों के मायने बदल चुके हैं, इसलिए उस जगह को मैं गाँव ही मान रहा था। बस ने जहाँ छोड़ा, वहां चंद दुकानें थीं। एक-दो दुकानों पर महिलाएँ थीं। पहले मेरे मन में आया कि हमें एक ऐसी महिला के बारे में पता करना है, जो अकेली रहती है, जाने कब से...तो किसी महिला से पूछना सही रहेगा। लेकिन महिलाओं की कम उम्र ने मुझे रोक दिया। मैं एक बुजुर्ग की ओर चल पड़ा। उसे नाम बताया और पता पूछा। मेरा फैसला गलत था। उन्हें नहीं मालूम था। औरतों को पता था। औरतों को सब पता होता है। उन कम उम्र औरतों के चेहरों पर उस अकेली रहती औरत की पूरी कहानी लिखी थी। मैंने जब उनसे पता पूछा, तो वे मुझमें और मेरे पीछे खड़ी दिव्या में उसी कहानी के पात्र खोजने लगीं।

हम अगली बस से लौट आए। दिव्या की माँ वहाँ नहीं थी। उस गाँव से जा चुकी थी। उसकी नौकरी लग गई थी। अब उसी शहर में कहीं है, जहाँ हम रहते थे। हो सकता है, हमारे आसपास ही कहीं हो। कुछ पता नहीं। हमारे सबसे करीब रहते लोगों को भी हम कहाँ जान पाते

हैं? जाते वक्त मैं जिस दिव्या की जिस खामोशी से झगड़ रहा था, लौटते वक्त वह बेचैनी में बदल चुकी थी। दिव्या बोल रही थी। योजना बना रही थी। कैसे ढूंढेंगे? कहाँ जाएँगे? ऑफिस से अड्रेस मिल जाएगा... लेकिन ऑफिस कैसे ढूंढेंगे...?

अगले कुछ दिनों में दिव्या की बेचैनी तड़प में बदल गई। जिस डिपार्टमेंट में दिव्या की माँ काम करती थी, उसकी दर्जियों ब्रांच थीं। उनमें सैकड़ों लोग थे। एक शख्स को कैसे खोजा जाए, जिसका सिर्फ नाम पता हो। लेकिन दिव्या खोजती रही। अकेली ही। रोज़ शाम को फोन करके बताती कि आज किस ऑफिस में गई और वहाँ भी कुछ पता नहीं चला। उस दौरान बर्फ गिरी। हर चीज जम गई थी। हर चीज थम गई थी। वक्त जैसे दिव्या के लिए रुक गया था। यूं लग रहा था कि शहर में कुछ नहीं हो रहा है। हर चीज़ रुक कर दिव्या की तलाश खत्म होने का इंतजार कर रही थी। शनिवार को उसका फोन नहीं आया। मुझे लगा कि वह मेरे कमरे पर आई होगी, लेकिन ऐसा भी नहीं हुआ।

रविवार को मैं उसके कमरे पर गया। वह बिस्तर पर थी। रजाई में सिकुड़ी पड़ी थी। उसे बुखार था, यह जानने के लिए उसे छूने की जरूरत नहीं थी। फिर भी, मैंने माथे को छू लिया। छूने की गर्मी में काफी कुछ पिघल सकता है। शायद वह रात भी पिघल जाए...

दिव्या ने आखें खोलीं। मुझे देखते ही बोली, 'चलें?' वह उठ बैठी। उसे समझा-बुझाकर लिटाया। दवाई दी। चाय पिलाई। कुछ देर बाद बुखार उतरा लेकिन वह सामान्य नहीं हुआ। उसे जो बुखार चढ़ा हुआ था, उसकी दवाई नहीं थी मेरे पास। जिस माँ को उसने कभी देखा नहीं, छुआ नहीं, जिया नहीं...उस माँ के लिए पता नहीं क्यों वह इस कदर तड़प रही थी।

"मुझे नहीं पता मैं उससे क्यों मिलना चाहती हूँ, बस मिलना चाहती हूं। सिर्फ एक बार..."

"नहीं मैं पापा से इस बारे में कुछ नहीं पूछूंगी। उन्हें बताना होता तो इतने साल तक क्यों छिपाया? उन्हें बता देना चाहिए था मुझे सब कुछ।

"मुझे नहीं पता अपनी नई माँ के बारे में मैं क्या सोचती हूँ। मैं अभी इस माँ के बारे में नहीं सोचना चाहती। मुझे उस माँ को खोजना है।"

दिव्या नहीं मानी। उसने पता खोज लिया था। किसी विमेंस हॉस्टल में रहती थी। हम चल पड़े। उन्हीं टेढ़े-मेढ़े रास्तों से गुज़रते हुए...कभी मंज़िल की ओर सरकते हुए, कभी उससे दूर भागते हुए। रास्ता कितनी देर का था, पता नहीं। बुखार के बावजूद दिव्या कैसे चल रही थी, पता नहीं। काफी देर बाद सामने एक बिल्डिंग की ओर इशारा करके उसने बताया कि वहीं जाना है। बेचैनी कुछ बढ़ गई थी। बिल्डिंग सामने थी, लेकिन मोड़ कई बाकी थे। फिर वही सफर...उस ओर, इस ओर...। लेकिन एक फर्क था। दिव्या अपना नियंत्रण खो चुकी थी। उसके कदम उससे तेज भाग रहे थे। मैं पीछे छूट रहा था। वह मुझसे पहले हॉस्टल के गेट पर पहुँची। जब मैं पहुँचा, तब तक वह गेट कीपर से बात कर चुकी थी। दिव्या की माँ वहाँ नहीं थी। वह हॉस्टल छोड़कर भी जा चुकी थी।

दिव्या निढाल-सी हो गई। वह वहीं पास पड़े एक पत्थर पर बैठ गई। मैं उसकी बगल में खड़ा नीचे उतरते रास्ते को देख रहा था। उस रास्ते से शाम धीरे-धीरे उतरकर नीचे बनी कॉलोनी में जा रही थी। कुछ देर में अंधेरा हर घर में घुस जानेवाला था। अंधेरा दिलों में भी घुस जाता है ना...

मैं दिव्या को चलने के लिए कहना चाह रहा था। मेरी नजरें इस तरह इधर-उधर भटक कर शब्द तलाश रही थीं। हॉस्टल से एक लड़की निकली। बुझी हुई दिव्या अचानक जलने लगी। उछलकर लड़की के पास पहुँची। मैं थोड़ी दूर खड़ा था इसलिए सिर्फ देख पा रहा था। उस लड़की ने नीचे उन घरों की तरफ इशारा किया, जहाँ कुछ देर पहले मैंने शाम को उतरते देखा था। उन घरों में जहाँ कुछ देर पहले अंधेरा घरों में घुस जानेवाला था, बत्तियाँ जलने लगी थीं। दिव्या ने मेरी ओर देखा और नीचे की ओर चल पड़ी। मैं पीछे-पीछे था। वह लगभग भाग रही थी। मुझे भागकर उसे पकड़ना पड़ा।

कुछ ही देर में हम कॉलोनी में खड़े थे। 20-25 घर होंगे लेकिन दिव्या को घर नहीं पता था। उस लड़की ने बस इतना बताया कि इसी कॉलोनी में कहीं एक घर लिया है किराए पर।

'अब?'

'चलो खोजते हैं।'

दिव्या पहले घर के सामने पहुँची, बेल बजाई। मैं वहीं नीचे खड़ा था। उसने बात की और निराश सी सीढ़ियों से उतरकर दूसरे घर की ओर चल पड़ी। वह एक-एक घर जाती रही, मैं पीछे-पीछे चलता रहा। हर सीढ़ी से उतरती दिव्या किसी फिल्म के किरदार सी नज़र आ रही थी। पता नहीं कौन उसे डायरेक्ट कर रहा था, मैं कैमरे के लैंस सा उसके आस-पास मौजूद था। दसवें घर में रहनेवाली एक औरत ने बताया कि जिसे हम खोज रहे हैं, वह अगले ही घर में रहती है। हम ग्यारहवें घर की देहरी पर खड़े थे। दिव्या के पीछे मैं था। दिव्या ने बेल नहीं बजाई। मैं उसकी ओर देख रहा था। वह बेल की ओर देख रही थी। लेकिन उसके हाथ बेल की ओर नहीं उठ रहा था। उसने मेरी ओर देखा।

आँखें एकदम शून्य हो चुकी थीं। उनमें कुछ नहीं था। मैंने आगे बढ़कर बेल बजाई। कोई रेस्पॉन्स नहीं मिला। एक मिनट बाद फिर बजाई और दरवाज़े की ओर देखने लगे।

अंदर से कुछ हलचल सुनाई दी। जाने क्यों मुझे लगा कि दरवाजा खुलेगा तो अंदर से पापा निकलेंगे। घबराहट की वजह से पेट में तितलियाँ उड़ने लगी थीं। पापा क्या कहेंगे, मैं क्या कहूँगा..?

दरवाज़ा खुला। दिव्या की माँ थी। वक्त गुजर चुका था लेकिन पहचानना मुश्किल नहीं था। हम दोनों ने उस तस्वीर को इतनी बार देखा था और जब भी देखते, यही सोचते थे कि अब वह कैसी दिखती होगी। जैसी वह दिख रही थीं, वैसा एक रूप भी मेरे तसव्वुर में आया था। वह हमारी ओर हैरत से देखने लगी।

"...मैं दिव्या।"

"दिव्या...??? तुम क्यों आई हो?"

"आपसे मिलना था..."

"तेरे पापा ने भेजा है?"

"नहीं..मैं तो..."

अजीब–सी तल्खी थी उस आवाज में। कोई अपनापन नहीं। कोई मातृत्व नहीं। कोई तरुण नहीं। क्या था? क्यों था? मैं सोचता रहा। हम अंदर चले आए। घर में हर जगह अकेलापन था। पहले ही कमरे में एक आराम कुर्सी रखी थी। झूलनेवाली, ठीक वैसी, जैसी मेरे पापा के पास है। मैं उस ओर चल पड़ा। दिव्या और उसकी माँ ऊपर चली गईं। मैं कुर्सी पर बैठ गया। मुझे ठण्ड लगने लगी थी। पास में रखी एक शॉल उठाकर ओढ़ ली। झूलने लगा। ठीक मेरे सामने आईना था। आईने में जो झूलता दिखाई दे रहा था, वह मैं नहीं था। पापा थे। मैं हैरान सा पापा को देखता रहा। वे दोनों सीढ़ियों से उतर आए। दिव्या मेरे पास आई और बोली 'चलो'।

लौटते वक्त रास्ता वही था, लेकिन हमारी रफ्तार बदल चुकी थी। दिव्या का नियंत्रण लौट आया था। वह उन्हीं सधे हुए कदमों से चल रही थी। चुप।

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

"क्या कहा उन्होंने?"

"कुछ नहीं।"

"तुम रुक जातीं उनके पास?"

"उसकी जरूरत नहीं। किसी की जरूरत नहीं।"

"क्यों?"

"अकेलापन..शायद अब उन्हें..."

दिव्या ने आगे कुछ नहीं कहा। हम घर पहुँचे। मैं दिव्या को घर पहुँचाकर अपने कमरे के लिए निकलने लगा, तो दिव्या ने मुझे रोक लिया। वह बैग में कुछ कपड़े डाल चुकी थी। चाहती थी कि मैं उसे बस स्टैंड छोड़ दूँ।

"कहां जाना है?"

"घर जाना है।"

"लेकिन क्यों?"

"माँ के पास जाना है।"

मैंने उसे बस में बिठाया। उसने खिड़की से मेरी ओर देखा और हल्के–से मुस्कुरा दी। वह रात हवा में घुलकर गायब हो गई। बस चली गई। दिव्या चली गई अपनी माँ के पास। उसकी बस के गुजरने के बाद सामने एक और बस दिखाई दी। यह बस मेरे घर की ओर जाती थी। मैं खड़ा कुछ देर बस की ओर देखता रहा। बस की खिड़की के शीशे में मुझे एक अक्स नजर आया। मेरा नहीं था, पापा का था। अकेले खड़े थे, एकदम अकेले। मैं बस की ओर बढ़ गया...

ऑस्ट्रेलिया

एकिया -

बहता पानी

– श्री उस्मान खान

जिन्दगी हर किसी को एक मौका जरूर देती है। लेकिन ऐसा सबके साथ नहीं होता है, कि जब कामयाबी हमारे दरवाजे पर दस्तक दे और हम दरवाजा खोलकर उसका इस्तकबाल करें। परिस्थितियों को समझना और उनके साथ तालमेल बिठाकर हवा के रुख के साथ खुद को ढालकर चलना, कामयाबी के रास्ते की ही एक निशानी है।

लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि जो हम सोचते हैं, जिन्दगी से अपेक्षा करते हैं वैसा हमको हासिल नहीं होता क्योंकि जो भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं, उनके हिस्से में वही आता है जो कोशिश करने वाले छोड़ देते हैं। कहते हैं कि हर कामयाबी के पीछे एक संघर्ष भरी कहानी होती है। कामयाबी यूं ही नहीं आपका दरवाजा खटखटाती। उसको क्या पड़ी है कि वह आपका ही दरवाजा खटखटाए?

कामयाबी उसके दरवाजे पर दस्तक देती है जिसके सपने बड़े होते हैं। जिसकी सोच बड़ी होती है, जो अपनी धुन में जीता है। लेकिन कामयाबी जब दस्तक देती है, तो उस वक्त आपको गफ़लत की नींद में नहीं होना चाहिए, बल्कि आत्मविश्वास की ताज़गी आपके चेहरे पर होना जरूरी है।

गाँव से निकलकर 'मुम्बई में संघर्ष करते हुए मुझे अब चार साल बीत चुके थे। इन चार सालों मे मैंने दुनिया को बेहद करीब से देखा था। बहुत कुछ पीछे छूट गया था, बहुत कुछ खत्म हो गया था। लेकिन मेरा संघर्ष था, जो कि न खत्म होने का नाम लेता था और न ही मेरा पीछा छोड रहा था।

मुझे अब तक सिर्फ भीड़ में खड़े होने से लेकर नायक के आस–पास से गुजर जाने जैसे बेनाम किरदार ही मिले थे। छोटी–मोटी भूमिका की तलाश में मैं घंटों यूं ही फिल्म सिटी में घूमता रहता। लोगों से मिलता। जो जहाँ बता देता, वहां चला जाता। कई बार ऐसा होता कि जेब में एक फूटी कौड़ी तक न होती। पूरा दिन सिर्फ एक वड़ा पाव और चाय पर गुजार देता। घर से आये हुए अब एक लम्बा समय बीत चुका था।

मेरे पास न पहनने को अब ढंग के कपड़े बचे थे और न रहने का कोई ठिकाना था। हताश होकर मैं अपने घर अम्मा को कॉल करता और कहता "अम्मा, कुछ नहीं हो रहा।"

उधर से आवाज आती 'तू सब छोड़कर वापस आ जा।'

लेकिन मैं बिना किसी जवाब के फोन रख देता। अम्मा से तो मै कभी–कभी बात कर लेता था, लेकिन आज तक बाबू जी से बात करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया था, न उन्होंने कभी मुझसे बात करने की इच्छा जाहिर की।

'तेरे बाबू तेरे बारे में पूछते हैं, कब आएगा रे तू टीवी पर?'

अम्मा अक्सर फोन पर यह कहती। मैं नहीं जानता यह सच था या झूठ। दो साल से घर नहीं गया था, इस बार अम्मा के बहुत कहने पर मैंने गाँव जाने का मन बना लिया।

लेकिन न दिल गवाही देता था और ना ही मेरा वजूद यह स्वीकार करता था। दो साल बाद घर का सबसे बड़ा लड़का, वह भी खाली हाथ।

मैं जानता था कि अम्मा इस बारे में कुछ नहीं पूछेगी और न बाबू जी। लेकिन घर से बाहर कैसे निकलूँगा? ईद पर लोगों से मिलूँगा कैसे?

हम तीन दोस्त गुरुकृपा अपार्टमेंट की पार्किंग में बने सिक्योरिटी गार्ड के कमरे में रहते थे। गार्ड बनारस का था जिससे विवेक ने अच्छा तालमेल बैठाया हुआ था, हालाँकि हमको इसका भाड़ा देना होता था।

"यह ले।"

"नहीं यार, दिल नहीं है।"

"क्या हुआ भई, क्यों परेशान है?" विवेक ने भुर्जी पाव का एक पैकेट मेरी तरफ, और एक गौतम की तरफ बढ़ाते हुए सवाल किया। फिलहाल विवेक के पूछे जाने पर मैंने दोबारा कोई जवाब नहीं दिया। गौतम चुपचाप पैकेट खोलकर खाने लगा।

"बोल न बे, क्या हुआ?" विवेक ने दोबारा टोका।

"पंडित, तुम चुगली बहुत करते हो, सब की। खा ले बे, आफत क्या है?"

"हाँ तो पूछूँगा नहीं, क्यों आज इसका थूथन लटका है? भूख क्यों नहीं है? दिन में वलीमा खाकर आया है?"

"अरे कुछ नही यार, घर पर कॉल किया था। इस बार अम्मा बहुत बुला रही हैं। जाने की इच्छा तो नहीं थी, लेकिन दो साल भी तो हो गए हैं।"

"अबे! तू दो साल से घर नहीं गया है साला आज तक बताया नहीं?"

"हाँ तो बड़ा भारी जुर्म किये न, जो सबको बताते फिरते कि दो साल से घर नहीं गए हैं।"

"तो जाना क्यों नहीं चाहता बे? रिजर्वेशन करा और निकल जा।"

"मुँह को चने नहीं। रिज़र्वेशन सात सौ रुपए का है।"

"कोई नहीं! करते हैं कोई न कोई जुगाड़। तू फिकर मत कर।"

गौतम और विवेक ने टिकट के लिए पैसों की व्यवस्था की। मैं आरक्षित टिकट न लेकर, उनको बिना बताये सामान्य श्रेणी के दर्जे में ही घुस गया।

फिलहाल 24 घंटे का बेहद असहनीय और लंबा सफर तय करने के बाद मैं घर पर था। बाबू जी ने सिर्फ 'कैसे हो?' के अलावा कुछ नहीं पूछा। मैंने भी नजरें चुराते हुए 'ठीक हूँ' कह दिया। न किसी ने मेरे बैग को टटोला न किसी ने मुझसे कुछ मुम्बई के बारे में जानना चाहा।

बैग में मेरी नाकामियाँ थीं, और मुम्बई कैसी है, वह मेरे चेहरे पर दिख रहा था।

अगली सुबह ईद का दिन था। नमाज़ पढ़कर सब एक–दूसरे को ईद की मुबारकबाद दे रहे थे, मैं लोगों से नज़रें चुराते हुए चुपचाप अपने खेत की तरफ बढ़ गया।

जैसे–जैसे बाबू जी की उम्र बढ़ती गई वैसे–वैसे खेत घटता गया। अब सिर्फ एक टुकड़ा ही बाकी था।

काफी देर तक वहाँ बैठा न जाने क्या–क्या सोचता रहा? फिर जब धूप बढ़ने लगी तो घर वाले इंतज़ार कर रहे होंगे, सोचकर घर की तरफ बढ़ने लगा। देखा–पास वाली पंसारी की दुकान पर गाँव के कई जाने–पहचाने चेहरे मौजूद थे।

'अरे! रौनक भाई, आओ– आओ ईद मिलो भाई।' वहाँ से गुजरने का कोई और रास्ता ही नहीं था। मुझको देखते ही उन लोगों ने बुला लिया।

'मुम्बई जा के रंग निकल आया।'

"आयं जैसे शाहरुख खान हैं, सलमान है, इन लोगों को देखा?"

"तुम यार चमके नहीं, किसी फिल्म में?"

"भझनवा का लौंडा कह रहा था, वह करीना वाली फिल्म में तुम ही थे, जो हीरो के सामने से निकल रहे थे, अँधेरे में।।

"बताओ यार कुछ बम्बई के बारे में।" कुछ बोलने से पहले मेरे ऊपर कई सारे सवाल दाग दिए गए। मैं खामोश खड़ा, बस बनावटी मुस्कान दे रहा था।

"बताओ यार, कुछ? सुना, बड़ा खुला–खुला है वहाँ तो सब, लड़के–लड़कियाँ सब ऐसे ही घूमते हैं, जुहू–चौपाटी।?'

'अच्छा जैसे, यह जो एम.एमएस आते हैं, यह सच होते हैं या झूठ?" मैं कोई जवाब दिए बिना जैसे–तैसे वहाँ से जान छुड़ाकर निकल गया।

"हा–हा–हा ऐसे काले–कलूटे हीरो बन जाएँ तो सब बम्बई ही न चले जाएँ।"

"हा–हा–हा।' उन सबकी बात को सुना–अनसुना कर मैं घर की तरफ बढ़ गया।"

लेकिन जिस मुसीबत से जान छुड़ाकर घर आया था, वह दुगुनी होकर घर में बैठी हुई थी। मेरे खाला, खालू और उनकी दोनों लड़कियाँ ईद मिलने आए थे।

"अरे! आओ–आओ रौनक भैया। इस बार तो बड़े दिनों के बाद लौटे, क्या बम्बई में रहकर घर की याद नहीं आती क्या?'

"नहीं, ऐसी बात नहीं है खाला।' मैंने खाला को सलाम करते हुए जवाब दिया। दोनों लड़कियाँ गुड़िया और नाज़ो मुझे देखकर मुँह दबाकर फुसुर–फुसुर मुस्कुराने लगीं।

"कुछ काम बना कि नहीं? अभी तो बहुत बखत हो गया। वैसे अगर फिल्मों में चमक जाओ, तो आदमी बन जाओगे।" खालू ने खाला की बात में अपनी बात जोड़ी।

"तुम शय देना बंद करो, अब भैया, वापस आओ और घर का काम धंधा संभालो। बहुत हो गया बम्बई–बम्बई। गुड़िया की शादी तुमसे बचपन में न तय की होती तो बिलकुल नहीं करती, लेकिन जबान दी थी तुम्हारी अम्मा को। अब जो होए, जबान से थोड़ी मुकर जाएँगे? खाला ने पहले अपने शौहर यानी मेरे खालू की जबान दबाई, फिर मन भर एहसान उलटते हुए घिसी–पिटी पुरानी कहानी दोहराई।

"जब हमारी गुड़िया हुई थी, तो मार सफरख–सफेद रखी थी। तो तुम्हारी अम्मा ने इसको देखकर कहा था, कि इसकी शादी हम अपने रौनक

से करेंगे। और उजाड़ी पीटा ऐसा बखत था, कि हमने भी हाँ कर दी थी। तब से लेकर आज तक पूरे खानदान में सब इस बात को पत्थर की लकीर बनाए घिस रहे थे कि गुड़िया की शादी रौनक से तय है।

"तो भैया बखत हमेशा एक सा थोड़ी रहता है? मन भरे तो करो।" मैं खामोश खड़ा खाला की बातें सुन रहा था, लेकिन उनकी छोटी बहन के ताने अम्मा के कलेजे को चीर गए थे।

"रौनक!"

"हाँ गुड़िया, बोलो?" गुड़िया ने अन्दर कमरे से आवाज दी। मैं अन्दर बढ़ गया।

"एक बात कहनी थी, पहले मेरी कसम खाओ नाराज़ तो नहीं होंगे? ए नाजो, पर्दा खींच दे ज़रा।" गुड़िया ने मेरे गालों को सहलाते हुए कहा। साथ ही साथ पास खड़ी छोटी बहन को दरवाज़े का पर्दा खींचने का इशारा किया।

"जो बोलना है जल्दी बोलो, बाहर सब बरामदे में बैठे हैं"

"पहले मेरी कसम खाओ नाराज तो नहीं होगे?"

"कसम खाने की जरूरत नहीं है, नहीं होऊंगा नाराज़।" मैंने उसके हाथों को हटाते हुए कहा।

"मुझे मालूम है कि तुम मुझे पसंद करते हो, लेकिन..."

"बोलो! लेकिन क्या?"

"इस रिश्ते को मना कर दो न, तुम्हारे खाला–खालू की भी मर्जी नहीं है। बस, बचपन की बात है, इसलिए कह नहीं पा रहे हैं।"

"तुम क्या चाहती हो, वह बोलो?"

"मैं बम्बई नहीं जाना चाहती।"

"शादी मुम्बई से नहीं मुझसे करनी थी। खैर, मैं बोल दूँगा। तुम फिक्र न करो।"

"अरे! अंदर क्या फुसुर–फुसुर चल रहा है? अभी इसके दिन नहीं आये हैं।" बाहर से दादी ने आवाज लगाई। मैं कमरे में ही खिड़की से बाहर खेत की तरफ देखने लगा। गुड़िया अपना दुपट्टा सम्भालती हुई नंगे पैर बाहर निकल गई। खाला–खालू कुछ देर में चले गए। अम्मा और अब्बा खून का घूंट पीकर खामोश हो गए। यह खामोशी तूफान के आने का संकेत मात्र थी।

"सुबह से दोपहर, दोपहर से शाम होने को आई। पूरा दिन निकल गया तुम घर से हिले तक नहीं? जाओ, लोगों से मिल–जुल आओ, खालू–खाला बुला गए हैं तुमको, शाम को बोले वे लोग आएँगे।"

"अम्मा! मुझे गुड़िया से शादी नहीं करनी है।"

"आयं...क्या?"

"गुड़िया से शादी नहीं करनी है।"

"तो यह फुसुर–फुसुर चल रही थी दिन में। उसी ने कान भरे होंगे, बन्ने खां के वहाँ से उसका रिश्ता आया हुआ है, वही इतरा रही है।"

"वह सब बात नहीं है। मेरी मर्जी नहीं है उससे शादी करने की। अब आप लोगों के हाथ जोड़ता हूँ, खानदान भर में कोई बखेड़ा मत खड़ा करना।"

"यह सब अपने अब्बू को बोल जा के। हमें मत बता। जानी समझी दबी ढकी लड़की, सोचा था घर आएगी तो पूरे घर को लेकर चलेगी। मिल गई होगी हुआँ बम्बई में कोई नाचने गाने वाली।" मेरे सर दर्द से फटा जा रहा था। अम्मा कितनी देर तक क्या–क्या बड़बड़ाती रहीं, मैंने कान नहीं दिए।

"रौनक, आओ खाना खाओ।" मैं कमरे में बैठा। अपने मोबाइल से खेल रहा था, तभी बाहर बरामदे से अम्मा ने आवाज़ लगाई। मैं बिना कुछ बोले खाने के लिए अब्बा के सामने बैठ गया।

"तुम खाओ बेटा, हम गरम–गरम रोटियाँ देते रहेंगे।" अम्मा चिमटे से रोटी मेरी रकाबी में डालकर, पल्लू संभालती वापस चूल्हे के पास बढ़ गईं।

"हाँ रौनक, क्या बात है बोलो?" अब्बा ने निवाला तोड़ते हुए मुझसे पूछा। उफ़्फ़! मेरी नज़र बाद में गई, सामने खाला–खालू बैठे थे।

"कुछ बात नहीं, बस मैं सोच रहा था कि कुछ काम–धंधा है नहीं। मुम्बई में भी पता नहीं कितना टाइम लग जाए? ऐसे में शादी करना..." मैंने अपने शब्द अधूरे छोड़ दिए।

"देखो बेटा, इस रिश्ते से तो हम भी राज़ी नहीं है, लेकिन ज़बान दी हुई है। खानदान भर में ढिंढोरा पहले ही पिटा हुआ है। इस लिहाज़ से कर रहे थे, गुड़िया की शादी तुमसे।" इससे पहले कि अब्बा कुछ बोलते, खालू ने अपनी तरफ़ से सफ़ाई दी।

"आपकी कोई बदनामी नहीं होगी।"

"अरे! बदनामी तो तुमसे करने में होती, लल्ला। यह रिश्ता तो हमारे गले में हड्डी जैसा फँस गया। न उगला जाए न निंगला जाए। हमारी लड़की के लिए क्या कमी है रिश्तों की? बन्ने खां के लड़के के लिए रिश्ता आया है। बारह भैंसें एक ट्रैक्टर द्वार पर बंधा रहता है उनके।"

"और क्या! हमारी गुड़िया तो रानी बनकर रहेगी।" खालू की बात में खाला ने भी अपनी खपच्ची जोड़ी।

"तुम्हारे तो कुछ काम–धंधे का भी नहीं पता, कब तक ऐसे पगलई में काटोगे?"

"हे! मुन्नन, कुछ भी ऊल–जुलूल मत बोलो हमारे लड़के के बारे में। घर में बैठे हो हमारे वरना ज़बान खींच लेते।" बरसों से दबा हुआ प्यार आज मैंने अब्बा की आँखों में देखा था। वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे, लेकिन कोई मेरे बारे में बोले तो उस गली से भी निकलना बंद कर देते थे।

"अब्बा अब्बा। रुको न, हो गया न फैसला, इसमें इतनी गहमा–गहमी की क्या बात है?" मैंने अब्बा को मुन्नन खालू से दूर करते हुए कहा।

"अरे! शादी नहीं करना तो क्या कुछ भी बकेगा? आसमान से उतरते है क्या फिल्म वाले? दिल्ली, पटना, यूपी से कितान लड़के घरों से भागकार जाते के नहीं जाते हैं बम्बई? हमारा लड़का घर से भागकर तो नहीं गया। अल्लाह जिसको चाहे इज्जत दे, जिसको चाहे जिल्लत दे, जब अल्लाह की मर्ज़ी होगी तब कोई नहीं रोक पायेगा। बहते पानी को कोई रोक पाया है क्या?"

"अरे! खालू खालू बैठे न? खाना तो खाओ, "

"अपने अब्बा को खिलाओ, लल्ला। इनको ज्यादा जरूरत है। चल रुक्सनियां बोरखा ओढ़।"

"हाँ तो ऐसे काले–कलूटे हीरो नहीं बन जाते हैं" खाला ने भी अपनी तहज़ीब का भरपूर प्रदर्शन किया।

"अम्मा, रोको न खाला को।।।"

"नहीं आपा। बेइज्जती करवाने के लिए नहीं आये थे हम।" खाला ने अम्मा से हाथ छुड़ाया और बोरखा उठाकर दरवाजे की तरफ़ बढ़ने लगी।

"गुड़िया, तू चलेगी या यहीं तेरा नार गड़ा है?"

"आ रहे हैं..." गुड़िया की आवाज़ भर सी गई।

"रौनक, हमको माफ़ कर देना। किसी को बोलना मत कि तुमने मना किया है, वरना बहुत बदनामी होगी खानदान भर में।" मैंने मना नहीं किया था, लेकिन मना भी किया था। लेकिन बोलना भी नहीं था, कि मैंने मना किया है। समझना मुश्किल था कि मैंने क्या किया है।

"जल्दी जाओ, वरना हमारे पल्ले छोड़ जायेंगे तुम्हारे अम्मा–अब्बा यहीं।" मैंने ऐसे माहौल में उसको हँसाने की कोशिश की, लेकिन मेरी कोशिश पर उसके आँसू हावी रहे।

दो साल बाद–

"अरे! भैया आज तो जैसे सारा गाँव यहीं ढुल आएगा। कमरे बंद रखियो आपा, वरना मोबाइल–ओबाईल उठ जायेगा आज।"

"चच्ची, यह गया कहाँ रौनक? बाहर अख़बार वाले खड़े हैं।"

"पता नहीं कहाँ निकल गया? हम तो यहीं थे बावर्ची खाने में।"

"रौनक सर को बुलाइये। उनको बोलिये बस आधे घंटे का टाइम दे दें। हैं कहाँ वे?"

"आ रहे हैं भैया। अंदर तैयार हो रहे होंगे, ऐसे ही थोड़ी आ जाएँगे? आप पूछो न क्या पूछना है? हम तो उसके बचपन के दोस्त हैं, साथ ही में पढ़ते थे। जैसे एक्टिंग का शौक तो उसको बचपन से ही था। स्कूल में ही एक्टिंग किया करता था। मार अमिताभ बच्चन लेओ। गोविंदा लेओ। सबकी नकल उतारा करता था। कितनी बार तो गाँव की रामलीला में राम यही बनता रहा।" अकरम ने एक ही साँस में बहुत कुछ कह दिया।

"हम तो उससे कहते थे कि बेटा बम्बई निकल जाओ, यहाँ गांव में कोई कदर नहीं, तुम्हारे हुनर की।" मुन्नन खालू ने अकरम को पीछे किया, खुद कैमरे के सामने आते हुए बोले।

"आप कौन हैं?"

"अरे! भांजा है हमारा भाई, हम उसके खालू हैं। हम तो इनके अब्बा से कहते थे , कोई करे न करे लेकिन एक दिन रौनक जरूर तुम्हारा नाम रौशन करेगा। और आज देखो, किसी से पूछ लेओ।"

"हाय! पूरा गाँओं ढूंढ डाला सब लोगो ने। तुम यहाँ बैठे हो खेत में अब्बा के पास?'

"कैसी हो गुड़िया?"

गुड़िया ने हाँफते हुए पास आकर कहा। "हम तो अच्छे हैं, वहाँ सब तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। अब्बा की बहुत याद आती है क्या?" हम्म। कभी कभी। बैठो चलेंगे।

"तुम्हारी फिल्म आती है तो सबको हम बताते है कि देखो यह है रौनक। सब जानते हैं तुमको गाँव के बच्चे–बच्चे से पूछ लो रौनक भाई की फिल्मों के नाम।"

"तुम्हारी शादी में नहीं आ पाया था।"

"अरे! छोड़ो पुरानी बातें। एक बार किसी ने मुँह खुले को भी बुलाया नहीं तुम्हारे अम्मा–अब्बा को। मेरा तो बहुत दिल था लेकिन मेरी कौन सुनता?'

'अच्छा ही हुआ नहीं बुलाया। मुझमें इतनी हिम्मत भी नहीं थी कि आ पाता।'

'तुम्हारे अब्बा जिस दिन खत्म हुए, उससे आन–जान शुरू हो गई, वरना सब मुँह टेढ़ा किये थे तुम्हारे घर से।'

"मैं तो समझा था कि तुम पहले से ज्यादा निखर गई होगी। सूख कर काँटा हो रखी हो।"

'अरे! कहाँ, मुँह अन्धिरते बारह भैंसों का दाना–पानी खेत खलियान ज्यादा बस, राब चल रहा है।'

'तुम जाओ। बोल दियो रौनक किसी से मिलने चला गया। आज नहीं आएगा।'

'ठीक है, हमें क्या बोल देंगे? शाम को हमारे घर जरूर अएय्यो।'

मुँह अन्धिरते ही किसी के चिल्ली–पुकार रोना–रूहाट से मेरी आँख खुल गई। घर के दरवाजे पर कोई औरत दहाड़ें मारकर छाती पीट रही थी। लोग उसको चुप कराने की कोशिश कर रहे थे। मैं अपना तहबंद संभालते हुए कमरे से बाहर आया। तब तक मजमा–सा लग चुका था।

'हाय! रौनक हमारा लौंडा भाग गया।'

'हाय गोमिंता बम्बई भाग गया।'

"रौनक भाई, कल रात को भजनवा का लौंडा गोमिंता बम्बई भाग गया।" मैं पास आया, उनको उठाकर दिलासा देना चाहा लेकिन अचानक मुँह दबाकर 'खी–खी' करके हँसता हुआ वापस पलट गया।

मलेशिया

कविता

ग़ज़ल

दोहे

छंद

गीत

रक्तबीज अभिमन्यु

–डॉ. संगीता सक्सेना

जानते हो....
मैं अपने बच्चे को
चंदामामा, तारा, नक्षत्रों, पहाड़ों की
लोरियाँ नहीं सुनाऊँगी।
उसे बताऊँगी–
चाँद का मुँह टेढ़ा ही नहीं
वीभत्स भी है।
तारे और नक्षत्रों का सौन्दर्य
बैसाखियों का मोहताज है।
नदियों का जल दूषित ही नहीं,
मानव रक्त से गंधाता भी है।
पहाड़ बौने हो गए हैं।
उसके हाथ में
काठ के घुड़ुए की जगह,
हथौड़ा थमाऊँगी,
ताकि वह जान ले–
हथौड़े का पिछला इतिहास,
और, सौगंध ले–
वह सब करने की
जो बुद्धिजीवी होने के नाते
मैं मात्र
लिखती रही या
लिखने का ढोंग करती रही।
मेरे हाथ से बने मोजे
पहनने की जगह
वह पथरीली भूमि पर
नंगे पाँव चलेगा,
ताकि
आगे जब वह मजबूर किया जाए तो
उसकी आदत पड़ चुकी हो।
तुम्हारे सारे षड्यंत्रों से
पहले ही सचेत कर दूँगी उसे।
पूतना, कैकेयी, यशोदा में
फ़र्क महसूसना सिखाऊँगी उसे।
धर्म, जाति, वर्ण, भाषा का
डरावना, घिनौना, छितिर–छितिर रूप
दिखाऊँगी उसे।
राम–रावण को पहचानना
सिखाऊँगी उसे।
राजनीति की डोर थामे तुम्हारा
तुन सबका
नंगा रूप खोल दूँगी उसके सामने।
और जानते हो
वह सिर्फ तीन रंगों को जानेगा।
गलत समझे
केसरिया, हरा और सफ़ेद नहीं।
लाल, काला और सफ़ेद।
सफ़ेद झक तुम्हारी पोशाक के
भीतर की कालिमा,
और उस पर पड़े बेगुनाह लहू के धब्बे,
इन तीन रंगों में
भेद करना सिखाऊँगी उसे।
तुम्हारे चक्रव्यूह को
भेदना ही नहीं,
उसमें से निकलना भी सीखेगा वह।
और अगर भेदकर स्वयंसिद्ध हो गया तो भी,
रोऊँगी नहीं मैं,
क्योंकि तब तक उसके रक्तबीजों से
कई और अभिमन्यु जन्म ले चुके होंगे।
और तब–
इन नए अभिमन्युओं का सामना
कई दुर्योधन, कई दुशासन, कई द्रोणाचार्य, कई भीष्म भी
नहीं कर सकेंगे।
उन्हें समर्पण करना ही होगा!
हार माननी ही होगी!
नए युग के इन अभिमन्युओं के सामने।

मैं वर्णन और वर्णनातीत.....

– श्री सुनील जाधव

मैं अनंत ब्रह्मांड की ध्वनि से
प्रकट हुआ था वर्ण
कूच किया था लक्ष्य शब्द की ओर
बना वहाँ मैं एक अधूरे शब्द से
एक संपूर्ण शब्द इस ओर।

मैं जुड़ता गया
शब्द से शब्द बनता गया
शब्द से शब्द और फिर
एक अधूरे वाक्य से
संपूर्ण वाक्य बनता गया।

भीतर और बाहर से न जाने
कितने भावों और विचारों का
वहन मैं करता गया
कभी ढलान से लुढ़का
तो कभी अथक चलता रहा पहाड़ों पर।

न जाने मैं कब से कब तक चला आया
मैं बंट गया भाषाओं मे
धर्म और उनकी जातियों में
उनके ग्रंथों की ख्यातियों में
बनता-संवरता रहा गति की रीतियों में।

कभी मैं कविता बना
तो कभी बना महाकाव्य
उपन्यास, कहानी, नाटक
कई विधाएँ संभाव्य
प्रस्तुत होता रहा मैं भव्यातिभव्य।

मैं बना चर-अचर का इतिहास
समाज, संस्कृति, धर्म, विज्ञान आदि का अभ्यास
कभी बना हास तो कभी बना परिहास
कभी ज्ञान की जिज्ञासुओं का मोहक सुहास
मैं बना सच्चा मित्र कइयों के हृदय के पास।

मैं अनंत, अपरिमित, अटूट, असीमित
मैं कल्पना और कल्पनातीत
मैं वर्तमान, भविष्य और अतीत
मैं नित्य नवीन और अमित
मैं मधुर ध्वनि, संगीत और अनुपम गीत।

मैं वर्णन और वर्णनातीत....

यह एक सच है!!!

—श्रीमती रश्मि प्रभा

मैं हूँ.. कहीं गायब नहीं..
खोना मुझे मंजूर नहीं
पाने की हर संभव कोशिशें हैं हर पल!
मेरा वादा है मैं मरकर भी जिंदा रहूँगी
लफ्ज–लफ्ज लम्हों में...
तुम पुकारोगे उद्विग्न होने दोराहे पर असमंजस की स्थिति में होगा
तभी कोई हल्की बयार तुम्हें छू जाएगी
और फिर
स्वागत तुम मुझसे बातें करना
मैं तुम्हारे मन में प्रत्युत्तर बन अंकुरित होती रहूँगी तुम्हारे सर पर हाथ रख
सारी उद्विग्नताएँ ले लूँगी
दोराहे से एक रास्ते पर ले चलूँगी
मैंने जो–जो चाहा है
यकीनन मैं तुम्हें दूँगी सच मानो, यह वादा एक सच है!!!

मैं बताऊँगी
मृत्यु उपरांत जीवन का दर्शन
खोलकर रखूँगी
धरती, आकाश, पाताल के उलझे रहस्यात्मक धागे
ताकि उन धागों से तुम बुन सको एक नया इतिहास
अतीत की सलाइयों पर...
हाँ... मैं फिर मिलूँगी
मिलती रहूँगी
तब तक
जब तक महाकाव्य, महाग्रंथ न लिखा जाए
कि,
रहस्य कुछ भी नहीं
आँखों का, मन का एक भ्रम है!

जो भी तुमसे मिलता है जो कुछ तुम्हें मिलता है वह अर्थहीन नहीं...

गालियाँ भी प्राप्य की सीढ़ी है उस पर भी पाँव रखना है ताकि तुम
जान सको
कि गाली सुनना अपमानजनक है
तुम्हारे लिए भी, औरतों के लिए भी!!

जो तुम्हें नहीं मिलता
वह दुर्भाग्य नहीं सौभाग्य है
तुम व्यर्थ अपनी हार समझ लेते हो
चेहरे पर
मन पर पड़े उँगलियों के निशान
सिर्फ तुम्हारा सत्य नहीं
हर किसी का सत्य है
मानने, नहीं मानने से
सत्य बदला है कभी?
नहीं न..

तो सत्य के साथ रहो
सलीब पर होकर भी
तुम तुम ही रहोगे
तुम्हारे सारे रक्त चूसकर भी
कोई तुम्हें मार नहीं सकता
हाँ... उसकी मौत उसके ही अंदर
तिल–तिल कर रोज होती है
कथन, कृत्य के दोहरेपन को
वह कितना भी सँवारे
न छवि बनती है
न छवि बिगड़ती है..
सब अपनी–अपनी सोच है...

अनुभव के रंग

–श्रीमती पूनम माटिया

हमारे मन–मस्तिष्क की गति
अग्नि मिसाइल से कम नहीं
अचानक ये आभास हुआ मुझको
जब पाँव दौड रहे थे ट्रेड–मिल पर
और सोच उड़ान पर पहुँच गई
शीशे की बड़ी–बड़ी खिड़कियों के पार
खड़े वृक्षों के हरे पत्तों के झुरमुट में
देखा करती थी हमेशा से ही
पर जाने क्यूँ अलग–अलग रंग में
बंटे नजर आ रहे थे आज ये पत्ते मुझे
कोई सुनहरा हरा रंग लिए हुए, कोई चमकदार हरा, कोई गहरा हरा
और कुछ काला, ढलका हुआ–सा हरा
जीवन के विभिन्न रंग मानो इन
पत्तों ने समेट लिए अपने में
शैशवकाल की कोमलता, कच्चापन, नाजुकपन लिए हल्के सुनहरे हरे पत्ते
मानो अभी इन्हें वर्षों निगरानी चाहिए बड़ों की,
खुदमुख्तार होने तक
तेज हवा, चमकती धूप, मूसलाधार बारिश
कहीं कुल्लाह न दे इनकी कोमल काया
फिर चमकदार हरे पत्तों से जा टकरा
लौट आईं मस्तिष्क की तरंगें
अपना बचपन दौड़ गया आँखों के सामने से
बेफिक्र, मनमौजी,
अपनी ही धुन में सवार,
जमाने की ऊँच–नीच से अनजान
हँसी–ठिठोली करता बचपन
बचपन बीत गया पलभर में
और सामने आ गया
जिम्मेदारी से भरा वयस्क–काल
पढ़ाई, लिखाई, नौकरी, परिवार
रोज की दौड़–धूप, नए प्रयोग, नए आयाम
बस कुछ कर दिखाने का जुनून
ये गहरे हरे पत्ते यही तो दर्शाते हैं
जीवन भर के अनुभव सामने ले आते हैं
अचानक ठहर गई निगाह
उन बड़े–से, गहरे हरे पत्तों पर
जिनका हरा रंग कुछ कुम्लाया था
और शीघ्र ही अपने बुढ़ापे की ओर
अग्रसर होते हुए कदमों की
अब इन पत्तों की शेष बची जिंदगी भारी–सी थाप सुनाई देने लगी
केवल इंतजार ही तो है
सूख कर झड़ जाने तक।
हाँ, छाया जरूर देते ये
आने–जाने वाले पथिकों को
देख इन्हें ही, ले लेता कुछ चैन की साँसे भागता–दौड़ता,
जिंदगी से लड़ता इंसान
जब हुआ अहसास ये, तब! अपने होने का गर्व,
नकारा होते हुए वजूद
के अहसास को कहीं गहरे दबा आया
और अपने अनुभव से रंग देने का
मन हुआ एक बार फिर इन नए, चमकते हुए कोमल, नादान
हरे पत्तों की तरह उमड़ते बालपन को।

कौन हो तुम

—श्री सुधीर कुमार सोनी

यह कौन
मुँह अँधेरे
लिखने लगता है
सुंदर सुबह
यह कौन
सुनहरी शाम की गवाही में
स्याह उडेल देता है आकाश
और अँधेरी रात लिखता है
कभी बिखरा जाता है उजियारा
और चाँदनी रात की शीतलता लिखता है
यह कौन पहाड़ों के खुरदरे शरीर से बहा लेता है निर्मल जलधारा
और
नदी लिखता है
यह कौन
धुँध को बटोरकर
धूप की आहट के पहले
हीरे की चमक–सा पत्तों पर ओस लिखता है
यह कौन
मीलों तक फैलता है वृक्षों की शृंखला
और जंगल बियाबान लिखता है
यह कौन सिद्धहस्त घुड़सवार की तरह
चढता है सूरज के घोड़े में
पलक झपकते क्षणों में अर्धवृत्त खींचता है और इंद्रधनुष लिखता है
यह कौन
बादलों का पंख बन जाता है उडता–तैरता है और गर्जना के साथ
बारिश की बूँदें लिखता है
यह कौन
किसान के पसीने को
धरती के भीतर सोखता है और बारिश में मिश्रण कर
लहलहाती फसल लिखता है
यह कौन
फूलों को रग–बिरंगे परिधान बाँटता है
और पलाश–गुलाब–मोगरे की महकती सुगंध लिखता है
यह कौन मुट्ठियाँ खोलकर
बिखेर जाता है आसमान में चमकती गोटियाँ
और
टिमटिमाते तारे लिखता है
यह कौन
बाँस के फूल से अनुबंध पर
कर्णप्रिय संगीत बिखेरता है
और
बाँसुरी लिखता है
अभिभूत हूँ मैं
और हम सभी
तुम्हारी कृति से
कौन
तुम कौन हो
कौन हो तुम

वह घर कुछ कहता है

—श्री रमेश यादव

मैं मकान नहीं
न तो मैं हूँ खंडहर
मैं घर हूँ, घर हां भाई, आप लोगों की तरह घर
वह घर कुछ कहता है
चेहरे पर मासूमियत लपेटे
नियति के इस खेल पर सिसक–सिसककर रोता है
वह घर कुछ कहता है
वह घर काली आंधियों से साक्षात्कार करता है जिनकी आत्मीयता के सोते
सूखे बालूशाही हैं उस बधिर जमाने पर जमकर हँसता है
बस्ती के अजनबी मकानों से आशियाने का राज पूछता है
छूट गई पीछे जो कहानी उसकी दास्तान सुनाता है
वह घर कुछ कहता है
सुनसान उजाड़ उस घर की चीखें
अब कोई नहीं सुनता न तो लोग कान लगाते हैं
न अब आंख गड़ाते हैं क्योंकि अब वह टूट चुका है
शून्य से घिर चुका है जीवन उसका इतिहास बन चुका है
बचीं हैं, तो कुछ यादें कुछ निशानियाँ, किलकारियाँ धूल की परत में
लिपटी दीवारें, फर्श, झरोखे, किवाड़ें सरोसामान देवघर, घड़ियाँ मौजूद हैं सभी कल – पुर्जे

आपने होने की जगह पर स्थिर घड़ी चलने के इंतजार में है

वह घर कुछ कहता है
अब वह घर
न सोता है, न जागता है मद्धिम आवाज़ में कराहता है
अपने खोए वैभवी दिनों की याद में दीवारों पर लटकी
तस्वीरें निहारता है घर,
छूट गया है अकेला करोड़ों की भीड़ में तनहा जीवन जीने के लिए
तरसता एक तीली उजाले के लिए करता है इंतज़ार
पुनः गुलज़ार होने के लिए
खिल–खिलाकर हँसने की
वह भी आस रखता है
वह घर कुछ कहता है
कौन देगा दस्तक इसके दरवाज़े पर
कौन लिखेगा इतिहास
इसके वजूद पर खर्राटों के बीच
खुद को जगा हुआ पाता है भोर के इंतज़ार में
अर्सों से वह
रात आंखों में काटता है
वह घर कुछ कहता है

21 वीं सदी का आदमी

—श्री आशीष कुमार कंघवे

लहूलुहान– घायल
पथराया– निर्लज
विकसित– बीमार
व्यभिचारी – लाचार
परमाणु – संपन्न
परंतु डरपोक
अनगिनत रास्तों पर
भागता
लक्ष्यविहीन
रोशनी में नहायी धरती
परंतु आँखों में पलते
संगीन काले ख्वाबों को
सर पर ढोकर
कहाँ तक ले जाएगा? कहाँ जाएगा...
ये 21वीं सदी का आदमी।
समझ से परे किसी सुरक्षित स्थान का
पता क्यूँ पूछ रहा है
इससे अच्छी धूप उसे कहाँ मिलेगी
शायद मजबूर है
ताड़ की छाँव में बैठने को
पिघलते ग्लेशियरों में बहने को
रेडियेशन से लड़ने को
असंख्य दवाइयों के बावजूद
लाइलाज मरने को।
टुकुर–टुकुर आँखों से
ताक रहा है
कभी चाँद
कभी मँगल पर
झाँक रहा है सोच रहा है अपना पड़ाव बदलने को
किंचित, कर्मों से
मजबूर है भरोसे का बाँध
टूट रहा है
असहाय–द्रवित–विषाद से
भर गया है
कोहनियों और घुटनों के बल
चलने को क्यूँ
मजबूर है आदमी
कहाँ तक ले जाएगा...
कहाँ जाएगा...
ये 21वीं सदी का आदमी
घर–घर में तुमने ही बोए थे
कैक्टस के काँटे
इन लहलहाते कैक्टसों से हो रहे हैं–रक्त रंजित
तड़पते बचपन बीमार यौवन से
सन्नाटा पसरा है दुनिया में।
मूक–अवाक बदहवास
जेट विमानों के
भयानक शोर करते
इंजन के युग में
घुट गई सिमट गई इंसान के अपनेपन की
जानी–पहचानी आवाज।
किसी अंधेरे बिल में
बिलबिलाते झींगुर की तरह जिसके शोर से यह अहसास बचा रहे
धरती पर मानव अभी जिंदा है
देखो ढोकर
कहाँ तक ले जाता है अपने आप को
ये 21वीं सदी का आदमी...

चटाई से चिता तक

— श्री फारुख रुजुल

पुरानी–सी चटाई पर पड़ा हूँ
थका–मांदा पड़ा मैं सोचता हूँ मेरी संतानें थीं मैं जानता हूँ
जिन्हें आँखों का तारा मानता हूँ
कहाँ हैं सब, कहाँ वे खो गए हैं
कि जैसे अजनबी–से हो गए हैं
मैं वर्षों से अकेला जी रहा हूँ
हृदय के आँसुओं को पी रहा हूँ
चटाई पर पड़ा यह सोचता हूँ
मेरी संतानों को यह हो गया क्या मेरी आँखों का तारा बुझ गया
बिगड़ से क्यों गए हैं उनके तेवर
गए क्यों छोड़कर वे अपना ही घर
दरारें पड़ गईं संबंध में क्यों?
बढ़ी हम में हैं आखिर दूरियाँ क्यों?
थका–मांदा चटाई पर पड़ा हूँ मैं केवल यह समझना चाहता हूँ
कि जिनकी उँगलियाँ हाथों में लेकर
बड़े ही प्रेम से चलना सिखाया
उन्हीं संतानों को अब साथ मेरे
नहीं क्यों दो कदम चलना गवारा
प्रतिदिन जिनको कंधों पर बिठाकर
अथक मैं घूमता था, झूमता था
उन्हीं बेटों को लगता बोझ हूँ मैं
समस्या हूँ या सिर का दर्द हूँ मैं
मैं थककर, हारकर औंधा पड़ा हूँ सभी कुछ भूल जाना चाहता हूँ
परंतु प्रश्न यूँ आते हैं मन में
लगी हो आग जैसे कोई वन में
कि उनको मुझ से आखिर कष्ट क्या है
मेरे संग रहने में विपदा ही क्या है
हो उनकी संपत्ति, सम्मान उनका
हो शिक्षा, पद्धति या उनकी सफलता
ये हैं मेरे परिश्रम का परिणाम
केवल मेरे परिश्रम का परिणाम
चटाई पर पड़ा फिर सोचता हूँ चिता पर लेट जाना चाहता हूँ
बस अंतिम माँग है रोगी हृदय की
तड़पते, सिसकियाँ लेते हृदय की
कि कोई जाकर उनको यह बता दे यह मेरी ओर से संदेश दे दे
नहीं है संपत्ति की भूख मुझको
न चाँदी–सोने की है प्यास मुझको
न मुझ को चाह रुपयों, पूंजियों की,
न मेरी माँग मोटर–गाड़ियों की
तथापि ढलती–घटती उम्र को मेरी
अपेक्षा तुम से है संतान मेरी
मेरे बुझते दीए की लौ बढ़ा दो
मुझे अंतिम समय तुम मुक्त कर दो
बस एक मुस्कान और दो शब्द मीठे
मिले तो दर्द–पीड़ा दूर हो जाए
थका–हारा बराबर सोचता हूँ
चटाई को चिता अब जानता हूँ
बता दे काश कोई मेरे बेटों को मेरी सूनी–सी कुटिया के विरागों को
कि मृत्यु आनी है एक दिन सभी को यह दुनिया छोड़ जानी है
सभी को चिता पर लेटकर जलना पड़ेगा
गगन पर धूम्र–सा उड़ना पड़ेगा
परंतु तुच्छ हो जो अपनों का व्यवहार
सगे करने लगे जब दुर्व्यवहार
चिता की आग बन जाता है जीवन
अभिलाषाएँ बन जाती हैं उलझन
अगन बरसाती है भूली हुई यादें
निधन से पहले ही मर जाती हैं साँसें
तो न रहती है जीवित रहने की इच्छा
न रहती है किसी भी तरह का उत्साह
किसी से भी न हँसने–बोलने की
किसी के साथ रोने की न गाने की
न कुछ पाने की न ही कुछ गँवाने की
विजय पाने की न ही हार जाने की
चिता जैसी चटाई पर पड़ा है यह मेरा शव है या मैं खुद पड़ा हूँ
न बल अंगों में न शक्ति है तन में
पर अब भी प्रश्न यह उठता है मन में बस एक मुस्कान और दो शब्द मीठे
क्या मेरे भाग्य में यह भी नहीं है क्या मेरे भाग्य में यह भी नहीं है

बीज का सपना

—श्री सोमदत्त काशीनाथ

बनूँगा मैं भी विशाल वृक्ष
विस्तृत उपवन का एक
जिस पर परोपकार के लिए
लगेंगे सदा फल अनेक।
पनपती है यही इच्छा
अन्तस्थल में हर बीज के,
कहता—एक दिन बड़ा बनूँ
कहलाऊँ शोभा उपवन के।।
हो जीवन मेरा अहं—रहित
मैं चरित्र अपनाऊँ सरल
सभी के प्रति अंकुरित हों
मेरे उर में भावनाएँ निर्मल।
देखूँ सबको अपने सम
बिना द्वेष, बिना खीज के
हृदय होगा करुणा पलित
खोलूँ पंखुड़ियाँ निज की।।
मुझसे पूर्व आए निरंतर,
वृक्ष इस उपवन में कितने
फल देते रहे तब तक
जब तक गए नहीं वे मिटने।
स्वार्थमुक्त परोपकारी होकर,
बाँटूँ फल, जीऊँ मैं भी
हर बीज के मन में
उमड़ी होगी इच्छा कभी।।
वृक्ष ने सोख—सोखकर
निज जड़ों से आजीवन
विविध खनिजों से किया
पत्तों, फूलों—फलों को परिपूर्ण।
कहा मुझसे भी बड़ों से
ले—लेकर सदैव प्रेरणा तुम
बदले में प्रेमपूर्ण खनिजों के
देते रहना फल झूम—झूम।।
अपने सहयात्रियों संग
चाहे रहो समाज में,
या पुष्प से निकलकर
बैठो अकेले फल में।

गढ़ो सदा सपने तुम
उज्ज्वल भविष्य के
उन्नत पुलिंग जितने
उतने ही डालियाँ झुकें।।

समाज के पेड़ छोटे
जीते परिश्रम से अपने
लड़कर झंझावातों से
साहस से बुनते सपने।
बड़ों ने जीवन का सार
निचोड़—निचोड़ दिया जब
मीठा सुनहरा आम
बन पाए हो तुम तब।।
सुनकर पेड़ की बात
बीज कहता—कहीं मैं भी
वृक्ष बन फलों—फूलों से
उपवन में लहलहाऊँगा कभी।।
लेकिन कौन जानता
हाथों में मनुष्य के आने पर
उसकी इच्छा होगी सच
या रहेगी सपना बनकर।।
पेड़ों से फल तोड़कर
अक्सर जो लोग ले जाते,
कहीं बैठकर रसों का
बड़े चाव से आनन्द लेते।
भूल अग्र पीढ़ियों के प्रति
सभी प्रमुख दायित्व अपना,
कूड़े में फेंकते बार—बार
चूर होता बीज का सपना।।
देश में, उसी बीज—सा
युवा पीढ़ी के सपने भी
जब फेंके कूड़े के ढेरों में
बड़े बनेंगे कैसे वे कभी?
समाज में भ्रष्टाचार ही
बन बैठता है शिष्टाचार,
मेहनत और योग्यता पर

फिर कहीं होते विचार?
शासक और शोषक में
जब रहता नहीं अन्तर,
तब सहस्त्रों हृदयों का
मोहभंग होता निरन्तर।
देखो, सहस्त्रों बीज हैं
तुम्हारे चारों ओर पड़े हुए
अपने पेड़ों के सपनों को
पूर्ण करने हेतु अड़े हुए।।

मौका कौन देगा आज
इन अबोध सपनों को?
कौन स्वार्थ—सिद्धि छोड़
समेटेगा बिखरे अपनों को।
उच्च शिक्षा प्राप्त युवक
खो देते हैं विवेक क्यों ?
स्व—हनन से नहीं डरते
हो उनमें क्रोध—ज्वाला ज्यों।।
आज समय—समय पर ढूँढ़ने
जितने भी सुधारक निकलते,
समाधान ऐसी समस्याओं की
क्यों अनजान हैं वे बने रहते?
पनपती उदासीनता सर्वदा
सपनों को चूर होते देखे
सामाजिक बुराइयों के पीछे
कुंठा भी कारण प्रबल एक।।
कहीं हम से भूल न हो
बीज तो मूक हैं हमेशा होते,
यह क्रोध की विक्षिप्त ज्वाला
ज्वालामुखी बनकर न फूटे!
बीज की इच्छा सम विदीर्ण
युवा सपने नष्ट हो न जाएँ,
दायित्व सबका, दिखाएँ राह
आगे बढ़ने के मार्ग भी बनाएँ।।

परी तालाब की अप्सराएँ

— श्री मोहनलाल बृजमोहन

निर्जन कानन के अंचल में था एक सरोवर
हृदय में जिसके बसा था एक लघु द्वीप मनोहर
एकांत प्रांत में वह सरोवर था अति सुंदर
विशाल इतना कि लगता था एक समुंदर
थी शरद निशा नभ में शशि निकला था
स्वागतार्थ जिसका जल में कुमुदनी दल खिला था
चाँदनी रात की मोहिनी छटा अति निराली थी
सरोवर की दिव्य छवि मन मोहने वाली थी
कलाधर ने उस झील को जगमगाया था
भू पर सुनहरा जाल बिछाया था
पादप–पुष्पों पर उजाला लुटाता था
वातावरण स्वर्णमयी का भ्रम उपजाता था
मंत्रमुग्ध मुझे किए जा रही थी सुनहरी चाँदनी
अचानक सुनाई दी एक मधुर रागिनी।
उस लघु द्वीप में छनक उठी पायल छमाछम
मधुर ताल लिए बजने लगा ढोलक धमाधम
खनखनाने लगे मनहर कई कनक कंगन
मधुरिमा लेकर आई सन–सन पवन
अपूर्व सौरभ सुवास लेकर बहा समीर
रहस्य जानने को मन हुआ अधीर
चाँदनी की ज्योत्सना बढ़ गई थी
जल तरंग में आ गई आभा नई थी
सरोवर हृदय में जहाँ था लघु द्वीप मनोहर
छवि बढ़ाते जिसकी मनभावक तरुवर
पाषाण का था जहाँ सिंहासन सुघर
तट से जिसके टकराती थी जल लहर
आश्चर्य! नयन खिले रह गए मेरे
अप्सराएँ खड़ी थीं जहाँ रमणीय कुँज घनेरे
अति लावण्यमयी सुंदरियाँ थीं सभी
ऐसी दिव्यता देखी नहीं थीं आँखों ने कभी
तन्वंगी कोमलांगी गुलाबी रंग की थीं। हर बात अनोखी उनकी
अजब ढंग की थीं
मुस्कुराती–बलखाती–शरमाती थीं
बाल झटकाती, नयन चमकाती थीं। बड़े ही सलोने नेत्र सजे
काजल से
काले–काले लंबे बाल लगते बादल से
विपुल अधरों से जब वे मुस्कुराती
मन पुलक जाता, हृदय में खलबली मच जाती
मुस्कुरा–मुस्कुरा जब वे बातें करतीं
लगता जैसे फूलों की मालाएँ झरतीं
वाणी में माधुर्य का सिन्धु उमड़ आता
अलौकिकता ऐसी, कुछ कहा नहीं जाता
मदभरी वाणी जैसे वीणा की झंकार हो
घुँघरू छमछम बजते मानो सितार हो
घुँघराले काले केशों में सावन की घटा थी
उनके बीच बढ़ गई सुमनों की छटा थी
ठुमक–ठुमक चलती थीं वे सुन्दरियाँ
रूप–यौवन देख जिनका जलती थीं कलियाँ
कुँजों में अपने मंजु तन को छिपाकर
धीरे–धीरे उतारते उन्होंने अपने अम्बर
स्वयं लजाने लगीं देख यौवन–रूप को
रोमांच हो जातीं निरख अपने विपुल तनको
बलखाती वे सभी अप्सराएँ सरोवर में उतरीं
लगता उस प्राकृतिक जलाशय में मणियाँ हैं बिखरीं
थिरक–थिरक मीन सम वे तैरती थीं जल में
दिव्यता छा गई थी उस स्वच्छिल जल में थल में।
निरखता रूप उनका सने जोबन मद से। शशि उतर आया था झील
में नभ से
मंजुल तन को वे सरसिज जल में छिपा लेतीं
लजाती–सकुचाती एक–दूजे को देख मुस्कुरा देतीं
आहा! अपूर्व अलौकिक अद्वितीय सौंदर्य था
बार–बार चन्द्रमा देखता पर बँधता न धैर्य था
अप्सराएँ थीं वे अथवा दिव्य कोई माया
स्वर्ग की जादूगरनी थीं नहीं कोई काया
देख उन्हें हृदय का तार–तार झंझना जाता
नभ बेसुध हो जाता कुछ होश नहीं आता

मेरे पिता

—श्रीमती मधु गजाधर

लाल कपड़े से
बंधा वो
मिट्टी का कलश
और उस के अन्दर
अस्थियों के रूप में
सिमट आये हैं
मेरे पिता।
एक लम्बा–चौड़ा शरीर,
जिसे मैंने 'पिता' के रूप में जाना था,
जिसके कंधे पर बैठ कर मैंने,
हर भय से खुद को
मुक्त पाया था,
जिसकी उंगली पकड़ कर,
मैंने दुनिया की पगडण्डी पर
चलना सीखा था।
आज वो अस्थि के रूप में
इस छोटे–से कलश में समा गए हैं।
कभी सोते–जागते जिस पिता ने
एक सपना देखा था मेरे लिए
मेरे पिता की आँखों का वो सपना
कब कैसे मेरी आँखों में
उतर आया था।
और उन सपनों को
पूरा करने में
कैसे जुड़ गए थे वो'
मेरे साथ,
मेरी हर चाहत को पूरा करते,
मेरे सुख–आराम का खयाल रखते
अपनी जरूरतों का गला घोंट कर
क्या कुछ न जुटाया मेरे लिए
लेकिन धीरे–धीरे पिता,
अब घिसने लगे थे'
खान–पान का ध्यान न रखना
अपनी जरूरतों से समझौता करना
इसलिए
उम्र कुछ जल्दी ही उतर
आई थी उन पर
दीन और दयनीय
और एक दिन
उनके वो सपने
पूरे हुए लेकिन
उन सपनों के फैलाव में
बहुत से नए चेहरे जुड़ गए थे।
एक भीड़–सी घिर आई थी
मेरे इर्द–गिर्द।
पत्नी, बच्चे, दोस्त, क्लब, पार्टी,
पर उस भीड़ में
पिता नही थे कहीं,
क्योंकि मैं.... मैं
उनका बेटा
उच्चता के शिखर पर बैठा
एक बड़ा अफसर बन गया था।
और धीरे–धीरे
अपने पिता की उंगली छोड़ बैठा।
और
न जाने कब कहाँ कैसे
पिता उस भीड़ में खो गए।
दब गए उस भीड़ में।
और मैंने –
हाँ मैंने
उन्हें ढूँढने की कभी कोई
कोशिश नहीं की
क्योंकि मेरे पिता
अब एक पैबंद बन गए थे मेरे लिए
और मैं उस पैबंद को
दुनिया की नज़रों से
छिपाना चाहता था,
शायद पिता भी
बिना कुछ बोले
सब कुछ समझ गए थे।

और इसी लिए
उन्होंने खुद को
बंद कर लिया था एक गुफा में
और एक दिन
उस गुफा में से ही चुपचाप
मेरे पिता ने
अनंत यात्रा को प्रस्थान कर लिया।
चले गए दूर ...बहुत दूर
चिट्ठी पत्री की सीमाओं से भी दूर।
फोन और ई–मेल की दुनिया से दूर।
मृत्यु के साथ ही
पिता अब
पैबंद के दायरे से बाहर निकल आये थे।
फिर से बन गए थे मेरे पिता।
एक बड़े आदमी के पिता।
भीड़ भर गयी है
मेरे आँगन में,
सहानुभूति के शब्द, लोगों का आलिंगन,
शोकग्रस्त चेहरे
और मैं,
दुनियादारी को निभाता
सबकी दृष्टि का केंद्र बना
लोगों से घिरा
खड़ा हूँ।
सामने है पत्नी और उसकी गोदी में ,
मेरा पुत्र,
मैं एक नजर देखता हूँ अपने बेटे की ओर,
मेरी जान, मेरा लाड़ला मेरा पुत्र।
क्या न कुर्बान कर दूं मैं तुझ पर।
तभी...
न जाने क्यों मेरी हथेलियाँ
जकड़ जाती हैं कलश के इर्द–गिर्द।
मेरी हथेलियों में जकड़ा
मिट्टी का कलश,
और उसमें रखी
पिता की अस्थियाँ
पंडित का मंत्रोच्चारण
और तब ही
मेरे हाथ कँपकँपा कर
मेरे बेटे के हाथ बन जाते हैं।
कलश में रखी अस्थियाँ
मेरी अपनी
अस्थियाँ बन जाती हैं।
खुद की जगह मैं
अपने पुत्र को देखता हूँ।
सर मुंडाए हुए।
उन सबके बीच मेरा 'मैं'
झुलस रहा है।
नहीं ..नहीं
मैं बुरी तरह से घबरा जाता हूँ,
पश्चात्ताप की अग्नि में नहीं
अपने लिए उत्पन्न हुए भय से
क्या कल ये कहानी मेरे साथ भी दोहराई जायेगी ....
क्या कल मैं भी यूं ही .....
क्या कल मेरा पुत्र भी मेरे साथ ...
उफ्फ...
मैं फूट–फूट कर रो उठता हूँ।
लोग व्याकुल हो जाते हैं,
मेरे रुदन से
मुझे सँभालने लगते हैं।
पत्नी गोद में लिये बेटे के साथ
मुझे सम्भालने लगती है।
लेकिन
मैं जानता हूँ ,
मेरा मन जानता है
कि मेरा ये रुदन
मेरे मृतक
पिता के लिए नहीं
ये रुदन तो
मेरे अपने लिए है...
मेरे
आने वाले कल के लिए है...

शान

—श्रीमती कल्पना लालजी

आज इन ढहती इमारतों को देखा,
हैं तो ये हजारों साल पुरानी।

पर अब भी बड़ी शान से खड़ी,
कहती हैं वही कहानी।

मजाल थी कोई भी इनके सामने,
जरा सी गुस्ताखी कर जाए।

रौशन कभी इनसे था जमाना,
अब भला कैसे ये समझाएँ।

पत्थरों पर खुदी अनगिनत दास्तानें,
कब तक छुपाएँ
अपने फसाने।
सिसक रही रूहें भीतर तलक उनकी,
तमाशा बन गई हो जिंदगी जिनकी वो शानो शौकत
वो हँसी नजारे,
खाक में मिल कर रह गये हैं सारे।

वो बादशाहतें वो सल्तनतें
न जाने खो गई हैं अब कहाँ।

मिटा देती है जो हसरतें पल में,
ऐसी शख्सियत रखता है ये जहाँ।

संगमयुगी-शांतिदूत

—डॉ. संयुक्ता भवन रामसारा

मौन हूँ मैं
क्योंकि
देखा, अभी तक चल रहा कुरुक्षेत्र-युद्ध ही यहाँ
किस-किस को रोकूँ-टोकूँ यहाँ
मौन हूँ मैं
क्योंकि
संघर्ष किया बहुत कि परिवर्तन आये,
पर टकरा-टकराकर बिखर गया,
थक गया
इसलिए आज
मौन हूँ मैं
क्योंकि
बाहरी दुनिया लगती है अनजानी,
परायी-सी
बहुत कुछ हो रहा जो मन को भाता नहीं
फिर भी मौन हूँ
क्योंकि
रात्रि में दिख गया अचानक सवेरा मुझे
खुल गया दिव्य-ज्ञान का तीसरा नेत्र
मौन हूँ मैं
क्योंकि
बदल सकता नहीं किसी को
अब, खुद को बदलना है मुझ को
मौन हूँ मैं
क्योंकि
कर नहीं सकता किसी की वकालत
बनना है साक्षी-द्रष्टा ही मुझे
मौन हूँ मैं
क्योंकि
राज समझ लिया जीवन-नाटक का
बस कठपुतली हैं हम इस सृष्टि-चक्र का

मौन हूँ मैं
क्योंकि
अन्तर्मन के ऊहापोह से दूर
मैं आत्मा शांत-स्वरूप हूँ, निजी स्वधर्म यही मेरा
मौन हूँ मैं
क्योंकि
मैं जानता हूँ अभी है कलियुगी-सरिता प्रवाहमयी
चंचल-धारा अब उमड़-घुमड़
इधर-उधर ही बहेगी
मौन हूँ मैं
क्योंकि
ज्ञानोदय हुआ, हर आत्मा की
अपनी-अपनी है भूमिका
बंधे हुए हैं सब अपने ही कर्मों के भंवर में
फिर भी मौन हूँ
क्योंकि
अब देखते हुए नहीं देखता
अब सुनते हुए भी नहीं सुनता
मौन हूँ मैं
क्योंकि
अनुभव हो चुका काफी
अब नहीं कोई जिज्ञासा बाकी
मौन हूँ मैं
बस, पावन सकाश अब दे रहा सर्व को
हम सब हैं एक ही बीज के फूल, इस बगिया के माली भी एक है
इसलिए
अब सदा मौन हूँ मैं, सदा मौन हूँ मैं।

याद आता है अब घर अपना...

– श्रीमती बिंदेश्वरी अग्रवाल

जाती हूँ भारत जब–जब मैं अब सब बदला लगता है,
फिर भी उन पतली गलियों में कुछ–कुछ अपनापन लगता है।
जाड़े के दिन धूप में बैठे मन्दिर पर बातें करते थे,
ऊन–सिलाई लेकर स्वेटर बैठ वहीं बुना करते थे।
अब जाती हूँ तो दादी के घर अलाव नहीं जलता है,
जलते उपलों में भी अब शकरकंद नहीं भुनता है।
दादी के घर में भी अब सन्नाटा–सा लगता है,
फिर भी उन पतली गलियों में कुछ–कुछ अपनापन लगता है।
छोटे बच्चे दीदी कहकर मुझसे लिपट–लिपट कहते थे,
दीदी हमें समोसा ला दो पेंसिल वे माँगा करते थे।
आज वे बच्चे बड़े हो गये वे अब मां–बाप बन गये।
कुछ बच्चे तो अभी बड़ी हैं कुछ बच्चे परदेशी हो गये।
अब बेटी, बहू, बुआ कहती हैं, दीदी कोई नहीं कहता है।
फिर भी उन पतली गलियों में कुछ–कुछ अपनापन लगता है।
होली में घर–घर में जाकर गुझिया पूड़ी खाती थी,
पहन के बढिया–बढिया कपड़े होली मेले में जाती थी।
सबसे मिलन यहीं होता था सभी गले मिला करते थे,
गुलाब जल की पिचकारी से प्रेम से हम भीगा करते थे।
वे ही गलियाँ सूनी हो गयीं सब अनजाना–सा लगता है,
फिर भी उन पतली गलियों में कुछ–कुछ अपनापन लगता है।
घर में था छोटा सा पट्टू अब वह पिंजरा खाली लगता है,
जिसमें पक्षी लाल थे रहते वह पिंजरा सूना लगता है।
जिस कमरे को लीप–पोत कर मैं सुन्दर–सुथरा रखती थी,
चाहे कितनी झंझा आये मैं तो वहीं पड़ा करती थी।
आज उसी को देख–देख कर मेरा मन झिझका करता है,
फिर भी उन पतली गलियों में कुछ–कुछ अपनापन लगता है।
बिजली थी जो कभी न जाती, पानी सारे दिन आता था,
भरकर घड़े-सुराही रखती पानी खूब ठंडा लगता था।
दरवाजे पर मट्ठा बिकता, दही द्वार पर मिल जाता था,
चाट बेचने वाला भी खट–खट तवा नहीं करता था।
गाय बाँधने वाला हिस्सा अब खाली–खाली लगता है,
फिर भी उन पतली गलियों में कुछ–कुछ अपनापन लगता है।
संस्कृति सारी छिन्न हो गयी घूँघट अब सपनों में है,
देख पश्चिमी पोशाकें लगता क्या भारत में है।
शालीनता की मूर्ति बनी नारी आभूषण से सजती थी जो,
सिन्दूर उतार पैंट पहन अब मर्दों–सी वह लगती है
भारत की वह गरिमा में कुछ–कुछ नया–नया सा लगता है

इंतज़ार

– श्री अनिल पुरोहित

मैं एक
कल का मुसाफ़िर
भागता, फिर रहा कल की तलाश में,
छोटा–सा दीया
वर्तमान का
हाथ में लिए,
न जाने कितने
मौसम गुजर गए
इन आँखों में
कल के सपनों के लिए,
कैसी यह एक मरीचिका
झिलमिलाते से मंज़र
तैरती स्वप्निल आशा
ओझल हो जाता सब
वहाँ पहुँचने के पहले
इतना लंबा जीवन का सफ़र
गुंथा पल–पल की
जंज़ीरों में छिन–छिन गुज़रता समय
अनवरत लगा
अपने ही में समेटने
आने वाले पल को
अपनी ही आवाज़ गूंजती
कभी टकरा कर आती
इन खंडहरों से, कभी गुम हो जाती
इन जंगलों में
अभी तक इंतज़ार
एक कल के लौटने का
तब तक विश्राम नहीं
ना मुझे,
न मेरी अथक
चाह को...

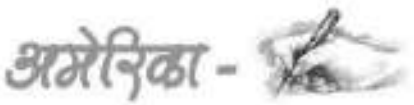

अमेरिका -

आँखों का उलाहना

–श्री कृष्ण वर्मा

देती हैं मेरी आँखें
मुझे नित्य उलाहना
बेवक्त जगाने का
यह तुमने क्या ताना
चर्राया यह क्या तुम्हें
कविताओं का शौक
लगा कहाँ से लिखने का
यह संक्रामक रोग
आँखों को शिकायत है
मेरी कविताई से
उल्लू–सा जगा रखते
भावों की लिखाई में
ख्यालों के शिकंजे में
जब–तब घिर जाते हो
बेचैन हृदय होता
सजा हमें सुनाते हो
दिल बंजर धरती–सा
न पानी न माटी
जाने दुख–सुख की कैसे
चित्तवृत्ति उग आती
घंटों तार्कें शून्य में हम
नभ की गहराई में
इक वाक्य बनाने को
शब्दों की जुटाई में
सोचों का सफर लम्बा
कर–कर हम थक जातीं
दरबान–सी पलकें भी
झपकन को तरस जातीं
कविताओं का घुन कुतरे
नींदों के किनारों को
बरबस तुम बाँधा करो
बेबाक विचारों को
ये भाव निगोड़े क्या
मकड़ी के भतीजे हैं
बिन ताने–बाने के
कविता बुन लेते हैं
दिन–रात मगजमारी
इक कवि कहलाने को
शब्दों को उमेठते हो
कुछ तालियाँ पाने को
जब तक कलम चले
हमें संग जगाते हो
भावों के प्रवाहों पे
क्यूँ न बाँध लगाते हो
यह कविताएं क्यूँ
फिरें दिन में आवारा
जब कौली भरे रजनी
खटकाती आ मन द्वारा।

अमेरिका

कनाडा -

स्वरूप सत्य का

–श्रीमती रेखा मैत्रा

स्वरूप सत्य का ....!
न तोड़ो – मरोड़ो इसे दोस्तों!
खुशबू से महकता फूल है ये!
गर तुमने मरोड़ा इसे भूल से
तो सारी पंखुड़ियाँ ही झर जाएंगी
और खुशबू भी इसकी बिखर जाएगी
इसका सादा–सा रूप बिगड़ जाएगा
बस एक ठूँठ–सा रह जाएगा
फिर चुभेगा तुम्हें चेतना की परत में!

पाठशाला

–श्रीमती रेखा मैत्रा

मन भाव एक हो ज्ञान बढ़े,
अज्ञान से निर्भय, डट के लड़ें,
मिल कर बोलें एक दीप सभी,
जिससे हर घर में उजाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे
बस एक पाठशाला हो...

सदियों से अँधेरा घना बहुत,
मन को अपने ले मना बहुत,
एक दृढ़ निश्चय कर आगे बढ़,
कुछ करने को मतवाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

तेरे मन में चोर तू पाएगा,
वो तुझको बहुत सताएगा,
तेरी राह में कितनी बाधा हों,
हरगिज तू न रुकने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

इस जहाँ में नाना कष्ट, समझ,
कुछ जग से ले, कुछ अपनी समझ,
मिलजुल कर ऐसा हल ढूँढ़े,
जिसे पा कर जग ये निराला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

आपस में लड़ कर क्या होगा,
पथ काँटे बो कर क्या होगा,
यूँ धीरज खो कर क्या होगा,
बन निडर तू, हिम्मतवाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

होंगे कुछ जो नादान भी हों,
हो सकता है अनजान भी हों,
शायद वो कुछ असुरक्षित हों,
तू उन सब का रखवाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

इस सर्द फिजा से घबरा कर,
कुछ लोग डगर से भटकेंगे,
कुछ लोग गर्मियाँ ढूँढ़ेंगे,
तू उनके लिए दुशाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

पशुओं से बदतर जी रहे हैं,
घुट-घुट जी, आँसू पी रहे हैं,
इन लोगों को जा कर दिखला,
कहीं पास में जो गौशाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

शुरुआत बहुत ही कठिन होगी,
कुछ राहें बहुत जटिल होंगी,
हर एक कदम पे ले ये प्रण,
तेरा कदम न मुड़ने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

जंग कोई भी हो आसान नहीं,
तेरी होगी जीत, तू मान सही,
बन आप सबल, नहीं होगा विफल,
तेरे हौसले एक हिमाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

पथ में रुकने का नाम न ले,
बढ़ता जा कोई थाम न ले,
हो ऐसी लगन तेरे मन में,
ज्यूँ एक धधकती ज्वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

जो मन मैले हैं उनको छू,
उनसे मत करना नफ़रत तू,
ले ज्ञान का जल कर दे निर्मल,
मन तेरा कभी न काला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

ले साथ में सबको मिलकर चल,
हो साथ एक के एक का बल,
एक और एक ग्यारह का बहुबल,
फौलाद-सा तूने ढाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

कुछ खींचेंगे तेरे पाँव, सतर्क!
कई लायेंगे कई तर्क-कुतर्क,
उनमें फँस कर रह जाना न,
ज्यूँ मकड़ी का कोई जाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

सब तोड़ दे दीवारें बढ़ता चल,

हर कदम पे तेरे हो हलचल,
तेरे हाथ में ले ले वो बाबी,
खुल जाए कोई भी ताला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

तेरी सेना भरी हो जोश में जब,
ले–ले कमान तू हाथ में तब,
निर्भय, दबंग, लेकर उमंग,
करे झट प्रहार एक भाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

जुल्म की जड़ें फैली गहरी ,
निर्बल के लिए तू बन प्रहरी,
आश्रय दे उसे जुल्मों से बचा,
ज्यूँ माँ ने शिशु को पाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

ले–ले प्रण जीवन का ऋण,
तुझे देना है एक–एक तृण,
सर्वस्व लूटा कर लक्ष्य को चूम,
जैसे अमृत का एक प्याला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

जीवित रह जीवन से हैं दूर,
अज्ञान मात्र है इनका कसूर,
जप सकें जो हरदम ज्ञान मंत्र,
हर हाथ में ऐसी माला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

तू द्वार खोल दे मतवाले,
आयेंगे बहुत पीने वाले,
ये ज्ञान की गंगा जहाँ बहे,
ऐसी भी एक मधुशाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

अज्ञान से है मानव की सनक,
न समझा है मन की वो कसक,
निज बल का नशा छाया उस पर,
ज्यूँ पिया मद का प्याला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

कुछ सीखने को आतुर होंगे,
पर ऐसे न सभी चातुर होंगे,
औरों को जिससे सबक मिलें,
तूने जीवन ऐसा ढाला हो
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

आगे बढ़ अब बिलकुल न लजा,
सबके खातिर संग्राम सजा,
तेरे साथ चलें ले हाथ ध्वजा,
बैठा ना कोई भी ठाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

कर दे, ये संभव हो जाए,
जन–जन को अनुभव हो जाए,
इस युग में ऐसा हो जाए,
हर एक के मुँह में निवाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

नायक बन तू निर्णायक बन,
विजय गीत का तू खुद गायक बन,
सब एक ही सुर में मिल के बढ़ें,
ऐसा तू गानेवाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

एक नयी क्रांति का बिगुल बजा,
एक नए विश्व का रुप सजा,
सब स्वागत करें नए युग का,
वो समय जो आने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

हैं कई ज़हर के बीज लिए,
उर घृणा का तावीज लिए,
वो बोयें कितनी ही नफरत,
तू प्यार बाँटने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
ये विश्व वसुधैव कुटुम्बकम्,
तू मंत्र फूँक दे जन–जन में,
जो हर दु:ख का हरने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

गर राह बहुत काँटे होंगे,
ये काँटे जिसने बाँटे होंगे,
उन सबकी राह में फूल बिछा,
ना पाँव किसीके छाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

बदले का चलन, आपस की जलन,
सब भूल के सिखला सबको मिलन,
इस आग में झुलसे कई बदन,
तू आग बुझाने वाला हो,

कनाडा -

शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

एक परिवर्तन जो लाना है,
एक लक्ष्य जो तूने ठाना है,
शामिल हों, उसको सब समझें,
ऐसा समझाने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

सब सम है, ये समझना है,
तुझे भेदभाव मिटाना है ,
मानवता एक ही मज़हब है,
जिसका हर मानने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पातशाला हो...

कई बैठे ठेकेदार यहाँ,
जो करते हैं व्यापार यहाँ,
तुझे दाम मिलेंगे मुँह माँगे
पर तू ना बिकने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

जब कदम उठे तेरा आगे,
जो सोते हैं वो भी जागें,
ताकत बन तेरे साथ चलें,
तू उनको जगाने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

सदियों से दुःख सुख सहते हुए,
गम एक दूजे से कहते हुए,
ये जीते रहे इसे भाग्य समझ ,
तू भाग्य बदलने वाला हो ,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

इनको समझा अधिकार है क्या,
मर–मर जीना स्वीकार है क्या,
गर मिलें नहीं फिर छीनना है,
तू अधिकार दिलाने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पातशाला हो...

लोभी, दंभी, पथभ्रष्ट हैं जो,
ऐसे शासक बेहतर है न हों,
इन्हें दंड मिलें, मुजरिम हैं ये,
तू दंड दिलाने वाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

हो महाक्रांति, ले हाथ ध्वजा,
एक आज नया कुरुक्षेत्र सजा,
वो सैकड़ों की तादाद सही,
तू सारथी–रथ, रखवाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

सब संभव है, बस तू मन बना,
एक–एक क्यारी, नव चमन बना,
अज्ञान के तम का हरण हो,
और ज्ञान का बोलबाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

ये ज्ञान की प्यास बनाए रख,
सूरज की आस लगाए रख,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
हर दिशा में ज्ञान उजाला हो,
शिक्षित हो, मन में स्वयं तेरे,
बस एक पाठशाला हो...

यूरोप -

हर साँस

– **श्री गौतम लियु**

हर साँस है एक हाँ बिना शर्त के जीवन का अंगीकार
हर साँस
हर साँस है
एक जिद
बावजूद अनगिनत काँटों के
नंगे पाँव आगे बढ़ने की
निश्चित
पर साथ ही
हर साँस है
एक आस
मिन्नत–सी
ज़िंदगी के नए सवेरे से जीते जी मुक्त होने की

व्यथा सींग की

—श्रीमती चंपा बोसिट्सुमुनी

आप तो ठहरे सृष्टि के औवल रचना मानव
फिर क्यों पल रहा है तेरे अंदर यह दानव… क्या भूल गए हो तुम
जीवन का मोल… क्यों खो रहे हो तुम अपनी मनुष्यता अनमोल…
लोभ और लालच के पथ पर
क्यों पाल रहे हो तुम सीने में पत्थर…
बस एक लघु सींग के खातिर
एक विशाल अस्तित्व का अंगभंग
क्यों रे काफिर
चंद पैसों की झलक—झुका दिया स्वाभिमान तेरा
तेरी दलदली इंसानियत पर एतबार अब न रहा
धरा हमारे देश की आज ठिठुर रही है
घनघोर विप्लवों से जूझ रही है आहें भरी सिसकियाँ व्योम से
पुकार रही है त्राहि—त्राहि
लुप्त हो रहा है, लुप्त हो रहा है हमारे बगिया का गौरव
हमारे बच्चों की विरासत छीन रहा है मानव
जो कर रहे हैं मेरी छाती पर मौत का तांडव
भूल गए हैं वे कि गैंडा भी मेरे जिगर के टुकड़े हैं
मेरे ही गर्भ से जन्मे मेरे लाल हैं मेरी गोद आज लहूलुहान
तड़प—तड़पकर दम तोड़ रहे असहाय बेजुबान
ईश्वर की यह बगिया है हम सब का
कण—कण में है वास उसी का
लाज रखो ए मानव… लाज रखो…
सोए हुए जमीर को जरा जगाओ
आनेवाली पीढ़ी के बारे में सोचो
देर न करो… देर न करो कहीं गैंडा भी न बन जाए हमारे
दास्तानों का प्रलंब
डोडो—डायनोसोर की भाँति एक काल्पनिक प्रतिबिम्ब…

फिर से मानव

—श्रीमती संगिता महाराज

हमारी पहचान भारतीय,
परंतु अखिल भारतीय कहे जाते हैं
यह कालापन हमारी विरासत है, हम क्या हमारे प्रभु काले हैं,
राम तो राम थे,
पर यदुनंदन का नाम ही, कृष्ण था काला था
अर्थात कालापन हमारा सम्मान है, इसे अपमान का लिहाफ न पहनाओ
वहीं तो मथुरा काजल की कोठरी है जो भी आएगा मथुरा में
काला ही होगा, राम काले कृष्ण काले और तो और
नील कंठ यहीं कहे जाते हैं।
पर भोलेनाथ, जरा मेरे भाग्य को देखो
हम काले न थे, हम भी देव तुल्य थे,
आपने एक बार कालकूट पिया और नील कंठ बने
परंतु आज का भारतवासी और वह भी निर्धन,
रोज अशिक्षा और अपमान का कालकूट
लाचार होकर पीने को विवश है इसलिए उसका सारा शरीर
विषक है, और हर निर्धन आज कालकूट पिए है
प्रभु कब आओगे? राह दिखाओगे,
भारत विश्व—गुरु रहा है, परंतु आज हम भारतवासी अनेक प्रकार
के हलाहल पी रहे हैं
अब तो यदुनंदन को भेजो… कहाँ है वह? कहते हैं भक्त वत्सल है
वो, पर,
न जाने क्यों? आज तक हम अनसुने हैं उनसे कहें कि आकर
भारत भूमि को फिर से राम—कृष्णमय बना दे,
हमें फिर से मानव बना दे हमें फिर से मानव बना दे…

निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों ?

— प्रेरणा मित्तल

बहुत बार पूछा है तुमसे, निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों?
मैं जो भी धागा बुनता हूँ, ग्रंथि उसी में पड़ जाती है।
मेरा भाग्यलेख लिखते क्षण, कलम नियति की टूट गई थी,
और मिली जब कलम दूसरी, मसि की प्याली फूट गई थी।
या तो कह दो यह सब सच है, या फिर उत्तर दो किस कारण?
जान-बूझकर अपनी किस्मत, अपने ही से रूठ गई थी,
बहुत बार पूछा है तुमसे, निर्मोही अब तो कह दो क्यों?
एक कदम जब मैं बढ़ता हूँ, मंजिल दो डग बढ़ जाती है।
बहुत बार पूछा है तुमसे, निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों?
लहरों से लहरा-लहरा कर, झंझाओं से जूझ आया हूँ।
और कूल पहुँचने की आशा में, पाषाणों से टकराया हूँ।
विश्वासों का विष पीता हूँ, फिर भी साँस बहुत बाकी है।
पंथ अपरिचित छोड़-छोड़कर, परिचित पर ही टकराया हूँ।
बहुत बार पूछा है तुमसे, चिर-परिचित अब तो उत्तर दो?
क्यों कर अपनी नाव जलधि में, अपने ही से लड़ जाती है।
बहुत बार पूछा है तुमसे, निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों?
मधुमासों का मोह त्यागकर, पतझरों को गले लगाया।
दिन की जब हर घड़ी सो गई, निशि का भी मान जगाया।
पात-पात जब गिरा धरा पर, शूलों से अनुबंध कर लिया,
किन्तु शूल अनुबंधों का भी, मूल्य समय पर चुका न पाया।
बहुत बार पूछा है तुमसे, अरे अकिंचन ! कह दो क्यों कर?
खिलने से पहले ही अपनी गंध गगन पर चढ़ जाती है।
बहुत बार पूछा है तुमसे, निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों?
अभिमानों से दूर बहुत हूँ, अभिशापों से अपनी दूरी।
माप नहीं पाया हूँ अब तक, जीवन के पथ की मजबूरी।
यश सागर के तट पर बैठा, गिनता हूँ जीवन की लहरें।
किन्तु कभी भी बुझा न पाया, सम्मानों की प्यास अधूरी।
बहुत बार पूछा है तुमसे, पथ विचलित! बतला दो क्यों कर?
सर ऊँचा होने से पहले, दृष्टि धरा में गड़ जाती है।
बहुत बार पूछा है तुमसे, निष्ठुर अब तो बतला दो क्यों?

सिंगापुर, एशिया

लेखकों से

— सुश्री एस.एच.एन. दुलांजलि

लेकर तलवार हाथ में
ढूँढ़ते हो तुम ओस की बूँदें
सूरज हो तुम
जगा सकते हो सारे संसार
को
पर

छिप जाते हो
बादलों की गोद में
क्रांति हो तुम
पर

रम जाते हो चूड़ियों में
सिंधु हो तुम
पर

न लाते तूफान
प्रसन्न हो जाते हो
अपनी लहर पर नाचनेवाली
चंद्रमा की किरणों से
तीर हो तुम
फोड़ सकते हो शिलाएँ
पर

बार-बार दुहराते हो
अपनी ही व्यथाएँ
मेघ गर्जन है तुम्हारे हृदय में
पर
तुम रम गए हो अधूरी
कामनाओं में
गान हो तुम वीरता का
गूँजता नहीं सिर्फ गुनगुनाता
शेर हो तुम दुनिया के राजा
पर

कैदी हो अन्याय की गुफा में
पंख हैं, पर नहीं उड़ पाते
गगन में
मीन पक्ष हैं, पर नहीं तैर पाते
उमड़ते तूफानों में
सह लेते हो पीड़ा
पर

नहीं ललकारते
दुहराते हो वही पुरानी कहानी
मौत की
शांति की बाल किरणें झाँक
रही हैं आसमान से
नई आशाओं के पेड़-पौधे
जन्म लेते हैं मही के कोख से
तुम्हीं हो वह क्रांतिकारी
जिसका
सदियों से हमें इंतजार है
ले आओ रोशनी
लेखनी के अँधेरे संसार में।

अवर्णीय विषमता

—श्री जगराज सिंह

धरती पर भेजा था उसने,
सर्वोत्तम श्रेष्ठ प्रजाति को
मानवता के रक्षक बनकर,
अपना धर्म निभाते रहें।
निकले क्रूर अज्ञानी भक्षक,
दानवता में चूर हैं इतने
दास बना लिया निर्दोषों को,
प्रजातंत्र का मंत्र कहें।।
भोजन विकट समस्या इनकी,
संघर्षों से जूझें निशदिन
बूंद–बूंद को लड़े परस्पर,
पानी है सोने से बढ़कर।
कृषि पड़ी शुष्क पानी बिन,
पशु थके कीचड़ को पीते
आत्मदाह करते ये घूमें,
बृहद–बृहद वृक्षों पर
चढ़कर।।
बोझ कुटुम्ब का इनके सिर
पर, ऊपर से बढ़ती मँहगाई
कठोर परिश्रम करें रातदिन,
रुपये दो सौ मात्र कमाते।
वे बुद्धिजीव सर्वश्रेष्ठ नरोत्तम,
ज्ञानी और गुणी इतने हैं
क्षणिक मानसिक कसरत के
बल,
पंद्रह लाख नित्य लेकर
जाते।।
अधिकांशत राष्ट्रों में,
अवाँछनीय तत्व शासक बने
बनाने का श्रेय भी तो, इन
पूँजीपतियों को जाता है।
पूँजीवाद को बढ़ाना, एकमात्र
है लक्ष्य इनका
फिर मिटाना इन निर्धनों को,
स्वाभाविक हो जाता है।।
राजभोग आहार है उनका,
भूख तड़पते ये बेचारे
मानवता का ज्ञान मित्रवर,
प्रसारित करना होगा।
अधिक फेंक रहे भोजित से
भी, देख तरसते ये नादाने
भूख मिटे इस धरती से अब,
आत्मचिंतन करना होगा।।
मंडरा रहे हैं बादल, गृहयुद्ध
के सारे विश्व में
स्थिति विस्फोटक है, जहाँ
तक भी दृष्टि जाती है।
धनी एवं निर्धन की दूरी,
बढ़ती हुई देखकर
वेदना स्वाभाविक है,'गज
चिंता मुझे सताती है'।।

हिमाद्रि हूँ, तुंगभद्रा हूँ

—श्रीमती समीक्षा तैलंग

हिमाद्रि हूँ मैं !
श्वेत आवरण से ढकी,
अस्मिता की रक्षा करने,
सशक्त हूँ, सुदृढ़ हूँ–
हिमालय–सी,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

तुंग हूँ,
तुंगभद्रा हूँ,
हिम–सी कड़क हूँ,
या पानी–सी विह्वल,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

प्रांजल हूँ,
उदगमस्थल हूँ,
प्राकृत हूँ,
प्रकृति की रक्षक हूँ,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

धवल हूँ,
उज्ज्वला हूँ,
शुद्ध मन का ध्यान हूँ,
ॐ का ओंकार हूँ,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

ब्रह्म हूँ,
ब्रह्मांड हूँ,
शिव हूँ, उनका नाद हूँ,
तांडव या नटराज हूँ,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

भक्त हूँ,
शक्ति हूँ,
मंत्र का ही तंत्र हूँ,
उस शक्ति का अवतार हूँ,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

गर्व हूँ,
गौरव हूँ,
महिम की महिमा हूँ,
या तेज–प्रताप हूँ,
पर हूँ मैं हिमाद्रि ही।

नोबल पुरस्कार के सौ साल

–डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव

आज देखता हूँ मैं नभ में,
एक सितारा उज्ज्वल है, सौ सालों से चमक रहा है
भारत का वह गौरव है। साहित्य, कला, संगीत क्षेत्र का एक समर्पित साधक था,
सरस्वती का वरद पुत्र
वह वीणा का वादक था
उसके स्वर लहरों में गूंजित
'गीतांजलि' लहराती थी, सौ बरसों के बाद आज भी,
अमृतधारा बरसाती है
उसने फैलाया बंग देश में अपना अनुपम गीत, घर–घर में स्थापित है
वही 'रविंद्र संगीत'।
आदर के शब्दों में उनको
'गुरुदेव' कहते हैं, 'रवींद्र नाथ टैगोर' नाम से
चर्चित हैं कला जगत में, इसी नाम से विश्व मंच पर
बसते हैं जन मानस में
सन् तेरह, बीसवीं शताब्दी वह शुभ दिन गौरवशाली था, जब नोबल
पुरस्कार का तमगा उसने पाया था,
भारत के हर गाँव–गाँव में स्वाभिमान लहराया था
प्रथम व्यक्ति इस महादेश का
जिसने पाया यह पुरस्कार, तन गुलाम पर मन स्वतंत्र
लोगों ने देखा यह चमत्कार
देश भक्ति का अथक पुजारी
गाँधी का सहगामी था, 'जन गण मन_' का रचनाकर्ता
मन ही मन आह्लादित था
यही हमारा राष्ट्रगान है
जिस पर देश समर्पित है
सौ बरसों का यह इतिहास
आज हमारे आगे है
'गुरुदेव' को नमन करें हम यही हमारा अर्पण है।

ज़रा रोशनी मैं लाऊँ

–डॉ. भावना कुँवर

छाया घना अँधेरा
ज़रा रोशनी मैं लाऊँ
ये सोचकर कलम को
मैंने उठा लिया है..
घूमें गली–गली में
नर–वहशी और दरिंदे
तड़पें शिकार होकर
घायल पड़े परिंदे
उनके कटे परों पर
मरहम लगा दिया है।
ये सोचकर कलम को
मैंने उठा लिया है..
साजदे में झुकते सर भी
रहते कहीं सलामत
पूजा के स्थलों में
आ जाये कब कयामत
नफरत पर प्रेम का रंग
थोड़ा चढ़ा दिया है।
ये सोचकर कलम को
मैंने उठा लिया है..
ढूँढें डगर कहाँ जब
कानून ही है अंधा
मर्ज़ी से इसको बदलें
नेताओं का है धंधा
आँखों में आस का अब
दीपक जला दिया है।
ये सोचकर कलम को
मैंने उठा लिया है..

चल पड़ी है वेदना

—श्री हरिहर झा

खुशी की राहें भटकती
मोड़ पर, हर राह पर
आँसुओं में डूबती लो चल पड़ी है वेदना।
नैन जलते थे
अंधेरी व्यथाओं की आग में
सांग काजल देख कर
चौंके, अचंभित हो गये
गमों की बरसात फैली
अधर तक सूने हृदय से
रक्त लाली से मिला
तो होंठ कंपित हो गये
चटकीले सिंगार में
बावरी हरषाये क्यों?
लीपापोती व्यर्थ, अब क्यों छुपाती संवेदना।
वियोग बन कर प्रेम,
धमनी में बहा मिल रुधिर से
सुकून छोड़ा, दर्द पाने
दुर्दैव से लपक पड़ा
पीड़ा बनी हाला
दिल के आइने से शुरू हो
मदिर रस जो बह रहा था
नैन से टपक पड़ा
शून्य तक साकी की नजरें,
जाम जो पीड़ा बना
तीर ने चाहा निकल कर बादलों को छेदना।

बेटियों का अब जमाना आ गया

— डॉ.पूर्णिमा राय

बेटियों का अब जमाना आ गया।
हार में भी मुस्कुराना आ गया।।

रोज परचम जीत का लहरा रहीं
आस उन पर भी लगाना आ गया।।

लाडले बेटे अगर माँ-बाप के
प्यार बिटिया पर लुटाना आ गया।।

फौज में भर्ती हुई जब बेटियाँ
गर्व से सीना फुलाना आ गया।।

अब नहीं कमज़ोर जग में बेटियाँ
राह के कंटक हटाना आ गया।।

वे सदा हक के लिये लड़ती रहीं
फर्ज उनको भी निभाना आ गया।।

दाद दे दें जिन्दगी का हम उन्हें
'पूर्णिमा' बन जगमगाना आ गया।।

दर्द दिल का

—श्री मनोज भावुक

दर्द दिल का सहा नहीं जाता
अब तो तुम बिन रहा नहीं जाता
ख्वाब में रोज आ ही जाती हो
तुमसे भी तो रहा नहीं जाता
तंग करने की मुझको आदत है
क्या करूँ बचपना नहीं जाता
खुद के भीतर उतर गया हूँ मैं
अब किसी पे हँसा नहीं जाता
सच से उनको बुखार आता है
झूठ मुझसे कहा नहीं जाता
जीतना है तो शेर सा जीतो
हर जगह काफिला नहीं जाता
क्या करूँ तुम बसी हो साँसों में
दूर तुमसे हुआ नहीं जाता
राहें मुश्किल हैं साथ आ जाओ
अब अकेले चला नहीं जाता
लाख मुजरिम है फिर भी उसके खिलाफ
कोई भी फैसला नहीं जाता
उनके चेहरे पे है बहुत मेकअप
चाह के भी पढा नहीं जाता
जिसको भगवान पर भरोसा है
आदमी वो छला नहीं जाता
टूटती रहती हैं उम्मीदें मगर
ख्वाबों का सिलसिला नहीं जाता
खुद का सूरज उगाओ ऐ 'भावुक'
रातों का सिलसिला नहीं जाता

एक राह के मुसाफ़िर

—श्री धनराज शंभु

एक राह के मुसाफिर कितने अनजान हैं हम
आशियाने के पंछी कितने बेजान है हम

मिलते रहेंगे हर सफर में कभी न कभी हम आज नहीं तह
तो जन्म-जन्म की पहचान हैं हम

बहका के कोई हमको गुमराह क्यों न कर दे
हर पल के साथी एक दूजे के अरमान हैं हम
सपनों का संसार यहाँ अब बनाते नहीं हैं हम
अब तो उम्र भर के बने अपने मेहमान हैं हम

खुदा से चंद लम्हें और माँगेंगे जीने के लिए
अल्फ की राह में हमसफर की जान है हम

राष्ट्रीय दोहे

— डॉ. कविता वाचक्नवी

शीश सजा हिम का मुकुट, धोय समंदर पाँव
ऐसी भारत माँ बसे, सुन्दर मेरे गाँव

वर्षा भारी असम में, सूखा राजस्थान
पर सोना उपजा रहे, नित मजदूर किसान

ग्राम पुष्प से पूजते, हो जाते बलिदान
सीना पर हुंकारते, सिंह समान जवान

रंग-रंग के लोग हैं, रंग-रंग के फूल
मेरे प्यारे देश में रंग-रंग की धूल

भाषा चाहे अलग है, अलग नहीं हैं भाव
एक नदी में तैरतीं, हर तरह की नाव

अपने सब त्यौहार हैं, अपने हैं सब खेल
तोड़े से न टूटता, अपना ऐसा मेल

अपना यह परिवार है, अपने हैं सब लोग
साथ सभी मिलकर सहे, दुख, आपद और रोग

ज्योतिर्मय जग को किया, दिया वेद का ज्ञान
विश्ववंद्य भारत रहा, संस्कृति-सूर्य समान

अस्त्र-शस्त्र की होड़ में पगलाया संसार
सत्य, अहिंसा, प्रेम हैं भारतीय उपचार

शृंगार छंद

— श्रीमती सुनीता काम्बोज

समय ये सबसे ही बलवान
बना दे निर्धन को धनवान
बनाया जिसने इसको मीत
मिलेगी उसको निश्चय जीत
मगर जब बदली इसने चाल
हो गई सूनी-सूनी डाल
दिखाई देते सूखे तात
कभी ये भी थे मालामाल
इसी ने खेले सारे खेल
तभी घन छूती निर्बल बेल
विजय करती है तब अभिषेक
बदल जाती है किस्मत रेख
समय कब लेता है विश्राम
निरन्तर चलता है अविराम
यही कर देता दिन को रात
अलग ही है इसमें कुछ बात
कभी दुख का पकड़ता हाथ
कभी सुख ले आता है साथ
उड़ा देता है ये उपहास
बना देता है ये ही खास
कभी ये लगता जलती आग
कभी ये लगता मीठा राग
चला कुदरत पर किसका ज़ोर
मचा ले चाहे कितना शोर

आधार छंद- रूपमाला (मापनी-मुक्त)

—श्री शेख शहज़ाद उस्मानी

चार दिन की चाँदनी है, चार दिन का प्यार,
प्यार का बीमार कहता, भावना व्यापार। (1)

आज हम त्योहार पर ही, बाँटते है प्यार,
काश हम हर 'वार' को ही, बाँटते हर बार। (2)

काश उन्हें पूछते हम, बेचते जो प्यार,
झेलते तन बेचकर ही, रोज अत्याचार। (3)

भागते फिरते जुटाने, रोज धन को लोग,
तब तरसते खूब रहते, छोड़ कर सब प्यार। (4)

जाग कर के रात को हो, मौन वार्तालाप,
दूर बैठे अजनबी से, यौन सा आचार। (5)

झूठ बोला छल-कपट कर, हो गया बदनाम,
कामयाबी अनवरत है, पर नहीं सत्कार। (6)

छोड़कर इन्सानियत को, स्वार्थ साधक घाघ,
भ्रष्ट कर निज धर्म करते, जिस्म का व्यापार। (7)

सीखते फिरते रहे जो, पश्चिमी हर चीज,
भूलते उपहास करके, पूर्व के संस्कार। (8)

सखी री

— डॉ. रश्मि कुलश्रेष्ठ 'रश्मि'

सखी री वह पाती की बात,
कैसे होगा नवल प्रभात।
प्रेम के वह मीठे अनुबंध,
रचेंगे अब न कोई छन्द,
विरह की ये कैसी सौगात।

सहेगा क्या विप्लव का भार
जिया मेरा ये लघु आकार
सहा ये वर्षिल-सा आघात।

नयन में सपने जो थे बंद,
शिथिल हैं कितने वो निस्पंद
आहनी दृग और मैं कृष गात।
करें अब नर्तन अश्रु मोर,
सींझ गयी अखियन वाली कोर,
पीड़ा बनकर बही प्रपात।

झुकेंगे क्या दिग और दिगंत,
क्या ये आशाओं का अंत,
झरे पतझर से पीले पात

असित कुंतल के बंधन व्यर्थ
बुझा प्रश्नों के कोई अर्थ
सँवर न पायी कोई रात।
सखी री वह पाती की बात।

अब घर आ जाओ

– डॉ. राम गरीब 'विकल'

बहुत हो चुकी खरी कमाई,
अब घर आ जाओ।
बिना तुम्हारे लगे –
जिन्दगी दूभर, आ जाओ।
छोड गए जो बिरवा,
उसकी शाखें फैली हैं।
बैर–करौंदों की आँखें,
जगजाहिर मैली हैं।
खेतों में बोए सपने,
अँखुआना भूल गए।
नींद नहीं आँखों में,
रातें बहुत कसैली हैं।
गली गली में,
है मखौल का मंजर, आ जाओ।
बूढा कुआँ विवश,
आँखों का सूख गया पानी।
नदी बहे किस राह,
न हो नालों की मनमानी।
तालाबों से, कनल पुंज की
अनबन–सी दिखती।
दिखे बिहँसता आइपोमिया,
बना फिरे दानी।
निसदिन उफनाते हैं
नयन समन्दर, आ जाओ।
आ जाओ! सब घाम–शीत
हम मिलकर सह लेंगे।
दोनों के उर में,
जो उमड़ रहा सब कह लेंगे।
यह बौराई नदी,
स्वयं ही राह दिखाएगी,
पार करेंगे दोनों,
अथवा सँग–सँग बह लेंगे।
पढ़ना उनको भी,
जो भींगे आखर, आ जाओ।

जीवन - एक गीत

– अनुराग शर्मा

जीवन एक कथा है सब कुछ छूटते जाने की
हाथ से बालू फिसले ऐसे वक्त गुजरता जाता है
बचपन बीता, यौवन छूटा, तेज़ बुढ़ापा आता है
जल की मीन को है आतुरता जाल में जाने की
जीवन एक कथा है सब कुछ छूटते जाने की।

सपने छूटे, अपने रूठे, गली–गाँव सब दूर हुए
कल तक थे जो जग के मालिक मिलने से मजबूर हुए
बुद्धि कितनी जुगत लगाए मन भरमाने की
जीवन एक कथा है सब कुछ छूटते जाने की
छप्पन भोग से पेट भरे यह मन न भरता है
भटक–भटक कर यहाँ–वहाँ चित खूब विचरता है
लोभ सँवरता न कोई सीमा है हथियाने की
जीवन एक कथा है सब कुछ छूटते जाने की
मुक्त नहीं हूँ मायाजाल मेरा मन खींचे है
जितना छोड़ूँ उतना ही ये मुझको नीचे है
जीवन की ये गलियाँ फिर–फिर आने–जाने की
जीवन एक कथा है सब कुछ छूटते जाने की
भारी कदम कहीं उठते हैं, गुजरे रस्ते कब मुडते हैं
तंद्रा नहीं स्वप्न न कोई, छोर पलक के कम जुड़ते हैं
कोई खास वजह न दिखती नींद न आने की
जीवन एक कथा है सब कुछ छूटते जाने की
जीवन एक व्यथा है सब कुछ छूटते जाने की।

नाटक

भानु का सूर्यास्त

—श्रीमती वन्दना चावला

पात्र

1. भानु – किसान
2. अंजली– भानु की दोस्त
3. कुमारजी–बाबू नंबर1
4. गुप्ताजी– बाबू नंबर2
5. शर्माजी–बाबू नंबर 3
6. चपरासी–चपरासी
7. नीलिमा– अंजली की सहकर्मी और दोस्त
8. सरिता– अंजली की सहकर्मी और दोस्त
9. भाभी–अंजली के चचेरे भैया की पत्नी
10. भैया–अंजली का चचेरा भाई
11. कुछ ग्रामीण
12. एक बुजुर्ग ग्रामीण

दृश्य 1

(शाम 7 बजे। मंच पर अंधेरा। धीमी रोशनी मंच के बाएँ कोने पर। हाय तौबा करते हुए कुछ लोग उस कोने में इक्ठे हुए हैं। कुछ लोग परछाई की तरह इधर उधर भागते हुए..
हाहाकार दर्शाने वाली तीव्र धुन)

आवाज़ –1 हे भगवान! ये क्या हो गया इसे!
आवाज़ –2 लगता है आत्महत्या की है।
आवाज़ –3 नहीं नहीं, यह तो कत्तल है।
आवाज़ –4 अरे बचाओ, कोई बचाओ, यह तो लगता है अभी भी जिन्दा है।
आवाज़ –5 (पास जाकर छूके) नहीं नहीं, यह यह तो मर चुका है।

_स्पॉटलाइट अंजली की तरफ और फोकस होती है... लाल हो जाती है... बाकी स्टेज अंधेरा...
लाल लाइट अंजली पर से धीमी होते होते बुझ जाती है और पीछे एक कार्यालय के सेट पर उजाला हो जाता है?.....

दृश्य2

दफ़्तर में सभी अपने–अपने काम में व्यस्त हैं... कुछ बाबू आपस में बातें कर रहे हैं,.....

कुमारजी: अरे शर्मा जी, अब तो खूब रौनक हो गयी दिवाली की बाजारों में..... इस बार दिवाली में घर जा रहे हैं क्या?

गुप्ताजी: छुट्टी की अर्जी तो कब से दे रखी है आपने बड़े साहब को?

शर्माजी: अरे क्यूँ सपना दिखा रहे हैं गुप्ता जी...कहाँ छुट्टी मिलेगी इस वक्त.... इधर मैंने छुट्टी की अर्जी दी, उधर से हेड क्लर्क साहब ने,और तीसरी अंजली ने भी,.... अब सबको छुट्टी दे देंगे, तो दफ्तर कैसे चलेगा?

अंजली: इस दफ्तर की कनिष्ठ सहायक है। (अंजली बाहर से प्रवेश करती है)

अंजली: गुडमोर्निंग शर्माजी। (अंजली अपना हैंडबैग टेबल पर रखती है और कुर्सी खींचकर बैठती है)

शर्माजी: गुडमोर्निंग अंजली————तुम्हारी उम्र बहुत लंबी है, अभी तुम्हें ही याद कर रहे थे हम। (गुप्ताजी की तरफ इशारा करते हुए)

अंजली: (हैरानी जताते हुए और हँसते हुए) अच्छाजी, बताइए तो सही किसलिए याद कर रहे थे मुझे?
(इसी बात के बीच में ही चपरासी पानी का ग्लास और एक लिफाफा हुआ फॉर्म लेकर अंजली के पास आता है। अंजली ने पानी पीकर ग्लास वापस किया। चपरासी ने कहा.....)

चपरासी: अंजली मैडम, यह फॉर्म बड़े साहब के पी. ए. ने दिया है आपके लिए।

अंजली: (फॉर्म खोलकर पढ़ती है और अपनी कुर्सी पर जोर से बच्चों की तरह उछलने लगती है) अरे आज ईश्वर से कुछ और भी मांगती तो वह भी मिल जाता।
(सब अंजली की तरह हैरानी से देखते हैं। इतनी उत्साहित अंजली को यूं बच्चों की तरह उछलता देख महिला कर्मचारी अंजली की सीट के पास आ जाती हैं)

नीलिमा: (हँसते–हँसते) अरे–अरे अंजली, ध्यान से... तू तो बच्चों की तरह उछल रही है... बचपना लौट आया क्या फिर से?

अंजली: (खिलखिलाकर हँसती है) अरे नीलू, बचपना नही, बचपन लौट आया है।
(सब लोग हैरानी से देख रहे हैं और इसका कारण जानने के लिए उत्सुक हैं....)

अंजली: ठीक है, ठीक है, बताती हूँ भई....., मेरी छुट्टी मंजूर हो गयी है, पूरे दो महीने हो गए आज अर्जी दिये हुए, मेरे पति देव की छुट्टी तो कब की रिजैक्ट हो गयी.... मैं भी तो अपनी छुट्टी की उम्मीद खो ही बैठी थी।
(सभी लोग उसको छुट्टी मिलने की बधाई देते हैं।)

सरिता: (छुट्टी का फॉर्म पढ़ते हुए) अरे वाह! 15 दिन की छुट्टी?
कहीं घूमने जा रही हो क्या?

अंजली: अरे दीदी, बताया न, अपने खुद के बचपन से मिलने जा रही हूँ...
(हँसते हुए) यानि कि अपने गाँव जा रही हूँ, पूरे 12 साल बाद, अपने भाई की शादी पर....

नीलिमा और
सरिता (एकसाथ): भाई?

सरिता: लेकिन तुम तो 2 बहनें हो न? अब यह नया भाई कहाँ से आ गया?

अंजली: नया नहीं, पिछले जन्म का भाई ही समझ लो, लेकिन मिला मुझे इस जन्म में। 10वीं तक गाँव में एक साथ ही बड़े हुए, एक साथ ही पढ़े–लिखे, खेले–कूदे, रामू चाचा के खेतों से भुट्टे चुराए, फिर चाचा की डांट खाई... सब कुछ एक ही साथ किया है हमने।

सरिता: ओह!

अंजली: फिर पिताजी का तबादला हो गया और हम सपरिवार यहाँ शहर में आ गए। पता है, मेरी शादी के समय गाँव में हैजा फैल रखा था, इसीलिए मेरी शादी के समय भी नहीं आ पाया था वह।

गुप्ताजी: (काम करते करते) काश मेरी भी छुट्टी मंजूर हो जाती, हम भी जरा अपने गाँव घूम आते....

अंजली: वैसे मायूस होते हैं गुप्ताजी, दिवाली के समय नहीं तो नए साल के समय आपकी छुट्टी मंजूर जरूर हो जाएगी; फिर घूम आइएगा भाभीजी और बच्चों के साथ। आप मुझे भी तो देखिये न, मैं तो पिछले 12 साल से गाँव गयी ही नहीं। पिताजी के तबादले के बाद बस यहीं पढ़ी, लिखी, शादी, फिर बच्चे, बस कभी जाना ही नहीं हो पाया। लेकिन अब तो ईश्वर ने जैसे मेरे मन की ख्वाइश पूरी कर दी। सिर्फ घूमने नहीं, (बहुत गर्व से) भाई की शादी देखने जा रही हूँ।

नीलिमा: अरे वाह!! हम भी तो सुनें यह भाई है कौन? दिखता कैसा है? नाम क्या है?

गुप्ताजी: (हल्का ताना देते हुए) हाँ ...हाँ... बताओ भई ... इस अचानक पैदा हुए भाई का नाम

अंजली: नाम? नाम है भानु।

नीलिमा: हम्म... भानु तो सूरज को कहते हैं ना?

अंजली: हाँ... सही कहा....मेरा भानु भी तो बिल्कुल सूरज की ही तरह है, कांतिमय, ज़िंदादिल, खुशमिजाज़।

अंजली: (अपने हैंडबैग से अपने और भानु की बचपन की फोटो निकालती है) और यह देखो... ऐसा दिखता है

सरिता: (फोटो देखकर सरिता पूछती है) अरे! यह तो बच्चा है।

अंजली: हाँ... यह हमारे बचपन की तस्वीर है... पिछले 12 साल से गयी ही कहाँ हूँ गाँव।

नीलिमा: करता क्या है भानु?

अंजली: किसान है भानु, हम लोग शहर में आके कॉलेज में पढ़ाई करने लगे, लेकिन भानु का परिवार बहुत गरीब था। वह तो अपनी पढ़ाई भी आगे नहीं बढ़ा पाया। लेकिन उसकी गरीबी उसके अंदर के प्रकाश को कभी फीका नहीं कर पाई।

सरिता: वो कैसे?

अंजली: अरे! अपने बुजुर्गों की खेती को एक नया ही रूप दिया उसने। आसपास के गाँव के कृषि विशेषज्ञों से मिलकर,उनसे नयी तकनीकी सीखी है उसने। सुना है उसी ने गाँववालों को नयी प्रोद्योगिकी का इस्तेमाल करना सिखाया है।

गुप्ताजी: तुमतो 12 साल से गयी नहीं हो, तो इतना सब कहाँ से सुन लिया?

अंजली: मेरे चचेरे भैया वहीं पास के गाँव में रहते हैं ना! उनसे कभी कभी फोन पे बात हो जाती है। भानु के पास तो कोई फोन भी नहीं है।

नीलिमा: फिर तुम्हें स्टेशन से लेने कैसे आयेगा भानु? उससे बात कैसे करोगी?

अंजली: अरे, उसका गाँव तो स्टेशन से बहुत अंदर की तरफ है। हम तो भैया के घर ही ठहरेंगे। भैया लेने आएंगे। भानु के गाँव तो अगले दिन ही जाएंगे। भाभी और बच्चों के साथ भी तो वक्त बिताना है।

(यह सब बातचीत के चलते धीरे धीरे लाइट धीमी होती है। आवाज़ भी धीमी हो जाती है।)

दृश्य3

(बच्चे अपने कमरे में सामान पैक कर रहे हैं.... घर का सारा सामान बिखरा पड़ा है....)

(अंजली..... कमरे के अंदर आती है..... बच्चे ट्रंक के पीछे छुपे माँ का इंतज़ार कर रहे हैं। अंजली उनकी शरारत देखकर मज़ाक में हैरान होते हुए।)

अंजली: अरे ये सब क्या हो गया...! लगता है चोर घुस आया था।

(कीमती सामान का बॉक्स खोलकर देखती है कि कुछ चोरी तो नहीं हुआ।

(आवाज़ लगाते हुए) टीना–बंटी, बंटी बेटे ,कहाँ हो तुम सब? (इधर–उधर झाँकते हुए)

(ट्रंक के पीछे से दोनों बच्चे चिल्लाते हुए बाहर आते हैं)

टीना–बंटी: मम्मी! वहाँ छिपकली है। नही मम्मी कॉकरोच है। (अंजली से लिपट जाते हैं)

अंजली: तुम दोनों ऐसे शरारत करते रहोगे तो ट्रेन छूट जाएगी। गांव नहीं पहुँच पाएँगे।

टीना–बंटी: मम्मी हम सामान ही पैक कर रहे थे।

अंजली: हाँ–हाँ जल्दी करो। नानाजी आते ही होंगे.... हमें स्टेशन छोड़ने वे ही तो जाएंगे... तुम्हें पता है न ...उनको देरी बिल्कुल पसंद नहीं।

टीना: गड्डया ने सामान फैलाया है।

बंटी: नहीं मम्मी शुरुआत इसने की थी।

(दोनों बच्चे एक दूसरे के पीछे भागते हुए। अंजली के चारों और घूमते हैं। अजली भी दोनों बच्चों के हाथ पकड़ कर घूमती है)

बंटी: मम्मी हम भानु अंकल के पास कब जायेंगे? (माँ के गालो को खींचते हुए)

टीना: हाँ मम्मी कब जायेंगे?

अंजली: बस ये सामान पैक करके चलेंगे। (दोनों बच्चे एक दूसरे के हाथ पकड़ कर घूमते हुए गाना गाते हैं)

गाना: गाँव में छुक–छुक रेल चली,
गाँव में छुक–छुक रेल चली,
देखेंगे खेत–खलियान,,
नदियां पोखर वहाँ की शान,,
और घूमेंगे गली–गली.....
गाँव में छुक–छुक रेल चली, गाँव में छुक–छुक रेल चली.
(घूमते–घूमते लाइट धीमी हो जाती है...)

दृश्य 4

(गाँव का दृश्य –बड़ा सा आँगन.. आँगन के बीचों–बीच कटी हुई हरी घास पड़ी है...कोने में एक तबेला है जहां 2–3 गायें बंधी हुई हैं..... बाई तरफ 2 कमरे और 1 रसोई है.....) दरवाजे के पास गाड़ी का हॉर्न बजता है.. भाभी कमरे के अंदर से भागी आती है....आँचल से माथा और मुंह पोंछती हुई आँगन में खड़ी हैं)

अंजली: 2 सूटकेस लेकर आँगन में चलती आ रही है...बच्चे अंजली को पीछे से हल्का धक्का देकर भाभी की तरफ भाग रहे हैं... खुशी से शोर मचाते हुए...भाभी बच्चों को प्यार से अपनी बाहों में भर लेती है।

भाभी: अरे? देखूँ तो...(बच्चों के मुख को ठोड़ी से ऊपर करती हुई....) अरे बहुत ही सुंदर और प्यारे बच्चे हैं....मेरी नज़र ही न लग जाये.....

अंजली: भाभी को प्रणाम करो (दोनों प्रणाम करते हैं)

भाभी: कैसी हो तुम?

अंजली: मैं तो अच्छी हूँ.... आप बताइ, (भाभी को चरण वंदना करती है....)

भाभी: सदा खुश रहो ....(आशीर्वाद देती है) ...आने में कोई तकलीफ तो नही हुई?

अंजली: बिल्कुल भी नहीं भाभी.....

भाभी: आओ–आओ अंदर आओ अंजली..... थक गयी होगी सफर में..... (अंजली सूट केस उठाकर अंदर आने लगती है...)

भाभी: अरे अरे... यह सूटकेस आपके भैया उठा लाएँगे .....आप अंदर आइये..... मुँह हाथ धोलें। मैं खाना परोस देती हूँ.... ...आओ बच्चो...अंदर आओ.. तुमभी..... मुँह–हाथ धो लो.... आ जाओ ...आ जाओ....

अंजली (अंदर से ही)... अरे खेलने दो ना भाभी.... वहाँ शहर में कहाँ इनको इतना खुला आँगन मिलता है... स्वच्छ हवा में खुली सांस लेने दो इन को भी...)
पता है भाभी, आज रेल्वे स्टेशन से यहाँ आते-आते मानो पिछली जिंदगी के पल जीती हुई आई हूँ। गाँव के चौराहे पर वह कन्हैया भैया का घर, उनके खेत-खलिहान...जी चाहा अभी कार से उतर कर फिर से उनकी बैल-गाड़ी पर बैठकर घर तक आऊँ....
(बातचीत के चलते धीरे-धीरे लाइट धीमी होती है। आवाज भी धीमी हो जाती है।)

दृश्य 5

अगले दिन सुबह... घर के आँगन में... भाभी और अंजली... बातें करती हुई.....

अंजली कितनी सुकून भरी सुबह है न भाभी यहाँ... गाड़ियों के शोर से बिलकुल दूर... अच्छा भाभी यह बताओ...आज इतने दिन बाद भानु के घर जा रही हूँ..और वह भी उसकी शादी के दिन...साड़ी कौन सी पहनूँ?

भाभी शहर की लाइफ इतनी व्यस्त होती है की मोबाइल के अलावा किसी से रूबरू बात ही न ही हो पाती और नही किसी को फुर्सत है। खैर... यह बताओ भाभी... आज भानु की शादी के दिन साड़ी कौन सी पहनूँ? हाय। तुमने ये बालियाँ बहुत ही सुंदर पहनी हैं (भाभी के कान पर हाथ लगते हुए) गाँव में ये फैशन आ गया?

भाभी तुमने क्या सिर्फ शहर वालों को फैशन करते देखा है? गाँववाले भी करना जानते है। अच्छा एक चीज दिखाती हूँ तुम्हें.....
(भाभी अंदर से कुछ लेने चली जाती हैं)
यह देखो... भानु की होने वाली पत्नी की फोटो...

अंजली वाह! यह तो बहुत खूबसूरत दिखती है।

भाभी और यह देखो भानु की फोटो.... बोलो...कैसी लगी जोड़ी???

अंजली (हैरान होते हुए) अरे भाभी...यह भानु है???? इतना बड़ा हो गया... मैं तो इस भानु को जानती ही नहीं....
आप देखना चाहेंगी... मैं किस भानु को जानती हूँ?....(अपने हैंडबैग में से अपनी और भानु की बचपन की फोटो निकालती है)

भाभी (हैरान होते हुए) अरे... मैंने कभी इस भानु को नहीं देखा?? इसे तो मैं नहीं जानती।...
(अंदर से आवाज आती है) गृह-मंत्री बाकी बातें बाद में कर लेना पहले चाय तो पिला दो।

भाभी अभी लाती हूँ। (अंजली को) चलो तुम बच्चों को उठा दो—— मैं नाश्ता लेकर आती हूँ———फिर ढेर सारी बातें करेंगे।
(नाश्ता बनाने रसोई में चली जाती है)

अंजली (बच्चों को नहाने भेजकर अंजली भाभी के पास आकर रसोई में बैठ जाती है) हमलोग आपको बहुत याद करते हैं...

भाभी हाँ-हाँ पता है कितनी याद करती हो। मुझे शादी करके आए हुए 10 साल हो गए...पहली बार आई हो घर.... मेरी शादी के समय भी नहीं आ पायी थी तुम तो ... चलो! भानु के बहाने से तो मुझसे भी मिलने आ गयी....

अंजली (हँसती है...) और नहीं तो क्या... आप हैं ही इतनी प्यारी...(भाभी को छेड़ते हुए)...(कमरे से आवाज आती है) अरे भई! सवेरे से पेट में चूहे कूद रहे हैं कुछ तो खाने को दे जाओ।

भाभी जाओ ये पराठे दे आओ उनको (अंजली पराठे दे आती है, फिर बोलना शुरू करती है)

अंजली भानु के यहाँ तो खूब गाना-बजाना चल रहा होगा?

भाभी हाँ होगा ही..... वैसे तुम्हें कोई लोकगीत याद है अंजली या शहर जाकर सब भूल गयी?

अंजली (शरारत से हँसती हुई) सब याद है भाभी... (भाभी को खींचकर आँगन में ले जाती है...और गाने के साथ- साथ हल्का-फुल्का नाच भी करती है।

गाना: दुल्हन धीरे–धीरे चलियो ससुर गालियाँ,
दुल्हन धीरे–धीरे चलियो ससुर गालियाँ,,
दुल्हन सासु से बोलियो मधुर बोलियाँ,
दुल्हन सासु से बोलियो मधुर बोलियाँ,,
मधुर बोलियाँ हो अनार कलियाँ,
मधुर बोलियाँ हो अनार कलियाँ,,
दुल्हन धीरे धीरे चलियो ससुर गालियां,
दुल्हन धीरे धीरे चलियो ससुर गालियां,,
(नाचता–नाचते लाइट धीमी हो जाती है.....)

दृश्य6

कार की हैडलाइट की रोशनी में....

गाँव वाला: (आँखों के आगे हाथ रखते हुए) – कहाँ जाना है आप लोगों को?

विनोद: यही तो है खानपुर गांव .... यहो आये हैं....
इतनी भीड़ क्यों है..??क्या हुआ है?

गाँव वाला: आत्महत्या की है.....(अचंभा जताते हुए....)

विनोद: (हैरानी से)...आत्महत्या...?

गाँववाला नंबर 2: घोरकलयुग..... यह कोई उम्र थोड़ी थी उसकी दुनिया से जाने की.... (हाथ फैलाकर आसमान की तरफ देखता है..)

गाँववाला नंबर 3: अरे आज तो खुशी का दिन था इसका... किसे पता था....यह सब.....(रोने जैसी आवाज में....)..
अंजली के मन मे बहुत घबराहट और नकारात्मक विचार आने लगते हैं...वह जल्दी से कार का दरवाजा खोलकर भागती है..... (दरवाजा खुलने और बंद होने की आवाज आती है) भीड़ को हटाने की कोशिश करती है। सामने का दृश्य देखकर अंजली स्तब्ध रह जातीहै।
(बाईं तरफ के पिछले कोने में एक लाश पड़ी है। लाश देखते ही अंजली के हाथ से तोहफा गिर जाता है। अगले क्षण वह खुद भी वहीं गिर जाती है....
(अंजली का मुंह नीचे है..... सिसकियों की आवाजें आने लगती हैं....)

अंजली: भानु मेरे भाई..... क्या इसीलिए न्योता भेजा था तूने.....

गाँववाला नंबर 4: सुना है..आज जामुनादास साहूकार गया था लठैत लेकर बेचारे के घर....

गाँववाला नंबर 5:
हाँ... इसके पिता को गाली भी दी और शादी के सारे जेवर भी उठाले गए....
भीड़ से एक बुजुर्ग किसान (अंजली के सिर पे हाथ रखता है... और भारी/ काँपती आवाज में.. बोलता है)
अरे बेटा... हमारे जैसे गरीब किसानों की शादी अक्सर इसी तरह होती है। पिछले साल ओले पड़े सारी फसलें तबाह हो गई थीं और अब की बार बारिश की एक बूंद नहीं मिली। ऐसे मे किसान आत्महत्या कर के ही बिदाई लेते हैं।

(अंजली का मुँह नीचे ही है... लाइट धीमी होते–होते बुझ जाती है
... दुखद घटना दर्शाने वाली धुन)

"समाप्त"

सत्य की खोज

—श्रीमती बिद्वंति शंभु

स्थान : समय–समय पर दृश्य व स्थान बदलता रहता है – रास्ता, वन, दफ्तर।
समय रोशनी की सहायता से सभी प्रहरों का प्रयोग – सुबह, दिन, शाम, रात।
वस्तु : साइन बोर्ड, पेड़–पौधे, मेज–कुर्सियाँ आदि। पात्र : 40 साल का डॉक्टर, 50 साल का पंडित, 45 साल की कवयित्री, 30 साल का मजदूर और सैनिक, 20 साल की अंजलि, 60 साल का सत्य।
मंच : प्रारंभ में रास्ते पर एक 70 साल का वृद्ध सामने आकर कहता है।

सत्य : (सामने मंच पर आता है। रोशनी केवल उसी पर केंद्रित है। अपनी बुलंद आवाज में कहता है।)
सत्य, सत्य, सत्य आखिर सत्य है कहाँ... दुकानों में, बाजारों में, विद्यालयों में, मंदिरों में, गलियों में, तीर्थ स्थानों में, प्राणियों में, आदमी के दिलों में! मैंने हर जगह ढूँढने का प्रयास किया। मिला भी तो केवल असत्य! झूठ! झूठ! और झूठ!
सत्य–सच्चाई, यथार्थ आखिर है कहाँ? कहाँ है?
मुझे उसकी तलाश है... कहाँ और कब मिलेगा! जारी रहेगी यह तलाश... तलाश जारी रहेगी
सत्य की खोज जारी रहेगी... सत्यमेव जयते... सत्यमेव जयते... सत्यमेव जयते!
(रोशनी मंद होती है, फिर पूरे मंच पर प्रकाश फैल जाता है। परेशानी में वृद्ध सज्जन मंच पर प्रकट होकर चलता है कि डॉक्टर से मुलाकात होती है – पास जाकर)
सत्य : नमस्कार... नमस्कार... लगता है कि आप डॉक्टर हैं?
डॉ. : जी हाँ! सही पहचाना। मैं एक चिकित्सक हूँ। मेरा काम लोगों को रोगों से छुटकारा दिलाना है।
सत्य : तब तो आप सरकारी डॉक्टर होंगे।
डॉ. : चाचा जी, अब सरकारी और निजी कहाँ! सरकारी तो नाम–मात्र के लिए रह गया है। अब तो अधिकतर डॉक्टरों की निजी दुकानें और मरीज हैं।
सत्य : वह कैसे... डॉक्टर जी बताइए न...?
डॉ. : (समझाने का प्रयास) चाचा जी! दुखी जनता अस्पताल में आते हैं। अस्पताल बाज़ार जैसा लगता है। मरीज़ पागल जैसे मारे–मारे इधर–उधर... कभी रिपोर्ट गायब तो कभी डॉक्टर! इंतजार... इंतजार... फिर क्या 'रौं दे वू'। परेशान बेचारे मरीज उसी डॉक्टर को निजी तौर पर देखते हैं, जेब गरम करते हैं और जल्दी उचित इलाज हो जाता है।
सत्य : तो क्या सत्य और नियमों का पालन नहीं होता?
डॉ. : होता है न... कागज पर, टी.वी. पर दर्शाए बड़े जुटावों में, इसका खूब पालन होता है यह सब बहलाने के लिए और यह बताने के लिए कि काम हो रहा है!
सत्य : तो इसमें परिवर्तन तो आता है न?
डॉ. : परिवर्तन...? हाँ! हाँ! आता है... क्यों नहीं, अवश्य आता है। हर बार चुनाव के बाद या मंत्री के स्थानांतरण के पश्चात् परिवर्तन आता है पर जैसे नई बोतलों में पुरानी शराब!
सत्य : अच्छा, तो यह बात है। तब तो सत्य का पालन ही नहीं होता...
डॉ. : सत्य... सत्य... हाँ... हाँ...
सत्य : (घुटनों के बल बैठकर सोचने लगता है।) सत्य! डॉक्टर भी सत्य नहीं खोज पा रहे हैं। क्या दुनिया इतनी गई गुजरी है? (तभी उधर से मंच पर पंडित जी गाते हुए प्रवेश करते हैं।)

पंडित : राम सिया राम, सिया राम, जय जय राम... हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ... हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे... राम... राम

सत्य : (तभी सामने आकर पंडित को दण्डवत प्रणाम करता है) प्रणाम... प्रणाम पंडित जी।

पंडित : जीते रहो... जीते रहो... मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?

सत्य : मैं... मैं बहुत परेशान हूँ... कई दिनों से व्याकुल हूँ। मुझे एक चीज़ की तलाश है। वह मिल नहीं पा रही है।

पंडित : एक चीज़... कौन सी चीज़, भाई? मेरे पास ज्योतिष-शास्त्र है। एक पल में पता लगा लेंगे।

सत्य : क्या ज्योतिष में सब कुछ है... तब तो बहुत बढ़िया है। मुझे अपने प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा।

(पंडित जी पद्मासन लगाकर बैठ जाते हैं और अपनी पोटली खोलते हैं। सत्य भी बैठ जाता है।)

पंडित : बोलिए... क्या खोजना है? क्या खो गया है?

सत्य : पंडित जी, सत्य खो गया है। मैं सत्य की खोज में हूँ। लोगों से पूछता रहता हूँ कि क्या किसी ने सत्य को देखा है... कोई जवाब नहीं दे पाता है।

पंडित : सत्य? यह कैसा प्रश्न है? सत्य तो हर जगह है। सत्य! (फिर कुछ सोचकर)... नहीं, आप ठीक कहते हैं। अब मैं भी सोचने लगा हूँ कि सत्य तो है ही नहीं। धार्मिक कार्यों एवं अनुष्ठानों में भी अब तो झूठ-गूठ के बनावटी काम करने लगे हैं। पुरोहित तो इतनी जल्दी में होते है कि अंड के भंड कर्म करवा देते हैं। जोड़ी न भी मिले तो मिला देते हैं। मुहूर्त न भी हो तो बनवा देते हैं। कितने पुरोहित ऐसे भी हैं जो संस्कृत-हिंदी जानते ही नहीं। सिर्फ पैसों के लिए रोमन लिपि में लिखी धार्मिक पुस्तकों से पूजा-पाठ करते हैं। शादी में तो पुरोहित एक ओर शादी करता है तो दूसरी ओर मोबाइल पर लगा रहता है। पंडितजन अपने समयानुसार सारी तिथियों को तय करते हैं। श्रोता एवं यज्ञमान तक को धोखा देते हैं। अब सत्य कहाँ है...?

सत्य : अच्छा पंडित जी, मैंने देखा है कि हरेक व्यक्ति जो पंडित के पास आता है, उससे कहा जाता है कि तुम पर शनि का प्रकोप है और निवारण के लिए व्रत-पूजा करवाते रहे हैं। इस पर पंडित को मुँह मांगा दान-दक्षिणा देनी पड़ती है। क्या इसमें कोई सच्चाई भी है?

पंडित : सच्चाई! सच्चाई! अरे भैया! शनि को किसने देखा, परखा या समझा है? शनि तो एक ग्रह है, इतना बड़ा कि अगर इंसान पर पड़े तो वह डर कर न मर जाए?

सत्य : क्या पंडित भी असत्य होते हैं?

पंडित : असत्य का तो पता नहीं... शायद लोभ-प्रलोभन या हमारी कमजोरी हो! मैं यही कहूँगा कि मुझे सत्य की खोज है। मैं नहीं जानता कि सत्य कहाँ है? हे राम! हे राम! हे कृष्ण! हे कृष्ण! सत्य कहाँ है... सत्य का पता क्या है... हे ईश्वर, इतने दिनों से मैंने तो कभी सोचा तक नहीं था। (हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे... गाता हुआ बाहर निकल जाता है।) (कुछ घड़ी रुककर सत्य मंच का चक्कर लगाता है। रोशनी से समय में थोड़ा परिवर्तन आता है। थका-मांदा परेशान सत्य रुक जाता है। वह किसी को चंद पंक्तियाँ कहते हुए सुनता है)।

कवि : कवि, क्यों न सुनाते हो तुम, मृदुल और बुलंद आवाज में व्यक्ति घर, परिवार, देश और विश्व के प्राणियों की सच्चाई कवि, क्यों न सुनाते हो तुम सत्य बातें खो रही है मानवता, खो रहा है अपनापन, खो रही है नम्रता, खो रहा है प्यार, खो रही है ईमानदारी, खो रहा है चैन, खो रही है सच्चाई, न जाने कहाँ? कवि, क्यों न सुनाते हो तुम सत्य व्यवहार? कवि, क्यों न सुनाते हो सच्चाई का पाठ, कवि ओ कवि! कम से कम सच्चाई लिखो और सुनाओ (तभी सत्य बाहर निकलकर ताली बजाता है)

सत्य : वाह! वाह! वाह! लगता है कि आप कवि है। आपने बढ़िया कविता सुनाई। वाह! वाह!

कवि : आप कौन? सौभाग्य से कोई कविता सुनने वाला मिला। सुनकर प्रसन्न होना तो और भी बड़ी बात है। कवि या साहित्यकार को तो कोई मान-आदर देता ही नहीं। आप कौन और इतनी दिलचस्पी ले रहे हैं?

सत्य : मैं क्या बताऊँ...? मैं एक प्रश्न लिए घूम रहा हूँ। सब से पूछ रहा हूँ... शायद आप के पास यह उत्तर हो!

कवि : (उत्सुकता से) अरे भैया बताओ तो सही आप कौन सी शंका लिए फिर रहे हैं? शंका के साथ जीना ठीक नहीं है।

सत्य : कवि बंधु, मेरा प्रश्न बिल्कुल साधारण है परंतु कोई इसका जवाब नहीं दे रहा है! मेरा प्रश्न बस इतना ही है कि सत्य कहाँ है? मुझे

अब सच्चाई दिखाई नहीं देती...

कवि : (जोर से ठहाका मार कर हँसता है) वाह! भाई वाह! अब मेरा यह साधारण–सा प्रश्न सुनो... आप इसी दुनिया के निवासी हैं न?

सत्य : हाँ! शुरू से अब तक मैं यहीं हूँ।

कवि : फिर तो आप को मालूम होना चाहिए कि सत्य कहाँ है? भैया मोरे! अब हमारे साहित्य में वह सच्चाई कहाँ? हमारे लेखकों में ईमानदारी, सच्चाई कहाँ? पाठकों में वह लगन–उत्साह कहाँ? पुस्तकों से नाता और प्यार कहाँ...? यथार्थवाद का जमाना गया। अब तो साहित्य में भी झूठ की चलती है।

सत्य : यह आप क्या कह रहे हैं? साहित्य तो समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य का अर्थ ही है सभी का हित करना फिर असत्य कैसे?

कवि : साहित्य में भी असत्य है। आज के हमारे लेखक–कवि नाम के भूखे हैं। सम्मान के प्यासे हैं। सही साहित्य तो रचते ही नहीं जैसे प्रेमचंद रचता था! जैसे कबीर बाजार में खड़ा होकर कहता था, सब को आईना दिखाता था! प्रसाद और गुप्त परिवारों का सपाट वर्णन करता था! भगवती चरण वर्मा, दिनकर, निराला, नवीन आदि लेखक व कवि थे जिन्होंने सच्चाई का बयान किया... उल्लेख किया!

सत्य : (उत्सुकता से और अजमाने के उद्देश्य से) तो फिर आज के साहित्यकार ऐसे नहीं हैं क्या?

कवि : भैया मैं क्या कहूँ... ?(थोड़ा रुककर) कहूँगा तो लोगों को कड़वा लगेगा। आज बहुत कम लोग हैं जो साहित्य सृजन कर रहे हैं। वसंत पर कौन लिखता है, परिवार के टूटन व घुटन की चर्चा कहाँ होती है? राजनीति का घिनौना दृश्य कौन बताता है! अब तो अणु–परमाणु, मीडिया–मल्टी मीडिया, बलात्कार एवं सनसनी खेज खबरों पर कलम चलाई का रही है। कोई–कोई तो ऐसा भी है, जो पैसे लेकर बढ़ा–चढ़ाकर जीवनियाँ लिखने का कार्य कर रहे हैं... अब बताइए, साहित्य में सच्चाई कहाँ से आए? अब तो मैं भी ढूँढूँगा कि सच्चाई है कहाँ?

सत्य : हाँ! खोज करें... मिल जाए तो मुझे संकेत करना... (यह कहते हुए वह बाहर निकलता है और कवि की कविता सुनाई देती है।)

कवि : कवि क्यों न सुनाते हो तुम
मृदुल और बुलंद आवाज में
जिंदगी की सच्चाई कड़वी सच्चाई
जो मन को हिला दे, सोए हुए को जगा दे
कवि ओ कवि...

सत्य : सचमुच अब तो ईमेल, फेसबुक, टैबलेट पर मुहब्बतें होती हैं झूठी प्रशंसा टीकी जाती है... ओफ ओह! (तभी मंच पर एक मजदूर कुदाल लिए गाता हुआ आता है।)

मजदूर : मेहनत हमारा जीवन... मेहनत हमारा जीवन, कसरत हमारा जीवन... परिश्रम हमारा जीवन खून–पसीना बहाना, हमारा जीवन...

सत्य : (ताली बजाकर) भैया, आपने तो तबियत खुश कर दी। लगता है कि आप मजदूर हैं।

मजदूर : हाँ! हाँ! मैं मजदूर हूँ... तो क्या मुझे गाने का अधिकार नहीं (थोड़ा नाराज हो कर)?

सत्य : नाराज नहीं होते मित्र... मुझे तो बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप गा रहे हैं... पहले कहाँ... पहले तो मुँह खोलते ही एकाध कोड़े बरस पड़ते थे।

मजदूर : हाँ भैया, अब वह जमाना गया। अब तो हमारा राज है। सरकार से भी सहायता प्राप्त होती है। अब मजदूर मालिक से नहीं, मालिक मजदूर से डरता है। मजदूरों का सिंडिकेट, यूनियन सब है... एक–दो घण्टे परिश्रम किया... बस!

सत्य : आप लोग तो बड़े ताकतवर हैं। मैं बड़ा परेशान हूँ।

मजदूर : परेशान! कौन सी परेशानी... हम परेशान नहीं तो आप क्यों परेशान हैं?

सत्य : क्या कहूँ! (थोड़ा सकुचा कर) मुझे एक प्रश्न का जवाब नहीं मिल रहा है। उसकी उत्तर की तलाश में मैं मारे–मारे फिर रहा हूँ। बड़ी टेढ़ी खीर है!

मजदूर : (हँसता हुआ) टेढ़ी खीर! हम मजदूरों के पास हर समस्या का हल है। कहो, क्या समस्या है? (कुदाल रखकर उसी पर बैठ जाता है। पगड़ी निकालकर चेहरा पोंछता है)।

सत्य : प्रश्न यह है... एकदम साधारण... सत्य कहाँ है? सच्चाई–सत्य कहाँ है? क्या आप की मेहनत में, काम में, खेत में, कमाई में..? आखिर सत्य है कहाँ?

मजदूर : (धीरे से उठकर) बप्पा रे बप्पा! सच्चाई–सत्य! इस पर तो मैंने कभी सोचा ही नहीं। अब तो ये चीजें जैसे किसी चिड़िया का नाम हो। अब तो चारों ओर गड़बड़ है। ईमानदारी का जमाना तो गया भैया! अब कहाँ सच्चाई का बोल–बाला! यह तो सपनों की बात है। ईमानदारी, सच्चाई, अच्छाई आदि कलयुग के लोगों से डर कर कहीं छुप गया है।

सत्य : क्यों? ईमानदारी, सच्चाई नहीं है?

मजदूर : नहीं! सौ प्रतिशत नहीं है... अब तो कहीं–कहीं और बहुत कम लोगों के पास ही है। अब तो धरती माँ, वर्षा सब कुछ बीमार है।

सत्य : बीमार! यह कैसे?

मजदूर : अब तो पवित्र पानी नहीं बरसता! वसंत ऋतु का पता नहीं, पंछियों के मधुर गीत नहीं, कहीं मीठा पानी नहीं, वातावरण दूषित, हवा अशुद्ध, धरती सुंदर–मीठे फल–फूल–पत्ते नहीं उगा सकती, कल कारखानों में काली करतूतों से मालिकों का कमाया काला धन...। अब तो पैसे भी नकली मिलने लगे हैं। सत्य का तो बोल–बाला है ही नहीं... अब मैं सोच रहा हूँ कि आखिर सत्य कहाँ है? अगर कहीं मिल जाए तो मैं अवश्य आपको बता दूँगा। (वह कुदाल उठाता है और कंधे पर रखते हुए चलने लगता है। वह बड़बड़ाता है...।) इतनी सारी चीजें झूठी है। यह दुनिया तो रसातल में चली जाएगी। मजदूर मालिक से और मालिक मजदूर से झूठ बोल रहा है। हे मालिक! मैंने पहले से यह क्यों न सोचा।

सैनिक : (जोशीले स्वर में सैनिक के लिबास और गम्भीर स्वर में) खबरदार–होशियार, कोई यहाँ से न गुजरे यह वतन हमारा है। हम किसी ऐसे गैर को आने नहीं देंगे।

सत्य : (चौंककर) अरे बाप रे बाप... ये तो हमें यहीं रोक कर रखना चाहता है... (सामने आकर) हे सैनिक भैया! सभी को खबरदार कर रहे हैं तो मैं कैसे गाफ़िल?

सैनिक : कौन... कौन है और यहाँ क्या कर रहे हैं? आप यहाँ कैसे आए, यहाँ तो आना मना है।

सत्य : क्यों मना है?

सैनिक : मना है! अभी आप पल भर में स्वाहा हो जाएँगे, गोली चलेगी, बम फटेगा, चाकू या बंदूक चलेगी तो अपने आप को बचा नहीं पाएँगे. ..समझे?

सत्य : पर मैंने तो कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा है। बस एक सवाल लिए व्याकुल घूम रहा हूँ। जवाब मिल जाए तो मरना भी मंजूर है।

सैनिक : अरे भैया! सवाल का हल कहीं और ढूँढिए। यह उचित जगह नहीं! यहाँ मौत मंडराती है। यहाँ कब गोली चल जाए, किसी को पता नहीं होता।

सत्य : कई जगहों पर पूछने पर भी कोई मेरे सवाल का हल नहीं दे पाया। शायद आप ही दे पाएँ। (तभी हवाई जहाज़, गोली और बम फटने की आवाज सुनाई दी।)।

सैनिक : जो भी पूँछना है, जल्दी से पूछिए और चलते बनिए।

सत्य : मेरा प्रश्न एकदम साधारण है। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि आज के युग में सच्चाई कहाँ है? क्या आप सत्य को जानते हैं, पहचानते या उपयोग करते हैं?

सैनिक : (माथा ठनकाते हुए चौंककर) सच्चाई–सत्य! मैंने सुना तो है! लोग कहते हैं कि सभी लोग सत्य वचन कहते हैं। नेता, अध्यापक, प्रचारक, पंडित–पुरोहित, ऋषि–मुनि, बालक, युवा–वृद्ध, यहाँ तक कि तोता भी सत्य बोलता है... पर आज मैं अपने आप से पूछता हूँ कि क्या मैं सत्य बोलता हूँ!

सत्य : हाँ! हाँ! बताइए क्या हर समय, हर घड़ी, हर पल, हर स्थिति में, हर किसी से... आप सत्य वचन कहते हैं?

सैनिक : (थोड़ा अद्वेलित होकर मंच पर चक्कर लगाता हुआ) नहीं! मैं सत्य नहीं बोलता... सौ प्रतिशत सत्य नहीं बोलता... मैं बोल ही नहीं सकता।

सत्य : पर क्यों सत्य नहीं बोल सकते?

सैनिक : मुझे देश को बचाना है, शत्रु का नाश करना है, साजिश करना है, व्यूह रचकर उन्हें परास्त करना है! फिर मैं कैसे सत्य का पालन करूँ... मेरी योजना का पता लोगों को लग गया तो सारा कुछ बेकार हो जाएगा। इसलिए मैं सत्य नहीं बोलता... न शत्रु, न लेफ्टिनेंट, न सूबेदार, न ही नेता, मंत्री या प्रधान-मंत्री... हंगामा हो सकता है!

सत्य : तो क्या सत्य नहीं बोलना चाहिए? इस दुनिया में सत्य का कोई स्थान नहीं? सत्य से क्रांति होगी... सत्य-पालन से बरबादी कैसे?

सैनिक : यह तो मुझे पता नहीं, लेकिन इतना सत्य है कि सत्य-पालन से समस्या अवश्य है। मुझे जाना है। होशियार... खबरदार (बोलता हुआ आगे बढ जाता है।)

सत्य : (वहीं बैठकर दर्शकों से प्रश्न करता है।) सैनिक भी! (तभी मंच पर काले कोट पहने वकील आता है।)

वकील : (खुशी-खुशी) आज फिर से केस जीत लिया। आजकल तो पैसों की बरसात हो रही है। भगवान करे हर बार मैं हत्यारे, चोर, बलात्कारी, नशीली पदार्थ के व्यापारियों को बचा कर अपनी जेब भरता रहूँ... और झूठ के सहारे हर मुकदमा जीत जाऊँ!

सत्य : वाह, वकील साहब! मैं तो यहाँ सच की तलाश में आया हूँ और आप अपनी झूठी दलीलों पर खुश हो रहे हैं? क्या आपके पेशे में सत्य का कोई मोल नहीं? क्या यहाँ सिर्फ झूठ ही झूठ चलता है? कोर्ट के बाहर तो बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा गया है 'सत्यमेव जयते', पर अंदर तो मामला ही कुछ और है। मैं तो समझता था न्याय के मंदिर में सत्य अवश्य मिल जाएगा, लेकिन यहाँ तो न्यायदेवी की आँखों पर पट्टी बाँधकर झूठ का प्रचार हो रहा है।

वकील : अगर हम सत्य को अपनाते तो हम बेकार हो जाते। क्या आपको पता भी है कि ये लोग जो गैरकानूनी काम करते हैं, उनके पास कितना पैसा होता है? वे इतने मालामाल होते हैं कि अदालत में सच को झूठ और झूठ को सच में बदलते हैं। पानी की तरह पैसे बहाकर वे अपनी आजादी खरीदते हैं और जो गरीब, साधारण जनता है वह बेकसूर होते हुए भी फँस जाती है क्योंकि उसके पास पैसे नहीं होते। झूठ से हमें जितना धन मिलता वह, वह सत्य वचन में कहाँ? इसलिए सभी झूठ का ही सहारा लेते हैं।

सत्य : आपके पास मुझे सत्य नहीं मिलेगा। मैं तो सत्य की खोज करते-करते थक गया हूँ... न डॉक्टर, न पंडित, न कवि, न मजदूर, न नेता और न ही वकील... कोई भी सत्य नहीं बोलता! वे तो झूठे वादे करने में प्रसिद्ध हैं। क्या करूँ, कहाँ सत्य की तलाश करूँ? यदि सत्य युग होता तो राजा हरिश्चंद्र यहाँ मिल ही जाते, पर इस कलयुग में तो लगता है कि सत्य कहीं है ही नहीं! पहले तो कहा जाता था 'सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप', पर आज हम यह भूल गए हैं। सैनिक भी... नेता भी... यहाँ तो सभी लोग असत्य की नाव पर सवार हैं... ओ हो!

प्रेमिका : (पागलों जैसा व्यवहार करती हुई, नाराज होकर मंच पर प्रवेश करती है।) मार डालूँगी... काट डालूँगी... सारी दुनिया को जला डालूँगी... मुझसे धोखा-धड़ी... सौंपा था मैंने प्यार, अपनापन, समर्पण, विश्वास और बदले में मुझे क्या मिला! हाँ, बताइए मुझे क्या मिला...? जला दूँगी...

सत्य : (डरता-हिचकिचाता हुआ उसके पास जाता है।) अरी बहन! शांत-शांत, आप शांति धारण कीजिए...

प्रेमिका : (भयंकर स्वरों में) ऐं! शांत हो जाऊँ... चुप हो जाऊँ... क्यों! ताकि तुम लोग मुझपर और जुल्म ढा सको, मुझे और सता सको, मुझसे झूठ कह सको... मुझे क्या खिलौना समझ कर रखा है?

सत्य : नहीं बहन... अपने आप को संभालिए... कोई आपको नहीं सताएगा... हम बचाने आएँगे।

प्रेमिका : (पास आकर उसे ऊपर से नीचे देखती है।) आप कौन हैं और मुझे क्यों बचाना चाहते हैं?

सत्य : मैं भी आप ही की तरह दुखी हूँ... एक सवाल लिए मारा-मार फिर रहा हूँ। किसी के पास उसका जवाब नहीं मिला। इस संसार में सत्य कहाँ है, ऐसा कौन है जो सत्य का पालन करता है, सच्चाई का रक्षक कौन है... क्या आप बता सकती हैं?

प्रेमिका : (ठहाका मारकर हँसती है।) सच्चाई... (दर्शकों की ओर संकेत करके) बोलने को तो सभी सत्य ही बोलते हैं। इसके बारे में जानना

जरुरी है। मुझसे पूछिए लोग कितने झूठे है, मक्कार हैं। वादा तो करते हैं पर निभाते नहीं..विश्वास दिलाते है पर विश्वासघाती होते हैं... आशा बढ़ाकर निराशा ही देते हैं! कोई सच्च नहीं बोलता...

सत्य : प्यार तो सच्चा होता है, दोस्ती तो सच्ची होती है न?

प्रेमिका : झूठ! बहुत बड़ा असत्य! अब प्रेमी-प्रेमिका में सच्चा प्यार कहाँ! सभी हवस के पुजारी हैं। चाहे लड़का हो या लड़की, इच्छापूर्ति के लिए सब कुछ करते हैं। सच्चा प्यार अब नहीं रहा, सिर्फ शारीरिक रिझाव रह गया है... सभी भोगी, पैसे के पुजारी, सुन्दरता व आकर्षण के वश-वश से अँधे... सभी झूठे हैं, निर्मम हैं!

सत्य : (कुछ और जानने की इच्छा से) आप ऐसे कैसे कह सकती हैं?

प्रेमिका : (जोर से हँसते हुए) मुझसे पूछिए कि मेरे साथ क्या कुछ नहीं हुआ? पहले प्यार, शादी, बड़े घर का वादा, पर हुआ क्या? शादी की और कुछ ही दिनों बाद दूसरी स्त्री के प्रति आकर्षित होकर मुझे ठुकराकर चला गया। सभी झूठे हैं... सब झूठ हैं। यहाँ असत्य का बाजार फैला है... (बोलते-बोलते बाहर निकल गई।)

सत्य : यह दुखियारी तो स्वयं दुनिया की ठुकराई हुई है... कहाँ मेरे सवाल का जवाब दे सकेगी? (तभी प्रतीकात्मक ढंग से एक पेड़ प्रकृति का रूप धारण किए प्रस्तुत होता है।)

प्रकृति : मैंने हमेशा बिना किसी पक्षपात के सभी को सब कुछ दिया और लोगों ने बस लिया। नाममात्र पता नहीं कितने लोगों ने मेरी रक्षा की! मेरे सुंदर वन सब काट दिए... मेरी सुन्दरता उजाड़कर मुझे विषैला एवं घातक बना दिया! अब तो पानी देने से भी डरती हूँ, क्योंकि वह रसायन से भरा है। शुद्ध हवा कहाँ से लाऊँ, पूरा वायु मंडल ही दूषित है। जो नदी मेरी शोभा बढ़ाया करती थीं, वे सभी नदियाँ अब दम तोड़ रही हैं। मैंने सब कुछ दिया पर बदले में मुझे क्या मिला...?

सत्य : अरी प्रकृति देवी! आपका अभिवादन है। आप इतनी उदास क्यों हैं? इतनी निराशा भरी बातें क्यों?

प्रकृति : मैं प्रसन्न कैसे रहूँ, जब मेरे अपने सपूत, जिन्हें मैंने अपने खून से सींचा, मेरी ऐसी दुर्गति करने पर तुले हुए हैं? मेरे सुंदर वनों को उजाड़कर पुनः रोपाई का अभियान चलाने का नाटक कर रहे हैं। मेरी नदियों को जहरीला बनाकर झूठी सफाई का अभियान, जीव-जंतुओं का भक्षण कर बचाने का झूठा ढोंग, कहीं सच्चाई का पाठ, रक्षा का पाठ और प्यार का संदेश दिया जा रहा है?

सत्य : आज की तरह दुखी और उदास मैं ने आप को कभी नहीं देखा...

प्रकृति : आप को क्या कष्ट है जो इस तरह मारे-मारे फिर रहे हैं?

सत्य : मेरी समस्या मानो तो गंभीर है और न मानो तो एकदम साधारण! मेरी बस इतनी तलाश है कि आखिर इस संसार में सत्य कहाँ है... सच्चाई है भी या नहीं?

प्रकृति : इस कलयुग में आप क्या तलाश रहे हैं? यह पाने वाली चीज नहीं... अब तो यह सिर्फ किताबों में सजी हुई मिलती है... बड़े-बड़े भाषणों और प्रचार-प्रसार की बातों में मिलती है। रोजाना क्या कुछ देखने को नहीं मिलता यहाँ? लौट जाइए... यहाँ आपको सच्चाई नहीं मिलेगी!

सत्य : नहीं मिलेगी सच्चाई... नहीं मिलेगा सत्य! हर कोई यही कह रहा है पर मैं कैसे रुक जाऊँ... बिना तलाश लिए मैं नहीं रह सकता!

प्रकृति : ठीक है, जारी रखो! हमें इसे बचाना होगा। इसकी सुरक्षा अति आवश्यक है... चलिए, मैं भी आप के साथ सत्य की तलाश करती हूँ।

सत्य : सत्य... सत्य! मैं ही हूँ! सभी जगहों से मैं गायब हूँ... सभी मनुष्यों में अनुपस्थित हूँ। मैं सिर्फ दिखावा बन कर रह गया हूँ... मेरा कोई अस्तित्व नहीं, कोई वजूद नहीं... चारों ओर सिर्फ झूठ ही झूठ!

प्रकृति : झूठ का पानी-नदियाँ-सागर, झूठ की धूप-छाव, झूठे रिश्ते-नाते, झूठा परिवार, झूठा प्यार, झूठा विश्वास! चारों ओर झूठ ही झूठ!

सत्य : झूटा रौब, झूठा अभिमान, झूठी सुंदरता, झूठा मान, बान और शान! आखिर कब तक ऐसा ही चलता रहेगा..? हमें लड़ना होगा... सच्चाई को हर जगह लाना ही होगा। सत्य का गौरव पुनः स्थापित करना ही करना है!

दोनों : (साथ में) सत्यमेव जयते... सत्यमेव जयते... सत्यमेव जयते! सत्यं शिवं सुंदरं!

इच्छा-शक्ति

– श्री विश्वानन्द पतिया

स्थान : विश्वविद्यालय का एक कक्ष।
(जहाँ छात्रगण ज्ञानार्जन करते हैं।)
समय : मध्याह्न (दिन में)
(मध्यावकाश ३० मिनट–अवकाश की अवधि)

पात्र–परिचय :

(1) सुयश : बी.ए. हिंदी प्रथम वर्ष का एक छात्र जिसे हिंदी के प्रति कम रूचि है।
(2) माला : बी.ए. हिंदी द्वितीय वर्ष की एक छात्रा जो विदुषी और परिश्रमी है। सुयश की दोस्त भी है।
(3) सूरज : बी.ए. हिंदी तृतीय वर्ष का एक छात्र जो बहुत मेहनती व अनुभवी है। सुयश और माला इसके भी अच्छे मित्र हैं।
(4) शीतल : बी.ए. हिंदी तृतीय वर्ष की एक छात्रा जो सूरज की कक्षा में पढ़ती है। वह बुद्धिमती है तथा सुयश, माला व सूरज की अच्छी दोस्त भी है।

(मध्यावकाश के समय घंटी बजती है और माला अपनी कक्षा की दाईं ओर कुरसी पर बैठी हुई रोटी खा रही है। कक्षा के सभी छात्र कैंटिन चले गए हैं और अचानक सुयश का प्रवेश हो होता है।)

सुयश : (गीत गुनगुनाते हुए प्रवेश करता है)
अगर पढो लिखोगे बाबू राजा बनोगे! अगर नहीं पढ़ोगे, कहीं के नहीं रहोगे!!
माला : क्या बात है सुयश! अब तो अच्छे गायक और गीतकार भी बन गये हो! पुराने गाने में अपनी शैली मिलाकर प्रस्तुत करना तो कोई तुमसे सीखे! वाह! वाह!
सुयश : नहीं माला, मेरी प्रशंसा मत करो! मुझे डाँटो! आज सुबह की कक्षा में गुरुजी ने मुझे बहुत डाँटा।
माला : (आश्चर्य भाव से) क्यों??
सुयश : मत पूछो!
माला : अब बता भी दो।
सुयश : (निराश भाव से) गुरुजी ने मुझे इसलिए डाँटा क्योंकि मैं आलसी हूँ। मेरा ध्यान पढने–लिखने में बिल्कुल नहीं, केवल खेल–कूद में है। उन्होंने मुझ से पूछा कि 'पूस की रात' शीर्षक कहानी किसके द्वारा लिखी गई है और मैंने उत्तर दिया 'जयशंकर प्रसाद'।
माला : (ठठाकर हँसती हुई) क्या? क्या कहा? अरे 'पुस की रात' और 'जयशंकर प्रसाद'। तुम भी न सुयश! इतना भी नहीं जानते! हिंदी के छात्र होकर...!!
सुयश : (थोड़ा उदास व लज्जित होकर) मैं भूल गया था।
माला : इसके लिए डाँट तो पड़नी ही थी। पढ़ते जो नहीं हो!

सुयश : (गुस्से में) हाँ केवल पढो, पढो, पढो, पढो! तुम भी कुछ कम नही हो! गुरुजी की तरह डाँटती ही रहती हो!

माला : देखो सुयश! अगर नही पढोगे तो बाबू राजा कैसे बनोगे??

सूरज : (उत्सुकतापूर्वक प्रश्न करते हुए कक्षा में प्रवेश करता है) कौन बनेगा बाबू राजा?

माला : (हँसती हुई) तुम्हारा परम मित्र सु.....

सुयश : (क्रोधित होकर और चिल्लाते हुए) माला!! अब बस....!

सूरज : सुयश शान्त हो जाओ!

माला : अपने दोस्त को समझाओ सूरज! इसका ध्यान पढ़ने-लिखने में बिल्कुल नहीं है! सुबह-सुबह गुरुजी से डाँट भी पड गई!

सूरज : मुझे पता है! 'पूस की रात' और 'जयशंकर प्रसाद'।

सुयश : (आश्चर्यचकित होकर) तुम्हें कैसे पता चला?

सूरज : तुम्हारी ही कक्षा के एक छात्र से कुछ समय पहले भेंट हुई और वह इस बात को बोल-बोलकर हँस रहा था!

सुयश : (क्रोध भरे स्वर में) क्या? कौन है वह? क्या नाम है उसका?

सूरज : शान्त हो जाओ सुयश! (सुयश का दाहिना हाथ पकडकर कुरसी की ओर ले जाता है) यहाँ बैठो और ध्यान से सुनो!

माला : (हँसती हुई) हाँ ध्यान से सुनो प्रसाद बाबू!

सुयश : अब बस भी करो! मानता हूँ मुझ से गलती हो गई! अब क्या तुम लोग मेरी टाँग खीचते रहोगे! बस भी करो!

सूरज : नाराज़ क्यों होते हो सुयश, हम तो तुम्हारी भलाई .....

सुयश : भलाई!! और तुम दोनों! अच्छे दोस्त, दोस्तों की मदद करते हैं, न कि हमेशा उनकी टाँग खीचते रहते हैं।

माला : ठीक है प्रसाद बाबू! क्षमा करना, राजा बाबू!

सुयश : (खडा हो जाता है और क्रोध भरे स्वर में चिल्ला उठता है) माला.....!

शीतल : (कक्षा में प्रवेश करती है...) कौन ऐसे चिल्ला रहा है? बाहर तक आवाज़ सुनाई दे रही है! भला कोई छात्र कक्षा में इतना जोर-जोर से चिल्लाता है?

सुयश : शीतल! अपनी सहेली से कह दो कि मेरा मजाक न उडाया करे!

शीतल : मजाक? किस बात पर मज़ाक? क्या हुआ?

(शीतल माला के बगल में एक कुरसी लेकर बैठ जाती है।)

सूरज : जाने दो शीतल। यह बताओ कि आज सुबह की हिंदी की कक्षा कैसी रही?

शीतल : बहुत अच्छी रही! पता है आज ही हमारी हिंदी-प्राध्यापिका ने बताया कि दो सप्ताह बाद आशु-वाक् प्रतियोगिता होगी और इसमें प्रथम, द्वितीय व तृतीय वर्ष के छात्रों को भाग लेने का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया जाएगा।

सुयश : 'स्वर्णिम अवसर'! आरे वाह! तुम्हारी हिंदी तो एकदम शुद्ध हो गई है।

सूरज : सुयश, तुम्हारी हिंदी भी अच्छी हो सकती है यदि तुम 'आशु-वाक्' प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए सदा प्रयत्नशील रहो!

माला : (हस्तक्षेप करती हुई) मैं तो अवश्य इस प्रतियोगिता में भाग लूँगी।

सुयश : हाँ माला! इस प्रतियोगिता में तुम्हें अवश्य भाग लेना चाहिए क्योंकि तुम्हारी हिंदी बहुत अच्छी है।

माला : और तुम्हारी अच्छी नहीं है क्या जयशंकर प्रसाद बाबू? (यह कहकर वह हँसने लगती है)

सुयश : (क्रोधितावस्था में) माला! तुम हद पार कर रही हो!

सूरज : (माला को समझाते हुए) माला! अब मज़ाक बन्द! मज़ाक की एक सीमा होती है! अब चुप रहो!

माला : ठीक है! मैं तो ऐसी ही.....

शीतल : (जिज्ञासु होकर) क्या बात है माला? कुछ हुआ क्या?

माला : दिलचस्प घटना है शीतल! बाद में बताऊँगी!

सुयश : माला.....!

सूरज : अब बस! माला–सुयश! चुप रहो!

शीतल : (स्थिति पर नियंत्रण रखती हुई) अब बच्चों की तरह लड़ना बन्द करो और आशु–वाक् प्रतियोगिता के बारे में सोचो।

सूरज : हाँ तुम ठीक कह रही हो शीतल !

माला : हमें कुछ चर्चित विषयों पर खोज–कार्य करना चाहिए और तैयारियाँ भी शुरू कर देनी चाहिए।

सुयश : खोज–कार्य! तैयारियाँ! बाप रे बाप! मुझ से तो नहीं होगा ये सब!

सूरज : (प्रोत्साहन भरी आवाज़ में) क्यों नहीं होगा? क्या तुम में किसी प्रकार की सामर्थ्य नहीं? इस विश्वविद्यालय में क्या करने आए हो?

सुयश : पढ़ने! और क्या??

सूरज : (व्यांग्यपूर्ण शब्दों में) क्या पढ़ने? जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'पूस की रात'!

सुयश : सूरज! मैं अंतिम बार कह रहा हूँ। अब बहुत हो गया। पानी सिर से ऊपर उठ चुका है।

सूरज : सुयश! मैं तुम्हें गुस्सा दिलाने के लिए यह नहीं कह रहा हूँ बल्कि तुम्हें सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

सुयश : 'सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न' मैं समझा नहीं!

सूरज : सुनो सुयश...।

माला : (हस्तक्षेप करती हुई) ठहरो! एक मिनट सूरज! मुझे समझाने दो..

सूरज : ठीक है।

माला : देखो सुयश! प्रत्येक मनुष्य का एक जीवन–लक्ष्य होता है। उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए परिश्रम करना बहुत आवश्यक है।

सुयश : माला, तुम तो अब मेरी माँ की तरह बात कर रही हो! जीवन में यह काम करो, बड़ा आदमी बनो इत्यादि, इत्यादि।

सूरज : अच्छी बात ही तो कहती है तुम्हारी माँ!

सुयश : मैं छोटा बच्चा नहीं हूँ, सब समझता हूँ।

माला : तो फिर हिंदी की पढ़ाई में इतनी अरुचि कैसे पैदा हो गई?

सुयश : (निराश भाव से) वास्तव में बचपन से ही मेरी रुचि हिंदी से अधिक गणित में थी। मैं गणित का अध्यापक बनना चाहता था परंतु कुछ अप्रिय घटनाओं के कारण माध्यमिक स्कूल के एच.एस.सी की अंतिम परीक्षा में,उसी विषय में,मुझे कम अंक प्राप्त हुए और दूसरी ओर हिंदी–विषय में मेरे अंक काफ़ी अच्छे थे इसीलिए, इच्छा के विरुद्ध, मुझे विश्वविद्यालयीय स्तर पर हिंदी लेनी पड़ी। ऐसी बात नहीं कि मुझे हिंदी पसंद नहीं लेकिन मेरा सपना...

शीतल : मैं समझ सकती हूँ सुयश! सपना जब साकार होता है तब अपार खुशी की अनुभूति होती है!

माला : सुयश! बहुत सारे छात्रों को ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, परंतु इसका यह मतलब नही कि हमें निराश होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। जो हम प्राप्त नहीं कर सके,उसके बारे में सोच–सोच हताश व उदास नहीं होना चाहिए। जो हमें प्राप्त हुआ है क्या हम उसे भी छोड़ दें या उसमें रुचि न दिखाएँ। विद्वानों का मानना है कि 'कुछ नहीं से कुछ भला।'

सूरज : तुमने एकदम सही कहा माला! हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि कई छात्रों को तो अपने जीवन में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता! तुम तो बहुत ही भाग्यशाली हो कि तुम्हें विश्वविद्यालय में पढने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है।

माला : यह बात भी कभी मत भूलना सुयश कि व्यक्ति जहाँ भी होता है और जो भी करता है,सब उसके पूर्व कर्मों के ही फल होते हैं। आज तुम यहाँ हो, हमारे साथ हो, इसका मतलब है कि तुम में अवश्य कुछ विशेष बातें हैं, विशेष गुण हैं...

सुयश : ये सब तो ठीक है लेकिन मेरे जीवन का सपना...

शीतल : तुम्हारा सपना एक नया रूप भी ले सकता है सुयश! हिंदी को अपनी शक्ति बनाओ,अपना हथियार बनाओ और अपनी पहचान भी बनाओ!

सुयश : पहचान? कैसे??

शीतल : आशु–वाक् प्रतियोगिता में भाग लेकर!

सुयश : 'आशु– वाक्' और मैं?? नहीं! नहीं! नहीं हो सकता! आज सुबह की कक्षा में मैं मज़ाक का पात्र बन गया। 'पूस की रात' लिखने वाले का नाम भी नहीं बोल पाया! सोचो 'माँइक' के सामने खड़े होकर,उतने प्राध्यापकों–छात्रों के सामने बोलने पर मेरा कितना मज़ाक होगा। नहीं, नहीं, नहीं मैं नहीं करूँगा!

माला : देखो सुयश! यही सुअवसर है अपनी छिपी हुई प्रतिभा को सामने लाने का। मुझे पता है कि तुम अच्छी तरह से गीत गा लेते हो और तुम्हारी आवाज़ भी मधुर है। इसका मतलब है कि तुम अपनी आवाज़ से लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हो...

सूरज : आवाज़ अच्छी है तो सोचो भाषण कितना अच्छा हो सकता है!

सुयश : लेकिन 'गीत गाना' और भाषण देना', दो अलग–अलग...

माला : (उत्सुकतापूर्वक कहती है) क्या अलग–अलग?? अपनी सोच को बदलो सुयश! कुछ करो,कुछ बनो! अपने अस्तित्व की पहचान बनाओ!

सुयश : तुम लोग इतना कह रहे हो तो...

सूरज,शीतल,

माला : (तीनों साथ मिलकर बोलते हैं) हाँ! यह हुई न बात!

माला : सुयश! तुम बिल्कुल चिंता मत करो! हम तीनों तुम्हारी सहायता करेंगे और प्रतियोगिता के लिए अच्छी तरह से तैयार करेंगे!

सुयश : हाँ ... चुनौती पूर्ण कार्य है।

सूरज : सुयश! चुनौतियाँ जीवन के हर मोड़ पर दिखाई देंगी और यह बात भी हमेशा याद रखना कि जो व्यक्ति डटकर चुनौतियों का सामना करता है तथा विपरीत परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता है, वही प्रगति की ओर अग्रसित होता है।

शीतल : तुम्हारी चुनौती है 'आशु–वाक्' प्रतियोगिता में भाग लेना और उसमें तुम्हारी जीत होगी या हार, उसके विषय में चिंता मत करना! केवल मन लगाकर, अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ, उस प्रतियोगिता में भाग लेना और सभी लोगों

को अपनी वाणी से मंत्र–मुग्ध कर देना।

सुयश : 'मंत्र– मुग्ध!' लेकिन मेरे मन में अभी भी थोड़ा भय...

माला : भय पर विजय प्राप्त करना सीखो सुयश! भय से व्यक्ति का पतन निश्चित हो जाता है।

सुयश : तुम लोग इतना कह रहे हो तो.....

सूरज : हाँ! यह हुई न बात! सुयश! अपने मन की शक्ति को कभी भी कम मत होने देना। मनोबल की कमी के कारण ही, तुम में, हिन्दी के प्रति अरुचि पैदा हो गयी थी। इसी के अभाव में तुम्हें अपनी क्षमता का बोध नहीं हो पा रहा था। यह बात हमेशा ध्यान में रखना कि "मन के हारे हार है! मन के जीते जीत!!"

माला : एकदम सही! सुयश, तुम्हारा मन हार चुका था इसीलिए तुम पढ़ने–लिखने में आलस्य कर रहे थे।

शीतल : परंतु अब....

सुयश: (ऊँचे स्वर में) बस ! अब बहुत हो चुका...! (माला, शीतल और सूरज आश्चर्य भाव से सुयश की ओर देखते हैं)अब थोड़ा आशु–वाक् प्रतियोगिता के बारे में भी बात कर लें..... !

(उसी समय घंटी बजती है और सुयश और माला अपनी कक्षा में वापस चले जाते हैं। सूरज उसी कक्षा में अपनी जगह पर जाकर बैठ जता है। पर्दा गिरता है।)

जीत

– श्री दीपक कुमार चौरसिया

सूत्रधार : मनुष्य की इच्छाएँ अनंत हैं, इच्छाएं अक्सर खुशियों से ही जुड़ी होती हैं और उनमें से भी अधिकांश या तो अपनी या अपनों की खुशियों से। यह बात अलग है कि बाज़ार ने व्यक्ति की इन इच्छाओं में अपने हिस्से का लाभ तलाशते हुए अपनी चिरखुशहाली स्थापित कर ली है। असत्य नहीं कि अब बाज़ार धीरे–धीरे आदमी की कामनाओं पर अपनी प्रस्तुतियाँ लादकर उस पर हावी होने लगा है। अपनी आवश्यकताओं की चादर को जबरन फैलाता हुआ मनुष्य दिन–प्रतिदिन अपने सिद्धांतों को सिकोड़ता चला जा रहा है।

प्रस्तुत एकांकी में यही दर्शाया जा रहा है कि मानव किस प्रकार भौतिकता में उलझा अपनी अनावश्यक खुशियाँ रच रहा है और कैसे एक वस्तु से सम्बंधित छोटा–सा लाभ तीन अलग–अलग लोगों को अपना बड़ा लाभ प्रतीत होता है, जबकि यह लाभ होता किसी और का है। तो देखिए क्या होता है –

दृश्य– 1

(प्रातःकाल का समय है। रोजी–रोटी के चक्कर में भारत की धरती से सुदूर पश्चिम में जा बसे एक पति–पत्नी की 'ब्लैक फ्राइडे' वाले शुक्रवार को थोड़ी देर से आँखें खुलती हैं)

अबीर– (बिस्तर में लेटे हुए मोबाइल फोन में समय देखकर व्याकुल हो उठता है) अरे अरे.. ये क्या! निशा तुमने मुझे जगाया भी नहीं साढ़े सात बज गए।

निशा– मुझे लगा कि रात में तुमने देर तक ऑफिस का काम किया होगा, सो सोने देती हूँ। वैसे भी आज तो छुट्टी है। मैंने चाय बनाकर रखी है, पी लो और आज नाश्ता बनाने का दिन तुम्हारा है।

अबीर– (गुसलखाने की ओर भागता है और टूथब्रश में पेस्ट लगाता है) अरे यार भाड़ में गया नाश्ता, तुम कैसे भूल सकती हो कि ब्लैक फ्राइडे है आज। साल की सबसे भारी सेल लगती है। लोग एक रात पहले ही अपने–अपने टेंट लेकर स्टोर्स के बाहर लगाकर सो जाते हैं जिससे कि सुबह सबसे बड़ा फायदा ले सकें।

निशा– (चाय लाकर अबीर के पास टेबल पर रखते हुए) तो हमें खरीदना ही क्या है! साल भर तो कुछ न कुछ खरीदते रहते हैं, घर में अब जगह ही कहाँ बची है कुछ रखने की?

अबीर– अरे यार निशा लेने दो न प्लीज़। बुन्देली में एक कहावत है कि 'जब दाँत हते तो चना न हते अब चना भये तो दाँत नइयां'। अभी नहीं तो क्या बुढ़ापे में मजे करेंगे!

निशा– देखो यार मुझे वह सब नहीं पता, मैं तो इतना जानती हूँ कि चार पैग के बाद तुम ही बड़बड़ाते फिरते हो कि 'हाय... इस खर्च में तो मेरे गाँव के चार परिवारों के महीने भर का राशन आ जाता, उतने में तो वह हो जाता' वगैरह वगैरह...।

अबीर– (कपड़े और जूते पहनते हुए) तुम भी ना! क्या लेकर बैठ गईं। हम लेने में सक्षम हैं तो ले रहे हैं। मैंने तो सोच रखा है कि एक पैंसठ इंच का अल्ट्रा एचडी टी.वी., एक बड़ा डीएसएलआर कैमरा और अपडेटेड मोबाइल तो जरूर लेना है और एक मैरून जैकेट। तुम्हें चलना हो तो फटाफट तैयार हो जाओ दस मिनट में।

निशा– जो करना है सो करो, मुझे कुछ नहीं लेना और न ही भीड़ में धक्के खाने का शौक है।

(अबीर तैयार होकर जल्दी–जल्दी ओवरकोट पहनता है और कार की चाबी, मोबाइल एवं बटुआ समेटता हुआ तय किये हुए बाजार की ओर भागता है।)

दृश्य– 2

(बाज़ार पहुंचकर खचाखच भरे पार्किंग लॉट में बड़ी मुश्किल से आधे घंटे में कार खड़ी करने की जगह ढूंढ पाता है।)

अबीर– (कार से बाहर आते हुए खुद से बात करते हुए) ये देखो कैसे भागे जा रहे हैं लोग! अब तक तो सब माल बिक गया होगा, ये निशा है कि कुछ समझती ही नहीं।

(अबीर भी दौड़कर एक बड़े स्टोर में प्रवेश करता है और लगभग ढाई घंटे बाद एक बड़ी सी कार्ट में पाँच–छह डिब्बे रखे हुए बाहर निकलता है। सब सामान कार में रख ही पाता है कि उसका फ़ोन बज उठता है। फ़ोन निशा का था।)

निशा– (फ़ोन पर) अब क्या वहीं रहोगे क्या! आधा दिन तो निकल गया। मैं लंच तैयार करके इंतज़ार कर रही हूँ, जल्दी आओ।

अबीर– अरे तुम लंच की चिंता मत करो मैंने यहाँ पिज़्ज़ा खा लिया। (चेहरे पर खुशी लिए हुए) टी.वी., कैमरा, मोबाइल वगैरह मिल गए, कुछ दूसरे सामानों पर अच्छा डिस्काउंट था तो वो भी ले लिए। बस मुझे एक मैरून जैकेट लेनी है जो यहाँ नहीं है, उसके लिए एक दूसरे मॉल जा रहा हूँ।

निशा– हद करते हो तुम। रहो वहीं दिन भर...। (कहकर गुस्से में फ़ोन काट देती है।)

(अगले दो घण्टे शहर भर की खाक छानने के बाद एक छोटी–सी दुकान में उसे मैरून जैकेट दिखती है। पास खड़ा एक अन्य व्यक्ति भी वही जैकेट लेने के लिए हाथ आगे बढ़ाता है लेकिन अबीर लपककर जैकेट वाला हैंगर उठा लेता है। ऐसा करके वह खुद को विजेता की तरह महसूस करता है।)

अबीर– (मन ही मन मुस्कुराता हुआ खुद से) आखिर मिल ही गई, बस मेरे साइज़ की हो तो बात बने।

(जैकेट पहनकर आईने में देखता है और बिल्कुल अपनी माप की पाता है। वह मुस्कुराता है और उस व्यक्ति के भावों को पढ़ने की कोशिश करता है जो उस जैकेट से वंचित रह गया था। उसे लगता है कि वह आदमी खिसियाकर दुकान से बाहर चला गया।)

(कैश काउंटर पर जैकेट का भुगतान करने के बाद चेहरे पर दर्प लिए खुद से बतियाता है।)

अबीर– अगर थोड़ी सी देर कर दी होती तो यह भी चली जाती अपने हाथ से। पर ऊपरवाला अपने साथ है भई, जाती कैसे!

(थोड़ी दूर खड़ा दुकानमालिक धीरे से खुद से कहता है)

दुकानमालिक– भला हुआ जो ये जैकेट इसी मूल्य पर निकल गई, यह पिछली सेल में भी नहीं बिकी थी तो मैंने सोचा था कि आज शाम तक इसकी कीमत कम कर दूँगा। कम करता तो नुकसान होता, अब तो उल्टा कुछ फ़ायदा ही करा कर गई।

उधर एक दूसरे कोने में दुकान के बिखरे कपड़े व्यवस्थित करता एक कर्मचारी, जो सबसे अधिक खुश था, खुद से कह रहा था ।

कर्मचारी– गॉड इज रियली ग्रेट, पिछले सप्ताहांत मैं इसी जैकेट को पहनकर अपने दोस्तों की पार्टी में गया था और लापरवाही से उस पर रेड वाइन गिर गई थी। न बिकने पर और मालिक की नज़र उस दाग पर पड़ने पर अगर पूछताछ में मैं पकड़ा जाता तो मेरी एक सप्ताह की तनख्वाह काट ली जाती।

इन छोटी–बड़ी मुस्कुराहटों के बीच उधर बाज़ार अपनी जीत पर ठहाका लगाता है।

(धीरे–धीरे पर्दा गिरता है।)

– समाप्त –

निबंध

खुले आकाश का खिला हुआ चाँद है हिंदी

—श्री रितेंद्र अग्रवाल

खुले आकाश में चमकते सितारों के मध्य चाँद को देखना एक अलग ही अनुभव देता है। विभिन्न सितारों के मध्य चाँद की आभा और शोभा विलक्षण–सी दिखती है। ठीक इसी तरह विश्व रूपी आकाश में चाँद रूपी हिंदी। जब विभिन्न भाषाओं रूपी सितारों के मध्य हिंदी होती है तो आभा स्वतः ही स्मृति पटल पर रुक जाती है।

आकाश में जिस तरह नए सितारे अवलोकित होते रहते हैं, ठीक इसी तरह जब अन्य भाषाओं के नए–नए शब्द जुड़ते हैं तो आकर्षण बढ़ता ही है, कम नहीं होता।

भाषा का नियम है कि जो भाषा जितनी खुली होती है वह उतनी ही विकसित होती है। स्वच्छंद सी आकाश रूपी विश्व में चाँद रूपी हिंदी विचरण करती है तो उसके विकसित होने का आभास स्वतः ही हो जाता है।

आकाश में स्थित आकाश गंगा की तरह है हिंदी भाषा, इसे बाँधने या थामने का प्रयास संभव नहीं। अगर किया तो रुके पानी की तरह सड़ांध पैदा होने की संभावना होगी।

हिंदी में विभिन्न भाषाएँ, चाहे उर्दू, अरबी, अंग्रेजी आदि के शब्द भी जोर–शोर से प्रयुक्त हो रहे हैं।

अगर भाषा की शुद्धता पर ही अड़े रहें और दृष्टिकोण में कोई बदलाव न हो तो भाषा जड़ बनने लग जाती है। सोचिए, चाँद छोटा–बड़ा नहीं एक–सा रहे तो आँखें ऊब जाएँगी। अच्छा नहीं लगेगा।

चूँकि हर चीज गतिशील है, इसलिए भाषा की गतिशीलता भी आवश्यक है। इसी गतिशीलता के कारण हिंदी इतनी समृद्ध एवं आकर्षक हुई है।

स्वास्थ्य की उत्तमता के लिए आवश्यक है कि हाजमा दुरुस्त हो। इसी तरह हिंदी ने भी अन्य भाषाओं के शब्दों को सुगमता से पचाकर स्वयं को स्वस्थ बना लिया या कहें विकसित किया है। यही कारण है कि हिंदी विश्व पटल पर तेजी से बढ़ रही है।

इतिहास पर भी नजर डालिए तो पाएँगे कि समय–समय पर हिंदी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित किया है। सौंदर्य एवं सामर्थ्य को चार चाँद लगे हैं। यही हिंदी की विशेषता है।

विभिन्न भाषाओं, लोक भाषाओं के शब्दों से, जनता के मध्य प्रसिद्ध जन गीत, मुहावरे, लोकोक्तियाँ हिंदी में इस अपनेपन से समाहित हैं कि इन्होंने भाषा की रोचकता एवं आकर्षण को बढ़ा दिया। इससे हिंदी का क्षरण नहीं हुआ है, वरन् विकसित हुई है हिंदी।

जिस तरह से अब तक हिंदी अन्य भाषाओं के शब्द समाहित करती आई, यदि करती रहेगी तो यही लचिलापन हिंदी को वैश्विक भाषा का दर्जा दिलाएगा।

इस परिप्रेक्ष्य में कितने भी झंझावात उठें, आँधियाँ चलें, हिंदी का परचम फहराता ही रहेगा।

आकाश में बादल छाएँ, आँधियाँ चलें लेकिन चाँद जब बादलों से झलक दिखाता है तो देखते ही बनता है। ऐसे में हिंदी भी जब विभिन्न झंझावातों के बाद सामने आती है तो चाँद के समान आकर्षक दिखती है।

कहा जाता था कि हिंदी के माध्यम से विज्ञान, तकनीकी शिक्षा तथा कंप्यूटर का ज्ञानार्जन मुश्किल है। लेकिन आज जिस तरह से विज्ञान के तकनीकी शब्द हिंदी में मिल रहे हैं, जैसे 'नेट', 'व्हाट्स एप्प' आदि, इससे हिंदी की ग्राह्यता बढ़ी है। हिंदी के प्रचार में बढ़ोतरी आई है। लग रहा है कि धीरे–धीरे हिंदी रूपी चाँद पूर्णिमा की ओर अग्रसर हो रहा है।

चाँद को जैसे देखते वैसे ही स्वीकारते हैं। ठीक इसी तरह हिंदी में जो लिखते हैं, वही पढ़ते हैं। न कुछ कम, न कुछ ज्यादा। ध्वनि का जिस बेहतर तरीके से हिंदी में समायोजन है, वैसे अन्य किसी भाषा में नहीं। बड़ी कारण है कि हिंदी विश्वव्यापी बन रही है।

जानते हैं, हम अंग्रेजी को ज्यादा महत्व देते है लेकिन उसमें केवल डेढ़ लाख शब्द हैं, जबकि हिंदी में 6–7 लाख शब्द हैं। यही वे शब्द है, जो समृद्ध कर रहे हैं हिंदी को।

आज विश्व के 59 देशों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। दूसरी भाषाओं के शब्दों के जुड़ने से विकास ही हुआ है और होगा। हाँ,

यह ध्यान देना होगा कि शब्दों का जुड़ना अनुशासनात्मक हो। इस तरह भाषा जितनी समृद्ध होगी, उसका प्रवाह उतना ही अधिक होगा।

इस तरह मौलिकता बनी रहती है, कोई बुराई नहीं आती। हिंदी को बाहरी या अन्य भाषाओं के शब्दों से नहीं, वरन् तथाकथित हिंदी विद्वानों से खतरा है, जो पाठ्य पुस्तक लिखते या पाठ्यक्रम तैयार करते वक्त इतने क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं कि अच्छे-अच्छे मात खा जाएँ। विद्वानों को लिखते वक्त ख़्याल रखना चाहिए कि सामनेवाला या पढ़नेवाला उतना विद्वान नहीं है। उसका उत्साह, पढ़ने में रोचकता तथा लगाव कायम रहे। उद्देश्य स्वतः ही मिल जाएगा।

आज हिंदी विश्व के अनेक देशों में प्रचलित है और उसका प्रचार-प्रसार काफी विस्तृत हो चुका है। पाकिस्तान, जो भारत का ही अंग था, जहाँ की राष्ट्रीय भाषा उर्दू है, वहाँ भी हिंदी की प्रधानता है। हमारे ही पड़ोसी देश, नेपाल में भी हिंदी का काफ़ी प्रचार-प्रसार है, वहाँ की लिपि देवनागरी ही है। इसके सिवाय अन्य देशों में हिंदी में लेखने-पढ़ने के लिए उत्सुकता बढ़ रही है।

लंदन के प्राच्य भाषा केन्द्र द्वारा हिंदी के संबंध में अच्छा कार्य हुआ है। रूस में भी हिंदी के प्रति विशेष आकर्षण है, वहाँ 'रामायण' का अनुवाद हुआ है, लोगों में हिंदी में लिखने-पढ़ने की उत्सुकता बढ़ी है।

इसके अलावा अफ्रीका, फिजी, त्रिनिदाद, सूरीनाम इत्यादि देशों में जाएँ तो हिंदी आकर्षक रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करती हुई देखी जा सकती है। परंतु विश्व में बढ़ती लोकप्रियता के सापेक्ष भारत में विकास उस गति से नहीं है।

अतः यह थोड़ा सोचने को विवश करता है। यह वैसे ही है कि चाँद पूरे विश्व में उजाला कर रहा है और हम कह रहे हैं कि उसमें दाग है।

इसके बावजूद जिस प्रकार चाँद आकाश में अठखेलियाँ करता विचरता रहता है, ठीक उसी तरह हिंदी भी उत्तरोत्तर प्रगति-पथ पर बढ़ते चाँद की तरह इठलाती उत्साहपूर्वक साहित्याकाश में जगमगा रही है, चाँद की तरह।

कहा जा सकता है कि खुले आकाश का खिला चाँद है – 'हिंदी'।

राजस्थान, भारत

उपनिवेशकाल में लिखित हिंदी का प्रवासी साहित्य

– डॉ. राकेश कुमार दूबे

हिंदी में एक–दो नहीं बल्कि कई ऐसे महत्वपूर्ण विषय रहे हैं जिनपर भारत में आजादी के पूर्व एवं पश्चात् या तो किसी ने सोचने का कष्ट नहीं किया अथवा लेखनी ही नहीं उठाई। यदि किसी ने इस दिशा में प्रयास किया भी तो नाम मात्र के लिए और उसका अनुकरण भी करने का साहस किसी ने नहीं दिखाया, जिसका फल यह हुआ कि इन विषयों पर या तो पुस्तकें लिखी ही नहीं गयीं और लिखी भी गयीं तो बहुत कम और उन्हें आगे बढाने और प्रचारित करने की सामर्थ्य भी लेखकों और प्रकाशकों ने नहीं दिखाई। प्रवासी भारतवासियों की समस्या का प्रश्न भी एक ऐसा ही महत्वपूर्ण विषय रहा है जिस पर साहित्यकारों और इतिहासकारों ने अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। आज़ादी के पूर्व तो साहित्यिक एवं ऐतिहासिक, दोनों रूपों में इस विषय पर काफी काम हुआ पर आज़ादी के बाद तो इस विषय पर दोनों ही रूपों में न के बराबर लेखन कार्य हुआ, जिसकी अनिवार्यता को 1928ई. में ही सी. एफ. एण्ड्रयूज़ ने बतला दिया था और 'विशाल भारत' पत्रिका के प्रथम खण्ड में ही लिखा था कि "भारत को अपने स्वाधीनता–संग्राम के साथ ही जिन कठिन प्रश्नों का सामना करना पड़ेगा उनमें से एक प्रश्न होगा भारतीय प्रवास की स्वतंत्रता को कायम रखना। भविष्य में जब इतिहास लेखक भारत का इतिहास लिखेंगे तो उन्हें 'भारतीय प्रवास' पर एक महत्वपूर्ण अध्याय अवश्य रखना पड़ेगा। अंग्रेजी में सीली ने 'इंग्लैंड का विस्तार' नामक जो पुस्तक लिखी है, उससे मिलती–जुलती किताब भारतवर्ष के विस्तार के विषय में लिखनी पड़ेगी। फर्क इतना ही है कि भारत का विस्तार प्रारंभ से लेकर अंत तक शांतिपूर्वक हुआ है, पर इसके विरुद्ध इंग्लैंड को अपने विस्तार के लिए युद्ध करने पड़े हैं।" इस विषय पर साहित्यकारों एवं इतिहासकारों ने बहुत कम ध्यान दिया जो कि आज भी अत्यंत महत्व का है। विदेशों में रह रहे लाखों भारतवंशजों का हिंदी से सीधे संबंध होने के कारण, उनके इतिहास का अध्ययन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जो विश्व स्तर पर चल रहे हिंदी आंदोलन को बल प्रदान करेगा।

हिंदी के प्रवासी साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व भारतीय प्रवास को जानना समीचीन होगा। भारतीयों के प्रवास को सामान्यतः दो कालखंडों में बाँटा जाता है–प्रथम, प्राचीन काल में प्रवास और दूसरा, आधुनिक काल या ब्रिटिश राज में प्रवास। प्राचीन भारत में जो प्रवास हुआ था वह भारतीयों ने अपनी इच्छा से किया था। व्यापार, धर्म का प्रचार और कभी–कभी दूसरे देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए भारतवासी प्रवास पर गये और अपने सौहार्दपूर्ण बर्ताव से वहाँ के आदिम निवासियों को प्रभावित कर उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को सम्यरूपेण पूरा कर उन्हें सभ्यता का सच्चा मार्ग बताया जिसके फलस्वरूप भारत का गौरव पूरे विश्व में स्थापित हो गया था। परंतु अंग्रेज़ी राज में भारतीयों का जो प्रवास हुआ, उसके कारण अंग्रेज़ थे। अंग्रेजों ने स्वजातीय हित के लिए सीधे–साधे और सभ्य भारतीयों को उपनिवेशों में ले जाकर गुलामों की तरह बेचा और भारत का नाम कलंकित किया।

यूरोपीय कंपनियाँ भारत में व्यापार करने के लिए आयी थीं जिनमें से इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी कुटिल नीतियों के बल पर भारत की शासनसत्ता हथिया ली थी। यूरोप में नेपोलियन की पराजय के बाद 1814–15ई० में आयोजित वियेन्ना कांग्रेस में गुलामी की प्रथा समाप्त करने का प्रस्ताव पास हुआ और धीरे–धीरे यूरोप से गुलामी समाप्त होने लगी। यूरोप में हुई औद्योगिक क्रांति और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण यूरोपीय देशों ने एशिया, अफ्रीका और अमेरिकी महाद्वीपों में अपने उपनिवेश स्थापित कर रखे थे जहाँ पर खेती, खनन एवं बागानों को विकसित किया जा रहा था और ये सभी कार्य मुख्यरूप से अफ्रीका के गुलामों द्वारा कराया जाता था। गुलामी की समाप्ति के कारण उपनिवेशों के यूरोपीय मालिकों की बरबादी होने लगी तो उन लोगों ने भारत की कंपनी सरकार से सहायता की प्रार्थना की। भारत की कंपनी सरकार स्वजातियों की सहायता के लिए तैयार हो गयी और चूँकि गुलामी समाप्त हो गयी थी, इसलिए एक नयी प्रथा शुरू की गयी और जहाँ पहले गुलाम जीवन भर के लिए बिक जाते थे, वहीं इस नयी प्रथा में लोग 5 साल के लिए बिकने लगे, इस कारण यह प्रथा इतिहास में 'गुलामी की नई प्रथा,' 'शर्तबंध' 'कुली प्रथा', 'गिरमिटिया प्रथा' इत्यादि नामों से जानी गयी। इस प्रथा के अंतर्गत पढे–लिखों की जगह अनपढ और देहात के लोगों को उपनिवेशों में ले जाया गया और यूरोपीय लोगों ने उन पर पशुवत् अत्याचार किया जिसकी मिसाल शायद किसी भी अन्य आधुनिक सभ्यता में नहीं मिलेगी। 1833ई. में इंग्लैंड ने अपने देश में दास–प्रथा तो समाप्त

कर दी पर उसके अगले ही वर्ष परिवर्तित रूप में उसी प्रथा को भारत में प्रारंभ कर दिया गया और भारत में दासता का युग आरंभ हुआ।

अंग्रेजों द्वारा शर्तबंध प्रथा के अंतर्गत जिन भारतीयों को उपनिवेशों में ले जाया गया, उन्हें केंद्र में रखकर ही जो साहित्य लिखा गया, वही 'प्रवासी साहित्य' के नाम से जाना गया और यह साहित्य भारतीयों एवं प्रवासी भारतीयों दोनों द्वारा लिखा गया। 19वीं सदी के उत्तरार्ध से ही लोगों ने इस समस्या को उठाते हुए इस पर लेखन कार्य आरंभ किया। यदि प्रवासी साहित्य–लेखन की चर्चा की जाए तो इस संदर्भ में तीन बातें सामने आती हैं–प्रथम, यह साहित्य उन लोगों द्वारा लिखा गया है जो गिरमिटिया प्रथा के तहत बाहर गये; द्वितीय, यह साहित्य उन लोगों द्वारा लिखा गया जो स्वतंत्र रूप से उपनिवेशों की यात्रा पर गये और उन्होंने अपने अनुभवों को पुस्तक का रूप दिया और तृतीय, यह साहित्य उन लोगों द्वारा लिखा गया जो प्रवासियों की समस्याओं में गहरी रुचि लेते थे और जो किसी न किसी माध्यम से प्रवासियों से जुड़े हुए थे। अब यदि प्रवासी साहित्य पर ऐतिहासिक रूप से दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम एम. केम्पसम ने 1866ई. में 'कुलीनामा' नामक पुस्तक लिखी थी जो कि गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थी। वहीं, 'बॉबे एसोसिएशन' भारत की पहली राजनीतिक संस्था थी जिसने सर्वप्रथम प्रवासी भारतीयों के लिए आवाज उठायी थी। मद्रास के एक सज्जन व्यक्ति, राजाराथनम मुदालियार ने इस संदर्भ में एक पत्र 'बॉबे एसोसिएशन' को लिखा जिसे आधार बनाकर एसोसिएशन ने भारत सरकार को एक पत्र भेजा था जिसमें यह माँग की गयी थी कि मॉरीशस भेजे जाने वाले मजदूरों को कुछ समय के लिए रोक दिया जाए।

प्रवासी साहित्य के संदर्भ में पत्र–पत्रिकाओं का योगदान भी अति महत्वपूर्ण था और पत्रकारिता ने 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही थोड़ा–बहुत इस समस्या को उठाना आरंभ किया। हिंदी पत्रकारिता की बात की जाए तो ज्ञात होता है कि 19वीं सदी में कभी–कभार एकाध हिंदी पत्र–पत्रिकाएँ इस संदर्भ को थोड़ा–बहुत प्रकाशित कर देती थीं। 1901ई. में सर्वप्रथम 'अमृतबाजार पत्रिका' और बाद में 'भारत जीवन' नामक पत्र ने इस संदर्भ में विस्तृत जानकारी प्रकाशित की जिससे ज्ञात होता है कि किस देश में कितने भारतवासी थे। 20वीं सदी के आरंभ में जब प्रवासियों पर अत्याचार अत्यधिक बढ़ने लगा तब हिंदी की सभी प्रमुख पत्रिकाओं यथा– 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'अभ्युदय', 'सर्वधर्म प्रचारक', 'विश्वमय जगत', 'औदुंबर', 'इन्दु', 'प्रताप', 'भारतमित्र', 'हिंदी केसरी', 'भारतबंधु' इत्यादि ने इस संदर्भ में लिखना शुरू किया और प्रवासियों की समस्या को गंभीरता से उठाया। अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में 'इंडियन इमीग्रेंट' और 'इंडियन कोलोनियल रिव्यू' प्रथम पत्रिकाएँ थीं जो प्रवासियों की समस्याओं से पूर्णतः संबंधित थीं और अंग्रेज़ी भाषा में श्री स्वामीनाथन के संपादकत्व में मद्रास (अब चेन्नई) से प्रकाशित हुई थीं।

जो भारतवासी गिरमिटिया मजदूरों के रूप में उपनिवेशों में ले जाये गये अथवा वहीं पर जन्मे थे, उनमें से कुछ प्रवासी भारतीयों ने स्वयं अपने अनुभवों को पुस्तक का रूप दिया और ये पुस्तकें काफी चर्चित भी हुईं। इस तरह की पुस्तकों में ब्रह्मदत्त भवानी दयाल की 'पोर्तुगीज पूर्व अफ्रीका में हिंदुस्तानी'; लोताराम सनाढ्य की 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष'; ज्ञानीदास की 'भारतीय उपनिवेश–फिजी'; द्वारका प्रसाद की 'प्रवासी भारतवासी'; पं. आत्माराम की 'हिंदू मॉरीशस' के साथ ही भवानी दयाल संन्यासी की कई पुस्तकें महत्वपूर्ण थीं। दक्षिण अफ्रीका और भारत में रहते हुए भवानी दयाल ने 'दक्षिण अफ्रीका के मेरे अनुभव', 'सत्याग्रही महात्मा गांधी', 'हमारी कारावास कहानी', 'ट्रांसवाल में भारतवासी', 'नेटाली हिंदू', 'शिक्षित और किसान', 'वैदिक धर्म और आर्य सभ्यता', 'भजन–प्रकाश', 'प्रवासी की आत्मकथा', 'बोअर युद्ध का इतिहास', 'स्वामी शंकरानंद की वृहत् जीवनी' और 'सत्याग्रह का इतिहास' सदृश पुस्तकें तो लिखीं ही साथ ही, संन्यासी जी ने प्रवासी भारतीयों से संबंधित कितने ही उत्कृष्ट लेख लिखे जो समकालीन प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। उन्होंने मई, 1922ई. से नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) से 'हिंदी' नामक पत्रिका भी निकाली थी जो कि प्रवासी भारतवासियों की समस्याओं की मुख्य उदबोधक पत्रिका हो गयी थी। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने अजमेर में 'प्रवासी भवन' बनवाया था और प्रवासी भारतीयों की समस्या को भारत और विश्व स्तर पर उठाने के उददेश्य से ही अक्टूबर, 1947 ई. में हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में एक साथ प्रसिद्ध 'प्रवासी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया था।

20वीं सदी के पूर्वार्ध में कितने ही भारतवासी उपनिवेशों की यात्रा पर गये और वहाँ से लौटकर उन्होंने अपने अनुभवों को पुस्तक के रूप में पटल पर रखा जिससे प्रवासी भारतीयों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है। इस तरह की पुस्तकों में भाई परमानंद की 'ब्रिटिश गयाना में हिंदुस्तानी', श्यामजी मिश्र विशारद की 'केनिया में हिंदुस्तानी', महात्मा गांधी की 'दक्षिण अफ्रीका में भारतवासी', मंगलानंद पुरी

की 'अफ्रीका यात्रा'; सेठ गोविंददास की 'हमारा प्रधान उपनिवेश'; स्वामी स्वतंत्रानंद की 'पूर्वी अफ्रीका और मॉरीशस आदि में भारतीयों का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष तथा वहाँ का आँखों देखा वृत्तांत'; रामचंद्र शर्मा की 'फ़िजी दिग्दर्शन' एवं स्वामी सत्यदेव द्वारा लिखित कई पुस्तकें प्रमुख थीं और महत्वपूर्ण बात यह थी कि अधिकांश हिंदी भाषा में प्रकाशित हुई थीं।

कुछ भारतीय विद्वानों ने साक्षात्कार अथवा अन्य स्रोतों से जानकारी एकत्र कर प्रवासियों से संबंधित साहित्य लिखा और इनके द्वारा लिखित साहित्य अपने आप में काफी महत्वपूर्ण भी था, यथा कुँवर जोरावरसिंह आर्य ने 'प्रवासी गीतांजलि'; गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर' ने 'प्रवासिता'; कृष्णबिहारी मिश्र ने 'गुलामी'; प्रेमनारायण अग्रवाल ने 'दक्षिण अफ्रीका के लोकसेवक–भवानीदयाल संन्यासी'; चंद्रभानु सिंह ने 'महरु महाराज की प्रवास–कथा'; हरिभाऊ उपाध्याय ने 'वीर सत्याग्रही पं. भवानी दयाल की जीवनी' और शिवपूजन सहाय ने 'स्वामी भवानी दयाल संन्यासी' जैसी वर्णित पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों में प्रेमनारायण अग्रवाल की पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के लोकसेवक–भवानीदयाल संन्यासी' को दक्षिण अफ्रीका एवं भारत में खूब सराहा गया पर भारत में उसे प्रतिबंधित कर दिया गया। भारत में प्रवासी भारतवासियों से संबंधित पुस्तकों में प्रतिबंधित होने वाली यह प्रथम और शायद अंतिम पुस्तक थी जो उसके महत्व को इंगित करती है।

भारत के अधिकांश हिंदी साहित्यकारों ने भी प्रवासी भारतीयों की समस्या को लेखों, कथाओं, उपन्यासों, कविताओं इत्यादि के माध्यम से उठाया और लेखन का कार्य किया। मुंशी प्रेमचंद ने 'परदेसी' नामक लेख लिखा; पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'गिरमिट युग की एक गाथा' नामक कहानी लिखी तो रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'प्रवासी का पथ' नामक अति प्रसिद्ध लेख लिखा था। इन साहित्यकारों के अलावा शिवपूजन सहाय, सी. एफ. एण्ड्रयूज़, चाँदकरण शारदा, सूर्यदेव वर्मा, भगवानदास केला, ईश्वरदत्त विद्यालंकार इत्यादि लेखकों ने भी प्रवासियों से संबंधित काफी साहित्य हिंदी भाषा में रचा।

भारत में प्रवासी भारतीयों की समस्याओं में जिस व्यक्ति ने सर्वाधिक रुचि ली थी और उसे गंभीरता से उठाया था, वे थे बनारसीदास चतुर्वेदी। वे 'विशाल भारत' पत्रिका के संपादक थे। उन्होंने प्रवासी भारतीयों से संबंधित पुस्तकें तो लिखीं ही, साथ ही, पत्रिका में इस समस्या पर बढ़–चढ़कर लिखा। 'विशाल भारत' ही हिंदी की एकमात्र ऐसी पत्रिका थी जो प्रवासियों की समस्याओं पर सर्वाधिक रुचि लेती थी और पत्रिका के प्रत्येक अंक में 5–7 पृष्ठ प्रवासी समस्या के लिए पूर्व निर्धारित रहते थे। यह पत्रिका प्रवासी भारतीयों में कितनी दिलचस्पी लेती थी, यह बात इसी से स्पष्ट हो जाता है कि पत्रिका के प्रेस का नाम ही 'प्रवासी प्रेस' रखा गया था।

इस प्रकार चयनित विषय का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रवासियों की समस्या अत्यंत विकट थी, फिर भी उस औपनिवेशिक काल में भी हिंदी लेखकों और पत्र–पत्रिकाओं ने इसमें रुचि ली, उस पर लेखनी चलाई और हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में इसे प्रमुखता से उठाया और जनमानस का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। सम्पूर्ण औपनिवेशिक काल में प्रवासियों से सम्बन्धित जितना साहित्य हिंदी में रचा गया, उतना शायद किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं। पत्र–पत्रिकाओं में जहाँ 'विशाल भारत' और 'प्रवासी' का योगदान अप्रतिम रहा, वहीं रचनाकारों में बनारसीदास चतुर्वेदी, शिवपूजन सहाय और भवानी दयाल संन्यासी ने प्रवासी भारतीयों से सम्बन्धित साहित्य की रचना में सर्वाधिक निर्णायक भूमिका निभाई। इतना साहित्य लिखे जाने के बाद भी आज भी एक ऐसी पुस्तक नहीं मिलेगी जो पूरे प्रवासियों के इतिहास या साहित्य को रेखांकित करती हो। आज पुनः आवश्यकता इस बात की है कि इस विषय को गंभीरता से लिया जाए एवं इस विषय पर गहन अनुसंधान हो जिससे प्रवासी भारतवंशियों को भारत एवं विश्व स्तर पर चल रहे हिंदी आंदोलन से जोड़ा जा सके।

वाराणसी, भारत

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की हिंदी सेवा

– श्री उमेश चतुर्वेदी

भारतीय राजनीति के कुछ बेहतरीन चेहरों पर पूर्व विदेश मंत्री, श्री नटवर सिंह की एक संस्मरणात्मक पुस्तक है जो हिंदी में 'ये चेहरे और चिट्ठियाँ' नाम से प्रकाशित है। इस किताब में स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की सादगी पर विस्तार से चर्चा है। राजगोपालाचारी जितने विद्वान थे, उतने ही सहज भी। अपने आखिरी दिनों तक सहज रहा व्यक्ति, जो गाँधी जी जैसी महान हस्ती का समधी भी था, जिसने गांधी के कहने पर 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' का नेतृत्व संभाला हो, वह अपने आखिरी दिनों में हिंदी का विरोधी क्यों हो गया, इस पर गहराई से शोध और विचार की जरूरत है। साठ के दशक में डॉक्टर राममनोहर लोहिया ने जब 'अंग्रेज़ी हटाओ आंदोलन' छेड दिया था, उन्हीं दिनों अंग्रेज़ी के समर्थन और हिंदी के विरोध में 'स्वराज' के जनवरी 1968 के अंक में राजगोपालाचारी ने एक लेख लिखा था। उस लेख में उन्होंने संविधान सभा द्वारा हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने संबंधी कार्यवाही को भी अप्रासंगिक करार दिया है। इस लेख में उन्होंने कहा है कि देश की भाषा की समस्या को सदा के लिए समाप्त करने के लिए संवैधानिक तौर पर दो कदम उठाए जा सकते हैं। पहला कदम यह कि राजभाषा वाला अनुच्छेद ही संविधान से खत्म कर दिया जाए या उस अनुच्छेद में सुधार कर लिख दिया जाए कि 'इंग्लिश शॉल बी ऑफिशियल लैंग्वेज' यानी अंग्रेजी ही राजभाषा होगी।

अपने जीवन के आखिरी दिनों में जो व्यक्ति हिंदी के बारे में ऐसा विचार व्यक्त कर रहा था, वही व्यक्ति हिंदी को लेकर एक दौर में कितना उत्साही था, इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत 1937 में राज्यों में चुनाव हुए और राजाजी मद्रास प्रांत के प्रीमियर बने तो उन्होंने उन्हीं दिनों मद्रास प्रांत में हिंदी लाने की वकालत शुरू कर दी थी। दिलचस्प यह है कि राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत होने और जिस बंगाल से हिंदी की ध्वज पताका फहराना शुरु हुई, उसी बंगाल के नेता, डॉक्टर बिधान चंद्र रॉय हिंदी को राजभाषा के तौर पर स्वीकार करने के विरोधी थे। हिंदी के प्रति राजाजी की सेवा का महत्व इससे पता चलता है कि वे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के निदेशक पद पर गांधी जी के अनुयायी, जमनालाल बजाज के अनुरोध पर 1928 से लेकर 1938 तक रहे।

भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय होने के बाद गाँधी जी को लगा कि हिंदी ही देश को एक सूत्र में बाँधने के साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन का एक साधन भी हो सकती है। गाँधी जी दरअसल कोई नई बात नहीं कर रहे थे। 1875 में ब्रह्म समाज के संस्थापक केशवचंद्र सेन भी देश को जोड़ने की ताकत हिंदी में ही देख चुके थे। उन्होंने तो दयानंद सरस्वती से भी कहा था कि वे हिंदुत्व को पुनर्स्थापित करने वाला प्रयास हिंदी में ही करें। कोलकाता में केशव चंद्र सेन से हुई मुलाकात के बाद ही दयानंद सरस्वती ने हिंदी में प्रवचन देना और अपनी बात कहना शुरु किया था। इसके पहले तक वे संस्कृत में ही अपनी बात कह रहे थे और आर्य समाज का प्रचार कर रहे थे। यहाँ यह ध्यान देने की जरूरत है कि केशव चंद्र सेन खुद बेहतरीन अंग्रेज़ी जानते–लिखते और बोलते थे। उनके बारे में कहा जाता है कि जब वे लंदन गए तो उनकी अंग्रेज़ी सुनने के लिए अंग्रेज़ जमड पड़े। वह व्यक्ति भी हिंदी में ही देश को जोड़ने का संकल्प देख रहा था। इसके ठीक तीस साल पर 1905 में वाराणसी में हुए नागरी प्रचारिणी सभा के अधिवेशन में मुख्य अतिथि के तौर पर बोलते हुए लोकमान्य तिलक ने भी हिंदी में ही देश को जोडने की ताकत का उल्लेख किया था। गाँधी जी को हिंदी के प्रति गैर हिंदी भाषी विद्वानों और राजनेताओं के इन विचारों का भी पता था। इसीलिए उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के तमाम हथियारों में एक हथियार हिंदी को भी बनाया और इसके लिए गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए 'हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की। उन्हीं की प्रेरणा से 16 जून 1918 को मद्रास (अब चेन्नई) में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना हुई। इसकी महत्ता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका काम–काज देखने के लिए स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के साथ गाँधी जी के सबसे छोटे बेटे, देवदास गांधी मद्रास पहुँचे।

उन दिनों राजाजी वकालत कर रहे थे। तब तक गाँधी जी के विचारों का उन पर भी असर होने लगा था। उन्होंने अपनी चलती वकालत को छोड़ कर स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सेदारी शुरू कर दी। इन्हीं दिनों गाँधी जी के प्रिय, जमनालाल बजाज हिंदी के प्रचार–प्रसार के काम के लिए मद्रास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजाजी से भी संपर्क किया। राजाजी तब तक 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' के

लिए काम शुरू कर चुके थे। उसके सहयोग के लिए जतन भी करने लगे थे। जमना लाल बजाज के संपर्क में आने के बाद वे लगभग डेढ महीने तक 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की खातिर धन जुटाने के लिए बजाज के साथ तमिलनाडु के गाँव–गाँव घूमते रहे। तब तक राजाजी भी मानने लगे थे कि स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी सहयोगी हो ही सकती है, बशर्ते उसका गैर हिंदी भाषी इलाकों में भी विस्तार किया जाए। इसके बाद वे हिंदी के विस्तार के कार्य में प्राणपण से जुट गए। जब 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' का काम बढ़ा तो उसे संस्थानिक तौर पर चलाने का सवाल उठा और जमनालाल बजाज को उसके निदेशक पद पर काम करने के लिए तमिल ब्राह्मण राजाजी से ज्यादा दूसरा कोई उपयुक्त व्यक्ति नजर नहीं आया।

हिंदी सेवी गोवर्धन लाल पुरोहित अपने आलेख 'राजाजी की हिंदी सेवा' में लिखते हैं– "निदेशक बनने के बाद वह (राजाजी) 1928 से लेकर 1946 तक इस सभा (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा) के निधि पालक रहे। इस तरह बीस वर्षों तक 'हिंदी प्रचार सभा' को राजाजी का पितृवत स्नेह मिलता रहा। राजाजी की छत्रछाया में सभा एक संपन्न, सुस्थिर तथा यशस्वी संस्था बन गई और दक्षिण भारत की सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का केंद्र बनी और मूर्तिमान राष्ट्रीयता का पर्याय बन गई।" राजाजी 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' में इतनी दिलचस्पी लेते थे कि उनकी ही देख–रेख में 1943 में इस संस्था की रजत जयंती मनाई गई जिसमें महात्मा गाँधी ने भी हिस्सा लिया था।

'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' के निदेशक पद का दायित्व संभालते हुए ही राजाजी की प्रेरणा से 'अंग्रेजी–हिंदी शिक्षक' का प्रकाशन हुआ। इसके पहले संस्करण की प्रस्तावना में राजाजी ने लिखा है– " हिंदी को (हमें) केंद्रीय सरकार एवं परिषद की और प्रांतीय सरकारों के बीच आपसी कामकाज की भाषा मानना है। यदि दक्षिण भारत के भारतीय क्रियात्मक रूप से पूरे भारत देश के साथ एक सूत्र में बंधकर रहना चाहते हैं और अखिल भारतीय मामलों और तत्संबंधी निर्णयों के प्रभाव से दूर नहीं रहना चाहते तो उनका हिंदी पढना जरूरी है। "

राजाजी इसी भूमिका में अंग्रेजी की अनिवार्यता की मुखालफत तर्कों द्वारा करते हैं। वे कहते हैं कि यह संभव और वांछित नहीं है कि अंग्रेजी को बनाए रखकर पूरे भारत में जनता द्वारा अपने प्रतिनिधि पर नियंत्रण को कमजोर किया जाए। राजाजी हिंदी को भारत की सांस्कृतिक एकता के लिए भी जरूरी मानने लगे थे। बाद में जब केरल में 1934 में 'केरल हिंदी प्रचार सभा', आंध्र में 1935 में हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद और कर्नाटक में 1939 में 'कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति' और 1943 में 'मैसूर हिंदी प्रचार परिषद' की स्थापना हुई तो इसके पीछे भी कहीं न कहीं राजगोपालाचारी की प्रेरणा भी थी।

फिर क्या वजह रही कि वही राजगोपालाचारी 1953 तक आते–आते हिंदी के विरोधी हो गए? इसे लेकर कहीं ठोस और स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन कुछ जानकार मानते हैं कि इसके पीछे भारतीय राजनीति में उनका प्रतिकार भी बड़ी वजह रही। 1927 में महात्मा गाँधी ने राजाजी के लिए कहा था, "मैं कहता हूँ कि वे (राजाजी) ही एक मात्र संभावित उत्तराधिकारी हैं।" राजाजी की तीक्ष्ण बुद्धि और भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के उनके ज्ञान से गाँधी जी बहुत प्रभावित थे। यह बात और है कि बाद में राजाजी की उनसे दूरियाँ बढ़ने लगीं। नटवर सिंह अपनी किताब में लिखते हैं कि 1942 में गांधी जी ने उनके प्रति मानस बदला और घोषित कर दिया कि राजाजी नहीं, जवाहरलाल नेहरू उनका उत्तराधिकारी होगा। इसके बाद 1942 से 1945 के बीच राजाजी ने खुद को सार्वजनिक गतिविधियों से दूर कर लिया। नटवर सिंह लिखते हैं कि उनका यह कदम समझ से परे था। बयालीस के आंदोलन में उनकी भागीदारी न होना सचमुच समझ से परे था। बहरहाल, गाँधी ने उनकी जगह जवाहरलाल नेहरू को अपना उत्तराधिकारी क्या घोषित किया, राजाजी के मन में गाँठ पड़ गई। अगली गाँठ उनके मन में 1952 में पड़ी। तमाम वैचारिक विरोधों के बावजूद नेहरू चाहते थे कि राजाजी देश के पहले राष्ट्रपति बनें। वैसे भी आजाद भारत के पहले देशी गवर्नर जनरल उन दिनों वे थे ही। इसके पहले बंगाल के गवर्नर का दायित्व भी वे संभाल चुके थे। मद्रास के 1937 में प्रीमियर यानी प्रधानमंत्री भी थे। उस दौर में दो व्यक्तियों में– संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) के तत्कालीन प्रीमियर, गोविंद बल्लभ पंत और मद्रास के प्रीमियर में– राजगोपालाचारी ही अपनी प्रशासनिक छाप छोड़ पाए थे। बेशक नेहरू उन्हें देश के सर्वोच्च पद पर देखना चाहते थे, लेकिन सरदार पटेल 1942 में राजाजी की भूमिका को भूल नहीं पाए। सरदार की प्रेरणा से कांग्रेस कार्य समिति ने राजाजी को खारिज करके डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद के नाम पर हामी भर दी। इसके बाद राजाजी खामोश हो गए। उस दौर के राजनीतिक समीक्षक कहते हैं कि राजाजी के अंर्तमन को कोई जान नहीं पाया क्योंकि वे अविक्षुब्ध और मौन बने रहे। लेकिन जब उनका मौन टूटा तो वे हिंदी के खिलाफ समझे जाने लगे थे।

हिंदी का तमिलनाडु में विरोध 1966 की 26 जनवरी को होना था। संवैधानिक प्रावधानों के मुताबिक हिंदी को उसी दिन से अंग्रेज़ी की जगह राजभाषा की जगह लेना था। लेकिन तब तमिलनाडु के एक स्थानीय नेता, डोरई मुरुगन ने इसका विरोध शुरू कर दिया। उनकी अपील काम कर गई। उनका मकसद हिंदी के विरोध में 26 जनवरी 1965 को पूरे तमिलनाडु को काले झण्डे से पाटना था। लेकिन तब देशप्रेम बचा हुआ था और गणतंत्र दिवस की बजाय एक दिन पहले, यानी 25 जनवरी 1965 को तमिलनाडु में हिंदी के विरोध में काले झंडे लहराए गए। ये काले झण्डे हिंदी की राह का सबसे बड़ा रोड़ा बन गए। तब राजाजी ने इसका विरोध नहीं किया। जो व्यक्ति तमिलनाडु की पहली निर्वाचित सरकार के मुखिया के तौर पर हिंदी की वकालत कर रहे थे, उनके मानस का यह बदलाव भी समझ से परे है। ऐसे में उनके साथ हुई राजनीतिक नाइंसाफी (अगर थी तो) को ही इसका जिम्मेदार माना जाना स्वाभाविक है। इसे हवा उनके मौन ने भी दी।

बहरहाल, जनवरी 1963 के 'स्वराज' में छपे अपने लेख में उन्होंने हिंदी को भी बहुसंख्यकों की भाषा की बजाय अल्पसंख्यकों की ही भाषा माना है। उनका तर्क है कि हिंदी बेशक बड़े समुदाय द्वारा बोली जाती है, लेकिन वह भी अल्पसंख्यक की ही भाषा है। जो राजगोपालाचारी 1920 के दशक में हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए अभियान चला रहे थे, वे ही अब कहने लगे थे कि हिंदी में वह ताकत नहीं है कि राजभाषा अंग्रेज़ी का स्थान ले सके। उसने तकनीकी शब्दों तक का विकास नहीं किया है। आज के दौर में जब भी हिंदी के समर्थन में जोरदार तर्क दिए जाने लगते हैं, अंग्रेज़ी की ओर से राजगोपालाचारी के उसी लेख को काट के तौर पर पेश किया जाता है।

आखिरी दिनों में राजाजी ने हिंदी के खिलाफ चाहे जो भी भूमिका निभाई हो, इसके बावजूद हिंदी को लेकर 1920 के दशक से लेकर 1940 के दशक की उनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अब हिंदी को लेकर तमिलनाडु में भी आग्रह नहीं रहा। उत्तर भारत में नौकरियां हासिल करने के लिए अब तमिलनाडु के लोग भी हिंदी पढ़ना ज़रूरी मानने लगे हैं। 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' और उसके आनुसंगिक संगठनों से हर साल लाखों विद्यार्थियों का हिंदी की परीक्षाओं में बैठना और राष्ट्रभाषा के प्रति अपना सम्मान प्रकट करना मामूली बात नहीं है। कहीं न कहीं इसके मूल में राजाजी की शुरुआती हिंदी सेवा भी है।

नई दिल्ली, भारत

हिंदी के विकास में बैठकाओं की भूमिका

– श्री प्रेमदत्त मंगरा

मॉरीशस में हिंदी भाषा के विकास में बैठकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसकी कहानी पूर्वजों के आगमन के साथ की घटनाओं और उनके दैनिक जीवन की यातनाओं से संबद्ध परिणाम है।

भारत के कलकत्ता नगर में मजदूरों को जहाज में भरने का डिपो था। बेबस, निरीह मजदूरों को प्रलोभन देकर फँसाया जाता था। वे भोले-भाले लाचार मजदूर दलालों की चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर अनुबंध पत्र पर अँगूठा लगा या हस्ताक्षर कर देते थे, इस आशा से कि विदेश में काम करने से आर्थिक स्थिति में सुधार आए और भाग्य भी खुल जाएगा।

मॉरीशस में भारतीय मजदूरों का पहला जत्था 1834 में पहुँचा था। 'एटलस' नामक जहाज कलकत्ता से 39 शर्तबंध मजदूरों को भरकर पोर्ट-लुई शहर के आप्रवासी घाट पर पहुँचा था। आप्रवासी घाट पर एक रात विश्राम करने के बाद दूसरे दिन मिल-मालिकों की याचना पर उन्हें शक्कर कोठियों में भेज दिया जाता था।

बैठका शब्द 'बैठ' धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है 'बैठना'। अत: बैठका शब्द का अर्थ हुआ, बैठने का स्थान। जहाँ लोग एकत्रित होकर अपनी दिनचर्या एवं समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे। बैठका में अपने व्यवहारों का आदान-प्रदान करने से उन्हें समस्याओं का निवारण करने की सूझ-बूझ आ जाती थी। लोगों को अपनी बोलचाल की भाषा में 'बैठका' कहना उपयुक्त लगा। उस समय से आज तक यह 'बैठका' शब्द लोक व्यवहार में प्रचलित एवं लोकप्रिय हो गया।

भारतीय शर्तबंध मजदूर गोरे मिल-मालिकों की माँग पर समय-समय पर आते थे। सन् 1834 से सन् 1920 तक मॉरीशस में साढ़े चार लाख भारतीय मजदूर लाए गए। वे अपनी आर्थिक दशा में सुधार करने, अपने भावी जीवन को सुखमय बनाने, तथा अपनी तकदीर को आजमाने आए थे। यहाँ की परिस्थिति उन लोगों की अपेक्षा के विपरीत थी। गोरे मालिकों के क्रूर व्यवहार से वे त्रस्त थे। अपनी छाती पर पत्थर रखकर वे मेहनत करने को विवश थे। दिन भर कड़ी धूप में परिश्रम करके शाम को वे डेरे पर लौटते थे। मॉरीशस आकर मजदूरों की जान मानो सूली पर चढ़ गई थी। रात्रि में अकसर चार-पाँच परिवार एकत्रित होकर अपनी राम कथा एक-दूसरे को सुनाते थे। इस प्रकार मिलते-जुलते रहने से बैठका का रूप बनना शुरू हो गया। यहीं से बैठका का आरंभ मानना उपयुक्त होगा।

मजदूरों के अनुबंध की समाप्ति के पश्चात, उन्होंने जमीन खरीदकर लकड़ी और घास-फूस के घर बनाना शुरू किया। झोंपड़ियों के खड़े होने से गाँव बसने लगे। गाँवों में स्वतंत्र रूप से बैठकाओं का भी निर्माण होने लगा। इन बैठकाओं में अकसर पच्चीस-तीस लोग एकत्रित होकर सत्संग किया करते थे। समय के अंतराल में बैठका कोठी से निकल कर गाँवों के बीच सामाजिक केंद्र के रूप में स्थापित होते गए। समय के साथ एक ही गाँव में सुविधा के आधार पर कई बैठका स्थापित हुए। इस तरह बैठकाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गई। कालांतर में बैठका सामाजिक, सामुदायिक, शैक्षणिक तथा कन्द्रों में परिवर्तित हुई, जहाँ विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन होने लगा।

बैठका का संचालन समिति द्वारा नियुक्त प्रधान एवं मंत्री द्वारा होता था। उनके द्वारा त्योहारों से लेकर वैवाहिक समारोहों तक के कार्यक्रम बैठका के प्रांगण में आयोजित होते थे। जिस उत्साह से बिहार में हमारे पूर्वज इन त्योहारों को मनाते थे, उसी तरह यहाँ भी मनाया जाता था।

बैठका शैक्षणिक तथा प्रचार-प्रसार का केंद्र भी बना। धर्म, भाषा तथा संस्कृति को सुरक्षित रखने में बैठकाओं का अभूतपूर्व योगदान रहा। भावी पीढ़ी को धर्म तथा संस्कृति से बाँधे रखने का माध्यम भाषा ही थी। बैठकाओं में अक्षर ज्ञान से लेकर कहानी-कविता तक का अभ्यास होने लगा। पाँच-छः साल के बच्चे पढ़ने-लिखने और हिंदी का ज्ञान अर्जित करने लगे।

बैठका एक ऐसा सामाजिक केंद्र बना, जहाँ बच्चे प्रार्थना, संध्या, हवन आदि सद्गुण सीखते। कहीं-कहीं रविवारीय यज्ञ-सत्संग, भजन-कीर्तन और विद्वानों द्वारा प्रवचन का भी आयोजन होता था। इन सत्संगों में 'रामायण-पाठ', 'हनुमान चालीसा', 'श्री सत्यनारायण स्वामी की कथा', 'उपनिषद्', 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि पर व्याख्यानों एवं प्रवचनों का आयोजन होता, जिनमें भारी संख्या में लोग भाग लेकर अपूर्व शांति व आनंद का अनुभव करते थे।

बैठकाओं में सायंकालीन हिंदी कक्षाएँ सोमवार से शुक्रवार तक होती थी, जिनमें हिंदी प्रेमी, हिंदी भाषा के मान्य विद्वान तथा पुरोहित जन भी अवैतनिक व निःस्वार्थ भाव से बच्चों को हिंदी-ज्ञान देते थे। प्रत्येक बैठका में चालीस-पच्चीस बच्चे होते थे। हमारे पूर्वज भोजपुरी में बोलते थे पर उनका सपना था कि अपनी संतानों को वे पढना-लिखना सिखाएँ। इसीलिए हिंदी को अपनाया गया। यह सिलसिला पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। आज भी हिंदी भाषा हमारे बैठकाओं की शान है।

हिंदी के पक्षधर, डॉ. चिरंजीत भारद्वाज ने भारतवंशियों को एकत्रित करके 1913 में आर्य समाज का पंजीकरण किया था। आजकल आर्य समाज के संचालन में लगभग 400 से अधिक बैठकाओं में हिंदी और धार्मिक शिक्षा की पढाई होती है।

बैठकाओं ने पूर्वजों तथा उनकी भावी पीढ़ियों को सामूहिक रूप से एक नई दिशा प्रदान की है। समय के साथ बैठकाओं के ढाँचे में परिवर्तन आया। हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना से हिंदी का प्रचार-प्रसार तीव्र गति से होने लगा। आज आर्य सभा विद्या विनोद, विद्या रत्न, विद्या वाचस्पति आदि की परीक्षाएँ हिंदू महासभा द्वारा गीता, रामायण तथा संस्कृत की, जबकि हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रवेशिका से उत्तमा तक की परीक्षाएँ आयोजित होती हैं। आज हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित उत्तमा की परीक्षा को 'डिप्लोमा' का समकक्ष स्वीकारा जाता है।

पूर्वजों के वंशजों ने देश के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक उत्थान में भाग लेकर भाषिक कार्य को भी महत्व दिया। पूर्वजों द्वारा हिंदी की नींव न डाली गई होती तो संभवतः आज उसका आशातीत परिणाम दृष्टिगोचर न होता। हिंदी बैठकाओं से निकलकर विश्वविद्यालय तक न पहुँचती। अतः बैठका न होते तो आज हिंदी भाषा का अस्तित्व संभवतः लुप्त हो जाता। बैठकाओं से हिंदी शिक्षा प्राप्त कर कितने महापुरुष, विद्वान तथा आचार्य बने। आधुनिक पीढ़ी के अभिभावकों तथा बच्चों से यही माँग है कि बैठका को जीवित रखें, हिंदी को जीवित रखें और हमारे पूर्वजों के परिश्रम को व्यर्थ न जाने दें। हिन्दी के माध्यम से मॉरीशस में पूर्वजों की सांस्कृतिक परंपरा की धारा अबाध गति से प्रवाहित होती रहेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है!

मॉरीशस

आज की युवा पीढ़ी और हिंदी

– श्री विश्वानन्द पतिया

यह एक अकाट्य सत्य है कि किसी भी देश या राष्ट्र के लिए उसकी युवा पीढ़ी ही उसकी 'शक्ति' का प्रतिनिधित्व करती है। किसी भी भाषा–विशेष का प्रचार–प्रसार या उन्नयन युवा पीढ़ी पर ही निर्भर करता है। 'आज की युवा पीढ़ी और हिंदी' विषय पर चर्चा करने से पूर्व 'युवा पीढ़ी' शब्द के अर्थ को भली–भाँति समझ लेना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

'युवा पीढी' का अंग्रेजी अनुवाद है– 'यंग जेनरेशन'। बृहत् हिंदी कोश के अनुसार 'युवा' का अर्थ है – 'तरुण, जवान' और 'पीढी' का अर्थ है– 'किसी विशिष्ट काल के प्रायः समान अवस्था के लोगों का समूह'। 'युवा' शब्द का अंग्रेज़ी अनुवाद 'यूथ' होता है और 'यूनेस्को' ने भी संयुक्त राष्ट्र की वैश्विक परिभाषा को अपनाते हुए 'युवा' शब्द की परिभाषा कुछ इस प्रकार से दी है– 'वे लोग जिनकी उम्र पंद्रह से चौबीस वर्ष के बीच की है।' अतः माध्यमिक व विश्वविद्यालय स्तर के छात्र–छात्राओं को मुख्य रूप से ध्यान में रखते हुए हम विवेच्य विषय पर विचार करेंगे।

वस्तुतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, माध्यमिक स्कूलों की उच्चतर कक्षाओं में लड़कों की अपेक्षा अधिकतर लड़कियाँ ही हिंदी विषय ले रही हैं। आँकड़ों के अनुसार माध्यमिक स्तर पर लड़कियाँ ही हिंदी परीक्षाओं में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो रही हैं। दूसरी ओर इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि सन् 2015 में एम.जी.आई. माध्यमिक स्कूल के एक छात्र ने एच.एस.सी. की परीक्षा में पूरे विश्व में हिंदी विषय में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। कहने का यह तात्पर्य है कि आज के लड़के भी हिंदी के प्रति रुचि दिखा रहे हैं तथा अपनी विशिष्ट योग्यता का प्रदर्शन करने में भी सर्वथा समर्थ हैं।

इसके अतिरिक्त, आज की युवा पीढ़ी मोबाइल के माध्यम से हिंदी में भी संपर्क स्थापित कर रही है। आधुनिकतम मोबाइलों में अंग्रेज़ी, फ्रेंच आदि भाषाओं के अलावा हिंदी के लिए भी विशेष प्रावधान किया गया है। इस सुविधा का प्रयोग करते हुए कई नौजवान अपने हित मित्रों को हिंदी में दिलचस्प 'जोक्स' भेजते हैं और 'व्हाट्स–एप्प' पर हिंदी में ही कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ भी प्रेषित करते हैं। कुछ छात्र तो 'स्काइप' का लाभ उठाते हुए अपनी शैक्षिक समस्याओं के समाधान के विषय में सीधे अपने अध्यापकों से पूछ लेते हैं। साथ ही साथ, 'फ़ेसबुक' के माध्यम से भी रक्षाबंधन, महाशिवरात्रि, दीपावली आदि हिंदू पर्वों के अवसर पर हिंदी में ही शुभकामनाएँ भेजी जाती हैं। कुछ नवयुवक तो अपनी शुभकामनाएँ रिकॉर्ड करके फ़ेसबुक पर 'अपलोड' कर देते हैं और इसका उनके मित्रों पर अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस बढ़ते चुनौतीपूर्ण युग में हमारे हिंदी छात्र–गण भी कदम से कदम मिलाकर प्रगति की ओर उन्मुख हो रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय के छात्रगण अपने हिंदी शोधकार्य संबंधी टंकण–कार्य पैसे खर्च करके पूरा करते थे, परंतु आज स्थिति अलग है। अधिकांश छात्र अपने–अपने शोध–प्रबंध या 'आसाइन्मेंट' स्वयं अपने 'लैपटॉप' या कम्प्यूटर में, हिंदी में टाइप कर लेते हैं। इस प्रकार वे अधिक समय के लिए हिंदी से जुड़े रहते हैं। टंकण कार्य के लिए किसी पर निर्भर नहीं होते और इस कौशल को विकसित करते हुए उनको नौकरी मिलने की सम्भावना और भी बढ जाती है।

इसके अलावा, आजकल कई छात्र आई.सी.टी. अर्थात् 'सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी' जैसे विषय टि.डि.पि. (टीचर्स डिप्लोमा प्रोग्राम) तथा हिंदी भाषा में पी.जी.सी.ई. (पोस्ट ग्रेजुएट सर्टिफिकेट इन एजुकेशन) में पढ़ रहे हैं और उन्हें 'पावर–पॉइंट' के माध्यम से अपना 'आसाइन्मैंट' पूरा करना होता है। कहने का यह अभिप्राय है कि आज की युवा पीढी हिंदी को आई.सी.टी. से जोडकर उसे एक नया आयाम प्रदान कर रही है।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कुछ विश्वविद्यालय के छात्र इंटरनेट की सहायता से हिंदी प्रेमियों के लिए 'ब्लॉग' बना रहे हैं, जहाँ पर वे अपने सृजनात्मक कार्यों का आदान–प्रदान करते हैं, हिंदी में संप्रेषण करते हैं और हिंदी–संबंधी विषयों पर चर्चा–परिचर्चा भी करते हैं।

ध्यातव्य है कि आज की युवा पीढ़ी हिंदी नाटकों के मंचन में भी विशेष रुचि दिखा रही है। कई छात्र राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिवर्ष

हिंदी नाटकों में भाग ले रहे हैं और अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का प्रदर्शन कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के छात्र–गण भी हिंदी दिवस के अवसर पर आयोजित नाट्य प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं और अपने अनोखे अभिनय से दर्शकों को मंत्र–मुग्ध कर देते हैं।

इसके अलावा आज की युवा पीढ़ी हिंदी गानों के प्रति भी विशेष रुचि दिखा रही है, चाहे वे पुराने या नए गाने ही क्यों न हों। संगीत–दिवस के अवसर पर अधिकाधिक कार्यक्रम हिंदी–गानों के ऊपर ही आयोजित होते हैं और माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के छात्रगण भी बहुत ही उत्साहपूर्वक इन गानों पर अपना नृत्य प्रस्तुत करते हैं। कई युवक–युवतियाँ तो अपनी मधुर आवाज से इन हिंदी गानों को गुनगुनाकर कार्यक्रम को अधिक दिलचस्प व मनोरंजक बना देते हैं। ऐसे ही जवानों के मोबाइल में हिंदी गानों के ही कॉलर ट्यून होते हैं। इस प्रकार हम कल्पना कर सकते हैं कि आज की युवा पीढ़ी हिंदी के रंग में किस हद तक रंग गई है।

इसके अलावा अधिकांश युवक–युवतियाँ महात्मा गाँधी संस्थान के सर्जनात्मक व प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित 'वसंत' और 'रिमझिम' नामक पत्रिकाओं में हिंदी में ही कहानी, कविता, लघु–कथा, यात्रावृत्त, एकांकी आदि लिखकर हिंदी जगत् को समृद्ध बना रहे हैं।

साथ ही, हिंदी प्रचारिणी सभा आदि संस्थाओं द्वारा आयोजित हिंदी परीक्षाओं में भी अधिक युवक–युवतियाँ ही भाग ले रहे हैं। ध्यातव्य है कि 'टर्शरी एज्यूकेशन कमिशन' द्वारा 'उत्तमा' की परीक्षा और 'हिंदी–डिप्लोमा' की परीक्षा को समान मान्यता प्राप्त हो गई है और कई छात्रगण उत्तमा की परीक्षा पूरी करके महात्मा गाँधी संस्थान में मात्र दो वर्षों में सीधे बी.ए. हिंदी करने आ रहे हैं अर्थात् रुचि दिखा रहे हैं।

दूसरी ओर खेद का विषय यह है कि कई हिंदू अभिभावक अपने बच्चों को हिंदी पढ़ने से रोक रहे हैं क्योंकि उनका यह मानना है कि हिंदी की उच्च शिक्षा से आधुनिक युग में अधिक लाभ प्राप्त नहीं होने वाला। कई नौजवान एच.एस.सी. में हिंदी विषय में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होते हैं परंतु नौकरी मिलने की सम्भावना कम होने के कारण हिंदी में आगे की पढ़ाई नहीं करते हैं। इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने हेतु सरकार को इस मामले पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा और अधिक नौकरियों की सम्भावनाओं के साथ सामने आना होगा ताकि आज की युवा पीढ़ी को हिंदी में रुचि दिखाने का प्रोत्साहन प्राप्त हो।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विचारों के अवलोकनोपरांत यह तथ्य प्रमाणित होता है कि आज की युवा पीढ़ी और हिंदी में गहरा संबंध है। शिक्षा के क्षेत्र में, प्रौद्योगिकीय जगत में, सृजनात्मक लेखन–कार्यों में, संप्रेषण में, अभिनय आदि में युवा पीढ़ी और हिंदी का अन्योन्याश्रित योग है। केवल सरकार को कुछ ठोस कदम उठाने चाहिए ताकि युवा पीढ़ी को हिंदी में अधिक रुचि दिखाने के लिए थोड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हो। साथ ही, इस सत्य से भी हम कदापि मुँह नहीं मोड़ सकते हैं कि आज की युवा पीढ़ी और हिंदी को अलग करना लगभग असम्भव है और इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं।

मॉरीशस

गांधी दर्शन में निहित मानव-मूल्य

– प्रो. हेमराज सुंदर

महात्मा गांधी जी का जीवन एवं सिद्धांत दोनों ही मनुष्य एवं समाज के लिए प्रेरणादायक माने जाते हैं। उनका अहिंसा सिद्धांत जितना स्वतंत्रता संग्राम के समय अमूल्य था, उतना आज भी अमूल्य है।

महात्मा गांधी जी का जीवन–दर्शन मानवीय मूल्यों से ओत–प्रोत है। वे एक सच्चे अहिंसक, सत्याग्रही एवं अद्‌भुत क्रांतिकारी थे। 1893 से लेकर 1948 तक उन्होंने अपने विचारों एवं आदर्शों के द्वारा भारत के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशा को सुधारने का सतत् प्रयास किया। गांधी जी ने अनुभव किया कि अगर व्यक्ति को समाज में परिवर्तन करना है तो उसे अपने जीवन में परिवर्तन करना होगा। अनेक नए व्रतों व संकल्पों के माध्यम से उन्होंने अपने जीवन को संयमित किया। उसके बाद उसे समाज के सामने रखा। वे गीता के इस वचन में विश्वास करते थे–'योग– कर्मसु कौशलम्'। सत्य और अहिंसा के संबंधों को अटूट मानते हुए ही गांधी जी ने विरोध प्रदर्शन के लिए 'सत्याग्रह' के मार्ग को अपनाया जो एक जन आंदोलन बन गया। गांधी जी का मानना था कि अहिंसा और कायरता परस्पर विरोधी शब्द हैं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्‌गुण है। वर्तमान समय में बढ़ता हुआ शस्त्रीकरण और आतंकवाद हमें फिर युद्ध की विभीषिका की तरफ ले जा रहे हैं। ऐसे समय में गांधी जी के मानवीय मूल्यों को अपनाकर विश्व के जनमानस को बचाया जा सकता है।

महात्मा गांधी जी एक विशेष अर्थ में अद्‌भुत क्रांतिकारी थे और उच्च कोटि के दार्शनिक भी। उनका कार्यक्षेत्र ही उनके जीवन के सिद्धांतों का निरूपण करता है और अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वे स्व–कार्यों द्वारा ही अपनी मान्यताओं का प्रदर्शन करते रहे। उनका संपूर्ण जीवन सत्य और अहिंसा को समर्पित था। 1893 में दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने भारतीयों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दुर्दशा देखी और एक–एक करके इनके विरुद्ध भारतीयों को जागृत किया।

सत्य और अहिंसा उनकी विचारधारा के मूलमंत्र कहे जाते हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में लिखा है कि सत्य की सिद्धि का एकमात्र साधन अहिंसा है।

उनका मत था कि "अहिंसा प्राण के साथ जुड़ी हुई चीज़ है। उसे मैं कभी छोड़ नहीं सकता। अहिंसा पर मेरा विश्वास दिन प्रतिदिन बढता ही जाता है और मुझे उसकी सफलता का प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है।" (हरिकृष्ण रावत– समाज शास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार– पृष्ठ 159)

मैक्स वेबर के शब्दों में "गांधी करिश्माई गुणों से संपन्न एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके कारण उनकी गणना विश्व के महान व्यक्तियों में की गई।"

सत्य और अहिंसा का अटूट संबंध 'सत्याग्रह' के विचार को जन्म देता है। वस्तुतः 'सत्याग्रह' ही सामाजिक क्रांति का गांधीवादी तरीका है। 'सत्यमेव जयते नानृतम्'– इसी सत्याग्रह की विधि को गांधी जी ने अपनाया। मीमांसा में 'अहिंसा' का सर्वोच्च स्थान है। उसे परम धर्म (अहिंसा परमो धर्म) मानते हैं। अहिंसा का इतना अधिक महत्व इसलिए है कि सत्य, जिसे गांधी जी ईश्वर मानते हैं, की अनुभूति प्रेम एवं अहिंसा से ही हो सकती है।

'यंग इंडिया' 31 दिसंबर 1931 में गांधी जी ने कहा "अहिंसा का तात्पर्य किसी भी प्राणी की हत्या न करना है। उपनिषद्, बौद्ध धर्म तथा मनुस्मृति में भी उसे इसी अर्थ में लिया गया है।" लेकिन गांधी जी इस अर्थ से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने इसका सकारात्मक पक्ष समाज के सामने रखा।' ('यंग इण्डिया' 31.12.31)

11 अगस्त 1920 में प्रकाशित 'यंग इण्डिया' ने लिखा– गांधी के अनुसार हिंसा भले ही शक्ति का भ्रम उत्पन्न करे किंतु वस्तुतः उसकी शक्ति नगण्य होती है। उनका विश्वास है कि हिंसा के आधार पर कोई स्थायी वस्तु नहीं निर्मित की जा सकती।

गांधी जी मूलतः नैतिक दार्शनिक थे। गांधी जी के आदर्श समाज में प्रत्येक व्यक्ति का धर्म या सामाजिक दायित्व एक सेवा का रूप धारण कर लेगा। गांधी जी की संकल्पना एक वर्गहीन समाज की थी। स्वराज्य के साथ–साथ गांधी जी ने 'सर्वोदय' के आदर्श

पर विशेष बल दिया जिसमें सभी वर्ग के उत्थान की बात कही गई। गांधी जी का मानना था कि अहिंसा का मूल प्रेम में है, कायरता का घृणा में। अहिंसक सदा कष्ट सहिष्णु होता है। कायर सदा पीड़ा पहुँचाता है। संपूर्ण अहिंसा उच्चतम वीरता है। सत्य और अहिंसा का रास्ता देखने में जितना सरल लगता है उतना ही यह मार्ग कठिन है। यह तलवार की धार पर चलने जैसा है। सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलना ठीक वैसा ही है जैसे एक तरफ कुआँ तो दूसरी तरफ खाई है। जरा–सी गलती हुई कि नीचे गिरे। क्षण– क्षण की तपस्या से ही उसके दर्शन हो सकते हैं। अहिंसा एक सर्वदेशीय सिद्धांत है। प्रतिकूल परिस्थिति उसकी क्रिया को किसी सीमा के अंदर बाँध नहीं सकती। अहिंसा यदि एक स्थान पर भी सफलता के साथ खिल सके तो उसकी सुगंध चारों ओर फैल जाएगी।

अहिंसा को पंथों से घृणा है। अहिंसा तो सबको मिलाकर एक करनेवाली शक्ति है। यह विभिन्नता में एकता की खोज करती है। कोई नया पंथ चलाना अहिंसा के विरुद्ध है। ('हरिजन सेवक' 16.3.40)

जहाँ गांधी जी ने नए पंथ से घृणा की, वहीं उनका मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था। राजनीति को उन्होंने नैतिकता के साधन के रूप में देखा और अपनाया। गांधी जी का विश्वास था कि पश्चिमी सभ्यता मनुष्य को उपभोक्तावाद का रास्ता दिखाकर नैतिक पतन की ओर ले जाएगी। वे मनुष्य के चरित्र को इतना उन्नत करना चाहते थे कि वह भौतिक इच्छाओं का दमन करके अपने मन को वश में कर ले। उन्होंने कहा कि चरित्र – निर्माण के लिए सदाचार का पालन आवश्यक है। भारत की उन्नति के लिए उन्होंने स्वदेशी के सिद्धांत का मार्ग अपनाया। उनका मानना था कि देश में बनी वस्तुओं का प्रयोग करके भारत की अर्थ–व्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सकता है।

'ईशोपनिषद्' के प्रथम श्लोक, जिसने गांधी जी को वशीभूत कर लिया था, का सार इस प्रकार है– "सब कुछ में जो कुछ भी इस ब्रह्माण्ड में है, परमात्मा रमा हुआ है। इन सब का परित्याग कर दो और आनंद का भोग करो। दूसरे के धन का लोभ न करो।" इस श्लोक की मीमांसा करते हुए गांधी जी लिखते हैं–"यह मंत्र मुझे बतलाता है कि जो वस्तु ईश्वर की है उसे मैं अपनी नहीं समझ सकता और यदि मेरा जीवन और इस मंत्र में विश्वास करनेवाले समस्त व्यक्तियों का जीवन पूर्ण आत्म–समर्पण का जीवन हो तो यह आवश्यक है कि हम प्राणी मात्र की निरंतर सेवा करते रहें।" (ज्योति प्रसाद सूद पृ. 204)

राधाकृष्णन् के शब्दों में गांधी जी को सदैव एक नैतिक और आध्यात्मिक क्रांति के पैगम्बर के रूप में याद रखा जाएगा जिसके बिना भटके हुए संसार को शक्ति नहीं मिल सकती।

मॉरीशस

अमेरिका -

विदेशी धरती कैलिफ़ोर्निया में पनपती हिंदी

– श्रीमती नीलू गुप्ता

जननी और जन्मभूमि, माँ और मातृभूमि की भाँति ही अपनी मातृभाषा भी मनुष्य जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारी मातृभाषा, हमारी और हमारे देश की पहचान, आन, बान और शान है। हमारे अपने भारत देश की अपनी भाषा हिंदी, देश की बगिया में खिलता फूल है। यह एक ऐसा गुलाब है जिससे तन और मन सुगन्धित होते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश हम भारतीय अपने देश की अपनी निजी भाषा के प्रति उदासीन रहे हैं और अपनी भाषा के साथ सौतेला व्यवहार करने में गर्व अनुभव करते हैं।

आज समय ने करवट बदली है और हमें यह कहते हुए हर्ष का अनुभव होता है कि विदेश में रहने वाले हमारे प्रवासी भारतीय अपने भारत देश की सभ्यता–संस्कृति के साथ–साथ अपनी हिंदी भाषा के प्रति भी सचेत और सजग हो रहे हैं।

इनके सजग प्रयास को देखते हुए, हिंदी के इस बढते हुए अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व को देखते हुए हम कह सकते हैं कि विश्व फलक पर हिंदी के फूल खिल रहे हैं, हिंदी पनप रही है।

'प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या' की उक्ति को सार्थक करते हुए, अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रांत में हिंदी की अनवरत गति से चलती हुई गतिविधियाँ कुछ इस प्रकार हैं–

1. छज्जू का चौबारा

हिंदी का एक अत्यंत लोकप्रिय कार्यक्रम 'छज्जू का चौबारा' के नाम से हिंदी प्रेमी, प्रवासी भारतवासियों के अथक परिश्रम और हिंदी के प्रति रुझान के कारण चल रहा है। कहते हैं कि चिड़िया जब चोंच में दाना लेकर उड़ती है तो जहाँ–जहाँ रास्ते में दाने गिर जाते हैं, वहाँ–वहाँ पौधे उग आते हैं। इसी प्रकार से ही गिरमिटिया साहित्य और भाषा का भी प्रचार–प्रसार हुआ।

लगभग बीस वर्ष पूर्व कैलिफोर्निया के 'सांता क्लारा' नामक शहर में श्री आर्यभूषण जी तथा कुछ अन्य प्रवासी भारतीयों द्वारा 'छज्जू का चौबारा' नामक समूह की स्थापना की गई थी, जिसके अंतर्गत स्वरचित कहानियाँ, लेख, कविताएँ और संस्मरण इत्यादि लिखकर लाने और पढकर सुनाने की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक बुधवार को सवेरे के 11 बजे से दोपहर के 1 बजे तक यह कार्यक्रम चलता है। इसमें 100 से ऊपर श्रोताओं और वक्ताओं की उपस्थिति और एक से बढ़कर एक सुंदर लेख, संस्मरण, कविता इत्यादि लिखकर लाने की प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हुई जो अभी तक दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही है। इसके फलस्वरूप अनेकों नई मेधावी प्रतिभाओं ने जन्म लिया। इससे प्रवासी भारतीयों का हिंदी के प्रति प्रेम छलकने लगा और हिंदी को बढ़ावा भी मिलने लगा। यहाँ तक कि अहिंदी भाषी प्रवासी भारतीयों ने भी हिंदी सीखने में अपनी रुचि दिखाई और हिंदी सीखने लगे।

'छज्जू का चौबारा' में सम्मिलित होने वाले कितने ही प्रतिभाशाली नवोदित लेखकों ने अपनी कृत्तियाँ भी कविता, कहानी और लेख के रुप में प्रकाशित करवाईं। कहना न होगा कि 'छज्जू का चौबारा' एक ऐसा वटवृक्ष है, जिसकी छत्र छाया में प्रवासी भारतीय सुखद शीतलता का अनुभव करते हैं और अपने भारत देश से दूर रहकर भी अपने को भारत के समीप ही अनुभव करते हैं।

कोई 'छज्जू का चौबारा' को 'प्रीति का झरोखा' कहता है, कोई प्रेम का प्याला और कोई 'संजीवनी बूटी'।

2. उपमा (उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ अमेरिका)

2005 में 'उपमा' (उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ अमेरिका) नामक संस्था की स्थापना प्रवासी भारतीय, नीलू गुप्ता ने हिंदी के प्रचार–प्रसार तथा अपनी भारतीय धरोहर को अपनी नई पीढ़ी को सौंपने के लिए की। 'उपमा' का उद्देश्य सबसे ऊपर मेरी माँ, मेरी जननी, मेरी अपनी भाषा, मेरा अपना देश है। हिंदी के प्रचार–प्रसार में और हिंदी प्रेमियों को अपने देश से दूर एक छत्र के नीचे एकत्रित करने में आशातीत कामयाबी मिली। होली, दिवाली इत्यादि कार्यक्रम के अतिरिक्त, वर्ष में दो–तीन हिंदी कवि सम्मेलन, स्थानीय कवियों तथा भारत से आए हुए कवियों द्वारा आयोजित होते हैं। हिंदी को घर–घर तक पहुँचाना इसका ध्येय है। अतः इसके अंतर्गत युवा वर्ग और

नन्हे–मुन्ने कलाकारों द्वारा वाद–विवाद और नृत्य–गायन इत्यादि की प्रतियोगिताएँ भी समय–समय पर आयोजित होती हैं जिनसे हिंदी के प्रति प्रेम जागृत होता है और विदेशी धरा पर हिंदी पनपने लगती है।

यह एक गैर–लाभ संस्था है। इसमें जो भी धनराशि हम संचित करते हैं, वह सब अपने भारत देश के जरूरतमंद बच्चों की शिक्षा के लिए उपयोग में लाते हैं। इस प्रकार इस संस्था द्वारा अपनी हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार, अपनी संस्कृति, अपनी धरोहर का प्रसार और अपने देश की माटी से जुड़कर, दूर रहकर भी हमें कुछ करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। अत: एक नेक काम से अनेकों उपलब्धियाँ।

3. अखिल विश्व हिंदी ज्योति

इसके साथ ही साथ एक अन्य संस्था 'अखिल विश्व हिंदी ज्योति' की स्थापना भी नीलू गुप्ता ने अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर कैलिफोर्निया के फ्रीमॉन्ट शहर में की, जिसमें अधिकतर हिंदी कार्यक्रम युवाओं द्वारा होते हैं और उनमें अपनी भाषा के प्रति आस्था और प्रेम जागृत किया जाता है। हर महीने एक गोष्ठी होती है, जिसमें स्वरचित और पररचित उत्कृष्ट कोटि की रचनाओं के साथ–साथ नवोदित युवा और बाल कलाकारों की रचनाओं को विशेष स्थान दिया जाता है। वर्ष में एक बार वार्षिकोत्सव किया जाता है, जिसमें गण्यमान्य अतिथि आकर इसकी शोभा में चार चाँद लगाते हैं।

समय–समय पर भारत से या अमेरिका के किसी भी प्रान्त से आने वाले गुणी जनों का विधिवत आदर–सत्कार किया जाता है और उन्हें अपनी इस संस्था के द्वारा 'हिंदी ज्योति सम्मान' से सम्मानित किया जाता है। उदाहरणार्थ – अभी कुछ ही समय पूर्व अशोक चक्रधर जी ने भारत से आकर हिंदी के प्रचार–प्रसार को अपनी सुपुत्री, स्नेहा चक्रधर के कविता नृत्य द्वारा एक नया आयाम दिया, जिसका 300 से अधिक उपस्थित श्रोताओं ने भरपूर आनंद उठाया।

हिंदी दिवस तथा विश्व हिंदी दिवस

हिंदी दिवस तथा विश्व हिंदी दिवस को क्रमश: 14 सितम्बर और 10 जनवरी को मनाने का विधान है। ये दिवस हमारे उत्तरी कैलिफोर्निया के सैनफ्रांसिस्को में स्थित भारत कौंसलावास के तत्वाधान में बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। कहना न होगा कि इसमें भी हिंदी में विभिन्न कार्यक्रम किये जाते हैं। हिंदी सीखने वाले विभिन्न संस्थाओं के विद्यार्थी इसमें खूब बढ चढकर अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं, कौंसलावास के द्वारा उनके उत्साहवर्धन के लिए उनको प्रशंसा–पत्र दिए जाते हैं। इस प्रकार से हिंदी के प्रचार–प्रसार को एक नई दिशा मिलती है। प्रतिवर्ष कौंसलावास के आदेशानुसार नीलू गुप्ता इस कार्यभार को बखूबी निभाती हैं। प्रतिवर्ष अधिक से अधिक संख्या में हिंदी सेवारत सभी छोटी–बडी संस्थाओं को आमंत्रित किया जाता है। कहना न होगा कि सभी संस्थाओं के विद्यार्थी उल्लसित होकर विभिन्न विधाओं में कविता, कहानी और नाटिका इत्यादि प्रस्तुत करते हैं।

विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा

कैलिफोर्निया के विश्व प्रसिद्ध बर्कली विश्वविद्यालय, स्टैनफॉर्ड विश्वविद्यालय तथा डेविस विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा को अन्य भाषाओं की भांति ही मान्यता प्राप्त है। यहाँ पर प्राथमिक ,माध्यमिक और उच्च शिक्षा हिंदी में प्राप्त की जा सकती है।

डी.एन्जा कॉलेज में हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में मान्य

कुछ अन्य हिंदी भाषा से संबंधित कार्यक्रम, जो इस शोधपूर्ण लेख का हिस्सा हैं, उनपर भी प्रकाश डालना आवश्यक है।

यहाँ कैलिफोर्निया के बे एरिया के अंतर्गत कुपरटिनो शहर में स्थित डी. एन्जा कॉलेज में हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। अन्य विदेशी भाषाओं–स्पैनिश ,जर्मन ,फ्रेंच की भांति हिंदी भाषा भी पढाई जाती है और भाषा के 5 क्रेडिट वर्ष के हर क्वार्टर में दिए जाते हैं जोकि हाईस्कूल और कॉलेज जाने वाले विद्यार्थियों के लिए एक वरदान का काम करते हैं। आम के आम और गुठली के दाम,अपनी मातृभाषा सीखना और क्रेडिट लेना दोनों ही काम हो जाते हैं। भारतीय और विदेशी मूल के सभी विद्यार्थी

कक्षा में प्रवेश लेते हैं। 10 –12 वर्ष से यह कार्यक्रम यहाँ भली–भांति चल रहा है। हज़ारों विद्यार्थी इसके माध्यम से हिंदी लिखना, बोलना और पढ़ना सीख चुके हैं क्योंकि कक्षा में विद्यार्थियों की न्यूनतम संख्या 35 से 40 आवश्यक है।

कहना न होगा कि हमने अपने अथक परिश्रम से हिंदी भाषा का ज्ञान अत्यंत सुगम प्रणाली से सिखाने के उपाय अन्वेषित किये हैं और कक्षा अत्यंत लोकप्रिय है।

स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा की मान्यता

स्कूलों में भी एक अनिवार्य विषय की भांति हिंदी भाषा की मान्यता दिलवाने की ओर प्रयत्न किये जा रहे हैं। बे एरिया के फ्रीमांट शहर के स्कूलों में हिंदी को पाठ्यक्रम में मान्यता मिल गई है और कुछ अन्य शहरों में मिलने जा रही है।

बे एरिया के 50 से भी अधिक स्कूलों में हिंदी की कक्षाएँ प्राइवेट रूप से, 50 से भी अधिक स्कूलों में ,स्कूल की पढाई के बाद हिंदी की कक्षा प्राइवेट रूप से चलाई जा रही हैं । 'सीखो हिंदी', 'जानो भारत' इत्यादि नाम से कई कार्यक्रम चल रहे हैं। यह भी एक सफल परीक्षण है। चिन्मय मिशन नामक संस्था में भी हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी हिंदी सीख रहे हैं।

स्टारटॉक

'स्टारटॉक' नाम से चल रहे कार्यक्रम के अंतर्गत अमरीकी सरकार हिंदी इत्यादि भाषाओं में निःशुल्क शिक्षा देने के लिए धनराशि देती है इसके अंतर्गत भी हिंदी पढने के लिए अध्यापकों को शिक्षित किया जाता है और विद्यार्थियों को भी हिंदी लिखना, बोलना और पढना सिखाया जाता है। यह सुविधा ग्रीष्मावकाश के दिनों में उपलब्ध है और इसके माध्यम से भी विदेश में हिंदी का खूब प्रचार–प्रसार हो रहा है।

विदेश की धरती पर पनप रही है हिंदी, विश्व फलक पर खिल रहे हैं हिंदी के फूल।
भारत से हम दूर हैं पर भारत हमसे दूर नहीं
हिंदी हमारी थाती है इसको हम भूलें नहीं
हिंदी मेरी बोली ,मेरी बोली मेरी माँ की बोली
माँ की बोली, मीठी बोली ,मुँह में मिसरी सी घोली।

अमेरिका

अमेरिका -

विदेशों में हिंदी के प्रचार में योग का योगदान

– डॉ मृदुल कीर्ति

हिंदी के प्रचार और प्रसार के लिए बहुआयामी प्रयत्न होते आये हैं। व्यक्तिगत, सामाजिक, राजकीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के प्रत्यक्ष प्रयासों की बड़ी श्रृंखला है। हिंदी से इतर अंतरराष्ट्रीय स्तर के प्रयासों में योग का नाम गर्व से ले सकते हैं। योग के अंतरराष्ट्रीय प्रचार–प्रसार के साथ अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी और संस्कृत का भी प्रचार हो रहा है। योग की अपनी यौगिक शब्दावली है जो हिंदी और संस्कृत में है। योग के अभ्यास और शिक्षा के अनन्तर प्रयुक्त होने वाली संस्कृत और हिंदी की यौगिक भाषा से भी साधक परिचित हो रहा है। हिंदी और संस्कृत के वैश्विक प्रसार के लिए यह योग का योगदान है जिसमें साधक अनायास ही योग के अभ्यास के अनन्तर हिंदी और संस्कृत की शब्दावली और उसमें निहित भाव को आत्मसात करने में समर्थ हो रहा है।

भारतीय संस्कृति और अध्यात्म में योग आदि कल्प से पुरातन जीवन दर्शन है। 'भगवद्गीता' में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययं।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाक्वेब्रवीत।" (भगवद्गीता 4/1)

अर्थात्– 'इस अविनाशी योग कल्प के आरम्भ में मैं ने सूर्य को बताया, सूर्य ने अपने पुत्र मनु और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को बताया।'

"एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।" (भगवद्गीता 4/2)

अर्थात्– 'इस प्रकार परम्परानुसार यह योग राजर्षियों ने जान लिया, लेकिन हे परंतप अर्जुन! चिरकाल से यह योग इस भूलोक में लुप्तप्रायः हो चुका था।'

"स एवायं मया तेद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।

भक्तोऽसि में सखा चेति रहस्यं होतदुत्तमं।" (भगवद्गीता 4/3)

अर्थात्– 'यही यह पुरातन योग अब मैं ने तुझे बताया है क्योंकि तू मेरा भक्त एवं प्रिय सखा है। यह रहस्य परम गोपनीय और अति उत्तम है।' उसी योग का शंखनाद योग दिवस पर हुआ।

माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा 14 सितम्बर, 2014 में पहली बार प्रस्तावित प्रस्ताव को 11 दिसंबर 2014 को यूनाइटेड नेशंस की आम सभा ने स्वीकार करते हुए 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में घोषित कर दिया। इस प्रस्ताव का समर्थन 193 देशों में से 177 देशों ने निर्विरोध किया। आज योग दिवस पर 200 देशों द्वारा योग दिवस मनाया जाना विश्व की अद्भुत घटना है।

तन से आरम्भ होकर अंतर्मन के रूपांतरण को विश्वव्यापी स्तर पर स्वीकार किया जा चुका है। एक वह लाभ जो परिलक्षित नहीं किन्तु निश्चित है, वह है विदेशों में योग के माध्यम से हिंदी और संस्कृत का प्रचार –वह कैसे ?

इसे प्रमाण सहित प्रमाणित करती हूँ।

ऑस्ट्रेलिया में थी। वहाँ के योग शिविरों में एक अद्भुत और विस्मित करने योग्य एक 84 वर्षीय योगिनी को योग करते देखा जो योग करते हुए संस्कृत और हिंदी के यौगिक शब्दों का ही प्रयोग अपने हर आसन में कर रही थीं। वे आसन कर रही थीं और मैं चकित थी।

यौगिक क्रियाओं के विशुद्ध नामों का यथावत उच्चारण मनोभूमि में हिंदी और संस्कृत भाषा के बीजारोपण की स्वस्थ प्रक्रिया है। देखा गया है कि भाषा सीखने से कम, बोलचाल से अधिक सरलता और सहजता से आ जाती है। विशेष रूप से यदि उस विषय में रुचि और अभ्यास हो तो अनायास ही भाषा का ज्ञान हो जाता है।

योग शिविरों में योग आरम्भ करने से पूर्व 'नमस्ते' से तो अधिकांश ही विदेशी परिचित हैं और इस प्रक्रिया को आत्मसात कर चुके हैं। प्रशिक्षक जब 'अष्टांग योग' के अनन्तर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के बारे में बताते हैं

तो वे अपने उच्चारण के आधार पर बोलते हैं। प्राणायाम की प्रक्रिया में अनुलोम–विलोम और कपालभाती को तो बहुत ही सहजता से बोलने लगे हैं। 'आप कैसे हैं?' 'आपका नाम क्या है?' जैसे सरल वाक्यों को योग में प्रायः भारतीयों से संवाद के समय बोलते सुना जा सकता है। योग शिविरों में हिंदी के प्रति एक सहज आकर्षण अनुभव किया जा सकता है। जब हम विदेशों में आयोजित योग शिविरों में जाते हैं तो वे हमसे भारत के खान–पान और वेश–भूषा की बात करते हैं, साड़ी, बिंदी, आभूषण को कौतुहल से देख कर प्रसंशा करते हैं।

भारतीय योग प्रशिक्षक योग के संस्कृत और हिंदी के मौलिक शब्दों का तो उच्चारण करते ही हैं किन्तु वे विदेशी जो भारत से योग का समुचित प्रशिक्षण लेकर आये हुए योग प्रशिक्षक हैं, वे भी यौगिक शब्दों का ही प्रयोग कर योग सिखाते हैं। इस तरह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी और संस्कृत शब्दों से मानसिक परिचय वैश्वीकरण की दृष्टि से बढ़ रहा है।

योग के साथ–साथ आरोग्य और स्वस्थ जीवन–शैली के लिए आयुर्वेद के प्रति विश्व में विश्वास बढ़ता जा रहा है। विश्व आश्वस्त हो चुका है कि योग व्याधिमुक्त एवं समाधियुक्त जीवन की संरचना है। आयुर्वेद आरोग्य की सम्पूर्ण संकल्पना है जिस पर पाश्चात्य वैज्ञानिक बड़ी गहराई से शोध कर रहे हैं। इनमें से अधिकतर जड़ी–बूटियों के नाम हिंदी और संस्कृत में यथावत लिए जाते हैं। 'नीम', 'शतावर', 'आँवला', 'त्रिफला' आदि को यथावत ही बोलते और लिखते हैं।

योग के माध्यम से हिंदी के प्रचार और प्रसार में आधुनिक तकनीक और मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है। यह सच है कि योग और यौगिक शब्दों का मिडिया के माध्यम से यदि प्रचार न होता तो योग का भी इतनी त्वरित गति से प्रसार और वैश्वीकरण न हुआ होता। यदि इंटरनेट पर योग के प्रचार और प्रसार के विकल्प न होते तो योग और यौगिक भाषा के प्रति विश्व का आकर्षण न होता। किसी भी लिंक पर जाएँ, विश्व के हर समुदाय के लोग रंग–बिरंगी योग की चटाइयों पर पूरे मनोयोग से हजारों की संख्या में योग करते दिखेंगें। योग तो जैसे एक स्वस्थ परिवर्तन की क्रांति के रूप में उभरा है और मन, बुद्धि और आत्मा की शांति के लिए जब अंतर्मन की आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ होती है तो 'ॐ शान्ति' को बड़ी आस्था से बोलते हैं। कितने ही अंग्रेजों को यज्ञ में रुचि लेते हुए देखा गया जो इंग्लिश रोमन में लिखे मंत्रों को पढ़ते हैं। ध्यान में 'ॐ शान्ति' का जाप भी करते हैं।

ऑस्ट्रेलिया से अमेरिका की 15 घंटे की लम्बी यात्रा है। बीच में प्लेन में ही टहलना भी पड़ता है। प्लेन के बीच में करीब दो फीट की खाली जगह थी। वहीं दो विदेशी महिलाएँ योगासन कर रही थीं और 'ताड़ासन' बोल कर स्वयं को उसी तरह तान रही थीं और अपनी साथी को बता रही थीं। उस ऑस्ट्रेलियाई महिला ने वृक्षासन करते हुए और बोलकर बताया। भारत और योग के विषय में बहुत विस्तार से पूछा। कुछ अन्य यात्री सूक्ष्म व्यायाम भी कर रहे थे, यह योग के प्रसार की एक झलक थी। अपनी मातृभाषा सुनकर मुदित थी और वहीं से प्रेरित होकर विदेशों में हिंदी के प्रचार में योग के योगदान पर लिखने का विषय मिला।

योग शब्द अब इतना विराट हो गया है जो हिंदी या संस्कृत की भाषा–सीमा को पार कर नाद तत्व हो गया है। योग में प्रयुक्त होने वाले शब्द अब सबके अपने होते जा रहे हैं क्योंकि सबको योग से आंतरिक शांति के संकेत मिलते हैं। जहाँ सुख मिलता है इन्द्रियाँ वहीं ठहर जाती हैं। 'ॐ' अर्थात अध्यात्म की मूल ध्वनि और आदि शब्द है जिसे यौगिक क्रियाओं में आत्मसात किया गया। 'नमस्ते' अर्थात सद्भाव, समर्पण और संस्कार का आदि भाव है। इन दोनों का आरम्भ हमारी भाषा के वैश्वीकरण के शुभ संकेत हैं। ये भाषा के बीज हैं ,वृक्ष के लिए समय चाहिए। योग और आयुर्वेद सारे विश्व को समेटकर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' को सार्थक और सिद्ध करेंगे। यदि भाषा न भी समझें फिर भी योग के माध्यम से हिंदी और संस्कृत में निहित भाव से भावित अवश्य होते हैं और भाव भाषा से भी बड़ा है जो समभाव तक ले जाता है।

अमेरिका

कनाडा -

मेरे देश का हिंदी प्रचारक - स्नेह ठाकुर

– सुश्री ऊषा रानी शाक्य

मेरे देश कैनेडा के टोरन्टो शहर की श्रीमती स्नेह ठाकुर एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो वर्षों से हिन्दी के प्रचार व प्रसार में कर्मठता से सक्रिय हैं। स्नेह ठाकुर ने कई रूपों में भारतीय भाषा हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति की सेवा की है वह कर रही हैं। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में पुस्तकें लिखी हैं। उनके द्वारा रचित हिन्दी साहित्य हिन्दी भाषा के उन्नयन के साथ–साथ भारत की अनमोल भारतीय संस्कृति का भी प्रचार–प्रसार कर रहा है। उनकी पुस्तक 'उपनिषद् दर्शन' ने 'इशोपनिषद' के मंत्रों की व्याख्या द्वारा जीवन को आदर्श रूप से जीने की कला का वर्णन किया है जो देश काल की सीमा के परे है। मानव–जाति के लिए लाभदायक है। इसी प्रकार रामायण व राम–कथा पर आधारित उनके शोध–ग्रंथ एवं उपन्यास हिन्दी की गरिमा के साथ–साथ मानवता के लिए हितकारी हैं।

हिन्दी प्रचारक के रूप में, हाल ही में भोपाल, भारत में सम्पन्न हुए 10 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में, जिसका उद्घाटन भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी ने किया था, गृहमंत्री माननीय श्री राजनाथ सिंह ने स्नेह ठाकुर को 'विश्व हिन्दी सम्मान' से सम्मानित किया।

हिन्दी के प्रचार हेतु स्नेह ठाकुर के प्रयासों को सम्मानित करने के लिए केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा वर्ष 2013 के 'पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार हिन्दी सेवी सम्मान' की घोषणा की गई है। उन्हें यह पुरस्कार राष्ट्रपति भवन में माननीय राष्ट्रपति के कर–कमलों द्वारा प्रदान किया जाएगा।

स्नेह ठाकुर को उनके काम की सराहना स्वरूप अनेक पुरस्कार मिले हैं जिनमें से कुछ का मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगी, जैसे 'इंटरनेशनल वीमेन एक्सेलेन्स अवार्ड 2014' संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा, 'साहित्य भारती सम्मान', दिल्ली, 'द साण्डे इंडियन्स' द्वारा हिन्दी विश्व की 25 श्रेष्ठ प्रवासी महिला लेखिकाएँ, मानद फेलोशिप, यू. एन. ओ. से संबद्ध रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल, दिल्ली द्वारा, 'अक्षरम्' 'प्रवासी साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान', यू.एन. संबद्ध रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल द्वारा 'इंटरनेशनल वीमेन सम्मान' आदि–आदि।

हिन्दी के प्रचार के लिए स्नेह ठाकुर सन् 2004 से 'वसुधा' हिन्दी साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन कर रही हैं। 'वसुधा' विभिन्न विषयों पर आधारित लेख, कहानी, कविता, गजल, संस्मरण आदि साहित्य की अनेक विधाओं से परिपूर्ण साहित्यिक त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका है। वह भारतीय, प्रवासी भारतीय एवं सभी देशों के हिन्दी प्रेमियों के मध्य एक सेतु का कार्य कर रही है। 'वसुधा' का उद्देश्य सभी हिन्दी–प्रेमियों को एकजुट कर हिन्दी को उसके सर्वोच्च स्थान पर पहुँचाना है, उसे यू.एन. की आधिकारिक भाषा बनाना है।

साथ ही 'वसुधा' का उद्देश्य है कि उसके माध्यम से भारतीय साहित्यकार एवं प्रवासी भारतीय व अन्य हिन्दी प्रेमी साहित्यकार तथा सभी हिन्दी के शुभचिंतक पाठक गण एक–दूसरे से परिचित हों। हिन्दी साहित्य और भारतीय संस्कृति संसार के कोने–कोने में फले–फूले। 'वसुधा' हिन्दी के उत्थान के लिये – लेखक, पाठक व हिन्दी–प्रेमियों को जोड़ने का प्रयास कर रही है।

जब तक हिन्दी प्रेमी अपनी भाषा का सम्मान नहीं करेंगे, उसकी मान–मर्यादा की रक्षा नहीं करेंगे, दूसरे भी उसे उसका उचित स्थान नहीं देंगे। स्नेह ठाकुर हिन्दी के प्रति हम में स्वाभिमान जगाने का काम कर रही हैं। उनकी मान्यता है कि यदि संस्कृति को जीवित रखना है तो साहित्य को जीवित रखना होगा और यदि साहित्य को जीवित रखना है तो भाषा को जीवित रखना होगा। साहित्य जीवन से छनकर आता है, जीवन से प्राप्त होता है और जीवन साहित्य से गौरवान्वित होता है। हृदयग्राही भाव साहित्य को अमरत्व प्रदान करते हैं। यह भाषा के द्वारा ही संभव है। भाषा के द्वारा ही विचारों को मूर्त रूप दिया जा सकता है। उनकी 'वसुधा' हिन्दी साहित्यिक पत्रिका इन विचारों को पाठकों तक पहुँचाने का एक साधन है।

स्नेह ठाकुर का मानना है कि घर की मेज़ पर पड़ी पत्रिका की किसी भी रचना पर जब परिवार के सदस्यों में प्रतिक्रिया होती है, तो

उसकी भाषा की गूँज पूरे घर में गूँज जाती है। साहित्य की अनेक विधाओं में लिखी अपनी हिन्दी पुस्तकों व अपनी हिन्दी पत्रिका 'वसुधा' द्वारा हिन्दी को गुंजाना उनका ध्येय है क्योंकि 'मातृभाषा उन्नति है सब उन्नति को मूल।'

'वसुधा' पत्रिका के लिए भारत के राष्ट्रपति के विशेष कार्याधिकारी डॉ. आर.पी. सिंह ने लिखा है, 'कैनेडा की भूमि से श्रेष्ठ एवं विचारोत्तेजक रचनाओं का गुच्छ प्रस्तुत करने के लिए बधाई।'

जहाँ उनकी लेखनी के लिए 'अवध रत्न अवार्ड 2015' से स्नेह ठाकुर को सम्मानित किया गया है, वहीं प्रवासी भारतीय साहित्यकार और पत्रकार के रूप में भी 'लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड' में स्नेह ठाकुर का नाम दर्ज किया गया है।

उनके उपन्यास 'कैकेयी चेतना–शिखा' का राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहीत होना, एक ही वर्ष में उसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित होना तथा उसे साहित्य अकादमी मध्य प्रदेश का अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार मिलना, वृहद रूप से हिन्दी का प्रचार है।

स्नेह ठाकुर की हिन्दी साहित्यिक पत्रिका 'वसुधा' तथा उनके उपन्यास 'कैकेयी चेतना–शिखा' एवं 'लोक–नायक राम' के लिए उत्तर प्रदेश भारत के राज्यपाल माननीय श्रीराम नाईक के पत्र की कुछ पंक्तियों का उल्लेख करना चाहूँगी। उन्होंने अपने पत्र में श्रीमती स्नेह ठाकुर को लिखा है –

"जिस मनोयोग आप विगत 11 वर्षों से हिन्दी पत्रिका 'वसुधा' के माध्यम से साहित्य सेवा कर रही हैं, वह अभिनंदनीय है। कैकेयी के चारित्रिक गुणों, मानसिकता और अंतर्द्वन्द्व को अंतर्भूत करते हुए उसके सकारात्मक पहलू की मिमांसा आपने जिस निरपेक्षता से की है, वह मन को छू जाता है। 'वाल्मीकि रामायण', 'रामचरितमानस' के अलावा श्री राम के लोकमंगलकारी चरित्र का वर्णन अनेकों प्रबुद्ध जानकारों द्वारा किया गया है। फिर भी उपन्यास के रूप में आपकी इस प्रस्तुति को पूरा पढ़े बिना छोड़ने की इच्छा नहीं होती। उपन्यास का शब्द–संयोजन और भाव आह्लादित करते हैं।

विदेश में रहकर भी जिस मनोयोग से आप हिन्दी साहित्य की साधना कर रही हैं, वह अभिनंदनीय है।
मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनका आगामी नया उपन्यास 'जनकनंदिनी सीता' भारतीय आदर्श की उपर्युक्त कड़ी में हिन्दी की गरिमा में चार चाँद लगाएगा।

स्नेह ठाकुर के उपन्यास 'कैकेयी चेतना–शिखा' के लिए भारत की सुप्रसिद्ध लेखिका, श्रीमती चित्रा मुद्गल ने लिखा है– "तुम्हारा उपन्यास 'कैकेई' अभी–अभी पढ़ कर खत्म किया है, मैं दंग हूँ तुमने कैकेई जैसे जनमानस में अति उपेक्षित किन्तु अति संवेदनशील और बुद्धिमती स्त्री पात्र को जिस न्यायपूर्ण ढंग से रचा है, उसकी तार्किकता रेखांकित करने योग्य है। तुम्हें बहुत बधाई हो, तुम्हारी कविताएँ मन को छूती हैं, लेकिन तुम्हारा गद्य बहुत गहरा है।"

स्नेह ठाकुर की पुस्तक 'पूरब–पश्चिम' प्रवासी भारतीयों की समस्याओं तथा समाधान पर लिखी गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनका हिन्दी का क्षितिज बहुत व्यापक है।

स्नेह ठाकुर ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए 'सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था' की स्थापना की है। 'सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था' के तत्वावधान में उन्होंने हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए यहाँ के कवियों के चार संकलन, 'काव्य–वृष्टि', 'बौछार', 'काव्य हीरक' एवं 'काव्य–धारा' का संपादन–प्रकाशन भी किया है।

हिन्दी सेंटर की संरक्षिका, स्नेह ठाकुर, विख्यात लेखक, कवि, विश्वकोशकार पद्मश्री, डॉ. श्याम सिंह शशि द्वारा तैयार किए जाने वाले 'विश्व हिन्दी साहित्य का इतिहास' की सहयोगी संपादक एवं संयोजक हैं।

1994 में कैनेडा की फेडरल गवर्नमेंट के मल्टीकल्चरिज्म एण्ड हेरिटेज डिपार्टमेंट ने स्नेह ठाकुर के नाटक संग्रह 'अनमोल हास्य क्षण' को 5,000 डॉलर के अधिकतम अनुदान से सम्मानित किया था।

स्नेह ठाकुर की साहित्यिक कृतियों पर विद्यार्थी एम.फिल. और पीएच.डी. का शोध कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के एम.ए. पाठ्यक्रम के लिए भी उनका साहित्य चुना गया है।

साहित्य की अनेक विधाओं में लिखी गईं, विविध विषयों पर आधारित उनकी प्रकाशित पुस्तकें हिन्दी के प्रति उनकी लगन को दर्शाती हैं।

कनाडा -

कैनेडा और अमेरिका के सार्वजनिक और विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों एवं कैनेडा के राष्ट्रीय पुस्तकालय आदि में पुस्तकों के चयन के अतिरिक्त, टोरॉण्टो डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्ड द्वारा भी इनमें से कुछ पुस्तकें इंटरनेशनल लैंग्वेजेज़ फॉर कंटीन्यूइंग एजुकेशन के पाठ्यक्रम के लिए चुनी गई हैं।

नव प्रभात – टोरॉण्टो विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग के लिए बनाई गई सीडी हेतु स्नेह ठाकुर ने हिन्दी गीतों की रचना की है।

जहाँ स्नेह ठाकुर शिक्षा व अन्य सामाजिक संस्थाओं से जुड़ी हुई हैं, वहीं वे हिन्दी की संस्थाओं को हिन्दी के प्रचार में सहयोग देती आ रही हैं। वे हिन्दी के प्रबल समर्थक, डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी 'दिग्दर्शन ग्रंथ समिति' के संपादकीय बोर्ड में भी थीं व लब्ध प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रिकाओं जैसे 'शोध संचार बुलेटिन', 'अक्षर वार्ता' की परामर्शदाता भी हैं, साथ ही 'प्रवासी दुनिया' आदि अनेक संस्थाओं को सहयोग प्रदान कर रही हैं। उन्होंने 'सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था' की स्थापना कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सराहनीय काम किया है।

स्नेह ठाकुर ने हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिका दिल्ली प्रेस की 'सरिता' के लिए 'सागर पार भारत' स्तंभ लिखा है। वर्षों से स्नेह ठाकुर की हिन्दी की अनेक विख्यात साहित्यिक और व्यावसायिक निम्नांकित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निबंध, कहानी, कविता, रिपोर्ताज आदि 'सरिता', 'गृह शोभा', 'सुषमा', 'मुक्ता', 'सुमन सौरभ', 'कादंबिनी', 'भाषा सेतु', 'समरलोक', 'ऋचा', 'पहचान ', 'गुर्जर राष्ट्र वीणा', 'दीप ज्योति', 'आधुनिक एवं हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप', 'नौतरणी', प्रतिनिधि आप्रवासी हिंदी कहानियाँ', 'गगनाञ्चल', 'लेखनी', 'बाल सखा', 'राष्ट्र भाषा', 'पुरवाई,' 'विचार दृष्टि' 'नया सूरज', 'युद्धरत आम आदमी', 'विश्व हिन्दी पत्रिका 2011 एवं 2014', 'अक्षरम् स्मारिका 2012', 'अंतरराष्ट्रीय परिसंवाद', 'प्रभात खबर', 'गर्भनाल', 'द गौरसंसटाइम्स', 'विराट भारत', 'देशांतर', 'समय', 'राजभाषा मंजूषा', 'देसी गर्ल्स', 'हिन्दी भाषा', 'सन स्टार', 'आधुनिक साहित्य', 'ज्ञानोदय', 'साक्षात्कार' आदि में प्रकाशित।

अमेरिका में, 'विश्व विवेक', 'विश्वा', 'सौरभ' 'शैडोज एण्ड लाइट', 'पोट्रेट्स ऑफ लाइफ', 'दि एबिंग टाइड', 'बेस्ट पोएम्स ऑफ दि नाइंटीज', 'दि नेशनल लाइब्रेरी ऑफ पोएट्री', 'दि पोएट्स कॉर्नर', 'दि सैण्ड्स ऑफ टाइम' आदि में प्रकाशित।

राष्ट्रीय व स्थानीय रूप से रचनाएँ, 'हिन्दू धर्म रिव्यू', 'काव्य किंजल्क', 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी स्मारिका', 'प्रवासी काव्य', 'संगम', 'सेवा भारती', 'नमस्ते कैनेडा', 'मेधाविनी', 'हैलो कैनेडा', 'काव्य-दृष्टि', 'बौछार', 'काव्य-हीरक', 'काव्य-धारा', 'मोमेंट्स' आदि में प्रकाशित।

स्नेह ठाकुर साहित्यिक और सांस्कृतिक संगोष्ठियों का आयोजन कर सभी का हिन्दी के प्रति उत्साह बढ़ाती रहती हैं। यहाँ तक कि अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के लिये यॉर्क विश्वविद्यालय के बर्टन सभागार में अभिनीत नाटक 'कविवर की दुर्दशा' का न केवल उन्होंने लेखन, प्रस्तुतीकरण, मंचन, एवं निर्देशन किया वरन् उसमें अभिनय भी किया।

स्नेह ठाकुर साहित्यकार एवं कलाकार के साथ-साथ चित्रकार भी हैं। वे भाषा की आत्मा में प्रवेश कर उसे कला-कृति के चित्र-रूप में भी प्रस्तुत करती हैं। उनकी 'राणा ने दिया विष का प्याला, उनका तो कृष्ण कन्हैया रखवाला' उक्ति वाली मीरा की पेंटिंग, 'यदा यदा हि धर्मस्य' वाली पेंटिंग, गणेश पेन्टिंग, भारतीय वधु वाली पेंटिंग जहाँ भारतीय संस्कृति उजागर करती हैं वहीं उन के शीर्षक हिन्दी का परचम ऊपर उठाते हैं।

स्नेह ठाकुर की मान्यता है कि हम देश में रहें चाहे विदेश में, इतनी अमूल्य रत्न-जटित भारतीय संस्कृति, जो हमें विरासत में मिली है, उसका प्रचार-प्रसार न करना आत्म-हनन होगा। और यह प्रचार हिन्दी के प्रचार द्वारा ही संभव है। भावनाएँ अपनी भाषा में ही सर्वोत्तम व्यक्त होती हैं। अतः वर्तमान व भावी पीढ़ी के लिए चाहे, वह भारतीय हो या प्रवासी भारतीय, भारतीय संस्कृति की मशाल जलाये रखने के लिए वे हिन्दी प्रचार के लिए प्रतिबद्ध हैं।

स्नेह ठाकुर अनेकों हिन्दी सम्मेलनों में सम्मानपूर्वक आमंत्रित की जाती हैं। न्यू यॉर्क में सम्पन्न हुए आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में उन्हें कनैडा से विशिष्ट अतिथि के रूप में भारत सरकार द्वारा आमंत्रित किया गया था और तब से ही वे हिन्दी को यू.एन. की

आधिकारिक भाषा बनाने के हर संभव प्रयत्न में संलग्न हैं।

मैं अंत में यहाँ अपने देश कनैडा के टोरॉण्टो शहर की हिन्दी प्रचारक श्रीमती स्नेह ठाकुर की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहती हूँ, जो उन्होंने 'कलम' शीर्षक से कलम की अद्वितीय क्षमता पर लिखी है क्योंकि कलम के माध्यम से ही वे हिन्दी भाषा को जन–मानस तक पहुँचा, उसके प्रचार में जुटी हुई हैं –

"एक अदद छोटी–सी
महज चार–छः इंच की
न रूप की न रंग की
पर है बड़े काम की
क्या ही कमाल की
बिन मोल की
अमोल
यह कलम।"
.....

कनैडा

एशिया -

ल्वादिवोस्तोक की हिंदी संस्था

– सुश्री ओल्गा गपोनोवा

20वीं सदी का मध्य। रूस का ल्वादिवोस्तोक। यह एक ऐसा नगर है जो 1958 ई. से लेकर 1992 ई. तक विदेशी लोगों के लिए तो बिल्कुल ही बंद था, साथ में अपने देशवासियों के लिए भी काफी सीमित प्रवेश प्रदान करता था। बंद सैन्य बंदरगाह ल्वादिवोस्तोक ने दो ही दशकों पहले अपने द्वार पूरी दुनिया के लिए खोले और पहला विदेशी दूतावास, जिसकी स्थापना 1992 ई. में हुई थी, भारत का ही था। ल्वादिवोस्तोक में यह पहली अंतरराष्ट्रीय राजनयिक प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था थी जिसने भारत और रूसी सुदूर पूर्व के संबंधों को मजबूत और व्यवस्थित रूप प्रदान करने का कार्य आरंभ किया। भारतीय दूतावास की स्थापना 1992 ई. में हुई और एक साल बाद ही सुदूर पूर्वी राज्य विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग ने अपना महत्वपूर्ण कार्य शुरू किया।

मॉस्को और सेंट–पीटर्सबर्ग के साथ–साथ ल्वादिवोस्तोक ऐसा तीसरा शहर गिना गया जिस में हिंदी एवं संस्कृत, दोनों भाषाएँ पढ़ी और पढ़ाई जाती हैं। ल्वादिवोस्तोक के हिंदी विभाग के पहले संस्थापक सेंट–पीटर्सबर्ग से ही आए थे जिन्होंने यहाँ हिंदी विभाग की मज़बूत नींव डाली थी। उनका नाम है अलेक्सांद्र मिहाइलोविच मेरवर्ट और उनकी पत्नी ल्यूदमीला अलेक्सांद्रोव्ना मेरवर्ट। आगे चलकर उनके शिष्यों ने हिंदी विभाग की परम्परा का विस्तार किया। यह एक ऐसा विभाग है जहाँ हिंदी और संस्कृत दोनों भाषाओं के साथ–साथ भारत की संस्कृति, भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाए जाते हैं। हिंदी भाषा की उपाधि प्राप्त करने के लिए हर एक छात्र 5 सालों की अवधि के दौरान मन लगाकर पढ़ाई करता है। इन 5 सालों की शुरुआत से लेकर अंत तक हिंदी के विद्यार्थी भारत की दुनिया में एक रोचक सफर करते हैं। यह एक ऐसी यात्रा है जिस में पाठों के साथ खेल, त्यौहार, सम्मेलन, शैक्षिक प्रतिस्पर्धा, छात्रवृत्ति, नृत्य एवं संगीत कार्यक्रम जैसी रोचक और महत्वपूर्ण गतिविधियाँ चलती रहती हैं।

हिंदी विभाग के प्रथम 8 छात्रों ने 1998 ई. में अपनी 5 साल की उपाधि, अर्थात् हिंदी विशेषज्ञ उपाधि ग्रहण की और उन में से तीन छात्रों ने हिंदी विभाग में हिंदी पढ़ाना शुरू किया और अन्य तीनों ने हिंदी में अपनी पढ़ाई जारी रखी। ल्वादिवोस्तोक में 1998 ई. से लेकर 2016 ई. तक हिंदी पढ़नेवालों की संख्या 150 से अधिक हो गई। यहाँ से निकले हुए हिंदी विशेषज्ञ अब पूरी दुनिया में फैल गए हैं और भले ही उन में से कुछ भारत और हिंदी भाषा से जुड़े हुए नहीं हैं लेकिन उनके मन में ज़रूर वह आत्मीयता और सम्मान की भावना है जो वे भारत और हिंदी के प्रति हमेशा महसूस करते हैं। उन सभी को हिंदी जानने पर बहुत गर्व है। वे हिंदी और संस्कृत, दोनों भाषाओं को सीखकर सिर्फ अपने तक सीमित नहीं रखते हैं बल्कि उन्होंने देश–विदेश जाकर निजी स्कूल, विद्यालय और संस्थाएँ खोली हैं जहाँ हिंदी भाषा मुख्य पाठ्यक्रम में शामिल होती है। कई छात्र अनुवादक बन गए जो विभिन्न क्षेत्रों में काम करने लगे। कुछ लोगों ने शादी की और बच्चों का पालन करने के साथ ही हिंदी में अपनी पढ़ाई जारी रखी।

ल्वादिवोस्तोक में न सिर्फ सुदूर पूर्व क्षेत्र के छात्र आते हैं बल्कि पूरे रूस से हिंदी पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी पहुँच जाते हैं। 2000 ई. में सुदूर पूर्वी राज्य विश्वविद्यालय के अंदर हिंदी विभाग के आधार पर भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना हुई जिसके परिणामस्वरूप एक संस्था के रूप में जाना जाने लगा। ल्वादिवोस्तोक के भारतीय सांस्कृतिक केंद्र ने न सिर्फ छात्रों को बल्कि पूरे हिंदी विभाग और विश्वविद्यालय को आम नागरिक के साथ जोड़ दिया एवं भारत और रूस, दोनों देशों के संबंधों का विस्तार तथा विकास किया। इसके साथ–साथ हिंदी संस्था ने रूसी आम जनता के बीच भारत के बारे में जानकारियाँ फैलाई और भारत के बारे में जानने की इच्छा एव रुचि बढ़ाई। हिंदी विभाग इतना सशक्त बन गया है कि राज्य विश्वविद्यालय के स्तर के साथ–साथ ल्वादिवोस्तोक के एक राज्य स्कूल में भी हिंदी को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया।

हिंदी विभाग में अपना पहला कदम रखते ही छात्रों के सामने अपनी पढ़ाई करने के ढंग के अनेक विकल्प हैं। किसी को योग पसंद है तो योग पाठ में प्रवेश करता है, किसी को नाच प्रिय है तो नृत्य समूह 'दोस्ती' में भरतनाट्यम सीखने जाता है, तो किसी को भारत में पढ़ाई करने की इच्छा है। इसलिए वह छात्रवृत्ति पाने के लिए प्रयत्न करता है। द्वितीय वर्ष के छात्र भारत में पढ़ाई करने के लिए अपनी दस्तावेज जमा कर सकते हैं और अपनी इच्छा के अनुसार एक या कुछ महीनों के लिए या फिर एक या कई सालों के लिए छात्रवृत्ति चुन

सकते हैं। भारत में अनेक शहरों में जैसे दिल्ली, पुणे, आगरा और हैदराबाद में विद्यार्थियों को पढाई करने का मौका मिलता है।

हिंदी पढानेवाले रूसी प्राध्यापकों के साथ भारतीय विद्वान भी सुदूर पूर्वी राज्य विश्वविद्यालय में अपनी मातृभाषा में पढ़ाते हैं। उसके साथ-साथ ल्वादिवोस्तोक के भारतीय दूतावास के सरकारी कर्मचारी भी अपनी मूल्यवान मदद प्रदान करते हैं और अक्सर हिंदी किताबें, पत्रिकाएँ, फिल्म, मानचित्र इत्यादि महत्वपूर्ण सामग्री इनाम के तौर पर हिंदी विभाग को देते हैं। हर साल गर्मी की लंबी छुट्टियों के दौरान हिंदी विभाग के कुछ छात्र भारतीय दूतावास में अपनी भाषागत अभ्यास एक-दो महीनों तक करते हैं। इसी प्रकार सुदूर पूर्वी राज्य विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग और भारतीय दूतावास हमेशा मिलकर काम करते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के आधार पर दो महत्वपूर्ण समूहों की स्थापना हुई। पहला है नृत्य समूह 'दोस्ती', जिस में किसी भी उम्र का व्यक्ति भाग ले सकता है। पाँच-छः साल की उम्र से लेकर पचास से ऊपर के छोटे-बड़े सभी उम्र के लोगों के लिए इस नृत्य समूह का द्वार खुला हुआ है। यहाँ पारम्परिक नृत्य के साथ आधुनिक नृत्य भी सिखाया जाता है। यहाँ आम जनता संगीत और फिल्मों के माध्यम से हिंदी सीखती है और जिनकी हिंदी पढ़ने में अधिक रुचि होती है वे हिंदी विभाग के एक ऐसे कार्यक्रम में प्रवेश कर सकते हैं जिसके अंतर्गत सभी इच्छुक नागरिकों को सरल हिंदी में अभ्यासों से लेकर गद्य और पद्य के पाठों तक सीखाया जाता है। पूरा साल नृत्य समूह 'दोस्ती' अनेक कार्यक्रमों में भाग लेता और हर साल के जून महीने में अपना खास और खूबसूरत कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। इस कार्यक्रम को देखने के लिए दूर-दराज़ के इलाकों से लोग आते हैं और दर्शकों की संख्या कई हज़ार तक पहुँच जाती है।

नृत्य समूह के साथ एक और समूह की स्थापना हुई। इस समूह का नाम है 'रूसी-भारतीय मित्रता और संबंधों का क्लब'। इस समूह का सदस्य कोई भी बन सकता है जिसको भारत के प्रति रुचि, प्यार और लगाव है। यह क्लब पूरे साल के दौरान अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करता है, जैसे भारतीय चित्रकला या स्थापत्य कला की प्रदर्शनी, भारतीय फिल्मों का साप्ताहिक त्योहार, स्कूलों में बच्चों के बीच भारत के विभिन्न विषयों पर चित्र बनाने में प्रतिस्पर्धा रंगोली बनाने का वार्षिक प्रतिस्पर्धा, त्योहारों एवं सम्मेलनों का आयोजन। इस प्रकार इस समूह में हिंदी विभाग के सदस्यों के साथ नागरिक भी इस क्लब के सदस्य बन सकते हैं और अपनी एक सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं।

ल्वादिवोस्तोक के एक बंदरगाह होने के नाते, हर दो साल पर भारतीय नौसेना के समुद्री जहाजों का स्वागत करता है। भारतीय और रूसी नौसेना समुद्र में सैनिक अभ्यास भी करते हैं और हिंदी विभाग में भी आकर मिलते हैं और अपने अनुभवों को छात्रों से बाँटते हैं। कुछ दिनों के लिए छात्रों और सभी नागरिकों के लिए भारतीय जहाजों की सैर का आयोजन किया जाता है। शाम को भारतीय जहाज पर नृत्य और संगीत का एक छोटा कार्यक्रम होता है जिसमें हिंदी के लिए छात्रों को बुलाया जाता है और विद्यार्थी खुद देख सकते हैं कि भारतीय नवजवान भारत के अलग-अलग प्रदेशों से सेना में पहुँच गए लेकिन सभी हिंदी जानते हैं।

हिंदी विभाग में मेरा प्रवेश 2004 में हुआ था। हिंदी पढ़ने के साथ-साथ मैं नृत्य समूह में भी शामिल हो गई और कई सालों तक भरतनाट्यम् सीख रही थी। सम्मेलनों और अन्य कार्यक्रमों में भाग लेना और चुने हुए विषयों पर शोध करना मुझे बेहद पसंद है। इसलिए जब 2014 में मास्को के अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का निमंत्रण पत्र मैंने पाया तो मैं बहुत खुश हो गई। इस सम्मेलन में मैंने दलित आत्मकथाओं पर अपना निबंध प्रस्तुत किया।

हिंदी विभाग की छात्रा होते हुए मैंने छात्रों का रोचक जीवन देखा जिसमें नई भाषा सीखने का मौका मिला। यहाँ मैं नए लोगों और नए देश के निवासियों से मिली। अभी भी मैं अपना शैक्षिक जीवन भरपूर जी रही हूँ। 2008 में मुझे पहली बार छात्रवृत्ति मिली और तीन सालों तक मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज में हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ रही थी। 2012 में मैंने दूसरी बार छात्रवृत्ति पाई और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हिंदी में अपनी पढाई करके प्रथम श्रेणी की स्नातक उपाधि ग्रहण की। मैं खुद को सौभाग्यशाली महसूस कर रही हूँ क्योंकि 2015 में मुझे तीसरी बार छात्रवृत्ति मिली और मैंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में फिर हिंदी विभाग में प्रवेश किया। सुदूर पूर्वी राज्य विश्वविद्यालय में मैंने कई सालों के दौरान हिंदी भी पढाई और प्राध्यापक के जीवन का अनुभव प्राप्त किया। मुझे लगता है कि भारत को सच्चे अर्थों में जानने के लिए हिंदी भाषा और साहित्य जानना बेहद जरुरी है। हिंदी भाषा और साहित्य ही भारत के मन तक पहुँच सकते हैं और ल्वादिवोस्तोक की हिंदी संस्था इस सफर की प्रथम सीढ़ी है।

रूस, एशिया

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के प्रणेता: डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

– सुश्री पूर्णिमा पाटिल

विद्वान पत्रकार श्री नीरज नंदा ऑस्ट्रेलिया से एक अंग्रेजी समाचारपत्र–'साउथ एशियन टाइम्स' प्रकाशित करते हैं। उन्होंने ऑस्ट्रेलिया निवासी हिंदी प्रेमी विद्वान, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव से विचार –विमर्श किया। निर्णय लिया गया कि इस अंग्रेजी समाचारपत्र के साथ हिंदी पत्रिका को भी संलग्न किया जायेगा। नाम दिया गया 'हिंदी पुष्प'। यह पत्रिका ई–पेपर के रूप में इंटरनेट पर प्रारम्भ की गई। 'हिंदी पुष्प' की पूर्ण स्वतंत्र जिम्मेदारी संपादक के रूप में डॉ दिनेश श्रीवास्तव को सौंप दी गई। सन् 2004 के अगस्त से 'हिंदी पुष्प' का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। श्री दिनेश श्रीवास्तव के लिये यह पत्रिका विदेश में हिंदी के प्रचार –प्रसार का माध्यम है। डॉ दिनेश श्रीवास्तव को ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। हिंदी के प्रचार –प्रसार को समर्पित डॉ. श्रीवास्तव ने इस पत्रिका में प्रवासी भारतीयों को हिंदी में रचनाएँ लिखने के लिये हमेशा प्रोत्साहित किया और उन्हें हिंदी में सृजन का एक और मंच प्रदान किया है। सिर्फ यही नहीं, दिनेश जी ने ऑस्ट्रेलिया की नयी पीढ़ी को भी इससे जोड़ने का सराहनीय प्रयत्न किया है। विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज द्वारा आयोजित हिंदी परीक्षा में प्रथम, द्वितीय और तृतीय आने वाले विद्यार्थियों के हिंदी के बारे में उनके विचारों को दिनेश जी अपनी पत्रिका 'हिंदी पुष्प' में उन विद्यार्थियों की फोटो सहित प्रकाशित करते हैं। इस प्रयास से नई पीढ़ी को अपनी धरोहर से जुड़ने और हिंदी पढ़ने का प्रोत्साहन मिलता है। इसके साथ ही पाठकों को ऑस्ट्रेलिया में हिंदी और हिंदी साहित्य से जुड़ी गतिविधियों, हिंदी पुस्तकों की समीक्षाएँ, कहानियाँ– लेख, और कविताएँ पढ़ने को मिल जाती हैं। ऑस्ट्रेलिया में आयोजित होने वाले भारतीय त्योहारों, संगीत कार्यक्रमों, उत्सवों आदि की जानकारी भी दिनेश जी 'हिंदी पुष्प' के माध्यम से पाठकों को पहुँचाकर उन्हें अपनी संस्कृति और भाषा से संपर्क बनाये रखने में सहयोग करते हैं।

दिनेश जी ने ऑस्ट्रेलिया में पत्रकारिता, स्कूली शिक्षा, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं और प्रसार माध्यमों में हिंदी के प्रयोग को मान्यता दिलवाने में अथक प्रयास किये हैं। ऑस्ट्रेलियन करीकुलम , एसेसमेंट एंड सर्टिफिकेशन अथॉरिटी ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए जब एशियाई भाषाओं में हिंदी को शामिल नहीं किया था तब एक जन आंदोलन चलाया गया। हिंदी प्रचारक संगठनों के साथ ही व्यक्तिगत रूप से भी लोगों ने हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने की याचिकाएँ भेजीं। इन प्रयत्नों में दिनेश जी की सहभागिता विशेष रही।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिये सन् 2011 में 'हिन्दी प्रेमियों द्वारा हिन्दी शिक्षा संघ, ऑस्ट्रेलिया' की स्थापना की गई जिसमें दिनेश जी ने विशेष मार्गदर्शन किया। यह हिंदी शिक्षा संघ ऑस्ट्रेलियाई विद्यार्थियों के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में लगा हुआ है और यहाँ भी दिनेश जी का योगदान महत्वपूर्ण है। सन 2012 में डॉ दिनेश श्रीवास्तव ने विक्टोरिया स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज को इस बात के लिए मनवा लिया कि वह हिंदी शिक्षा संघ को आवश्यक मदद करेगा, जिससे शिक्षा संघ हिंदी पाठ्यक्रम और पुस्तक तैयार कर सकेगा। इस प्रस्ताव को स्वीकृति मिलने से इस दिशा में पुस्तक तैयार करने का कार्य शुरू हो सका है।

ऑस्ट्रेलिया का रेंजबैंक प्राइमरी स्कूल वह सर्वप्रथम सरकारी स्कूल है जिसे में अंग्रेज़ी के अतिरिक्त हिंदी को अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाने का गौरव प्राप्त हुआ है और यह संभव करने मे प्राचार्य कोलिन एवेरी को डॉ दिनेश श्रीवास्तव ने हर संभव सहयोग दिया।

ऑस्ट्रेलिया में 1970 तक तो हिंदी शिक्षा का कोई प्रबंध ही नहीं था। उन्हीं दिनों सन् 1971 में ऑस्ट्रेलिया में दिनेश जी अपने परिवार के साथ रहने आये थे। अपने बच्चों को भारतवर्ष के केंद्रीय निदेशालय के 'हिंदी प्रवेश' और 'हिंदी परिचय' पाठ्यक्रमों की परीक्षा देने के लिए उन्हें ऑस्ट्रेलिया में भारतीय उच्चायुक्त या भारतीय वाणिज्य दूतावास के कार्यालय में ले जाना पड़ता था। वैसे उनके बच्चों ने इस असुविधा के बीच हिंदी पाठ्यक्रम पूरा कर लिया लेकिन हिंदी सेवी और हिंदी प्रेमी दिनेश जी को चिंता हो रही थी कि ऑस्ट्रेलिया में रहने वाले प्रवासी भारतीयों के बच्चों को हिंदी सिखाने के लिये ऑस्ट्रेलिया में ही कुछ प्रबंध होना चाहिए।

दिनेश जी ने ऑस्ट्रेलिया के शिक्षा विभाग से पूछताछ शुरू की। सामुदायिक भाषा स्कूल में हिंदी सीखने के लिए विद्यार्थियों की आवश्यक संख्या, उनके अभिभावकों के नाम –पते एकत्रित करना, हिंदी शिक्षक का स्वयं प्रबंध करना, विक्टोरिया में हिंदी भाषी समुदाय की

तरफ से प्रार्थना पत्र भेजना, आर्थिक प्रबंध आदि जैसे अनेक कार्य दिनेश जी ने अपने हाथ में लेकर तीन वर्षों तक अथक परिश्रम किया। दिनेश जी की इच्छाशक्ति और लगन रंग लाई और सन् 1986 में विक्टोरिया के मेलबर्न शहर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहली हिंदी कक्षाएं आरम्भ हुईं। इसका पूर्ण श्रेय डॉ दिनेश श्रीवास्तव को जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी को लेकर दिनेश जी के प्रयत्न चलते ही रहते थे। 1993 में 11 वीं और 12 वीं के विद्यार्थियों को हिंदी पढने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। साथ ही विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए हिंदी विषय को बोनस अंक के रूप में स्वीकृत किया गया। इस तरह दिनेश जी ने कुछ अन्य हिंदी प्रेमियों के सहयोग से हिंदी को सरकारी मान्यता दिलवा दी।

हिंदी सेवा को समर्पित, दिनेश जी ने सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा हिंदी कार्यक्रमों को आयोजित करने का प्रयास हिंदी प्रेमियों के साथ मिलकर किया। वे सांस्कृतिक संस्था 'हिंदी निकेतन' के पूर्व अध्यक्ष रह चुके हैं। हिंदी परीक्षा में प्रवीणता प्राप्त विद्यार्थियों को संस्था द्वारा सम्मानित करने का प्रस्ताव दिनेश जी का हिंदी प्रेम दर्शाता है।

ऑस्ट्रेलिया में रेडियो पर हिंदी कार्यक्रमों का प्रसारण दिनेश जी के प्रयासों का ही फल है।

ऑस्ट्रेलिया में हाईस्कूल, अनुवादक और द्विभाषिया परीक्षाओं में पहले हिंदी को कोई स्थान ही नहीं था। यह दिनेश जी के ही निरंतर प्रयत्नों का सुफल है कि ऑस्ट्रेलियाई सरकार ने इन परीक्षाओं में हिंदी को मान्यता प्रदान कर दी।

डॉ. दिनेश श्रीवास्तव को 2009 में भारतीय विद्या भवन की तरफ से उनकी हिंदी सेवा को सम्मानित करते हुए 'ऑस्ट्रेलियन ऑफ द ईयर' अवार्ड दिया गया। 'हिंदी निकेतन' संस्था की तरफ उन्हीं 'हिंदी सर्विस अवार्ड' से पुरस्कृत किया गया और सन् 2010 में विक्टोरिया के 'मल्टीकल्चरल अवार्ड' से सम्मानित किया गया। उन्हें बार गवर्नर ऑफ विक्टोरिया की तरफ से 'कम्युनिटी सर्विस अवार्ड' प्राप्त हुआ है।

डॉ. दिनेश श्रीवास्तव के 40 से अधिक हिंदी और अंग्रजी में लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने हिंदी में वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें लिखी हैं। उनकी हिंदी पुस्तक 'रॉकेट, उपग्रह और अंतरिक्ष यात्रा' अंतरिक्ष की खोज पर आधारित है।

डॉ दिनेश श्रीवास्तव का सन् 1971 से ऑस्ट्रेलिया में स्थायी निवास है। वे मेलबर्न शहर में रहते हैं। उनका जन्म सन् 1942 में लखनऊ में हुआ। लखनऊ विश्वविद्यालय, भारत, मोनाश विश्वविद्यालय, ऑस्ट्रेलिया, विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय, अमेरिका में उन्होंने अध्ययन किया। उन्होंने हिंदी विश्वविद्यालय , प्रयाग से विशारद की उपाधि प्राप्त की। भारत, इथोपिया, अमेरिका, तथा ऑस्ट्रेलिया में अध्यापन तथा शोध कार्य किया।

दिनेश जी एक सच्चे हिंदी सेवक की भांति अपने संपर्क में आने वाले हिंदी लिखने के इच्छुकों को मार्गदर्शन और सहयोग देने में विशेष रुचि रखते हैं। अपने परिचितों को निस्स्वार्थ भाव से हिंदी की पठनीय सामग्री प्राय: ई–मेल द्वारा प्रेषित करते रहते हैं। दिनेश जी एक अत्यंत विनम्र व्यक्ति हैं। हिंदी को समर्पित दिनेश जी की हिंदी सेवा का अंदाज अनूठा और आकर्षक है। ऑस्ट्रेलिया के स्थायी निवासी होने के बावजूद दिनेश जी का मानना है कि हिंदी हमारी पहचान है, सम्मान है। इसी पहचान और सम्मान की भाषा हिंदी के लिए दिनेश जी ने ऑस्ट्रेलिया में रहकर भी संघर्ष और अथक प्रयास किया, जो प्रशसनीय और अनुकरणीय है।

काश हिंदी को दिनेश जी जैसे अनेक दिनेश श्रीवास्तव नसीब हो जाते .....। अंत में हिंदी के प्रसार –प्रचार को समर्पित हिंदी सेवी दिनेश जी को समर्पित ये पंक्तियाँ–

प्रशस्त अब हिंदी का पथ है , बढ़ा विश्व में इसका रथ है।
पीछे इसे न हटने देंगे , अब यही संकल्प –शपथ है।

ऑस्ट्रेलिया

संस्मरण

स्मृति में कोरिया

—श्रीमती विजया सती

जब हम अपने ही देश में या फिर सुदूर विदेशों में पर्यटक की तरह जाते हैं, तो जैसे रंगीन विज्ञापनी पैम्फलेट्स के भुलावे में जी आते हैं। किसी भी स्थान या देश के जीवन को देखने–जानने–समझने के लिए थोड़ा लंबा अरसा तो चाहिए ही। केवल देहरी छू आना ठीक से जानना नहीं होता, शेष चाहे कुछ भी होता हो।

सच है कि पैकेज टूर के जमाने में चाहत भी सीमित होकर रह गई है, किंतु सुखद है कि हमें दक्षिण कोरिया को पैकेज टूर की सरसरी नज़र के स्थान पर भरपूर देखने और जानने का अवसर मिला ! यह तब संभव हुआ जब मैं राजधानी सिओल में विदेशी भाषाओं की प्रसिद्ध हान्कुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज़ के हिंदी विभाग में एक वर्ष पढ़ाने के लिए गई।

फरवरी की खुशनुमा–सी दोपहर थी जब इंचन हवाई अड्डे से हान्कुक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के सहायक के साथ, लंबा रास्ता तय कर हम दक्षिण कोरिया की राजधानी, सिओल शहर के लगभग केंद्र में स्थित विश्वविद्यालय परिसर पहुँचे। उन्मुक्त प्रवेश द्वार से भीतर आकर प्रोफेसर्स बिल्डिंग के पास आ उतरे। इस आठ मंज़िला इमारत में – कांफ्रेंस हॉल, डाइनिंग हॉल, बैंक के अतिरिक्त प्रोफेसर्स के अध्ययन कक्ष भी हैं तथा सातवीं और आठवीं मंजिल पर प्रोफेसर्स आवास हैं – छात्र ने जानकारी दी। अगले एक वर्ष यही हमारा ठिकाना रहा – तमाम देशों के प्रोफेसर पड़ोसी बने – वियतनाम, ताईवान, थाईलैंड, ब्राजील, अमेरिका, जापान, कैनेडा, चीन आदि–आदि।

दोपहर में हम आवास में पहुँचे थे, कुछ व्यवस्थित हुए – फिर पहले दिन की शाम के लिए निमंत्रण था –ठंडी हवाओं के साथ सड़क–पार भर की दूरी पर स्थित भारतीय रेस्तरां – गंगा में। विभागाध्यक्ष प्रोफेसर हावन कू ने पूर्व भारतीय प्रोफेसर डॉ शर्मा की विदाई और हमारा स्वागत यहीं आयोजित किया था। रेस्तरां लद्दाख के रिनचेन जेम्स चलाते हैं – कोरियन पत्नी है उनकी।

ठेठ भारतीय भोजन के स्वाद का सुख – समोसा, चाय, छोले, पुलाव, परौंठा, गुलाब जामुन ! विभागीय सहयोगियों से परिचय के क्षण – सिओल में पहला दिन रोचक तरीके से अंत की ओर पहुँचा।

दो कमरों का हमारा सुव्यवस्थित आवास इस मायने में खास था कि शयन कक्ष की बड़ी खिड़की घनी आबादी को पार कर, पर्वत श्रृंखलाओं के पीछे से उदित होते सूर्य के दर्शन कराती थी। बैठक की एक ओर बड़ी खिड़की पूरे बाज़ार का दृश्य सम्मुख रखती थी और बैठक के दूसरे सिरे पर बहुत ही संक्षिप्त किंतु समग्र रसोईघर बना था, खाने की मेज भी साथ ही जमी थी।

लिफ़्ट से नीचे उतर कर परिसर में स्थित कुछ पुरानी और कुछ नई इमारतों में हम कक्षा लेने जाते – बस पांच–सात मिनट की चहलकदमी करते हुए। पहली ही बात जो परिसर में मुझे बहुत भाई, वह यह थी कि कोई भारी भरकम लौह द्वार विश्वविद्यालय की चौकसी नहीं करता था – गॉर्ड ज़रूर थे किंतु हम कई ओरों–कोनों से विश्वविद्यालय में भीतर–बाहर आ–जा सकते थे।

सिओल में हमारी पहली घुमक्कड़ी एक पैकेज के कारण ही संभव हुई – किंतु वह केवल भाग–दौड़ वाली उड़ती–उड़ती यात्रा से कितनी अलग थी ! मेल पर अचानक सन्देश मिला कि हम एक खास यात्रा में आमंत्रित हैं जो विदेशियों को कोरिया से परिचित कराने के उद्देश्य से आयोजित की जा रही है। हम नए देश–परिवेश में अभी बहुत जानकार नहीं थे, ऊपर से प्रश्नाकुल भारतीय मन – इस निमंत्रण का क्या अर्थ है? क्यों? कहां? कैसे जाना है – प्रश्नों की झड़ी के बीच आयोजकों ने बताया कि विश्वविद्यालय की वेबसाईट और भारतीय दूतावास के सौजन्य से वे हम तक पहुँचे हैं, यह 'हेलो इचन' कार्यक्रम है जिसमें दो दिन हमें कोरिया के 'इचन' क्षेत्र से मिलवाया जाएगा। अंततः बहुत किंतु–परंतु के बाद हम इस यात्रा में शामिल हुए – जो हमारे कोरिया प्रवास की मधुरतम स्मृतियों में से एक है !

एक छोटे समूह के रूप में यह यात्रा जिस ऑफिस से शुरू हुई, वहां एक रोचक खेल के तहत सभी विदेशी यात्रियों को एक कोरियाई साथी से मिलवाया गया जिसने पूरी यात्रा में प्रतिपल पथ–प्रदर्शक की भूमिका बखूबी निभाई। कोरिया में अंग्रेजी सहज भाषा नहीं है – विशेष रूप से इस यात्रा में हम जिस द्वीप पर गए, वहां के जीवन में अंग्रेजी का कोई प्रवेश न था, हमने नदी किनारे बने जिस पुराने किले का इतिहास जाना उसे बताने वाली गाइड की भाषा कोरियन ही थी। हमें जिन दो पारंपरिक कोरियाई विशेषताओं से रू–ब–रू कराया गया, उनके प्रस्तुतकर्ता अंग्रेजी जानते ही नहीं थे। ऐसे में हमारे कोरियाई साथी कितने महत्वपूर्ण हो उठे थे, अंदाजा

लगाया जा सकता है। यात्रा की शुरुआत में ही कोरियाई भाषा और अपनी भाषा के प्रचलित शब्दों का आदान–प्रदान रोचक था – हमने अपने साथी को 'धन्यवाद' और 'नमस्कार' सिखाया जिनके कोरियाई रूपांतर थे – 'खाम्सा हन्निदा' और 'अन्यंग हासेयो'।

बस में ही ठेठ कोरियाई नाश्ते के बाद (हमसे पूछ लिया गया था – शाकाहारी हैं या मांसाहारी) इस यात्रा में हमें सबसे पहले प्रसिद्ध कोरियाई 'राईस केक' और सुंदर नमूनों से सज्जित रंग–बिरंगी घास की चटाई बनाना सिखाया गया। सब काम एकदम व्यावहारिक तौर पर हमारे हाथ में सामग्री देकर हमसे ही करवाए गए और जो हम सबने बनाया, वह हमें सस्नेह भेंट भी की गई। दोपहर बाद यात्रा का महत्वपूर्ण हिस्सा शुरू हुआ – यह था इंचन द्वीप के प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर में सबका संक्षिप्त प्रवास। यहीं सबने भिक्षु गुरु से संवाद किया। उन्हें कोरियाई भाषा में 'सिनिम' कहते हैं – वे कोरियाई भाषा में बौद्ध मंदिर के रहन–सहन और विशेषता के बारे में बताते रहे – जिसका अनुवाद किया जाता रहा। बौद्ध मंदिर की विशेष 'टी सेरेमनी' हुई – रात का अत्यंत सादा भोजन, कुछ संवाद और लकड़ी के फर्श पर लगे गद्दों पर जल्दी ही सोने का आग्रह ! बहुत सवेरे – मंदिर में परिक्रमा, व्यायाम और ध्यान के बाद सिनिम के साथ निकटवर्ती पगडंडियों से होकर उच्च पर्वतीय अंचल की सैर – इस समय सिनिम ने सभी की जिज्ञासाओं का समाधान दिया।

कोरिया प्रवास में मुझे अक्सर यह बोध होता रहा कि इस देश के लिए विदेशी कुछ खास महत्व जरूर रखते हैं। उनके लिए यहाँ खास शटल बसें चलाई गई हैं जो लोकप्रिय पर्यटन स्थलों पर बहुत ही कम कोरियन वॉन (कोरियाई मुद्रा) के टिकट पर विदेशियों को घुमाती हैं – परम्परागत कोरियाई गाँव की सैर तो निःशुल्क ही कराती हैं, केवल अपना पासपोर्ट दिखाना पड़ता है – नियत समय पर बस में सवार हो जाइए – गंतव्य पर उतरिए – नियत समय पर बस वापस घर की ओर ! पूरा देश जैसे अपने प्राकृतिक और सांस्कृतिक वैभव से प्रवासी विदेशियों को अवगत कराने को उत्सुक बना रहता है। कोई त्यौहार हो, कोई मेला, कोई सार्वजनिक अवकाश – सिओल के विदेशी खूब सूचनाएँ पाते हैं कि वे आएँ और उसका हिस्सा बनें ! सिओल में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भरमार रहती है – और राजधानी अपनी नृत्य–संगीत कला से विदेशियों के जीवन को भर देने को जैसे आतुर रहती है। आज के समय में जिसे 'हैंड्स ऑन' अनुभव कहते हैं – वही दिया जाता है – उनका परिधान पहन कर देखो – उनका नृत्य सीखो – उनके वाद्य बजाओ ! चांदनी रात में राजमहल देखने का अवसर हो या नववर्ष की पूर्वसंध्या – विदेशियों को निमंत्रण दिया जाता है कि वे पारम्परिक कोरियन वेशभूषा पहन कर आएँ और निःशुल्क प्रवेश पाएँ !

सिओल से बाहर 'सुवान' नाम का स्थान सैमसंग कम्पनी में विदेशी नागरिकों का मुख्य आवास है। इनमें भारतीयों की संख्या अधिक है। कोरिया में भारतीय छात्र और अध्यापक भी पर्याप्त संख्या में हैं। भारतीय छात्र जब किसी छात्रवृत्ति पर कोरिया आते हैं तो सबसे पहले कोरियाई भाषा का अध्ययन करना उनके लिए अनिवार्य होता है – पढ़ाई और जीवन दोनों को सरल बनाने के लिए यह जरूरी भी है। कोरिया में अध्ययन का माध्यम कोरियन है। कोरियाई छात्र भी जब किसी विदेशी भाषा का अध्ययन करते हैं तो उस देश में जाकर भाषिक अभ्यास को दुरुस्त करना उनके पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा होता है।

कोरिया में एक और बात ने मेरा ध्यान खींचा – जब कोई कोरियाई कंपनी अपने कर्मचारी को भारत भेजना चाहती है तो वह उसे सही तरीके से तैयार करती है। ऐसी दो विशेष हिंदी कक्षाएं लेने का मौका मुझे मिला। ह्यूंदई कंपनी के लिए काम करने भारत जाने वाले दो छात्र और कोरियन बैंक की भारत में खुलने वाली शाखा में काम करने जाने को तैयार पाँच महिलाएँ, जिन्होंने कॉलेज स्तर पर कभी हिंदी का अध्ययन किया था, विशेष हिंदी कक्षाओं में आए। भारतीय भाषा, परिवेश, जीवन, रहन–सहन, खान–पान – सभी कुछ तो जान लेना चाहते हैं कोरियाई भारत जाने से पहले ! कंपनी भी आरंभिक तैयारी की पतवार हाथ में देकर उनकी जीवन–नौका को भारतीय जनजीवन के सागर में उतार देती है – उनकी हिम्मत तथा 'गट्स' की पहचान करती है। यह सुविचारित योजना का ही हिस्सा होता है कि वे भारत पहुँचें और अपनी राह स्वयं तलाशें – घर, भोजन, भ्रमण सभी।

भारत जितनी तो नहीं, पर कोरिया की आबादी भी सघन है। एक सुव्यवस्था और उसे बनाए रखने का भाव यहाँ भरपूर है। कोरिया एक छोटा देश है –चार से पाँच घंटे में देश के ठण्डे पहाड़ी उत्तरी भाग से दक्षिणी समुद्र तट तक पहुँचा जा सकता है। पूरे देश को समान रूप से सुंदर बनाए रखने की कोशिश पग–पग पर ज़ाहिर होती है।

भव्य इमारतों के बावजूद प्रकृति का संरक्षण हर कोरियाई के लिए मूल्यवान है। वाहनों की संख्या देश भर में बहुत है, किंतु नदी

किनारे सुंदर साइकिल ट्रैक और पैदल पथ बनाए गए हैं। तमाम कोरियाई स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग हैं। मोटापा बहुत कम है – अधिकांश लोग चुस्त–दुरुस्त दिखाई देते हैं। रेल में साइकिल ले जाई जा सकती है – यहाँ तक कि भूमिगत स्टेशनों में सीढ़ियों के साथ–साथ साइकिल चढाने–उतारने की खास पट्टी भी बनी है। अपनी साइकिल न भी ले जाना चाहें तो स्थल विशेष पर किराए की साइकिल उपलब्ध होती हैं – समयानुसार चलाएँ और वापस लौटा दें ! छोटे–छोटे पहाड़ों पर चढ़ने वाले लोग जहाँ तक हो सके साइकिलों पर ही जाते हैं। पानी के सुंदर बहाव – नहर–फव्वारे–झरने मनमोहक रूप में जगह–जगह विराजमान हैं। रात को झिलमिलाती रोशनी का सौंदर्य भी कुछ निराला रहता है। सबके ऊपर सुंदर है – पतझड़ के बाद रंग बदलते पत्ते ! सुनहरी–रक्तिम–पीत आभा देखने के लिए तमाम लोग पहुँचते हैं –'सान' – यानि पर्वतों की ओर – जिनमें प्रसिद्ध हैं नाम्सान, सोराक्सान और 'सा' यानि बौद्ध मंदिरों के प्रांगण में – जो एकांत पर्वतीय अंचलों की गोद में बसे हैं, जिनमें विख्यात हैं– बुल्गुक्सा, जोग्येसा।

मस्त और प्रसन्न दिखाई देने वाले, खेलकूद में लगे रहने वाले कोरियाई छात्रों से बातचीत के क्रम में यह अनुभव हुआ कि आज कोरियाई युवा कुछ हतोत्साहित भी हैं कारण रोज़गार के अवसर कम हो रहे हैं। पढ़ाई का खर्च बढ रहा है। उनका जीवन परंपरा से कुछ टूटता–सा भी दिखाई देता है। इसका बड़ा प्रमाण 'फास्ट फूड' के लिए युवा वर्ग की बढ़ती रुचि में दिखाई पड़ता है; जबकि विश्वविद्यालयों के सभी भोजनालय पारंपरिक कोरियाई भोजन ही परोसते हैं, जिसे सभी छात्र शौक से खाते नजर आते हैं। किंतु तब भी अपने ही विश्वविद्यालय के पास यह भी देखा कि शुक्रवार की शाम को – सप्ताहांत की खुशी में – लगभग भारतीय सा जो स्ट्रीट फूड कोरियाई युवा एन्जॉय करते हैं – उसके कूड़े का ढेर शनिवार–इतवार को यूं ही पड़ा रहता – सफाई कर्मी अवकाश पर रहते हैं ! यह पिछली पीढ़ी की उस दृष्टि से बिलकुल भिन्न था जो इतनी सफाई पसंद थी कि राह चलते चिमटी से कूड़ा उठाने तक का काम करती रहती थी !

भोजन में तीनों समय चावल कोरियाई जीवन का अभिन्न अंग है। अभी सभी कोरियाई परिवार एकल नहीं हुए हैं – विवाह से पहले अधिकतर बच्चे माता–पिता के साथ रहते हैं। आम कोरियाई शांत और मौन बने रहते हैं, बहुत गपशप करने का रिवाज कम है। भाषा की बाधा भी यहाँ संवादनयता को कम करती है। इसलिए जो कोरिया आए – थोड़ी तैयारी के साथ आए !

भारत

हिंदी के विकास पुरुष : फ़ादर बुल्के (संस्मरणात्मक निबंध)

– डॉ० केदार सिंह

बात उन दिनों की है जब मैं 1981 ई० में रांची में रहकर इण्टरमीडिएट की पढाई कर रहा था। उस समय तक कामिल बुल्के का नाम अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो चुका था। मेरी बलवती इच्छा थी कि एक बार बुल्के सर से मिलकर, मैं उनका अभिनादन करूँ। डॉ. बुल्के उस समय स्थायी रूप से मनेरसा हाउस, पुरुलिया रोड, रांची, झारखण्ड में निवास कर रहे थे। उसी समय मेरे एक मित्र आनंद सिंह, जो सेंट जेवियर कॉलेज, रांची से इण्टर मीडिएट कर रहे थे, उनका भी निवास पुरुलिया रोड पर संध्या सिनेमा के पास था, मैंने आनंद जी से आग्रह किया कि एक दिन, बुल्के सर से मिलने के लिए मनेरसा हाउस चला जाय। जनवरी का महीना था। क्रिसमस की छुट्टी के बाद कॉलेज खुल गए थे। एक संध्या हम दोनों जब मनेरसा हाउस पहुँचे, उस समय हमसे पूर्व ही दो व्यक्ति वहाँ पहुँचे हुए थे। उनकी बातों से लगा कि वे दोनों रिश्ते में चाचा–भतीजे थे। भतीजे ने बुल्के सर को संबोधित करते हुए कहा– 'सर! ये मेरे अंकल हैं।' इतना सुनते ही बुल्के सर ने झिड़कते हुए भतीजे से कहा– 'तुम्हारी भाषा इतनी समृद्ध है और तुम दीन–हीन भाषा अंग्रेजी में 'अंकल' कह रहे हो। अंग्रेजी के एक 'अंकल' शब्द से चाचा, फूफा, मौसा, मामा तथा पिता के दोस्त आदि अनेक रिश्तों का बोध होता है। जबकि हिंदी में हर रिश्ते के लिए अलग–अलग शब्द होते हैं। इस दृष्टि से हिंदी काफी समृद्ध है। अगर तुम अंकल की जगह 'चाचा' कहते तो ज्यादा बेहतर होता।' इतना सुनते ही वह व्यक्ति झेंप गया और उसने उनसे माफी माँग ली।

हिंदी से इनकी इस प्रकार की आत्मीयता ने हमें मंत्रमुग्ध कर दिया। उनकी लंबी कद–काठी, गोरा वर्ण, सफ़ेद–भूरी दाढ़ी, नीली–नीली गोल–गोल आँखों से गज़ब का स्नेह झलक रहा था। करीब आधे घंटे तक हमारी हिंदी भाषा और मानवता की सेवा से संबंधित बातें हुईं। फिर प्रसन्नता लिए हम लोग वापस लौट आए।

1986 ई० में जब मैंने स्नातकोत्तर (हिंदी) के लिए रांची विश्वविद्यालय, रांची में नामांकन करवाया, उस समय हमारे गुरु डॉ. वासुदेव कुमार, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. श्रवण कुमार गोस्वामी, डॉ. महेन्द्र किशोर, डॉ. नागेश्वर सिंह, डॉ. जंग बहादुर पांडेय, डॉ. मंजू ज्योत्स्ना आदि सभी किसी न किसी रूप में बुल्के सर से प्रभावित दिखे, जैसा कि प्रसंगवश समय–समय पर उनसे संबंधित चर्चाएँ विभाग में होती रहीं।

हिंदी के अनन्य भक्त, संत, साहित्यकार डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के का जन्म 1 सितंबर 1909 ई० को बेलजियम के पश्चिम फ्लैण्डर्स प्रांत के रम्सकपैले नामक गाँव में हुआ था। डॉ. बुल्के के पिता का नाम एदोल्फ तथा माता का नाम मरिया था। डॉ. बुल्के के माता–पिता दोनों ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं धर्मनिष्ठ थे। माता मरिया में सेवा एवं सहानुभूति के गुण कूट–कूटकर भरे हुए थे। एक दिन डॉ. दिनेश्वर प्रसाद सर ने बताया कि – बुल्के साहब को पिता से बलिष्ठ शरीर और कर्मशक्ति तथा माता से भावुक हृदय और सेवा भाव मिला था और धर्म के प्रति निष्ठा माता और पिता दोनों से प्राप्त हुई थी। यह सत्य है कि उन्हें माता और पिता दोनों के सर्वोत्तम गुण मिले थे, किंतु उनके आरंभिक जीवन में सर्वाधिक प्रभाव माता जी का पड़ा था, क्योंकि पिता को अनिवार्य सैनिक भर्ती नियम के तहत प्रथम विश्व युद्ध में शामिल होना पड़ा था। युद्ध के दौरान उन्हें बंदी भी बना लिया गया था। लड़ाई समाप्त होने के बाद घर लौटे। तब तक डॉ. बुल्के एवं उनके अन्य भाइयों का माता मरिया ने ही अकेले लालन–पालन किया था। इस कारण डॉ. बुल्के माता से अधिक प्रभावित हुए।

डॉ. बुल्के बेल्जियम के जिस गांव के थे, उससे सटे लिरसेबेगे गाँव में तेरहवीं शताब्दी में निर्मित कुँवारी मरियम का एक विशाल गिरजाघर है, जो अपनी ऊँची मीनार, कलात्मकता एवं चमत्कारपूर्ण कहानियों के लिए जगत–प्रसिद्ध है। बचपन से ही फादर बुल्के उस गिरजाघर में जाया करते थे। वे गाँव के जिस कॉन्वेंट स्कूल में अध्ययन कर रहे थे, वहाँ की प्रिंसिपल मदर सुपीरियर गेरट्रूड के व्यक्तित्व से वे काफी प्रभावित थे। दूसरी ओर मदर गेरट्रूड को भी बालक बुल्के के व्यक्तित्व में न जाने क्या दिखाई पड़ा, जो उन्होंने उनसे कहा– "गॉड से संन्यास बनने का वरदान माँगना।" कॉन्वेंट की शिक्षा के बाद डॉ. बुल्के का नामांकन गाँव के ही नगरपालिका स्कूल में कराया गया। लिस्सेवेगे में हाई स्कूल नहीं था। अतः 1921 ई० में नजदीक के गाँव ह्वेने के संत फ्रांसिस जेवियर हाई स्कूल

में दाखिला करवाया गया। 1928 ई0 में हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद इंजीनियरिंग की प्रवेश परीक्षा में भी उन्हें प्रथम स्थान मिला। इसके पश्चात् फादर कामिल बुल्के ने लूवेन इंजीनियरिंग कॉलेज में अपना नामांकन करवाया। लूवेन इंजीनियरिंग कॉलेज की दूरी उनके घर से लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर थी। यहाँ उन्होंने छात्र राजनीति में भी सक्रिय भूमिका निभायी। एक बार छुट्टियों में प्रथम वर्ष इंजीनियरिंग की परीक्षा की तैयारी के लिए गाँव आए, उन्हीं दिनों उनके जीवन में एक घटना घटी जिससे उनके जीवन की गति अलग दिशा की ओर मुड़ गई।

एक दिन संध्या के समय जब घर के सभी सदस्य घर से बाहर गए हुए थे, तब उस एकांत समय में एकाग्रता पूर्वक कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। अचानक उनकी पीठ की ओर बिजली जैसी चमक आई और उसकी रोशनी में उन्हें यह ज्ञान मिला कि उनको इंजीनियर नहीं संन्यासी बनना है। 'इस घटना से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह ईश्वर का आदेश है। इस क्षेत्र में मुझे जाना ही पड़ेगा।' इंजीनियरिंग द्वितीय वर्ष की परीक्षा के समय तक उनके इस निर्णय से एक–दो लोगों को छोड़कर कोई अवगत नहीं था। परीक्षा के बाद एक दिन घर आकर उन्होंने अपने इस निर्णय से अपने माता–पिता को भी अवगत करवा दिया। तब माँ ने रोते हुए फादर बुल्के से कहा– "मैं प्रभु की इच्छा स्वीकार करती हूँ।" पिता जी ने भी सदा की तरह सहज भाव से धीरे से कहा– "तुम्हारा घर पर होना हमारे लिए कितना अच्छा होता।" माता–पिता दोनों बेटे के इस निर्णय पर अवाक् थे क्योंकि उनके मन में एक स्वप्न पल रहा था कि बड़ा होकर कामिल घर का सहारा बनेगा। लेकिन उनके स्वप्न के विपरीत कामिल ने तो प्रभु का संत बनने की इच्छा को निष्ठापूर्वक स्वीकार कर लिया।

23.07.1930 ई0 में फादर बुल्के का गैन्त के पास ड्रांगन जेसुइट नव शिष्यालय में प्रारंभिक धर्म शिक्षा के लिए दाखिला करवाया गया। वहाँ से दो वर्षों के बाद 1932 ई में हॉलैण्ड के वल्केनबर्ग जेसुइट केन्द्र में उन्हें धर्म शिक्षा के लिए रखा गया जहाँ उसके सामने संन्यास संबंधी निर्णय पर पुनर्विचार करने का भी विकल्प रखा गया था, पर डॉ. बुल्के अपने इस निर्णय पर अटल थे। यहाँ उन्होंने लैटिन, ग्रीक, जर्मन भाषाओं के साथ ईसाई धर्म, दर्शन के बारे में भी ज्ञान प्राप्त किया।

1934 ई0 में डॉ. बुल्के जब वाल्केनबर्ग से लूवेन लौटे तो धर्माधिकारियों द्वारा उनके सामने दो विकल्प रखे गए– अपने ही देश में रहकर धर्म का प्रचार करें या दूसरे देश में जाकर धार्मिक सेवा–कार्य करें। उन्होंने अपने एक स्थानीय व्यक्ति, फादर लीवेन्स के बारे में सुना था कि उन्होंने भारतवर्ष में आदिवासियों के बीच जाकर सेवा की है। इनका भी मन भारत जाकर सेवा करने के लिए मचल उठा। 20 अक्टूबर 1935 को डॉ. बुल्के बेल्जियम से भारत आए। सबसे पहले मुंबई की धरती ने उनकी अगवानी की। इसके पश्चात् मुंबई से आदिवासी बहुल क्षेत्र, राँची में उनका आगमन हुआ। राँची पहुँचने पर उनको प्रसन्नता इस बात की थी कि माँ उनकी विदाई के समय खुश थी। लेकिन जब यहाँ आए तो पत्र के द्वारा ज्ञात हुआ कि उनकी विदाई के बाद माँ रोते–रोते बेहोश हो गयी थी। 10 नवंबर 1935 ई0 को माँ के द्वारा लिखा गया एक पत्र डॉ. बुल्के को प्राप्त हुआ। इस पत्र में वात्सल्य एवं धर्म के प्रति उनके कर्त्तव्यबोध का समन्वय दिखता है। पत्र का अनुवाद इस प्रकार है–

'प्रिय कामिल,

तीन सप्ताह पहले तुम चले गए। अब तक तुम अपने गंतव्य तक पहुँच गए होगे। कामिल, विश्वास रखना कि मैं रोई, बहुत रोई, तुम्हारे जाने के बाद। मैं तुम्हारा विरोध नहीं करना चाहती थी, क्योंकि मुझे तुम पर बहुत गुमान है, किंतु मैं तुम्हारी माँ हूँ, मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ। इसी कारण तुम्हारी विदाई के समय मुझे बहुत तकलीफ हुई। बेटा विश्वास रखना मैं रोती हूँ, इसलिए नहीं कि मैं दुखी हूँ। मैं भगवान को धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने मुझे तुम जैसी संतान दी है। मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम वहाँ स्वस्थ रहकर भलाई कर सको'

पत्र पढ़ने के बाद फादर बुल्के को बहुत अफसोस हुआ, किंतु वे जिस रास्ते पर निकल पड़े थे, वहाँ से लौटना नामुमकिन था।

1936 ई0 में फादर बुल्के को राँची से दार्जलिंग, संत जोसेफ कॉलेज में भौतिकी एवं रसायन शास्त्र पढ़ाने के लिए भेजा गया, किंतु वहाँ मौसम की प्रतिकूलता की वजह से उन्हें पुनः राँची वापस आना पड़ा। यहाँ आकर वे गुमला के संत इग्नेशियस स्कूल में गणित का अध्यापन करने लगे। इतने दिनों में उन्होंने महसूस किया कि यहाँ की जनता के हृदय में उतरने के लिए हिंदी जानना

अत्यावश्यक है। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य एवं काफी दुःख भी हुआ कि यहाँ विदेशी भाषा अंग्रेज़ी को हिंदी की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जा रहा था, क्षेत्रीय भाषाएँ भी उपेक्षित थी। उन्होंने यह तय किया कि भारत की मातृभाषा हिंदी सीखेंगें और अंग्रेज़ी की जगह उसे स्थापित करने में सहयोग करेंगे। अतः उन्होंने गुमला से ही हिंदी सीखना प्रारंभ किया।

संयोग से अभी मैं जहाँ हूँ, यहीं सीतागढ़ा, हज़ारीबाग के पंडित बदरीदत्त शास्त्री से उन्होंने 1938 ई० में पूरे एक वर्ष तक संस्कृत एवं हिंदी सीखी। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण डॉ. बुल्के ने हिंदी एवं संस्कृत पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया था कि अब उन्हें हिंदी एवं संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन एवं अध्यापन करने में कोई समस्या नहीं रही। उनकी इस भाषा–ज्ञान की क्षमता को देखकर पंडित बदरीदत्त शास्त्री ने उन्हें 'चलता–फिरता शब्दकोश' की उपाधि दे दी। 1939 ई० में डॉ. बुल्के विशेष धार्मिक–शिक्षा ग्रहण करने के लिए कर्सियांग चले आए। चार वर्षों तक धर्म शिक्षा ग्रहण करने के दौरान उन्होंने फादर बायार्त के निर्देशन में 'न्याय–वैशैषिक के ईश्वरवाद' पर एक लघु शोध–प्रबंध लिखा। वहीं फादर बोल्फार्ट की सहायता से उन्होंने 'द सेवियर' नामक पुस्तक की रचना की। यह ईसा की जीवनी से संबंधित उनकी पहली मौलिक कृति थी। बाद में उन्होंने 1940 ई० में 'मुक्तिदाता' नाम से स्वयं इसका हिंदी में अनुवाद किया। डॉ. बुल्के ने बहुत कम समय में ही अपनी मेहनत के बल पर हिंदी एवं संस्कृत भाषा पर और भी अधिक पकड़ मज़बूत कर ली। 1940 ई० में फादर बुल्के ने हिंदी साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा पास की।

समय बीतता गया फादर बुल्के हिंदी के प्रति और अधिक समर्पित होते गए और हिंदी से एम०ए० करने के लिए मन बना लिया। किंतु समस्या यह थी कि वे किस विश्वविद्यालय से हिंदी में एम०ए० करें? उस समय भारतवर्ष में अनेक विश्वविद्यालयों में एम० ए० की पढ़ाई होती थी। इसके लिए उन्होंने विभिन्न विश्वविद्यालयों में भ्रमण भी किया। अंत में डॉ. बुल्के ने इसके लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय को चुना। वहाँ के तत्कालीन विभागाध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा को एक पत्र के माध्यम से इसके लिए निवेदन भी किया, किंतु बहुत दिनों तक कोई उत्तर नहीं पाकर उन्होंने स्वतंत्र छात्र के रूप में कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में स्नातक की परीक्षा पास की। इसके बाद हिंदी से एम०ए० करने के लिए डॉ. बुल्के ने स्वयं इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाकर डॉ. धीरेन्द्र वर्मा से मुलाकात की। डॉ. वर्मा ने उनसे कहा कि यहाँ से किसी विदेशी को एम०ए० करने का प्रावधान नहीं है किंतु उनके हिंदी–ज्ञान की जानकारी को परखने के लिए उन्होंने उनसे 'विनय पत्रिका' के दो पदों की व्याख्या करने को कहा। डॉ. बुल्के ने उन पदों की इतनी भावप्रवण व्याख्या की कि उपस्थित तमाम लोग आश्चर्यचकित रह गए। तब विभागाध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने विशेष परिस्थिति में उन्हें एम०ए० करने की अनुमति दे दी।

1947 ई० में एम०ए० पास करने के बाद डॉ. बुल्के ने डॉ. माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में 'राम कथा उत्पत्ति और विकास' शीर्षक पर पीएच०डी० की उपाधि प्राप्त की। इस विषय पर पीएच०डी० की उपाधि प्राप्त करने के बाद भी उन्होंने लगातार 18 वर्षों तक काम किया। उन्होंने इसके लिए संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, बांग्ला, तमिल के साथ तिब्बती, बर्मी, इंडोनेशियाई, थाई आदि भाषाओं में राम की कथा को ढूंढने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप इसमें रामकथा से संबद्ध अनेक नवीन तथ्य जुड़ते गये और राम की कथा को एक व्यापक भावभूमि प्राप्त हुई। 1950 ई० में इस विशेष अनुसंधानपरक ग्रंथ के प्रकाशन से डॉ. बुल्के की ख्याति अन्तरराष्ट्रीय स्तर की हो गई।

एक और महत्वपूर्ण बात की ओर पाठकों का ध्यान खींचूँगा कि जिस समय डॉ. बुल्के शोध कर रहे थे, उस समय तक भारतीय विश्वविद्यालयों में शोध–ग्रंथ अंग्रेज़ी में लिखे जाते थे। उन्होंने सर्वप्रथम इस परंपरा से अलग हटकर अपने शोध–प्रबंध को हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखा। जबकि अंग्रेज़ी में प्रबंध लिखना उनके लिए ज्यादा आसान था, बावजूद इसके, उन्होंने हिंदी में लिखा। यह इनका हिंदी के प्रति लगाव तथा हिंदी की समृद्धि में अभूतपूर्व योगदान है। इस पुनीत कार्य के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति, डॉ. अमरनाथ झा भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने डॉ. बुल्के द्वारा हिंदी में शोध–प्रबंध लिखने के आग्रह पर विश्वविद्यालय की शोध संबंधी नियमावली में ही परिवर्तन कर दिया।

1950 ई० में ही संत जेवियर कॉलेज, राँची में उन्हें हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। 1960 ई. तक विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन रहते हुए उन्होंने इण्टर से लेकर बी०ए० ऑनर्स तक के विद्यार्थियों को पढ़ाया। इस तरह उन्होंने हिंदी के लिए एक सफल शिक्षक के रूप में अध्यापन किया। कुछ दिनों बाद विद्यार्थियों की विरक्ति देखते हुए उन्होंने तय किया कि अब अध्यापन कार्य

से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक लेखन करना चाहिए। उनकी इस इच्छा का सम्मान करते हुए उन्हें अध्यापन कार्य से मुक्त कर दिया गया। तबसे लेकर 1982 ई0 तक सतत् लेखन एवं दीन, दुखियों की सेवा में लगे रहे।

उन्होंने प्रमुखत: शोध–अनुसंधान, कोश–निर्माण, अनुवाद आदि के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किये। कुल मिलाकर 29 पुस्तकें, लगभग 60 शोध–निबंध, अंग्रेजी–हिंदी शब्दकोश तथा अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के अनुवाद भी किये। किंतु हिंदी में उनकी विशेषज्ञता का मुख्य विषय 'तुलसी साहित्य' ही रहा। उनकी तुलसी विषयक दृष्टि की जानकारी के लिए 'राम कथा और तुलसी' तथा 'मानस कौमुदी' विशेष रुप से द्रष्टव्य हैं। हिंदी सीखने की सुविधा के लिए उन्होंने 'ए टेक्निकल इंग्लिश–हिंदी ग्लॉसरी' नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की। उनके अंग्रेजी–हिंदी कोश के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अनुवाद के क्षेत्र में उन्होंने मॉरिस मैटरलिंक की प्रसिद्ध नाट्य कृति 'द ब्लू बर्ड' का 'नीलपंछी' नामक अनुवाद किया, जो 1958 ई0 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित किया गया। बाइबल से संबद्ध अनेक पक्षों का हिंदी अनुवाद भी उल्लेखनीय है। हिंदी के विकास के क्षेत्र में 'अंग्रेजी–हिंदी कोश' का भी काफी योगदान है। इस कोश को पढकर अनेक लोगों ने हिंदी सीखी। आज भी अनेक सरकारी, गैर सरकारी कार्यालयों में इसकी मदद से हिंदी अनुवाद आसानी से किया जाता है। इस कोश की विशेषता को रेखांकित करते हुए हिंदी के महान लेखक इलाचन्द्र जोशी ने कहा है कि यह कोश न केवल हिंदी और अंग्रेजी के नये पाठकों के लिए उपयोगी है वरन् हम जैसे लेखकों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

हिंदी तथा तुलसी के प्रति इतनी गहरी निष्ठा देखकर ऐसा लगता है कि 'फादर बुल्के' कहीं तुलसी के अवतार तो नहीं थे ? भारत सरकार द्वारा ऐसे महान संत, तुलसी तथा हिंदी प्रेमी, भारत प्रेमी डॉ. बुल्के को 1974 ई0 में उनके इस महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए 'पदमभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया। उनके गुरु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने 'राम कथा : उत्पत्ति और विकास' के विषय में लिखा है कि यह ग्रंथ वास्तव में राम कथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश है।

जून 1982 ई0 में उनके दाहिने पैर की उंगली में गैंग्रीन नामक बीमारी हो गई। ऐसे तो 1950 ई0 से ही उनके बलिष्ठ, गौर वर्ण शरीर में अनेक बीमारियाँ घर कर गई थीं। सबसे पहले कान खराब हुए, फिर पेप्टिक अल्सर हुआ, फिर ब्लड प्रेशर, फिर गुर्दे की बीमारी, फिर हार्ट की बीमारी के कारण ये अन्दर से टूट से गए थे, फिर भी इन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी। हिंदी और हिंदुस्तान के लिए अंतिम क्षण तक इन्होंने अपने शरीर का एक–एक बूंद निचोड़कर दे दिया। मृत्यु के पूर्व वे कार से सिर्फ चार सौ घंटे की मोहलत बाइबल के अनुवाद के लिए मांगते रहे, मौत से संघर्ष करते रहे, किंतु इस गैंग्रीन ने तो 1982 ई0 में उनकी सांसें ही छीन ली और बाइबल के 'ओल्ड टेस्टामेंट' के हिंदी अनुवाद का स्वप्न अधूरा रह गया।

डॉ. बुल्के विदेशी होकर भी हम भारतीयों से अधिक भारतीय, हमसे अधिक हिंदी सेवी, हमसे अधिक तुलसी, राम के उपासक तथा दीन–दुखियों के सेवक थे। ऐसे महान संत का हिन्दुस्तान ही नहीं संपूर्ण विश्व–हिंदी समाज सदा ऋणी रहेगा।

भारत

भारत -

हिंदी के विदेशी छात्र-मित्रों के साथ मेरे अद्वितीय अनुभव

– सुश्री लतिका चावड़ा

महाराष्ट्र के गाँधी सिटी वर्धा में 2007 में स्थापित महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के प्रमुख दायित्वों में से एक हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना भी है। विश्वविद्यालय को आठवें और नवें विश्व हिंदी सम्मेलनों में इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गए थे। नवें विश्व हिंदी सम्मेलन में विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण के लिए मॉडल पाठ्यक्रम–निर्माण का विशेष दायित्व भी विश्वविद्यालय को सौंपा गया था। अतः सौंपे गए और अपेक्षित दायित्वों को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालय के भाषा विद्यापीठ में 'विदेशी शिक्षण प्रकोष्ठ' की स्थापना की गई है, जिसका लक्ष्य सभी प्रकार से हिंदी को एक समर्थ अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में विकसित करने के साथ–साथ दुनिया के दूसरे भाषा–भाषी देशों के साथ सांस्कृतिक संबंध के विस्तार और संवाद के सेतु का निर्माण करना भी है। यह विदेशी विद्यार्थियों के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का संचालन, प्रबंधन, नियमन और शिक्षण करता है जिसके अंतर्गत विदेशी विद्यार्थियों के लिए विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के कई पाठ्यक्रम संचालित हैं। इसी के तहत मुझे पिछले 2 वर्षों तक विदेशियों की 'छात्र–मित्र' और इस वर्ष से उनकी प्रशिक्षार्थी हिंदी अध्यापिका के रूप में अपनी हिंदी सेवा प्रदान करने का अवसर प्राप्त हुआ।

विदेशियों के लिए हिंदी के विभिन्न पाठ्यक्रम

विश्वविद्यालय में संचालित पाठ्यक्रमों में गहन हिंदी प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम, प्रमाणपत्र तथा डिप्लोमा पाठ्यक्रम आदि चलाए जाते हैं जिनके तहत यूरोप, अमेरिका और एशिया के कई देशों – जर्मनी, पोलैंड, बेल्जियम, क्रोएशिया, हंगरी, श्रीलंका, थाइलैंड, मॉरीशस, चीन, मलेशिया, जापान, सिंगापुर, नेपाल, कोरिया, यू.एस.ए. आदि के विद्यार्थी कई वर्षों से यहाँ अध्ययन करने आते रहे हैं। कई छात्र विभिन्न अनुशासनों में हिंदी में एम.ए./एम.फिल./पीएच.डी. पाठ्यक्रमों में अध्ययन और शोध परियोजनाओं के तहत कार्य कर रहे हैं। इसके समानांतर यहाँ एक और योजना चलाई गई – 'छात्र मित्र' योजना। मुझे भी इसमें हिस्सा लेने का अवसर मिला जिससे मुझे कई अद्वितीय अनुभव प्राप्त हुए। इन्हें यहाँ साझा कर रही हूँ।

विदेशी छात्रों का हिंदी शिक्षण

सबसे पहले दिन की कक्षा में सभी छात्रों से परिचय होता है और अब तक हिंदी में उन्होंने क्या–क्या सीखा है उसका जायजा लिया जाता है। उन्हीं से प्रश्नोत्तर कर उन्हें ज्ञात कराया जाता है कि लेखन, उच्चारण, वाचन एवं श्रवण आदि कौशल में वे कितने निपुण हैं, अतः इसका प्रारंभिक तौर पर आभास उन्हें हो जाता है।

प्रौद्योगिक उपकरणों का आश्रय लेते हुए, कभी–कभी अंग्रेजी भाषा के माध्यम से, विदेशी–भाषा के रूप में हिंदी–शिक्षण की विधियों और प्रणालियों का ज्ञान प्रदान किया जाता है। चूँकि कुछ देशों के छात्र अपने देश से पहले ही 2 या 3 वर्ष तक हिंदी का अध्ययन करके आते हैं, अतः शिक्षण–विधि भी तदनुकूल चयनित होती है तथा विदेशी छात्रों में अधिक रुचि कैसे उत्पन्न की जाए, इसके लिए विदेशी भाषा–शिक्षण की विधियाँ, सामूहिक विचार–मंथन विधि, प्रश्नोत्तर, प्रत्यक्ष अभ्यास विधि, खेल विधि, अनुवाद विधि आदि का प्रयोग किया जाता है।

मेरे हिंदी के विदेशी छात्रों से संबंधित मेरा अवलोकन

इटली, बेल्जियम, जर्मनी, हंगरी, थाईलैंड से पधारे छात्र मेरे छात्र–मित्र रहे हैं जिनके साथ हमारे मैत्री के संबंध रहे हैं। लेकिन मेरे कुछ चीनी तथा थाईलैंडवासी छात्रों से संबंधित कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

चीनी छात्रों में मौखिक हिंदी के उपयोग को लेकर अपने चीनी छात्रों के प्रति थोड़ा नकारात्मक नजरिया विकसित हो गया था। मुझे लगा कि उन्हें हिंदी में बोलना नहीं आता इसलिए वे हिंदी प्रत्येक संभाषण को सुनते तो थे, पर जवाब नहीं देते थे। मैंने कक्षा में उनकी

एक कसौटी ली और जानना चाहा कि हिंदी संभाषण तो नहीं, पर क्या हिंदी लेखन आदि में भी इनकी रुचि नहीं है? लेकिन तब पाया कि इनका हिंदी लेखन तो काफी शानदार था। 'माँ' विषय पर उनके द्वारा लिखे गए कुछ वाक्य,चाहे वे छोटी–छोटी त्रुटियाँ लिए हो पर इन्हें पढकर हमें भी गुदगुदी होने लगती है।

"मेरी माता का नाम वांग हुए जूं है। वे अब चीन में अंग्रेजी अध्यापिका की नौकरी करती हैं और वे अंग्रेजी बहुत अच्छी तरह बोल सकती हैं और पढा सकती हैं। इन्हें बच्चे पसंद हैं और उनकी मदद करने पसंद है। पचबन से यह मेरी माँ की आशा है कि एक अध्यापिका बन जाएँ, इसलिए उन्हें अपनी नौकरी प्यार करती हैं। वे हमेशा ध्यान से कक्षा में ज्ञान देती हैं और मेहनत से काम करती हैं। उन्होंने कहा कि सेवानिवृत्त के बाद भी पढाना चाहती हैं, शायद अमेरिका जाकर अंग्रेज़ी से चीनी पढाएंगी। कितनी अच्छी बात है ! मैं भी मेरी माता जी के तरह अपनी नौकरी के लिए पूर्ण जान खर्च करना चाहती हूँ। मैं इसीलिए उनको बहुत प्यार करती हूँ कि वे मेरी प्रेरणा हैं।"

— वांग शुयु

"मेरी माँ का नाम वांग लीजुआए है। उन का उम्र 50 वर्ष है। वे बीजिंग रहने वाली हैं। मेरे आँखों में माँ दुनिया पर सब से सुंदर महिला है। उन के कमल की तरह आँखें बहुत बडे और सुहावना है। मेरे माँ एक चीनी अध्यापिका हैं। वे कितने श्रेष्ट हैं कि उनके विद्यालयी उन को बहुत पसाद करते हैं। और, मेरे माँ उनके छात्र को प्यार करती है। घर में माँ मेरे पिता और मेरे लिए बहुत सी चीजें करती हैं। मैं भारत आने के बाद माँ मुझे बहुत याद करती है। मेरा आशा है कि माँ का शरीर हमेशा स्वस्थ होता है और वे हरदिन आनंद में रहती हैं। माँ हमेशा एक रंगीला फूल हैं और उन मेरे घर की रोशनी है।"

— वांग दानलिन

"मेरी माँ एक गृहिणी है जो हर दिन घरेलु काम करती है। मेरी बहन, भाई और मैं उनकी देखरेख में हुए है। रोज सुबह में वे नाश्ता तैयार दी है और दोपहर को खाना भी बनाई हैं। इस के अलावा मेरी माँ एक बहुत बढ़िया स्त्री हैं। वे अपने परिवार के स्वेटर बनाने में बहुत निपुण हैं। हमें भाई–बहन उन के स्वेटर बहुत पसंद हैं। कक्षा क्षेत्र में मेरी माँ हमारी पढाई ज़्यादा ध्यान देते हैं। इसलिए मेरे घर में बहुत पढ़ाई वातावर्ण होती है। मेरे बचपन में मेरी माँ अक्सर मेरी पढाई की मदद की थी। तब मैं मेरा काम पूरा काम पूरा करूँ, तो मैं सहपाठी के साथ बाहर खेल सकूं। हम अपनी माँ को बहुत प्यार करते हैं। यदि मेरी माँ हमारा पास नहीं हो तो हम खुशी बड़ा नहीं हों।"

— चौन बैई

विदेशी छात्रों का हिंदी तथा भारतीय संस्कृति से प्रेम

'छात्र–मित्र' योजना के अंतर्गत, विदेश से अध्ययन करने आए प्रत्येक छात्र के लिए एक भारतीय छात्र नियुक्त किया जाता है, जो अपने विदेशी छात्र–मित्र के साथ भारत में निवास के दौरान भारतीय संस्कृति से परिचय के वे सारे मौके उपलब्ध कराता है जिससे वह हिंदी और भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन कर सकें। किसी भी प्रकार की अन्य समस्या आदि में उसका मित्र बन उसकी पुरज़ोर सहायता करना तथा भारत से लौट जाने के बाद 'पेन फ्रेंड' बनकर हिंदी भाषा को गहनता से सीखने में उसकी मदद करना भी उसका दायित्व है।

विदेशी छात्रों को पढ़ाते–पढ़ाते उनसे मित्रता भी हो गई और एक दिन यूँ ही थाई छात्रों–कृपुलारत, सिरिरत इन्थसोंग, नीरानुश कांगवानफाइर, मनीनुश योत्सुन्न, वलदा देजफोंगथाना, सिरीपोंनं इन्थसोंग, पत्रानन लइसकसिरिवथना और दवंड्जाई मीसवन के साथ बात छिड़ी कि विश्व की अनेक भाषाएँ छोड़ आपने हिंदी को ही क्यों चुना, तब जवाब यह मिला कि "श्री मोदी जी के आने से भारत और उसमें होने वाले उद्योगों, व्यापारों का अब विकास हो रहा है, इसलिए हिंदी अब पहली प्राथमिकता बन गई है !" इस उत्तर के साथ ही उन सबने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध जोर से "जय मोदी" कहकर नारा भी लगाया। यह सुनकर मैं अभिभूत हुई। ऐसे अनेकानेक विदेशी हिंदी छात्र जो भारत और विदेशों में हिंदी का अध्ययन एवं अध्यापन करते और कराते हैं, हिंदी और भारतीय संस्कृति के अनुराग में इतने

रम गए हैं कि उन्होंने अपनी जीवनचर्या को ही हिंदी के प्रति समर्पित कर दिया है। उनमें इतना सच्चा और गहरा हिंदी अनुराग है कि ये हिंदी का काम ही नहीं करते बल्कि जब–जब हिंदी इस देश में बढ़ती है, उनमें प्रसन्नता होती है, जब–जब हिंदी पीछे धकेली जाती है, उन्हें पीड़ा होती है। शुद्ध हिंदी में वार्तालाप में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग पर मैंने अक्सर उन्हें नाराज होते देखा है। वे चाहते हैं कि हम हिंदी बोलें, तो पूर्णरूपेण शुद्ध रूप में। 'मार्कर वाला श्वेत बोर्ड' उनके लिए आज भी 'श्याम पट्ट' ही है। सब्जी मंडी में सब्जीवालों द्वारा नींबू बेचते वक्त '3 का 10' आवाज़ लगाकर नींबू बेचना उन्हें अजीब लगता है, तब यह बम्बईया हिंदी है या हिंदी की बम्बईया शैली है, यह बताने पर वे संतुष्ट होते हैं। जहाँ किसी मोबाईल नंबर को 'सेव कर लीजिए' की बजाय वे 'रक्षित कर लीजिए' कहना अधिक पसंद करते हैं, वहीं दूसरी ओर हमारे ही भारतीय भाई हम से हिंदी वार्तालाप में अंग्रेजी प्रयुक्त करने में क्या आपत्ति है–पूछते हैं। 'अंग्रेजी भी तो हिंदी के शब्दों को अपनाती आई है तब हिंदी क्यों नहीं अपनाती?' यह उनका हमेशा प्रश्न रहता है।

महिलाओं के बड़े 'पर्स' को वे 'थैला' ही कहना पसंद करते हैं। सलवार–कमीज, लहंगा और भारतीय पारंपरिक सजावटी थैले उनकी पहली पसंद है। मेरा एक सौभाग्य यह भी रहा है कि अपने वस्त्रालय 'लतिकाज बुटिक' में बनते भारतीय पारंपरिक एवं आधुनिक परिधानों से इन विदेशी छात्रों को सजाकर एक तरफ मैंने उनकी अभिलाषाओं को पूर्ण किया और दूसरी तरफ मुझे भारतीयता का प्रचार–प्रसार करने का भी मौका मिला।। इटली से पधारीं कुछ मेरी छात्र–मित्र कृफ्रांचेस्का पासरीन, मोनिका लिती, अलेसिया इंग्रास्सियातो, साराह रेस्तान्यो, लुइजा अल्लादियो और मार्तिना मोरेल्ली आदि को इटालियन साड़ी दिखाने पर वे जोर से ठहाके लगाकर हँस पड़ीं और बोलीं कि 'क्या यह सचमुच इटली से बनकर आई है!'

मेरे साथ नवरात्रि उत्सव में गरबा देखने चलीं मेरी छात्र–मित्र कृहेलेना जौन्डीर, आस्त्रिद स्त्रेबोल, लीन लेतेर्म, हिल्के द वोस, क्लार दगूत, कारा गैरार्ड ने तो कुछ मिनटों में ही रास–गरबा के स्टेप्स सीख लिए और हू–ब–हू लगातार रात 12 बजे तक खेलती रहीं, जबकि वे दिनभर की थकी–हारी आईं थीं। इसका राज पूछने पर पता चला कि गरबा के कुछ आधुनिक स्टेप्स उन्हीं के यूरोपीय आधुनिक नाच की नकल थे ! दिवाली के दिन बेल्जियम की छात्र–मित्रों को अपने घर पर आमंत्रित कर उन्हें त्यौहार का आनंद दिलाया, वे भी ऐसा महसूस कर रहीं थीं मानो साड़ी पहनकर वे किसी नए लोक में आ पहुँची थीं।

भारतीय वाद्य बजाना भी इन्हें खूब आता है। इनकी विदेशी वाद्यों और भारतीय वाद्यों की जुगलबंदी देखने का आनंद हमने कई बार उठाया। मेरे थाई छात्र–मित्र ताश्वित ने नवागंतुक समारोह में तबला वादन की अपनी प्रस्तुति से सबका मन मोह लिया था। बेल्जियम कीआस्त्रिद स्त्रेबोल तांबे की बाँसुरी बखूबी बजाना जानती थी और वहीं की क्लार दगूत और हेलेनाके सितार वादन का भी लुत्फ उठाया है हमने ! भारतीय नृत्य कत्थक का प्रशिक्षण वे अपने देश से ही लेकर आई थीं जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है। थाईलैंड की मेरी छात्राएँ सिरीरत, नीरानुश और सिरीपीर्न मुझसे भारतीय प्राचीन पारंपरिक कला 'रंगोली' सीखने के लिए बड़ी आतुर थी।

लड्डू, जलेबी, पेठा, आगरा का पेठा, नागपुर की प्रसिद्ध संतरा, बर्फी और वर्धा का विश्व प्रसिद्ध 'गोरसपाक' आदि भी इन्हें अत्यंत प्रिय हैं।

हिंदी और सोशल मीडिया

सोशल मीडिया आज प्रचार–प्रसार का सबसे अधिक व्यापक और सशक्त माध्यम बन गया है। फेसबुक पर पेज बनाकर अपने अनुभव साझा कर नन्हे राजदूतों के रूप में सभी कार्य कर रहे हैं।

1) 'SaraShivAsish': भारतीय कला, हस्तकला और कलाकृतियों के दर्शन कराता यह फेसबुक पेज अपने कई फॉलोअर्स बना चुका है।
2) 'भारत चलें': सभी विदेशियों को भारत पधारने का आह्वान करता थाई और हिंदी में उनका यह द्विभाषी फेसबुक पेज बड़ा ही रुचिकर है।

हिंदी के छात्रों को नौकरी के अवसर

यहीं से पढ़कर निकले चीनी छात्र याओ वेईअब चीन के बीजिंग इंटरनेशनल स्टडीज़ यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ ओरिएंटल लैंग्वेजज़ के हिंदी डिपार्टमेंट के निदेशक के तौर पर हिंदी के प्रचार और प्रसार का कार्य कर रहे हैं। उनके अनुसार विश्व में मंदारिन और अंग्रेज़ी के बाद हिंदी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा बने और मंदारिन तथा हिंदी सबसे अव्वल स्थान पर पहुँचे ऐसी वे आशा रखते हैं।

मेरी छात्र–मित्र रहीं थाईलैंड की युथिथपोंग थाविनसोम्बात अब बैंकॉक के सिल्पाकोर्न यूनिवर्सिटी में हिंदी अध्यापिका के रूप में सेवारत हैं।

इसी विश्वविद्यालय में हिंदी के पी.एच.डी. शोधार्थी अस्थाई तौर पर पिछले एक वर्ष से चीन के बीजिंग इंटरनेशनल स्टडीज यूनिवर्सिटी में हिंदी अध्यापक के रूप में चीनी छात्रों को हिंदी पढ़ाने गए हैं।

हिंदी एवं सृजनात्मक कौशल

छात्रों में सृजनात्मक कौशल एवं आत्माभिव्यक्ति के विकास हेतु कुछ उपाय सुझाते समय मैं प्रतिदिन छात्रों को गृहकार्य के रूप में अल्प ही सही, अभ्यास करने को कहा करती हूँ। समाचार–पत्र, उपन्यास, बाल कहानियाँ और कविताएँ पढ़ना उनके गृहकार्य में शामिल होता है। शब्द–भण्डार बढ़ाने की दृष्टि से उन्हें प्रतिदिन शब्दों से संबंधित खेल का अभ्यास रूपी गृहकार्य भी इसी में आता है।

हिंदी के विदेशी छात्रों द्वारा भारत पर लघु–शोध

हिंदी अध्ययन करने आए छात्रों को अपने देश से परियोजना कार्य सौंपे जाते हैं, जिनके अंतर्गत वे भारत या उससे संबंधित विषयों पर लघु–शोध कर उसे अपने देश में प्रस्तुत करते हैं। उनके द्वारा संपन्न परियोजना कार्यों के विषय निम्नलिखित हैं :

1.राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.)

2.भारत की गंदी–बस्ती के क्षेत्र

3.दक्षिण भारतीय भाषाएँ और हिंदी में अरामंजस्य/असमानता

अत: यह कहा जा सकता है कि प्रेम, सह–संबंध या राजनीतिक संबंध के लिए ही नहीं, लड़ने के लिए भी दूसरे देश की भाषा सीखने की आवश्यकता है। अपनी–अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न विकसित राष्ट्र अपने यहाँ हिंदी के पठन–पाठन की व्यवस्था करते हैं। कुछ भारत को समझने के लिए, कुछ भारत से उपयोगी संदर्भों के लिए, कुछ भारत से प्रेम के लिए। व्यापार के मामले में सहजीवन, सहयोग या व्यापार अथवा रोजगार और जिज्ञासा के तहत भी हिंदी का पठन–पाठन किया जा रहा है और इसमें अनुवाद और निर्वचन इन्हें जोड़ने का काम कर रहा है।

भारत

नायिका ने कंबल क्यों ओढ़ा?

– डॉ. गीता शर्मा

हंगरी आए हमें अभी कुछ ही दिन हुए थे। मारिया जी से नया–नया परिचय हुआ था। यूँ तो पहली ही मुलाकात से उनके मित्रवत् व्यवहार और मधुर मुस्कान ने अपरिचय की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। उन्होंने शुरुआती मुलाकातों में ही हमें यूरोपीय लोगों की उन विशिष्टताओं से परिचित करा दिया था जो उन्हें हम भारतीयों से अलग करती है; जैसे उन्होंने बताया था कि 'यहाँ किसी से मिलते ही उसके व्यक्तिगत जीवन की बातों को जानने की कोशिश मत कीजिएगा। यूरोपीय लोग यह पसंद नहीं करते कि कोई उनके जीवन में झाँकना शुरु कर दे। लड़कों–लड़कियों का भावनात्मक तो पता नहीं पर शारीरिक लगाव देखकर न उत्सुकता प्रदर्शित कीजिएगा, ना ही उनसे उनके संबंध में पूछिएगा या बात कीजिएगा....आदि–आदि।' मैं उनसे कहती, 'मारिया जी हम भारतीय तो बस में, ट्रेन में, मेट्रो में या पार्क, गली, मोहल्ले में, कहीं भी जब तक किसी की पूरी कुंडली और परिवार का लेखा–जोखा न ले लें तब तक हमारा तो पानी भी नहीं पचता। यह खाली–पीली मुस्कराहट और 'हेलो' वाला परिचय तो हमारे यहाँ बिल्कुल ही नहीं चलता।' मारिया जी कहतीं, 'मैं भारतीयों के स्वभाव से भली–भाँति परिचित हूँ, इसीलिए तो बता रही हूँ।' परिचित होती भी क्यों न, आखिर एल्ते विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग की अध्यक्ष और हिंदी की प्रोफेसर होने के नाते भारत से उनका बहुत ही करीबी और मधुर संबंध जो है। विजिटिंग प्रोफेसर .....। तो एक दिन मारिया जी हमारे घर आईं और उन्होंने बताया कि हंगरी के एक बहुत ही सुंदर शहर, कोजेग में पाँचवाँ इंटरनेशनल इंटेंसिव समर रिट्रीट का आयोजन किया जा रहा है। इसका आयोजन इंडो–यूरोपियन स्टडीज भारोपीय अध्ययन विभाग, एल्ते विश्वविद्यालय (हंगरी) कर रहा था। संस्कृत के वरिष्ठ अध्यापक, हैजो चाबा और मारिया नज्यैशी ने इसका आयोजन किया था। इसमें यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों के संस्कृत के विद्वान आने वाले थे। वे चाहती थीं कि मैं भी उसमें चलूँ, जिसमें भारतीय दृष्टिकोण का भी कुछ परिचय उन लोगों को हो जाए।

इस समर रिट्रीट की खास बात यह थी कि यह यूरोप के संस्कृत प्रेमी मिलकर किसी एक जगह पर खुद अपनी धनराशि से करते हैं, इसके लिए वे कहीं से किसी से सहायता की अपेक्षा नहीं रखते।

सुनकर अच्छा लगा। मैंने हाँ कर दी। जाना मारिया जी की गाड़ी से तय हुआ। कोजेग में एक स्कूल के हॉस्टल के कमरों में, जो उन दिनों छुट्टियाँ हो जाने के कारण बंद था, हम लोगों के रहने का इंतजाम किया गया था। इस रिट्रीट के लिए तीन पुस्तकों का चयन किया गया था। दामोदर गुप्त कृत– 'कुट्टनीमतम्' भट्ट रामकंठ कृत 'परमोक्षनिरासकारिका वृत्ति' और तीसरे सत्र की पुस्तक थी 'वाराणसी माहात्म्य'।

सुबह नाश्ते के लिए पास के एक रेस्टोरेंट में जाना तय हुआ। कोई ऐसा भी वेजेटेरियन हो सकता है जो अंडा तो क्या लहसुन तक ना खाए, उस छोटे से भोजनालय में अफरा–तफरी मचाने के लिए काफी था। अंततः कॉर्नफ्लैक्स दूध से ही काम चलाना पड़ा।

सत्र का आरंभ हुआ। मौसम साफ था, अतः सब लोग अपने–अपने लेपटॉप लेकर हॉस्टल के बाहर लॉन में ही बैठ गए। इस रिट्रीट के प्रत्येक पुस्तकीय सत्र का संचालक ऐसा संस्कृत का विद्वान/विद्यार्थी होता है जो उस पुस्तक पर शोधरत हो।

यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए इन विद्वानों ने पुस्तकों के माध्यम से प्राचीन भारत की जो छवि देखी, उस पर व्यक्त विचार हैरान कर देने वाले थे। हम अपने देश की संस्कृति और परंपराओं से इतने अधिक परिचित होते हैं कि वे हमारे मन में न कोई उत्सुकता पैदा कर पाती हैं, न प्रश्न। प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म और समाज का इतना गहन और ईमानदार अध्ययन देखकर मैं दंग रह गई। जहाँ कहीं कोई ज़्यादा कठिन प्रश्न उपस्थित हो जाता था, वहाँ वे समाधान के लिए मेरी ओर देखते थे।

हाँलाकि मैंने संस्कृत एम.ए. तक पढ़ी है, पर उसे छूटे हुए भी 25–26 वर्ष हो चुके थे। हाँ हिंदी पठन–पाठन के संदर्भ में जितनी संस्कृत की आवश्यकता होती है, उतनी तो आती ही है। खैर, एक दिन पुस्तक पढ़ते हुए एक प्रसंग आया जिसमें नायिका अर्ध–रात्रि के समय अपने प्रियतम से मिलने के लिए घर से निकलती है। उसके गौर वर्ण से अंधेरी रात में इतना उजास हो जाता है कि

अंधेरी रात चाँदनी रात में बदल जाती है। नायिका गाँववालों से छिपने के लिए काला कंबल ओढ़कर घर से बाहर निकलती है।

बस इसी बात को लेकर यूरोपीय-भारतीय संस्कृतियाँ आपस में टकरा गईं। वहाँ उपस्थित सभी विद्वानों के मन में एक ही प्रश्न उठ रहा था कि यदि नायिका नायक से मिलने जा रही है तो इसमें गलत क्या है? उसे कंबल ओढ़ने की आवश्यकता क्यों पड़ी? गाँववालों को इससे क्या मतलब कि वह किससे, कब और क्यों मिलने जा रही है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति और समाज के संबंधों को विस्तार और गहनता के साथ समझाने के बाद भी उनकी हैरानी कम नहीं हुई।

तीसरे सत्र में 'बाराणसी माहात्म्य' पर चर्चा चल रही थी। वाराणसी नगर की नैतिकता और वहाँ के राजा के सुचारु राज्य संचालन की प्रशंसा करते हुए कवि ने लिखा कि– 'उस राजा के राज्य में कोई पड़ोसी किसी दूसरी स्त्री पर आसक्त नहीं होता। उस राज्य में केवल सर्प ही दूसरे के घर पर अधिकार करता है।' अब फिर सांस्कृतिक टकराहट की बात आ गई। यूरोप के वर्तमान पारिवारिक, नैतिक मानदंडों के हिसाब से कोई भी स्त्री-पुरुष किसी भी उम्र या परिस्थिति में एक को छोड़कर दूसरे साथी को चुनने के लिए स्वतंत्र है। अत: यह उनके हिसाब से राजा और समाज द्वारा किया जानेवाला अन्याय था कि विवाह के उपरांत उसी स्त्री या पुरुष के साथ जीवन निर्वाह करने के सिवाय दूसरे पुरुष/स्त्री के वरण की स्वतंत्रता ही खत्म हो गई।

रात के भोजन के समय भी इन्हीं सांस्कृतिक-धार्मिक विषमताओं, अंतरों पर बात होती रहती थी। तीन दिन का संस्कृत रिट्रीट खत्म हुआ। मुझे खुद पर हैरानी हो रही थी कि ये छोटे-छोटे मुद्दे, छोटी-छोटी बातें और उन पर होनेवाली चर्चा-परिचर्चा कितनी महत्वपूर्ण थी जिनकी ओर हममें से अधिकांश लोगों का ध्यान ही नहीं जाता क्योंकि आँख खुलने के साथ ही हम इनको इसी रूप में देखते और स्वीकारते हैं। ये हमारी सांस्कृतिक विरासत के ही नहीं बल्कि उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी अत्यंत सूक्ष्मता से रेखांकित करते हैं।

भारत

अभिमन्यु अनत का सान्निध्य-सुख

– डॉ. बीरसेन जागासिंह

महात्मा गांधी संस्थान में उस समय अभिमन्यु अनत 'वसंत' के संपादक थे। एक दिन अभिमन्यु की भेंट सीढ़ी उतरते हुए, सीढ़ी चढ रहे संस्थान के उप–निदेशक से हो जाती है। उप–निदेशक, श्री भारद्वाज गोपाल ने घड़ी देखी– साढ़े ग्यारह बजे थे! उन्होंने पूछा – "सो यू आर लीविंग मिस्टर अनत!"

"अच्छा तो आप जा रहे हैं अनत जी!"

अभिमन्यु ने तुरन्त उत्तर दिया था – "यैस, दू यू वौंट ए लिफ्ट?"

"हाँ, आपको एक लिफ्ट चाहिए?"

.....

उस रात अभिमन्यु के निवास स्थान पर चार–पाँच लोग ठहरे थे। स्वादिष्ट भोजन के बाद साहित्यिक रसों की धार बह चली थी। इतने में सरिता जी (श्रीमती अनत) चाय–कॉफी लेकर आई थीं। उपस्थित साहित्यकारों, पूजानंद नेमा, रामदेव धुरन्धर, मुकेश जीबोध, रघुनाथ दयाल और इन पंक्तियों के लेखक, में से किसी ने कहा था–

"भाभी जी, आज आप बहुत थक गईं न!"

"हाँ, थोड़ा–बहुत !"

हम लोगों में से किसी ने कहा था – "भाभी जी, सब काम छोड़ दें, अभिमन्यु भाई कर देंगे!"

तभी तपाक से अभिमन्यु बोले थे – "सभी लोग मुझे भाई ही बना रहे हैं! क्या मेरी पत्नी इतनी सुन्दर हैं!"

.....

ट्रिनिडाड के पाँचवें विश्व हिंदी सम्मेलन की बात चल रही थी। इन पंक्तियों का लेखक मॉरीशस में आयोजित चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में मॉरीशस के कथा–सम्राट, अभिमन्यु को अपमानित होते हुए देख चुका था। उसकी अनुशंसा पर ट्रिनिडाड में कार्यरत प्रो. जगन्नाथन ने अभिमन्यु को 'विश्व हिंदी सम्मान' से सम्मानित करना स्वीकार कर उन्हें महात्मा गाँधी संस्थान में एक फैक्स भेजकर यह खुशखबरी दी थी।

अभिमन्यु वह फैक्स थामे मेरे पास आए थे, कहा था–

"ये तुमने क्या कर दिया डॉक्टर!"

फैक्स पढने के बाद – "योग्यता को न्याय और सम्मान मिला है!"

"मैं आभार–प्रदर्शन करूँ?"

"क्यों? मैंने कुछ नहीं किया है!"

"इतनी लघुता ठीक नहीं होती डॉक्टर! धन्यवाद!"

बोलकर अभिमन्यु मुस्कुराते हुए चले गए थे! और बी.ए. ऑनर्ज़ कक्षा के मेरे सभी छात्र मुझे देखकर मुस्कुरा रहे थे!

.....

मैंने अभिमन्यु के मुँह से अपने लिए पहली बार वैसा शब्द सुना था – "तुम सुपरसेंस्यस हो!" बाद में मैंने 'सुपरसेंस्यस' का हिंदी शब्द ढूँढा था – 'अतिभावुक'। बात अभिमन्यु के 'वसंत' के संपादक स्वरूप अवकाश–ग्रहण कर लेने के बाद की है। अपनी नियुक्ति के बाद मैंने अभिमन्यु की कुरसी को बगल में रख दिया था। अपने लिए एक दूसरी कुरसी मँगवा ली थी। मुझमें कथा सम्राट के आसन

पर बैठने की न योग्यता थी और ना ही हिम्मत! और एक दिन वे दर्शन देने आ ही गए थे। मित्रों ने जब उन्हें कुरसी वाली बात बताई थी तब वे मुझसे बोले थे – 'तुम सुपरसॉरयस हो!'

.....

लंदन के छठे विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर, सत्रों के बाद, मॉरीशस के प्रतिभागियों ने शाम के समय साइट–सीईंग करनी चाही थी। अधिक लोग होने के कारण दो टीमों में बंट कर भ्रमण करना था। सत्यदेव टैंगर ने मुझे अपनी टीम में ले लिया था! तब अभिमन्यु बोले थे – 'फिर इस टीम का नेतृत्व कौन करेगा? डॉक्टर को इधर आना होगा!' उसके बाद कुछ मेरे साथ और कुछ लोग सत्यदेव के साथ लंदन देखते रहे! हाँ, अभिमन्यु मेरे ग्रुप में थे!

.....

ट्रिनिडाड के पाँचवें विश्व हिंदी सम्मेलन के अंतिम दिन से पहले वहाँ की युनिवर्सिटी में एक फोटोग्राफर ने ग्राउंड फ्लोर में सम्मेलन के दौरान उसके द्वारा उतारे गए चित्रों की एक बिक्री प्रदर्शनी लगाई थी। मैंने अभिमन्यु के सम्मानित होने के अवसर पर उतारे गए प्रदर्शित तीनों चित्रों को तुरंत खरीद लिया था! बाद में उन्हें भेंट स्वरूप तीनों चित्र दे दिए थे और उन्होंने कहा था – 'अब मॉरीशस में कोई यदि नकारेगा भी तो प्रमाणित कर सकूँगा कि ट्रिनिडाड में मेरा सम्मान हुआ था!'

.....

ट्रिनिडाड के पाँचवे विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर जर्मन मित्र, श्लेन्डर और महेश, दोनों जर्मन रेडियो डय्यवेल के उच्चाधिकारी थे, डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार भगत और मैं अंग्रेज़ी के लेखक, वी.एस.नेपोल का निवास स्थान 'लायन हाउस' देखने गए थे, मैं चित्र भी उतार लाया था। एक चित्र मैंने अभिमन्यु को भी दिया था। उसने उसका प्रयोग 'ले मॉरीशियें' फ्रेंच दैनिक में अपने ट्रिनिडाड संबंधी अंग्रेज़ी लेख के साथ किया था। मैं ने उनसे शिकायत की कि बिना चित्र के साथ मेरा नाम लिए उसे छपवाना नहीं चाहिए था! उन्होंने आव देखा न ताव, तुरंत उत्तर दिया था– 'मिस्टर बिस्वास तुम्हीं हो क्या?' उनका तात्पर्य नेपोल के अंग्रेज़ी उपन्यास 'ए हाउस फोर मिस्टर बिस्वास' से था जिसमें 'लायन हाउस' की चर्चा है!

.....

मैं अपनी 'निसान मार्च' कार सर्विसिंग के लिए 'ए.बी.सी. गरेज' में छोड़ आया था। दोपहर एक बजे महात्मा गांधी संस्थान से अपने घर त्रिओले जाते समय उन्होंने मुझे गरेज तक लिफ्ट दी थी। पोर्ट लुई के हाईवे में, बगल में हमारी तरफ आ रही मोटर में मैंने अपने एक भतीजे को एक अपरिचित कन्या के साथ देखा था! मैंने बताया था कि घर जाकर उससे प्रश्न ज़रूर करूँगा! तब उन्होंने कहा था – 'ऐसा मत करना, वह गिल्टी फील करेगा और हो सकता है कि उसकी बनती हुई बात ही बिगड़ जाएगी! '

.....

मॉरीशस के कथा–सम्राट अभिमन्यु अनत केवल साहित्यकार ही महान नहीं थे, अपितु एक उदार और विशाल हृदय वाले प्राणी भी थे। पता नहीं कितनी बार मैं उनके घर पर रह चुका हूँ। एक बार मैं ने उनके घर के ऊपर की मंज़िल के टैरस पर शोभायमान ऑर्किडे के हरे–भरे, ताज़े पौधों–फूलों का राज़ पूछा था। उन्होंने बताया था – 'ये ऑर्किडे मेरे लिए मात्र लती, पत्तियाँ, रंग–बिरंगे फूल भर नहीं हैं ! ये मेरे भीतर के हिस्से हैं जो कि बाहर में हँस–खिल रहे हैं । मैं इनकी बहुत सेवा करता हूँ ! ज़ाहिर है कि ये मेरे बच्चे स्वस्थ और खुश हैं।'

.....

एक दिन मैं ने अभिमन्यु को निष्क्रिय और उदास अपने दफ्तर में बैठे पाया था। पूछने पर पता चला था कि उनका पुत्र केम्ब्रिज स्कूल सर्टिफिकेट पास कर गया था। बात खुशी की थी परंतु अपनी उदासी का कारण उन्होंने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया था 'इतनी कड़ी मेहनत केवल सर्टिफिकेट के लिए, इतने परिश्रम से तो मेरे बेटे को डिग्री मिलनी चाहिए थी !'

.....

अभिमन्यु अनत 'वसंत' और 'रिमझिम' के संपादक तो थे ही, साथ-साथ वे विभागाध्यक्ष एवं वरिष्ठ व्याख्याता के पदों पर भी महात्मा गांधी संस्थान में सेवारत थे। मैं तो मात्र सितम्बर 1997 से उनके अवकाश ग्रहण कर लेने के बाद उन्हीं पदों को संभाल रहा था। उनके विभाग में न रहने पर भी उन्होंने मुझे पूरा अपनापन दिया था। नए वर्ष के शुभावसर पर एक रेस्टरेंट में दो-चार मित्रों को भोजन खिलाकर अपनी नई टोयोता कोरोना कार में अपने घर ले जा रहे थे। मैं ने पहली बार ऑटोरिवर्स ऑडियो कैसेट देखा था ! मेरे आश्चर्य प्रकट करने पर अभिमन्यु ने हँसते हुए कहा था – "इसी को आवा-गमन कहते हैं। इस कैसेट के समान ही हमारा जीवन है। घर से गांधी संस्थान और फिर घर! जीवन के बाद मृत्यु, फिर जीवन, यह सिलसिला चलता रहेगा !"

.....

उस दिन मेरा अहोभाग्य था कि मेरे घर मॉरीशस के शीर्षस्थ उपन्यासकार, अभिमन्यु अनत पधारे थे। सेवा-सत्कार के बाद जब हम लोग सीढ़ियाँ चढ़कर पहली मंज़िल पर पहुँचे तो लम्बे-चौड़े खाली कमरे को देखकर उनके मुँह से आशीर्वाद स्वरूप ये शब्द निकल पड़े थे – 'ऐसी जगह में तो गोष्ठी होनी चाहिए!" और गोष्ठि हुई भी थी, परंतु वे उपस्थित नहीं हो सके थे।

.....

अशोक विहार, दिल्ली, भारत के चोटी के विद्वान डॉ. कमल किशोर गोयनका अभिमन्यु अनत के अतिथि थे। आदत से लाचार, उदार अभिमन्यु उनकी विद्वता और मार्गदर्शन से अकेले लाभ कमाना नहीं चाहते थे। वे डॉ. गोयनका को मेरे घर भी लाये थे। मेरे परिवार के एक सदस्य ने पूछा था – "इन दोनों भाइयों में बड़ा कौन है?" प्रश्न तो साधारण था परंतु सभी को दिल खोलकर हँसने का मौका मिल गया था! सच! डॉ. गोयेनका और अभिमन्यु की सूरतें बहुत मिलती-जुलती हैं ! वे एक दूसरे को अपने से बड़ा बताते रहे!

.....

प्रति वर्ष राम-नौमी के बाद विजयादशमी के शुभ अवसर पर अभिमन्यु अपने निवास-स्थान, 'संवादिता' पर अनुष्ठान का आयोजन करते थे। हाँ, मैं ने उन्हें कभी भी पूजा स्थल पर सरिता और दोनों बेटों के साथ बैठकर अनुष्ठान में भाग लेते नहीं देखा था। पूछने पर बताया था– 'अतिथि देवो भव। वे अतिथियों के स्वागत् और सेवा-सुश्रूषा में व्यस्त रहते थे। कौन आया, कहाँ बैठा, खाया-पिया कि नहीं, प्रसाद लिए बिना कोई प्रस्थान न कर दे। हाँ, पूजा के अंत में गाँव के वृद्धों को भेंट देकर आशीर्वाद लेने अवश्य अभिमन्यु पहुँच जाते थे।

.....

ग्रॉ-बे का समुद्र तट अभिमन्यु के गाँव त्रिओले से किलोमीटर भर की दूरी पर मॉरीशस के उत्तर प्रांत में स्थित है। उनके घर से होते हुए हम लोग वहाँ पहुँच गए थे। अभिमन्यु के किसी उपन्यास की चर्चा चल पड़ी थी। मौसम सुहाना था कि एकाएक बरसात शुरू हो गई। झाबे के पौधों-पेड़ों के इर्द-गिर्द हमारे छिपने की कोशिशें बेकार गईं। वर्षा रुकने के बाद अभिमन्यु बोले थे– 'मेरे एक आलोचक मित्र ने लिखा है कि अभिमन्यु अनत को ऋतुओं का ज्ञान नहीं है। भला जून में हेमंत की ठण्ड पड़ती है !' यह मॉरीशस का सच सत्यमुच भारत का सच नहीं है। जून में तो भारत में ग्रीष्म की आग बरसती है जबकि मॉरीशस में लोग हेमंत की ठण्ड से ठिठुरते हैं।'

फलदार अभिमन्यु पर जिसने जब भी चाहा मनचाहे विषय पर मनचाहे रूप से पत्थर चलाया। एक बार अभिमन्यु से अपनी किसी फैन को अपनी कार में आगे की सीट पर लिफ्ट देकर बिठाने की सुंदर भूल हो गई। यात्री एक सुंदर महिला थी। अभिमन्यु के घर की टेलीफोन की घंटी बजी थी। सरिता जी ने ध्यानपूर्वक पति जी की शिकायत सुनी थी और फोन रखने से पहले गुरकुराते हुए कहा था– 'ठीक है, धन्यवाद आपने मेरा भला ही तो चाहा है। मैं आपको एक बात बताना चाहती हूँ । दो-तीन नहीं, हम लोगों में सात तक की आज्ञा है।' इसके बाद उस व्यक्ति का फिर कभी झूठी चुगली से संबंधित फोन नहीं आया था।

.....

मेरा दुर्भाग्य रहा कि मैंने कभी भी अभिमन्यु की कलाई पर घड़ी बंधी नहीं देखी। सामीप्य होने के कारण मैं ने कारण पूछ ही लिया था। साधारण से उत्तर से मैं दंग रह गया था। वे बोले थे– " मैं समय का गुलाम नहीं। लेखक स्वतंत्र प्राणी होता है। भूख लगी तो खा लिया, प्यास लगी तो पी लिया (ली), नींद आई तो सो लिया और दिमाग में तूफान आ गया और दायाँ हाथ फड़कने लगा तो लिखने चला गया दिन–रात! घड़ी मेरी चेरी है अत: मैं उसे धारण नहीं करता। समय मेरी प्राथमिकता के अनुसार ढलता है!"

.....

अभिमन्यु के पूर्वज धनी–मानी लोग थे। उनके पिता–पतिसिंह के स्वर्गवास के साथ ही लक्ष्मी उनके घर से रुष्ट हो गईं! पूर्वजों के सुकर्मों और संस्कारों के फलस्वरूप अभिमन्यु ज़ीरो से शुरू करके मॉरीशस के साहित्य गगन के सूर्य बन गए ! पुन: लक्ष्मी अनत परिवार में प्रवेश हुईं। अभिमन्यु की जीवन–पद्धति बदल गई। वे अपव्यय नहीं अपितु खान–पान के थोड़े–बहुत शौकिन हो गए। थोड़ा परन्तु अच्छा खाना–पीना उनको भाता था। एक बार उन्होंने कहा था– "मैं अब अपने बचपन से लेकर युवावस्था तक के अभावों की पूर्ति करने की कोशिश कर रहा हूँ! सच पूछें तो अब मैं अपनी गरीबी से बदला ले रहा हूँ!"

.....

साठ साल पूरे हो जाने पर वे महात्मा गांधी संस्थान से 'वसंत और रिमझिम' के संपादक के रूप में पेंशन–ऑफ हो गए। बात अगस्त 1997 की है। तब सितम्बर में वह ज़िम्मेवारी मुझे सौंपी गई थी। अभिमन्यु ने जाते–जाते एक अनसुनी और अपूर्व उदारता दिखाई थी! उन्होंने पहली बार के लिए महात्मा गांधी संस्थान के लगभग तीन सौ कर्मचारियों के लिए बिना पद–ओहदे का भेद–भाव किए स्वादिष्ट चिकन और बेज बिरयानी के साथ–साथ पेय और पचौनी भी अपने हाथों से परोसा था! मैं ने उनके लिए एक तोहफे और एक सदभावना–पत्र का व्यक्तिगत रूप से परन्तु सभी की ओर से प्रबन्ध किया था। उन्होंने मित्रों के बीच एक छोटे परन्तु भावपूर्ण भाषण में कहा था – "मैंने आज तक संस्थान से इतना पाया, जाते–जाते मैं यथाशक्ति जो भी कर रहा हूँ, सब में बहुत थोड़ा है!"

–

मॉरीशस

अनत विनय अनुराग - देश, काल और अन्तश्चेतना, एक संस्मरण

— डॉ. कुमारदत्त विनय गुदारी

घटना मंगलवार 23 अगस्त 2017 की है। अमेरिका से तीन दिनों के लिए मॉरीशस आए अनुराग शर्मा को देश के उत्तर प्रांत में भ्रमण कराने का दायित्व मुझे सौंपा गया था। इसे दायित्व समझूँ अथवा अपना भाग्य, इसी द्वंद्व के साथ हम दोनों उस अल्प यात्रा के लिए निकल पड़े जिसकी छाप चिरकालीन होने वाली थी। अंतर्मन की अभिलाषा यही थी कि मुझे महात्मा गांधी संस्थान द्वारा प्रदत्त 'आप्रवासी हिंदी साहित्य सृजन सम्मान' के प्रथम प्राप्तकर्ता, भाई अनुराग के साथ अधिक से अधिक अनुरागी समय व्यतीत करने का सुखद अवसर मिले।

एक वर्ष से अधिक मेरे इस फेसबुक मित्र के साथ मॉरीशस ब्रोडकॉस्टिंग कारपोरेशन के 'सृजन' नामक टी. वी. कार्यक्रम पर चर्चा मात्र छब्बीस मिनट की रही परंतु बैंकिंग एवं आई. टी. के क्षेत्र में परियोजना प्रबंधन में कार्यरत हिंदी के इस अथक सेवी को अधिक जानने-समझने की इच्छा बनी रही जो आज की इस यात्रा द्वारा पूरी हुई जिसमें उन्हें जानने के साथ-साथ, मेरा परिचय अपने कलापूर्ण व्यक्तित्व से भी होता रहा।

बहरहाल, महात्मा गांधी संस्थान से बाहर आकर हम दोनों 'तेर-रूज वेरदें' के रास्ते पर निकल पड़े। मुड़िया पहाड़ मानो उस हाईवे में हमारा वामपंथी मित्र बनकर हमारे साथ आगे बढ़ता रहा। स्थिर मुद्रा में रहते हुए अभिमन्यु अनत ने जिसे 'गूंगे-बहरे और 'अंधे इतिहास' का साक्षी माना, उसी मुड़िया पहाड़ ने अपने चित्र व वीडियो को मेरे अनुरागी अतिथि के मोबाइल वाले कैमरे में कैद कराना सहर्ष स्वीकार किया। यू. एस. में किसी के लैपटॉप पर अपने देश के मूक इतिहास को वर्तमान ज़ुबान से अभिव्यक्त करने की इच्छा लिये हुए मुड़िया पहाड़ अनुराग शर्मा जैसे सृजनकर्ता के प्रति पूरी तरह से समर्पित हो चुका था।

असल में, मैं इस दुविधा में उलझा रहा कि अनुराग को कहाँ घुमाने ले जाऊँ। हमारे पास मात्र तीन घंटे थे और साढ़े सात बजे हमें एक रात्रि-भोज के लिए एबेन के 'इंडियन समर' में वापस लौटना था।

पहाड़ी रास्ते से पोर्ट-लुई और उत्तर प्रांत के दृश्यों का आनंद लेते हुए अचानक मेरे मुख से यह निकला, "अभिमन्यु अनत के यहाँ चले क्या?" अनुराग के चेहरे की प्रसन्नता को महसूसने में देर नहीं हुई। झट से कहा, "मॉरीशस आकर अभिमन्यु अनत जी से मिल पाना किसी भी साहित्य-प्रेमी के लिए तीर्थ-यात्रा से कम नहीं।" उनकी बात पूरी नहीं हुई कि मैंने सरिता चाची(अभिमन्यु जी की पत्नी) को फोन किया। चाची ने हैंड्स-फ्री मोड पर ही बताया, "हाँ बेटा, उनकरा लियाने सकऽ-ब ... लेकिन चाचा (अभिमन्यु जी) अभी शार्ट्स में हैं, उनसे पैंट लगाने को कहूँ क्या?" मेरी मनाही के साथ वहीं बात पूरी हुई।

त्रियोले गाँव पहुँचे तो शाम के लगभग पाँच बज चुके थे। अभिमन्यु अनत के लिये प्रख्यात इस गाँव ने अनेक हिंदी और उर्दू के रचनाकारों, शिक्षकों, नाटककारों को जन्म दिया, एक अच्छे गाइड की तरह इनकी जानकारियाँ देते हुए, मेरी गाड़ी का प्रवेश अभिमन्यु जी के आँगन में हुआ।

'ओहो! हिंदी में उनके घर का नाम! 'संवादिता'! वाह, क्या बात है ...' अनुराग अपना सुखद आश्चर्य छिपा नहीं पाए। अनत जी के आँगन में इन प्रथम शब्दों के साथ अनुराग की सरसरी दृष्टि ने अपनी साझेदारी जताई। दीवारों से लगे अभिमन्यु जी के गिने-चुने बचे कुछ पौधों की ओर देखते हुए अनुराग ने अभिमन्यु जी के प्रकृति-प्रेम का परिचय पाया। मैंने तुरंत उनकी जिज्ञासा को बढ़ाते हुए बताया, "ये बहुत कम हैं ... कुछ वर्ष पहले यदि आते तो बड़ी फलक में लेटी मिट्टी के स्थान पर विविध प्रकार के पौधों की हरी चादरों का आनंद उठा पाते ... और उस आनंद में अनत की उँगलियों के स्पर्श को मन-ही-मन टटोल पाते ...।"

चाची सरिता रसोईघर में मछली बना रही थीं कि हमारा प्रवेश अभिमन्यु जी के घर के पहले माले में हुआ। परिचय हुआ। फिर उस कक्ष में अनुराग के साथ बढ़ा जिसकी दीवारों के साथ अभिमन्यु जी की रचनाएँ और कुछ ऐतिहासिक चित्र आलिंगन करते हुए यू.एस. के इस लेखक के स्वागत में जीवंत हो उठे। अभिमन्यु जी के साथ सन् 2001 से उस कक्ष में जितनी बार गया हूँ, उतनी अलग गाथाएँ उन दीवारों ने मुझे सुनाई।

दूसरे कमरे से कृशकाय, शॉर्ट्स और एक हल्की शर्ट में अभिमन्यु अनत जी का प्रवेश हुआ। उस थके, पर हार न मानने वाले चेहरे ने अपनी

सौम्य मुस्कान से अनुराग का स्वागत हिंदी में किया। फिर संवाद अनेक स्तरों पर आगे बढ़ा। सोफे पर बैठे हुए चिंतनशील मुद्रा में अभिमन्यु जी हमारी बातें सुनने की चेष्टा करने लगे परंतु उनका फ्रेश–रिक्त दिमाग से तालमेल न बैठ पाने की वजह से अभिमन्यु जी के कहीं जूझने की आकृतियाँ दिखने लगीं ...।

मुझसे क्रियोली भाषा में बात करना और अनुराग से हिंदी में 'संवाद' करना मेरे अतिथि–मित्र के मन को छू गया। बाद में, अपने अनुभव बाँटते समय अनुराग इसी बात को दोहराते थके नहीं कि, 'जैसे अनत जी जानते थे कि मैं बाहर से आया हूँ और मुझसे हिंदी में और विनय से क्रियोली में बात करनी चाहिए ...।'

अनत जी बीच–बीच में बो–बासें और उस सुंदर झील की बातें उठाने लगे ... उनका मन कहीं उधर ही घूम रहा था जिसे बुद्धि ने अभी तक सहेजा था ... फिर चुप्पी! एक गहरी चुप्पी! मात्र टकटकी नज़रों से हमें देखना ... ज़रा–सा मुस्कुराना और फिर ... भौंहों का ऊपर चढ़ना ... और अपनी दुनिया में कहीं खो जाना ...।

किसी लेखक के लिए उसकी स्मरण–शक्ति का खोना उसके लिए एक बहुत बड़ा आशीर्वाद होता है। पहले कहीं कही गई इस बात को मैंने अनुराग के सामने रखा। कहीं–न–कहीं उनकी असहमति दिखाई दे रही थी परंतु शालीनता की प्रतिमूर्ति, अनुराग ने हिचकिचाते हुए कहा कि 'शायद यह संभव हो ...।' लेखक के विस्मरण के बारे में कही गई इन आयाती पंक्तियों को गुलशन और मैं अभिमन्यु अनत जी पर कुछ हद तक सटीक समझते हैं। इस व्यक्ति ने चित्रकला में अपनी अभिव्यक्ति आरम्भ की थी और कालांतर में जब अपनी अभिव्यक्ति को एक बड़ी परिधि में संप्रेषित करने की आवश्यकता पड़ी तब उन्होंने विस्तृत गंधों की तलाश की। 'वह अनजान आप्रवासी' के इस कवि ने इतिहास और वर्तमान के बीच सेतु बाँधते हुए मॉरीशस के हिंदी–साहित्य जगत को सृजनात्मक लेखन की ओर दिशा दिखाने में अपनी पूरी भूमिका निभाई। उनकी कविताओं की सीमाओं में अनत जी के पूर्वजों की पीड़ाएँ सिमटकर, संवेदित भी हुई परंतु तब भी कवि को लेखक–मन की तलाश थी, अपने विस्तार के लिए, उन्हें खुला आसमान चाहिए था ... तब कहानियों और उपन्यासों ने अनत जी के अनंत विचारों के लिए अपने द्वार खोले जिनमें कहीं शोषण के ज्वारभाटे उभरने लगे तो कहीं मुडिया पहाड़ और गांधी जी बोलने लगे। 'लाल पसीना' के बहने से 'हम प्रवासी' की यातनापूर्ण यात्राओं तक, लहरों की बेटियों के जीवन–संघर्ष से बवंडर बाहर–भीतर तक अभिमन्यु अनत जी ने अपनी साहित्यिक अस्मिता से मॉरीशस को एक अलग पहचान दिलाई जो किसी प्रसिद्ध प्रतिनिधि से कम नहीं।

लगभग छह बज रहे थे। विदा लेने का समय हुआ। मॉरीशस–मन और यू.एस. में ढला भारतीय मन नारीपन से स्थिति की वास्तविकता के सामने नतमस्तक हुए। परंतु इस अनोखे अनुभव को अपने हृदय में समेटे किसी अमूल्य प्राईरेटी खज़ाने को पा लेने की मुद्रा में अनुराग वहाँ से निकलकर मेरी गाड़ी में बैठते हुए शायद यही सोच रहे थे कि मॉरीशस आना और अभिमन्यु अनत के देश से 'आप्रवासी साहित्य सम्मान' स्वीकार करना एक अविस्मरणीय घटना रही ...।

घटना? आकस्मिक? नहीं! मुझे लगता है कि यह सब पूर्व–निर्धारित था, विशेषकर अभिमन्यु अनत जी से मिलना। हमें किससे, किस अवस्था में और कब मिलना है, हमारी अन्तश्चेतना यह सब पहले से ही तय कर लेती है और इन्हें साकार करने हेतु, हमारे अंतर्मन से कुछ इस प्रकार के निर्देश मिलते रहते हैं जिन्हें हम अपने कर्मों के अंतर्गत ढालते जाते हैं और इस प्रकार से कुछ समानताएँ, कुछ कनेक्टीव्स निर्मित होते जाते हैं और अंततः साक्षात्कार!

अभिमन्यु अनत की दशा ... उनके क्रियाशील मन की तड़प ... उनकी उँगलियों की प्यास , अक्षरों को समझाने के लिए लालायित उनकी चमकीली आँखें _ किसी गहन गुफा में अपनी तलाश करते उनका रचनात्मक मन _ उन्हें अनुराग और मैं समझ चुके थे, बल्कि यह कहूँ कि उन रिक्तताओं के साथ हमारा साधारणीकरण होता गया और जो कोई भी अभिमन्यु अनत की इस अवस्था को समझते हुए दया के स्थान पर गर्व और आभार का बोध कर पाए वह असलियत में एक सुधी पाठक, एक सजीव दर्शक, एक सहृदयी कवि बन जाए ...।

मॉरीशस

दो यादें

– श्री देवानंद गरबा

मैं उत्तमा द्वितीय खण्ड की पढाई कर रहा था। मेरे ही गाँव के गुरु जी, श्री बाला विरारवागी जी हमें पढाते थे। वे तेलुगु परिवार के थे और सदा कहते थे 'मुझे दुख है कि मैं अपनी भाषा नहीं जानता पर इस बात से मुझे संतुष्टि मिलती है कि दोनों की संस्कृति एक है।'

उनकी कक्षा सदा खचाखच भरी रहती थी। उनकी बातें सदा रोचक हुआ करती थीं। एक रोज़ वे कक्षा में एक कविता की व्याख्या कर रहे थे। कविता के प्रसंग पर प्रकाश डालने के लिए, वे अवसर का लाभ उठाते हुए अपने अंदर उमड़ते मानव दर्शन पर प्रकाश डालना नहीं चूकते थे। एकाएक वे कहने लगे ' मुझे मानव का पतन साफ दिखाई देता है। भविष्य में क्या होगा भगवान ही जाने।'

फिर ऋग्वेद के 10वीं मंडल 53 सूक्त 5/6 मंत्र के अंतिम मंत्रांश 'मनुर्भव जनया दैव्यम जनम', का सहारा लेकर उन्होंने कविता की पुष्टि करने के लिए समझाया – 'स्वयं मनुष्य बन और दूसरों को मानव बना।' उन्होंने एक दृष्टांत सुनाया :

एक भतीजे को अपने चाचा से बहुत लगाव था। चाचा दफ्तर में अफ़सर था। कुछ अधूरे कार्य घर लाकर पूरा करने की आदत थी। भतीजा उसके साथ चिपका रहता था। एक रोज़ जब वह काम लिए बैठा तो भतीजा आ टपका और उसे तंग करने लगा। वह उसे डाँटना–फटकारना नहीं चाहता था क्योंकि उसका एक ही ऐसा साथी था जो उससे निश्छल प्रेम करता था। कुछ देर वह धर्म–संकट में पड़ा रहा, फिर उसे एक उपाय सूझा।

उसके पास संसार के दो नक्शे पड़े थे, एक को उसने टुकड़ों में फाड़ दिया और कहा : "हर देश को उसकी सही जगह पर रखो, जिससे वह दुनिया बन जाए। शीघ्र ही लड़का अपने काम पर लग गया और चाचा अपने काम पर।

काफी प्रयत्न करता रहा पर भतीजा सफल न रहा। तब तक चाचा का गृह–कार्य लगभग पूरा होने को था। उसने सभी टुकड़ों को वापस ले लिया। उसने एक दूसरे नक्शे के पीछे लड़के के पिता जी का फोटो चिपका दिया। फिर उसे भी फाड़ दिया और कहा 'अपने पिता जी का फोटो बनाओ', भतीजा इस कार्य में आनंद लेने लगा और आसानी से यह कार्य पूरा कर दिया। जब पिता जी के फोटो को घुमाया तो संसार का नक्शा बन गया था।

गुरु जी की यह बात सुनकर सभी छात्र हँसने लगे। गुरु जी ने प्रश्न किया "इस घटना से तुम्हें क्या शिक्षा मिली?" कोई भी अपेक्षित उत्तर न मिलने पर उन्होंने मुझे संकेत करके कहा, (मुझे हाल ही में प्राथमिक सरकारी पाठशाला में अध्यापक के लिए टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश मिला था।) "मुझे खुशी है, तुम मेरे छात्र से सरकारी अध्यापक बन गए, पर मुझे तब ज़्यादा प्रसन्नता होगी जब तुम अपने जैसे किसी को एक अध्यापक बना दोगे, तब जाकर अपने को सफल अध्यापक समझना।" यह बात मुझे सीधे तीर की तरह लगी थी। 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम।' पहले मनुष्य बन फिर दूसरों को मानव बना। देखा, एक आदमी को बनाते–बनाते पूरा संसार बन गया। हर कोई इस प्रयास में लगा रहे तो यह संसार सुंदर हो जाएगा। और एक बात जो खुद मेरे गुरु जी के जीवन में घटी थी, यह उल्लेख कर रहा हूँ। मुझे संदेह नहीं, पाठकगण लाभान्वित होंगे।

एक बार गुरु जी अपने टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज का एक दृष्टांत सुनाने लगे जो उनके मनस्पटल में चिपका हुआ था। यह उन्नीस सौ साठ के वर्ष की बात है। प्रो. रामप्रकाश जी अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिए भारत से बुलाए गए थे। देश विकसित नहीं हुआ था। एक रोज़ की बात है, प्रोफेसर जी कक्षा में आए और उन्होंने सभी छात्राध्यापकों से पूछा: "भविष्य में तुम अपने बच्चों को क्या बनाना चाहते हो?" बहुतों ने जनरल पर्पोज (जी.पी.) का अध्यापक कहा, किसी ने क्लर्क, किसी ने पुलिस अफसर, किसी ने नर्स आदि बताया। प्रोफेसर साहब को मन ही मन ग्लानि हुई। फिर सोचा, इनका ऐसा सोचना, इनका दोष नहीं, यह देश की परिस्थिति और परिवेश में पलने का असर है।

उन्होंने छात्राध्यापकों से पुनः प्रश्न किया "तुम्हारे माता–पिता कौन हैं?"

सहज उत्तर था "मजदूर"

"और तुम क्या बन गए?" प्रोफेसर ने प्रश्न दोहराया।

"अध्यापक" सभी का सामूहिक उत्तर था।

प्रोफ़ेसर जी ने अपनी भावनाओं को दबाते हुए कहा "तुम्हारे माता–पिता मज़दूर हैं और तुम्हें अध्यापक बनाया, तुम अध्यापक होकर अपने बच्चों को अध्यापक बनाओगे तो मानो एक मज़दूर ने अपने बच्चे को मज़दूर बनाया। प्रगति कहाँ हुई?"

सभी उनके आशय को समझ गए। वे कहते गए कि 'वेद में लिखा है– 'प्रचोदयांताम'–तुम सदा ऊपर चढ़ते जाओ। अपने बच्चों को कम से कम एक कदम आगे बढ़ाओ, तब ही तुम्हारी जीवन–यात्रा सफल होगी।"

फिर गुरु जी शांत हो गए, किसी गंभीर सोच में डूब गए थे। यह हर किसी को अपनी–अपनी धारणा बनाने का अवसर था।

लालमाटी, मॉरीशस

मोहन महर्षि

– महेश रामजियावन

मोहन महर्षि का जन्म 30 जनवरी 1940 को अजमेर, राजस्थान में हुआ था। वे 1965 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली से नाट्य कला में निष्णात हुए। 1980 से 1986 तक उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक का कार्यभार संभाला। वे एक विख्यात अभिनेता, निर्देशक और नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। 1992 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मान दिया गया था।

50 वर्षों के अथक नाट्यकर्म के अंतर्गत मोहन महर्षि ने लगभग 90 नाटकों का निर्देशन किया तथा उन्हें प्रख्यात भारतीय और विदेशी निर्देशकों, अभिनेताओं, प्राध्यापकों और नाटककारों के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ।

1973 में भारत सरकार ने मॉरीशस के प्रधानमंत्री दफ्तर में सांस्कृतिक सलाहकार के रूप में उन्हें नियुक्त किया था। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक के अतिरिक्त, पंजाब विश्वविद्यालय में वे प्रोफ़ेसर के रूप में भी भारतीय रंगमंच का प्रचार कर चुके हैं। वे इसी विश्वविद्यालय के कुलपति और डीन रह चुके हैं। वे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के उपाध्यक्ष और सरोजनी नायडू स्कूल के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। उनकी प्रशिक्षण–प्रतिभा से उन्होंने इंडियन इंस्टिट्यूट (II) कानपुर और दिल्ली, अहमदाबाद, देहरादून और हैदराबाद में चेयर प्रोफ़ेसर का कार्यभार संभाला।

1973 में वे अपनी पत्नी ऑजला और बच्चों के साथ सांस्कृतिक सलाहकार के रूप में मॉरीशस पधारे। उन्हें युवा तथा क्रीड़ा मंत्रालय में रंगमंच के विकास का कार्य सौंपा गया। उन्हें हर वर्ष नाटक प्रतियोगिताएँ आयोजित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। मॉरीशस में भारतीय मूल के लोगों के बीच हिंदी, तमिल, तेलुगु और मराठी भाषाओं में कार्यशालाओं और नाटक प्रतियोगिताओं के आयोजन और एक मॉरीशसीय रंगमंच के विकास का कार्यभार सौंपा गया।

मॉरीशस आते ही मोहन महर्षि ने 300 युवा क्लबों का दौरा किया और गाँव–गाँव में नाटक करने का प्रोत्साहन दिया। 1973 में उन्होंने ऑस्लारे में प्रथम रंगमंच–कार्यशाला का आयोजन किया। एक सप्ताह की इस कार्यशाला में लगभग 100 युवा नाट्य प्रेमियों ने भाग लिया। उस अवसर पर मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के प्रथम भाग का मंचन हुआ था। 1974 में उर्दू भाषियों के साथ कार्यशाला का आयोजन हुआ जिस में 'तुगलक' नाटक का मंचन हुआ था। 1975 में तमिल भाषियों के साथ एक नाट्य कार्यशाला चली जिस में पुष्पार थम का लिखा नाटक 'मरुमागानार बनकर' मंचित हुआ था। इन कार्यशालाओं में उन्होंने अभिनय, निर्देशन और रंगमंच के विभिन्न तकनीकों का प्रशिक्षण प्रदान किया।

1973 में प्रथम नाटक प्रतियोगिता का आयोजन हुआ जिसे अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई। इस सफलता को देखते हुए 1974 में उर्दू भाषा में, 1975 में तमिल में, 1976 में तेलुगु में और 1977 में मराठी भाषाओं में हर वर्ष ये प्रतियोगिताएँ शुरू हुईं जो आज तक चल रही हैं।

रंगमंच के विकास के लिए उन्होंने कार्यशालाओं व सेमिनार के अतिरिक्त 1975 में धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' नाटक की तैयारी की और देश भर में कई स्थानों पर उसका मंचन किया गया। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर नागपुर व दिल्ली, भारत में इस के कई सफल

मंचन हुए। 'अंधा युग' प्रथम नाटक था जिसका मंचन स्थानीय कलाकारों द्वारा भारत में किया गया था। 1976 में द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में आयोजित किया गया था जिसमें मोहन महर्षि ने स्थानीय कलाकारों द्वारा मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' और बादल सरकार का 'एवं इन्द्रजीत' का सफल मंचन कराया था।

1976 में मोहन महर्षि ने युवा तथा क्रीड़ा मंत्रालय में 'क्रियेटिव आर्ट्स युनिट' की स्थापना की। भारतीय भाषाओं में प्रतियोगिताएँ तथा कार्यशालाएँ आयोजित करने के लिए शिक्षा मंत्रालय में रंगकर्मियों को लेकर ड्रामा युनिट का गठन हुआ। मोहन महर्षि ने इन अफसरों को प्रशिक्षित किया।

रंगमंच के विकास के लिए मोहन महर्षि ने 1976 में एक मोबाइल थिएटर की स्थापना की जिसमें मंत्रालय के अफसर छोटे–छोटे नाटक तैयार करके गाँव–गाँव में मंचित करते थे। मोहन महर्षि ने इनायत हुसैन इदन के हास्य नाटक, 'जिन्दा गजट' का निर्देशन किया जो कि बहुत ही सफल रहा।

1984 में मोहन महर्षि दम्पति भारत चला गया। यहाँ से जाते ही उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निर्देशक का कार्य सम्भाला। मॉरीशस में 11 वर्षों के कार्यकाल में मोहन महर्षि ने मॉरीशस के रंगमंच को एक नया आयाम दिया।

1974 में हमने त्रियोले नोर्थ यूथ क्लब की ओर से द्वितीय हिंदी नाटक प्रतियोगिता में भाग लिया था। मैंने मोहित चट्टोपाध्याय का लिखा नाटक 'गिनी पिग' चुना था और जोर–जोर से रिहर्सल चल रहा था। सदा हॉल में पहली बार के लिए मोहन महर्षि हमारा रिहर्सल देखने आए। उस नाटक में शोभा शंकर, आस्तानन्द सदासिंह और राजेन्द्र स्वत: भाग ले रहे थे। वे हमारा रिहर्सल देखकर हतप्रभ रह गए। उन्हें आशा नहीं थी कि 'गिनी पिग" जैसा प्रयोगात्मक नाटक हम कर पाएँगे। जब हमारा नाटक फाइनल के लिए चुना गया तो मोहन महर्षि दोबारा देखने आए। उन्होंने नाटक का दृश्य–बन्ध बदलने का अनुरोध किया था, जिसे आस्तानन्द सदासिंह ने किया था। आस्तानन्द सदासिंह को मोहन का परामर्श पसन्द नहीं आया। उसने नए दृश्य–बन्ध को अस्वीकार करते हुए अपने आप को ग्रुप से बाहर कर लिया। मेरे सामने संकट पैदा हो गया कि कुछ ही दिनों में हमें फाइनल के लिए प्लाज़ा थिएटर में खेलना पड़ेगा। राजेन्द्र और मैं घबराहट में मोहन महर्षि के घर कात्र–बॉर्न पहुँचे। मोहन बहुत ही नाराज़ हुए। हमने कहा कि हम विवश होकर नाटक नहीं प्रस्तुत कर सकते। हम और मोहन महर्षि उसी रात युवा और क्रीड़ा मंत्री, माननीय दयानन्दलाल बसंत राय के घर, ला–रोज़ा पहुँचे। मंत्री जी नाखुश हुए। अंत में हमें परामर्श दिया कि नए दृश्य–बन्ध को छोड़कर पुराने दृश्य–बन्ध में ही खेला जाए। इस तरह आस्तानन्द सदासिंह ने पुन: नाटक में भाग लिया और फाइनल में मुझे श्रेष्ठ निर्देशक और 'गिनी पिग' को श्रेष्ठ नाटक का पुरस्कार प्राप्त हुआ। मोहन महर्षि न खुश थे और ना ही नाखुश।

1974 में मैं प्रशिक्षण महाविद्यालय में छात्र था। प्रोफेसर रामप्रकाश हमारे प्राध्यापकों में से एक थे। मैं 'क्लॉस कैप्टन' और प्रोफेसर का प्रिय छात्र था। उन्हीं दिनों 'परी तालाब' में बड़े हॉल का निर्माण कार्य पूरा हुआ था और उसके उद्घाटन की तैयारी चल रही थी। माननीय मंत्री बसंत राय के आदेश पर मोहन महर्षि को हॉल की साज–सज्जा और कार्यक्रम तैयार करने का काम सौंपा गया था। मोहन महर्षि ने प्रो. रामप्रकाश से किसी कलाकार की सेवा के लिए अनुरोध किया जो 'परी तालाब' आकर साज–सज्जा और पेंटिंग का काम कर सके। प्रो. रामप्रकाश ने इस कार्य के लिए हमें चुना। मोहन महर्षि दोपहर में हमें टी.टी.सी. से लेते थे और रात देर तक हॉल में चित्रकारी और लिखाई का काम करते थे। मेरे साथ मेरा दोस्त मातादीन भी था। काम समाप्त होने पर मोहन महर्षि हमारे साथ पंडित जी के यहाँ भोजन करते थे। भोजन के पश्चात मोहन मातादीन को गंगा तालाब से लालमाटी और मुझे त्रियोले छोड़कर कात्र बोर्न अपने घर वापस जाते थे। माननीय मंत्री बसंत राय मोहन महर्षि और हमारे कामों से बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने हमें बहुत बधाई भी दी।

युवा तथा खेलकूद मंत्रालय द्वारा पोंत जेरोम में तीन दिनों की कार्यशाला का आयोजन हुआ था। बाहर एक बड़ा पंडाल बना था जिसमें मंच का भी प्रावधान था। मोहन महर्षि ने संस्कृत नाटक 'मृच्छ कटिकम्' की तैयारी की। कॉस्टिंग हुई और दिन रात लोग रिहर्सल में जुट गए। सब लोग अपने रोल की तैयारी में जी–जान से लगे थे पर सूत्रधार का पाठ करनेवाला अटक रहा था। शाम को जब नाटक का प्रदर्शन होनेवाला था तो मोहन को लगा कि यह लड़का सूत्रधार की भूमिका निभाने में असमर्थ है। मैं स्टेज मैनेजमेंट का भार सम्भाल रहा था। मोहन ने मुझे बुलाया और सूत्रधार का पाठ करने को कहा और स्क्रिप्ट मेरे हाथों में थमा दिया। सुबह का मिला पाठ शाम को फाइनल कर देना था।

अंजला महर्षि ने मेरे साथ काम किया और मैंने सूत्रधार के पाठ को बखूबी पढ़ा और मोहन महर्षि ने मेरी प्रशंसा की।

'अंधा युग' नाटक का मंचन करने में हम लोग 'लोटस सिनेमा', शेमें ग्रेन्यें गए थे। वहाँ पर भिखारी जगदीश आया था जो नाटक में अश्वत्थामा की भूमिका निभा रहा था। बहुत अच्छी तैयारी थी। धीरे–धीरे लोगों की भीड जमा हो गई। सभी कलाकार अपनी वेश–भूषा और मेक–अप करके तैयार हो चुके थे। एक कलाकार, राजकरण, वृद्ध सैनिक की भूमिका अदा करता था, हड़ताल और रास्ता बन्द होने के कारण वह सुरीनाम भी नहीं पहुँच पाया। हॉल भर चुका था, नाटक शुरू करने का समय हो गया पर राजकरण बम्बा अनुपस्थित था। मोहन महर्षि ने मुझे बुलाया और वृद्ध सैनिक का रोल करने को कहा। मुझे विवश होकर वह रोल करना पड़ा था। जब मैंने मंच पर प्रवेश किया तो शुरु में कुछ लाइन नहीं बोल पाया। जैसे ही अगली लाइन बोला तो अश्वत्थामा को पता चल गया कि मैं लाइनें भूल रहा हूँ। वह चतुराई से मेरी ओर लपका और मुझे दबोचकर मार डाला। किसी को पता नहीं चला कि मैं लाइनें भूल गया हूँ। नाटक समाप्त होने पर मोहन महर्षि ने मेरी पीठ थपथपाई और मजाक उड़ाया। नाटक के अन्य कलाकार भी उस दृश्य को देखकर लोट–पोट हो गए थे।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए हम लोग 'अंधा युग' नाटक का मंचन करने गए थे। नागपुर में नाटक का प्रथम मंचन हुआ था। इसका मंचन दिल्ली के रंगमंदिर, आई.टी.ओ. में होना था। वह प्रदर्शन चुनिन्दा रंगप्रेमियों, प्रेस और आलोचकों के लिए आयोजित था। डॉ. करण सिंह नाटक देखने आए। मोहन महर्षि काफ़ी उत्तेजित थे क्योंकि उन्होंने उसी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में पढ़ाई की थी और उनके सारे दोस्त और रंगप्रेमी विदेशी कलाकारों द्वारा प्रस्तुत 'अंधा युग' नाटक देखने आए थे।

मॉरीशस

पहली से छठी कक्षा में हिंदी की पढ़ाई

– सुश्री आरती लोचन

अध्यापिका बनना मेरे बचपन का सपना रहा है। जब यह पूरा हुआ तो आँखों और कानों के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। 2007 से 2010 तक प्रशिक्षण प्राप्त, पहली बार कक्षा में प्रवेश करने की यह अनुभूति अभी तक याद है।

सन् 2007 में जब प्राथमिक शिक्षिका के लिए पत्र मिला तो मुझे बहुत खुशी हुई। दो साल की कड़ी मेहनत के बाद मुझे मेरा पहला स्कूल बहुत दूर मिला, लेकिन हताश नहीं हुई। दूसरी जाति के बच्चों को हिंदी पढाना एक चुनौती थी और यह पूरा भी हुआ। जब तीन साल बाद एक बड़े स्कूल में काम करने का सुअवसर मिला तब पहली बार हिंदी शिक्षिका के रुप में उभरने का मौका मिला। यहाँ मैं पहली से छठी कक्षाएँ करती थी जिनमें कम से कम बीस छात्र होते थे। हरेक कक्षा अपने आप में अलग होते हुए भी एक परिवार सी लगती थी।

यह कहना अनुचित होगा कि कोई एक कक्षा मेरी प्रिय थी क्योंकि मेरे लिए सब एक समान थीं। मुझे याद है, हरेक त्यौहार मैं उनके साथ मनाती थी। होली के दिन मैं और मेरे मित्र अपने–अपने छात्रों को तिलक लगाते थे। हम अपनी कक्षा में होली के गीत भी गाते थे। हम पहले से ही गीत सीखते थे। होली के दिन छात्र पारम्परिक बाजे (लोटा, चम्मच, ढोलक) लाते और हम गाकर अपना पर्व मनाते थे। स्वतंत्रता दिवस के एक सप्ताह पूर्व हम पोस्टर लगाते थे। एक साल चौथी, पांचवीं और छठी कक्षा के छात्रों ने अपने मित्रों को हाथ से बना चौरंगा भेंट किया, जैसे 'बुकमार्क' आदि। संगीत दिवस तो स्कूल में एक ही दिन मनाया जाता है परंतु मेरा और मेरे छात्रों एवं दो मित्रों के बीच एक सप्ताह से मनाया जाता था। अभ्यास के दौरान सब मिलकर नाचते और गाते थे। जन्मदिन के अवसर पर जन्मदिन के हिंदी गाने तो एकदम अनिवार्य हो चुके थे। आज भी इन त्यौहारों के दिन मैं उन पलों को याद करती हूँ।

हरेक कक्षा में काम करना अत्यन्त खुशी की बात थी। पहली कक्षा में एक बार 'सवारी' पाठ चल रहा था। पुस्तक में हवाई जहाज़ का

चित्र था। मैं अभी तक 'बस' तक ही पहुँची थी कि एकाएक एक छात्रा अपनी जगह से उठकर आई और मुझे छूकर धीमी आवाज़ में बोली: "बहनजी, मेरे पिताजी इसी हवाई जहाज में घूमने गए थे " और पुनः बैठने चली गई। यह मासूमियत तो स्वर्ग में रहने के बराबर है।

जब मैंने देखा कि ज़्यादातर छात्रों को पाठ समझने में कठिनाई हो रही थी तब मैंने एक तरीका अपनाया जो काफ़ी हद तक सफल रहा। अधिकतर छात्र पाठ में आए सर्वनाम को समझ नहीं पा रहे थे। तब हम वाक्य पढ़ते थे और ज्यों ही पहला सर्वनाम आता था तो रेखांकित करके ऊपर पहले पढ़े वाक्य में आई संज्ञा को लिखते थे। इससे छात्र प्रश्नों और पाठ को आसानी से समझ लेते थे। भूतकाल में 'ने' के प्रयोग में भी छात्र दुविधा में पड़ जाते थे, तब यहाँ पर भी तरीके अपनाए गए जिससे पाठ ग्रहण में सहजता आए। 'ने' को घेरकर उस से पहले आए शब्दों को काटा जाता था, फिर क्रिया से पूर्व आए शब्दों को रेखांकित करके एक लड़का/दो लड़के/एक लड़की/ दो लड़कियों के चित्र बनाकर क्रिया का रूपांतरण किया जाता था।

एक बार छठी कक्षा के छात्रों ने समाचार भी प्रस्तुत किया था। हुआ यह था कि छात्र अपनी भावी नौकरी की बात कर रहे थे, तब किसी एक छात्रा ने कहा कि वह टी.वी पर समाचार पढ़ना चाहेगी। बातों-बातों में किसी ने चुनौती के रूप में अगले दिन प्रस्तुत करने को कहा। राजमुच मेरी छात्रा ने अगले दिन प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

लगातार 7 सालों के इस अनुभव ने मुझे पूर्ण रूप से बदल दिया है। छुट्टियाँ भी छात्रों की याद में ही बीतती थी। जब छुट्टियों के बाद पुनः कक्षा में जाती तो हमेशा यह अनुभव करती 'लौ हो गया दिन पूरा।' मन को पूरी तरह से संतुष्टि मिलती थी।

मॉरीशस

गोवा से कुछ अपनी भी...

– डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र

गोवा नैसर्गिक सुषमा से भरपूर, भारत का सुरम्य, सुस्वच्छ, सुसंस्कृत, एवं सुविदित प्रदेश है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार परशुराम की यह धरती अपने मंदिरों, चर्चों एवं समुद्र तटों के कारण मनमोहक है। यही कारण है कि गोवा सैलानियों का प्रमुख पर्यटक स्थल बना हुआ है। यहाँ अक्टूबर से फरवरी तक लाखों की संख्या में देशी –विदेशी पर्यटक आते हैं। पुर्तगालियों के लगभग साढ़े चार सौ वर्षों के शासन एवं हिंदू राजाओं द्वारा शासित, गोवा भारतीय–पाश्चात्य–मिली–जुली संस्कृति, सहबंधुत्व, सौहार्द, सद्भाव आदि की मिसाल प्रस्तुत करता है। कतिपय मायनों में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित, गोवा भारतीय संस्कृति की समृद्ध परम्परा संजोए हुए है। आज भी गणेश चतुर्थी, तुलसी विवाह, गुडी पड़वा, नरकासुर आदि त्यौहार उसी रूप में मनाए जाते हैं। यहाँ कोंकणी, मराठी, अंग्रेजी और हिंदी भाषा बोली जाती है।

दरअसल बात बयालीस साल पहले की है, जब मैं रोज़गार की तलाश में स्वजनों से विलग, महानगरी मुंबई में परिजनों से मिला। कतिपय मास बेरोज़गारी के दंश को भोगते हुए भाई–बंधुओं में श्री रमाशंकर मिश्र के सहयोग से एक कंपनी में सुपरवाइज़री की नौकरी मिली। यह स्वभावतः मुझे पसंद नहीं आई। उस समय गुजर–बसर के लिए इसके सिवा और कोई चारा नहीं था। कुछ महीने बाद उसे छोड़कर बी. एड. करने का निश्चय किया। संयोग से मेरे रिश्तेदार, श्री शिवशंकर शुक्ल के मार्गदर्शन से गांधी शिक्षण भवन, जुहू में प्रवेश भी मिल गया। यहाँ की कक्षाएँ प्रातः नौ बजे गांधीजी की प्रार्थना के बाद दस बजे से शुरू होकर विभिन्न गतिविधियों के साथ पाँच बजे समाप्त होती थीं। कॉलेज से कुछ दूर पैदल फिर बस एवं लोकल ट्रेन से भांडुप पहुँचने तक सात बज जाते थे।

उत्तर भारतीय प्राथमिक पाठशाला भांडुप के प्रधानाध्यापक पिता तुल्य स्वर्गीय जयराम मिश्र के सहयोग से तीन ट्यूशन मिल गए। एक सुबह छः से सात और अन्य दो सायं साढ़े सात से साढ़े नौ बजे रात तक। आवास तक आते –आते दस एवं भोजन आदि की व्यवस्था में ग्यारह बज जाते थे। ट्यूशन से हमारा आर्थिक खर्च निकलने लगा। ईश्वर की कृपा से बी. एड. करने के पांच–छः महीने बाद 1979 में केंद्रीय विद्यालय, वास्को–द–गामा में टीचर की नौकरी मिल गई। उस समय अधिकांश लोग गोवा को विदेश समझते थे। बीयर–बार, डांस आदि की बातें सुनकर अजीब लगता था। अभाव भरी ज़िंदगी की पहली स्थायी नौकरी की प्रसन्नता में सब कुछ सुखद लगा। जुलाई के अंतिम सप्ताह में एक छोटा –सा सूटकेस और छतरी लेकर हीरो स्टाइल में वास्को के लिए निकल पड़ा। गोवा प्रांत की सीमा में गाड़ी प्रवेश करते ही बीयर ! बीयर !व्हिस्की ! व्हिस्की ! की आवाज़ सुनकर दंग रह गया ! मैंने सोचा कि हे भगवान! कहाँ आ गया ? पूर्वी उत्तरप्रदेश के खेड़ा गांव में जन्मा– पला– बढ़ा था, जहां शराब का नाम लेना पाप समझा जाता था। वर्ष में कभी –कभार जीप दिखाई दी जाती थी तो हम भाई –बहन पेट्रोल की गंध सूंघने के लिए भागते थे। शादी –ब्याह और मेला जाने की तैयारी हफ्ते भर पहले शुरू हो जाती थी । साबुन नहीं मिला तो रेह में कपड़ा साफ कर लिया । उस समय गांव में सनलाइट और लाइफबॉय साबुन मिलता था। पहला कपड़ा साफ करने के लिए तो दूसरा मल्टीपर्पज़ के काम आता था। जब कोई बंबई –कलकत्ता से आता था तो हम लोग उसे देखने के लिए दौड़ते थे। उस समय गाँव और शहर का अंतर समझ में आता था। अब 'अहा ! ग्राम्य जीवन क्या है?' कोसों दूर हो गया है।

गोवा आने के कुछ समय बाद मंदिरों में गया तो भारतीय संस्कृति की आत्मा, गिरिजाघरों में प्रभु ईसामसीह के प्रति आस्था एवं समुद्र तटों पर सागर की उत्ताल तरंगों के साथ सूर्य स्नान करते हुए विदेशी पर्यटकों के दर्शन हुए। पर्यटक अर्द्धनग्न अवस्था में रेत पर लेटे हुए दीन– दुनिया से बेखबर आराम करते थे। मुझ जैसे निपट गाँव में रहने वाले व्यक्ति के लिए सबकुछ अचंभा लगा । घर–परिवार एवं समाज के संस्कार इतने प्रबल थे कि मैंने केवल मंदिरों को देखा, जोकि आज की चकाचौंध संस्कृति में पिछड़ापन

माना जाएगा। यहाँ अन्य प्रसंगों को छोड़ रहा हूँ।

20 जून 1990 को गोवा विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के पद पर हमारी नियुक्ति हुई। तत्पश्चात रीडर, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा अधिष्ठाता, भाषा एवं साहित्य संकाय के पद पर कार्य किया। सम्प्रति भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के सौजन्य से अप्रैल 2016 में अतिथि आचार्य हिंदी, इंडोलॉजी विभाग, जाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया में आ गया।

आज से सोलह साल पहले, 2001 में कतिपय विज्ञान के प्राध्यापक इग्लैंड और अमेरिका से अपनी फेलोशिप समाप्त कर गोवा विश्वविद्यालय आए। मेरे ही आवासीय परिसर में ये लोग भी रहते थे। शाम को हम लोग एकत्र होकर आपसी संवाद करते तो उनमें अहं भाव झलकता था। स्वयं को विशिष्ट कोटि में समझते थे। मैं हीनताबोध से ग्रसित होकर विदेश जाने का सपना देखने लगा। फिर मैंने सोचा, 'अरे ! क्या हिंदी प्राध्यापक के लिए संभव होगा?' यह विकट प्रश्न मेरे सामने 'टेढ़ी खीर' की तरह खड़ा हो जाता । 'हिम्मत न हारिए, बिसारिए न राम को' का मंत्र जाप करके यू .जी.सी. की वेबसाइट पर विदेश गमन का परिपत्र खंगालने लगा। इंडो इटैलियन कल्चरल एक्सचेंज प्रोग्राम का परिपत्र मिला। उसमें शर्त यह थी कि आवेदन के साथ रोम विश्वविद्यालय का प्लेसमेंट लेटर संलग्न होना चाहिए। यह दूसरी समस्या मुँह बाए खड़ी हो गई। एक हफ्ते यहाँ –वहाँ सर पटकता रहा, लेकिन कुछ भी हाथ नहीं लगा।

एक दिन सायं 5 बजे घर पर बैठा प्लेसमेंट लेटर के विषय में सोच ही रहा था कि वॉचमैन ने घंटी बजाई। मैंने कहा "कौन?" " सर ! नीचे कोई आपको ढूढ रहा है। " बाहर आकर देखा तो धवल धोती –कुरता की पोशाक में मंझली कद–काठी, श्याम वर्ण का अधेड़ आदमी खड़ा है। मैंने प्रणाम किया। " मिश्रजी ! आप मुझे नहीं पहचान रहे हैं ? मैं सेवा निवृत्त प्रो. तोमर सिंह शांतिनिकेतन विश्वविद्यालय कलकत्ता से गोवा भ्रमण के लिए आया हूँ। आपके विषय में किसी ने चर्चा की तो सोचा कि मुलाकात कर लूँ। " मैंने कहा " यह तो मेरा सौभाग्य है।"

श्रीमतीजी ने मेरी परेशानी को समझते हुए चाय और अल्पाहार की अच्छी व्यवस्था की। चाय–पान के साथ –साथ औपचारिक बातचीत का सिलसिला शुरु हुआ । उन्होंने बताया कि "मैंने हिंदी का अध्यापन करते हुए शैक्षणिक कार्यक्रमों के अंतर्गत कई देशों की यात्राएं भी की हैं। चर्चा के दौरान इटली का प्रसंग भी आया। उस समय मेरी स्थति 'परम रंक जनु पारसु पावा' जैसी हो गई।' बाबा तुलसी की पंक्तियाँ जीवन के हर मोड़ पर सहारा देती हैं। अंदर ही अंदर मंथन शुरू हो गया। फिर सोचा कि 'रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राख्यो गोय। सुनि इठलैहैं लोग सब बांटी न लैहै कोय।।' क्या यहाँ निजी स्वार्थ की बात करना उचित होगा ? नकारात्मक उत्तर से बड़ी अवमानना होगी। अवसर चूक जाने की चिंता भी सताने लगी । जब से उन्होंने इटली यात्रा की बात की, तब से मैं काफ़ी विनम्र हो गया था। मेरे आवभगत की भावना में वृद्धि हो गई । फिर क्या था कि बाबा तुलसी की तरह समय देख कर मैंने अर्जी पेश कर दी। मेरा ध्यान उनके मुखमंडल पर केंद्रित हो गया। उन्होंने कहा " इसमें क्या बात है ? रोम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मिलानेती मेरे मित्र हैं। मैं उनको मेल कर देता हूँ। आप चिंता न करें । निमंत्रण –पत्र मिल जाएगा।' फिर तो मैं उनका मुरीद हो गया। मेरे लिए तो उनकी कीर्ति सार्थक साबित हुई। बाबा याद आए' कीरति, भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।।" 'मृत्युंजय' उपन्यास में कवच और कुंडल दान देने के प्रसंग में कर्ण कहता है –" कीर्तिहीन मनुष्य जीवित होते हुए भी मृतवत ही होता है। कीर्तिवान के लिए ही स्वर्ग के द्वार खुलते हैं। कीर्ति मनुष्य को स्मृति के रूप में अमर जीवन देने वाली दूसरी माता होती है। कीर्तिहीन जीवन जीवनमृत का जीवन होता है।" (524–527) प्रो. तोमर की कीर्ति के प्रभाव से पंद्रह दिन के अंदर प्रोफेसर मिलानेती का पत्र मिल गया।

मैंने तुरंत गोवा विश्वविद्यालय द्वारा इंडो इटैलियन कल्चरल एक्सचेंज कार्यक्रम के अंतर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग , नई दिल्ली को आवेदन भेज दिया। लगभग एक महीने बाद आयोग की स्वीकृति इस शर्त पर मिली कि गोवा विश्वविद्यालय को पहले सारा खर्च वहन करना पड़ेगा। तत्पश्चात यू.जी. सी. द्वारा भुगतान किया जाएगा। इस संदर्भ में वित्त विभाग का नकारात्मक रुख रहा। मुझे लगा कि अब जाना संभव नहीं होगा, लेकिन मैं तत्कालीन कुलगुरु प्रोफेसर बी. एस. सोंधेजी की सदाशयता के प्रति नतमस्तक हूँ, जिनकी कृपा से सारी समस्याओं का समाधान हो गया। यू.जी. सी. के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भी कृपा रही। विभाग प्रमुख

होने के कारण मेरे सामने कार्यालयी पत्राचार में भी अड़चनें नहीं आईं। लिपिक श्रीमती प्रार्थना का टंकण एवं पत्राचार कार्य में भरपूर सहयोग मिला। प्रो.श्रीनिवासन एवं प्रो. आई. के. पई ने हौसला अफजाई की। प्रो. श्रीनिवासन ने यात्रा संबंधी जानकारी देते हुए मुझे डॉलर भी मुहैया करवाया। अंततोगत्वा इटली जाने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जीवन में पहली बार विदेश गमन की सुखानुभूति से मन की कलियां खिल उठी थीं। फिर सोचने लगता था कि इससे यूरोपीय भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं परिवेश की जानकारी भी होगी। कालांतर में माता –पिता , पत्नी, छोटे –छोटे बच्चों, बंधु–बाँधवों, इष्ट मित्रों आदि के विछोह से मन भारी हो जाता। खुदा न खास्ता यदि कहीं कुछ हो गया तो छोटे –छोटे बच्चों का क्या होगा ? दरअसल ऐसे समय मन की चंचलता में भावों और विचारों की कड़ियाँ टूटती –बनती हैं। मैंने भावनात्मक आवेग को वैचारिक विवेक से नियंत्रित किया।

1 जून 2001 को गोवा से मुंबई तक का सफर रेल द्वारा किया। लगभग रात के 12 बजे अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँच गया। थोड़ी देर तक इधर –उधर भौंचक्का होकर देखता रहा, फिर एयर इंडिया का बोर्ड देखकर अंदर घुस गया। संगणक पर सारी जानकारियाँ आ रही थीं फिर भी मन की तसल्ली के लिए एक कर्मचारी से पूछा तो उसने बताया कि " आपकी फ्लाइट सुबह 5 बजकर 50 मिनट पर है। आप चिंता न करें। लगभग 3 बजे से आपको अपनी यात्रा की सारी औपचारिकताएं पूरी करनी होंगी।" फिर प्रतीक्षालय में सोते –जागते तीन बजते ही बोर्डिंग पास के लिए कतार में खड़ा हो गया। सारी कागजी कार्रवाई पूरी होने के बाद गेट नं. 19 पर गया जहाँ से हवाई जहाज को उड़ान भरना था।

विमान परिचारिका के निर्देशानुसार मैं अपनी सीट पर बैठ गया। विमान समयानुसार दिल्ली के लिए रवाना हुआ। रात जागरण का परिणाम यह रहा कि पलक झपकते ही दिल्ली पहुँच गया। फिर वहां से एक घंटे बाद विमान पेरिस के लिए उड़ा। खिड़की से देखा तो विमान सहज गति से उड़ रहा था। वायुमंडल का अद्भुत दृश्य और उसमें छोटे –छोटे घनशावक अपने माता–पिता विशाल जलधरों की गोद में बैठ रहे थे। दूसरी तरफ देखा तो जैसे सफेद बादलों का वितान टंगा हुआ था। विमान में समय –समय पर परिचारिकाएं खाद्य एवं पेय पदार्थों का वितरण भी मुस्कान के साथ बड़ी तहजीब से कर रही थीं। मनोरंजन के लिए पिक्चर देखने और पत्र –पत्रिकाओं को पढने की भी सुविधा थी।

वायुयान की उड़ान के साथ मन भी अतीत और वर्तमान के बीच उड़ान भर रहा था। 'मृत्युंजय' उपन्यास में दुर्योधन कहता है कि " मन ! केवल दो अक्षरों में कितने महान रहस्य छिपे हुए हैं। सचमुच यह मन क्या है ? संसार का प्रत्येक व्यक्ति मनोभावनाओं की असंख्य रज्जुओं से जकड़ा हुआ एक हाथी नही है क्या ? जहां का तहां निरंतर हितता रहनेवाला ! व्याकुल ! फिर भी अपने –आपको स्वतंत्र और सामर्थ्यवान समझने वाला। जिसको मन कहते हैं, वह भी क्या है ? एक कैकड़ा नहीं है क्या, जिसकी असंख्य भावनाओं के डंक होते हैं। " (२०८) मनुष्य जब अकेले में चिंतन करता है, तो उसके मन में नाना प्रकार के विचारों का सिलसिला सतत् चलता रहता है। जिसमें सुखद और दुखद अनुभूतियाँ होती हैं। जीवन के कुछ ऐसे प्रसंग होते हैं, जिन पर वह विचार करके स्वयं निर्णय लेता है कि उसे क्या करना है। कुछ ऐसी भी स्मृतियाँ होती हैं, जिन्हें वह दूसरों से शेयर नहीं करना चाहता। कभी–कभी साहित्य में भी जीवन की अनुभूतियाँ छनकर आती हैं।

चूंकि मेरा अतीत अभावों एवं संघर्षों के बीच बड़ी जद्दोजहद से गुजरा था इसलिए एक सुखद अनुभूति हो रही थी। फिर भी अतीत कहाँ पीछा छोड़ता है ? 'दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ, आज जो नहीं कही' पंक्ति बार–बार दुहराने के बाद 'दुःख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात' गुनगुनाकर मन को संतोष मिलता । इस प्रकार गुनते –धुनते पेरिस हवाई अड्डे पर पहुँच गया। यहाँ तीन –चार घंटे का विश्राम था। एक –दो घंटे बाहर जाकर पेरिस शहर देखने की लालसा बलवती होने लगी, लेकिन भय के कारण नहीं गया। अंदर ही इधर –उधर घूमता रहा। विमान एक के बाद एक ऐसे उड़ रहे थे, जैसे कि पक्षी उड़ रहे हों। कविवर केदार नाथ सिंह की 'मातृभाषा' कविता की 'जैसे लौटते हैं वायुयान एक के बाद एक आकाश में डैने फैलाए हवाई अड्डे की ओर' पंक्ति तरोताजा हो उठी। पेरिस हवाई अड्डे पर एक भारतीय समूह दिखाई दिया। उनकी भाषा गुजराती और राजस्थानी थी।

एयर पोर्ट पर एक बड़ा–सा हाल था ,जहां पुरुष और महिलाएं एक साथ सिगरेट पी रहे थे। इधर –उधर घूमते –घामते पेरिस से रोम के विमान का समय हो गया। रोम वाले विमान की स्वच्छता एवं उच्चस्तरीय व्यवस्था और साथ ही सजे–धजे गौरांग पुरुष–महिलाओं के बीच हीनता का बोध हुआ।

विमान उड़ने के कुछ समय बाद परिचारिका ने पूछा " आर. यू वेजिटेरियन?" मैंने कहा " यस। " उसने फिर पूछा " विथ वाइन?" मेरे मुंह से निकल गया "यस ", मैंने सोचा थोड़ा पी के देखते हैं कि कैसी होती है ? यहाँ कौन देख रहा है ? लेकिन अंदर ही अंदर घबराहट होने लगी। मन कुलांचें भरने लगा। संस्कार दबाने लगा। गोवा में यदि इष्ट –मित्र पूछ बैठे तो क्या जवाब दूँगा ? झूठ बोलने से अंदर की आत्मा धिक्कारेगी ! बाहर तो सबसे आँखें छुपाई जा सकती हैं, लेकिन अंदर की आँखों का क्या होगा? गोवा में मेरे मित्र प्रो. वी. पी. कांत, प्रो. महेंद्र , प्रो. जनार्दनम एवं अन्य मित्रगण मुझे पंडित कहकर पुकारते हैं। उनसे क्या कहूंगा? इसी कशमकश के बीच पास वाली सीट पर बैठे सज्जन से पूछा "दिस वाइन इज अल्कोहलिक?" उन्होंने कहा "यस।". यह दूसरी मुसीबत खड़ी हो गई। फिर यह सोचकर बोतल वापस कर दी, कि कहीं पहली बार पीने से नशा आ गया तो 'आ बैल मुझे मार' वाली स्थिति हो जाएगी। 'मृत्युंजय' उपन्यास में भीष्म पितामह कुरु वंश का परिचय देते हुए छठे पांडव का उल्लेख करते हैं, लेकिन उसका राज नहीं खोलते। कर्ण तो बचपन से ही अपने जन्म को लेकर परेशान था। वह अश्वत्थामा से पूछता है "वह छठां पांडव का जीवन कैसा होगा ?" अश्वत्थामा कहता है –" जिस वातावरण में वह पला होगा, वही उसका जीवन होगा। क्योंकि संस्कार ही जीवन है। फूलों के परागदंड में छिपा हुआ कृमि भी सत्संगति से देवमूर्ति पर चढ़ाया जाता है। "(४१३) जीवन के प्रबल संस्कार दुर्गुणों को फटकने नहीं देते।

मैं लगभग बारह बजे रात रोम हवाई अड्डे पर पहुँच गया। प्रोफेसर मिलानेती से हुई पूर्व बातचीत के अनुसार मैं उनके हाथ में हिंदी पत्रिका देखकर पहचान गया। वे अपनी कार से मुझे रोम हवाई अड्डे से आवासीय व्यवस्था तक ले गए। रास्ते में रोम के रहन–सहन एवं खान–पान के अलावा हिंदी भाषा और साहित्य के विषय में बातचीत होती रही। रात के लगभग एक बज रहे थे । आतिथ्य सत्कार की गरिमा का पूर्ण निर्वाह करते हुए वे दूसरे दिन के खर्च हेतु कुछ लीरा देकर चले गए।

रविवार 3 जून 2001 रोम का पहला दिन था। सुबह नाश्ते के बाद कामता प्रसाद गुरु की 'हिंदी व्याकरण' पुस्तक पढ़ रहा था कि इसी बीच किसी ने दरवाजें पर दस्तक दी। मैं समझ गया कि प्रो. मिलानेती के कथनानुसार श्रीमती आना (शोध छात्रा रोम विश्वविद्यालय) ही होंगी। दरवाजा खोलते ही आना ने कहा " प्रो. मिलानेती ने आपको रोम के कुछ महत्वपूर्ण पर्यटक स्थलों को दिखाने के लिए भेजा है।" मैंने उनके प्रति शुक्रिया व्यक्त की। तत्पश्चात् आपसी परिचय के बाद हम दोनों रोम की यात्रा पर निकल पड़े। वे मुझे कतिपय हरीतिमा एवं पुष्पों से सुशोभित उद्यानों एवं झरनों को दिखाती हुई रोम के एक ऐसे ऐतिहासिक स्थल पर ले गईं, जहां देश की आजादी के लिए बहादुर सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। पत्थर की शिलाओं पर राजाओं और महाराजाओं का परिचय एवं योगदान का विवरण इतालवी भाषा में लिखा था। आना ने मुझे कतिपय की जानकारी दी।

इसके बाद अन्य पर्यटक स्थल देखने के लिए कुछ दूर आगे गाइड के साथ पर्यटकों का एक झुंड दिखाई दिया। उस स्थल की कुछ जानकारियां गाइड से मिलीं। मैं आना के साथ हिंदी में बात कर रहा था, जिसे सुनकर एक बांग्लादेशी व्यापारी दौड़ता हुआ आया और मारे खुशी के " हम तुम मिले प्यार से....." गीत गाने लगा। मैंने उससे पूछा, " यह कोक कितने का है ?" उसने कहा " मैं इसे 6000 लीरा में बेचता हूँ, लेकिन आप हमारे पड़ोसी देश के हैं ,इसलिए 1000 में दूंगा। " मैं पड़ोसी देश भारत के प्रति उसके भावोद्गार से बहुत प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि काश ! यही प्रेम अन्य पड़ोसी देशों में हो जाता तो सारी समस्याओं का निदान स्वयं सिद्ध हो जाता। उसके आत्मीय भाव को देखकर हम दोनों ने कोक लिया।

शाम के सात बज रहे थे। आना को घर जल्दी जाना था , इसलिए वे चली गईं। मैंने रास्ते में जगह –जगह रेस्टोरेंटों के अंदर और बाहर सिगरेटों पीते हुए स्त्री –पुरुषों को मस्ती में मदिरा–पान करते हुए देखा।

रोम का पहला दिन था। उत्सुकता और कौतूहलता से भरा होने के कारण मुझे सबकुछ 'लागे नया–नया' का भान हो रहा था।

आवास से रेलवे स्टेशन करीब था। शाम को भ्रमण की इच्छा से स्टेशन की ओर निकल गया। रास्ते में साफ–सफाई की अच्छी व्यवस्था देखकर मन प्रमुदित हो गया। बस के चालक अच्छी पोशाक में टाई लगाए हुए बस चलाने के साथ –साथ टिकट भी दे रहे थे। प्रत्येक बस स्टॉप पर बुक स्टॉलों में भी टिकट की व्यवस्था थी। बस का दरवाजा एक बार बंद होने के बाद अगले स्टॉप पर निर्धारित समय पर पहुँचने पर ही खुलता था। यहाँ मुझे फैजाबाद से लखनऊ की बस यात्रा की याद आई– का हो यादवजी ! चलबा नाय। अरे ! राजू टयमिया होई गईल बा। का पंडितजी ! अकतायल बाटा, चलत हई न। अच्छा ! तू चाय पी लेया। हम चलत हई। चला हो सभे ! तनी रुका रहां , एक जनी पिशाब करै गयल हयन। अरे ! सुनत हया हो ! जल्दी आवा बसा छूटत बा ! तनी रोके रहा आवत हई। कंडकटर साहब, ई सनानवा ऊपरा लाद देई। बाराबंकी में उतार लेब।

फिर मैंने गोवा की बस यात्रा के बारे में सोचा।" राव ! राव ! वेगिन कर, पुढे चल ! पुढे चल ! फाटी ! फाटी ! वछ ! वछ। टिकट कड़े मळा मोड़ जाय। तू खई वइता ? हांव वास्को वइता। राव ! तूकां टिकट दिता। घाईं करू नका। मोड़ नागिर दीता।" गोवा की बसें सामान्यतः समय पर चलती हैं। यहाँ बसों के ऊपर सामान लादने का चलन नहीं है।

टर्मिनी स्टेशन के सामने बड़े –बड़े शोरुम थे जिनमें प्रवेश करते हुए संकोच हो रहा था। हिम्मत करके एक शोरुम में गया। शर्ट की कीमत दो लाख, कोट की दस लाख और जूते की सत्तर हजार लीरा देखकर हमारे होश उड़ गए। फिर वहां से रोम शहर की चमक –दमक देखते हुए आवास के पास भोजन के लिए एक रेस्टोरेंट में गया। कुर्सी पर बैठते ही एक भद्र महिला ने इटैलियन में खाने के बारे में पूछा तो मैंने कहा " आई डॉंट नो इटैलियन लैंग्वेज।" उसने मेरी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। उसी समय एक सज्जन आए जोकि थोड़ी अंग्रेजी समझते थे। मैंने उनसे कहा " आई वांट वेजीटेरियन फूड।" उन्होंने कहा " हीयर यू विल गेट ओनली वेज पिज्जा।" महिला ने पीने के लिए विभिन्न मदिरा के नाम लिए तो मैंने कहा " ए ग्लॉस ऑफ वाटर।" वे लोग हँसने लगे।

दूसरे दिन सुबह नौ बजे मकान मालकिन सिगरेट की पीते हुए नाश्ता लेकर आईं और बोली कि " प्लीज गेट रेडी प्रोफेसर मिलानेती विल कम टेन ओ क्लॉक' मैंने कहा " ओ.के. मैडम ! " नाश्ते में टोस्ट ,जाम , बटर , दूध और चाय थी। नाश्ता करने के बाद कुछ देर पढता –लिखता रहा। ठीक ! दस बजे प्रोफेसर आ गए। उन्होंने मुझसे हालचाल पूछा फिर हम दोनों आपस में बातचीत करते हुए रोम विश्वविद्यालय गए। प्रो. ने विभागीय सदस्यों से हमारा परिचय कराया। तत्पश्चात कमरे की कुंजी देकर कहीं चले गए। मैंने सबसे पहले बुकशेल्फ में रखी किताबों का निरीक्षण किया। हिंदी किताबों का संग्रह देखकर सुखद अनुभव हुआ।

कुछ देर बाद एक लंबे कद की सुडौल, सुंदर एवं खूबसूरत लड़की आई और बोली "मेरा नाम अगलाया है। मैं हिंदी विभाग की छात्रा हूँ। प्रो. ने मुझे आपको रोम शहर दिखाने के लिए भेजा है। " उसकी अधकचरी अंग्रेजी मिश्रित हिंदी सुनकर अच्छा लगा। उसने मुझे रोम की प्रसिद्ध नदी 'तिवेरे' के पास बाग –बगीचों, संग्रहालयों और ऐतिहासिक स्थलों को दिखाया ।

अगलाया के जाने के बाद श्री जयप्रकाश भारद्वाजजी आए । उन्होंने अपना परिचय देते हुए बताया कि "मैं मूलतः राजस्थान का रहने वाला हूँ। मेरी शिक्षा –दीक्षा दिल्ली में हुई। कल जो आपको घुमाने ले गई थीं वह मेरी पत्नी आना थीं।" रात के नौ बजे तक हम दोनों साथ –साथ घूमते रहे, फिर मिलने का वादा करते हुए एक दूसरे से जुदा हो गए।

उस समय मुझे सब कुछ अजूबा लग रहा था क्योंकि आज से सोलह साल पहले गोवा में मुझे ऐसे सुपर मार्केट और मॉल देखने को नहीं मिले थे। रोम में आए हुए चार दिन हो गए थे । यहाँ की आबोहवा , आवागमन , रहन–सहन आदि की थोड़ी –बहुत जानकारी हो गई थी। 5 जून को सुबह 'गंगा मैया' उपन्यास के कतिपय अंश पढने के बाद वेटिकन चर्च देखने निकल पड़ा। बस में एक बुजुर्ग महिला ने टूटी –फूटी अंग्रेजी में बताया कि" यहाँ पहले चर्च के पोप लोग ही शासन करते थे। उन्होंने मुसोलिनी के निरंकुश शासन के विषय में बताना शुरू ही किया था कि बस स्टॉप आ गया। वेटिकन चर्च की वास्तुकला एवं परिसर देख कर मैं स्तब्ध रह गया। संग्रहालय में पोप द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओं को देखा जोकि अपने आप में अद्भुत थीं। मुझे पोप की महत्ता के विषय में विशेष जानकारी नहीं थी इसलिए आशीर्वाद प्राप्त करने की मंशा से पोप जॉन पॉल के निवास के पास जाकर संतरियों

से मिलने की इच्छा व्यक्त की। उनमें से एक ने हरे रंग का कार्ड देते हुए कहा "आप कल आइए, सामूहिक रूप से उनके दर्शन कर सकते हैं। ऐसे नहीं मिल सकते।" कुछ समय वहीं विश्राम करने के बाद विभाग आ गया। प्रो. मिलानेती का कमरा बंद था, इसलिए पास की कक्षा में बैठकर 'गंगा मैया' का अधूरा भाग पढ़ गया।

मैंने साढे– छः बजे तक मिलानेती की प्रतीक्षा की । जब वे नहीं आए तो सोचा कि विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण कर लूँ। शाम को भारद्वाज द्वारा बताए गए इंडियन रेस्टोरेंट में जाकर तंदूरी रोटी, आलू मटर की सब्जी और पुलाव भरपेट खाया और फिर कमरे पर आकर सो गया तो सुबह ही उठा।

रोज की भांति 6 जून की भी दिनचर्या शुरू हुई। मुझे दैनिक भत्ता हेतु विदेश मंत्रालय जाना था। प्रो. मिलानेती ठीक दस बजे आ गए। मैंने प्रो. से विभागीय व्याख्यान के विषय में निवेदन किया कि " आप हमारा प्रतिदिन एक या दो व्याख्यान रख दीजिए ताकि अध्यापन और भ्रमण दोनों कार्य साथ –साथ होता रहे।" उन्होंने पूछा कि " आपके व्याख्यान का विषय क्या होगा ?" मैंने कहा " अच्छा होगा कि सबसे पहले भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालते हुए 'भाषा और साहित्य' तत्पश्चात् हिंदी साहित्येतिहास के विकास एवं उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का जिक्र करूँ ।" प्रो. ने कहा " ठीक है जैसा आप उचित समझें। विद्यार्थियों से बहुत सरल हिंदी एवं अंग्रेजी में बात कीजिएगा। " हम दोनों बातचीत करते हुए मंत्रालय पहुँच गए। प्रकृति के सुरम्य अंचल में बनी छः मंजिलों की भव्य इमारत देखकर मैं चकित रह गया। प्रोफेसर ने बताया कि " इस इमारत के सम्पूर्ण बरांडे की दूरी 18 कि.मी. है, जिसमें तीन हजार से अधिक अधिकारी और कर्मचारी कार्य करते हैं।" विदेश मंत्री प्रो. पाओला फेलो अलेमाननी से मिलकर बहुत अच्छा लगा क्योंकि वे मृदुभाषी, हंसमुख ,सहज और बडी भली महिला लगीं। उन्होंने हमारा कार्य तुरंत कर दिया। जब मैंने उनके साथ फोटो के लिए निवेदन किया तो वे आनंदित हो उठीं।

इटली की राजधानी रोम के अलावा मुझे फ्लोरेंस , वेनिस , मिलान , टोंरटो आदि प्रमुख शहरों को देखना था, लेकिन समयाभाव और कुछ मितव्ययी स्वभाव के कारण एक दिन फ्लोरेंस देखने की योजना बनाई। इसके लिए टर्मनी स्टेशन पर पूछ –ताछ कर रास्ते में इटैलियन भाषा से अंग्रेजी में अनुदित पुस्तक खरीदी। फिर वहां से कोलोसीओ देखने चला गया। कोलोसीओ के बाहर तीन–चार व्यक्ति योद्धा की वेशभूषा में घूम रहे थे। मैंने उनके विषय में पूछा तो एक लड़की ने बताया कि " रोम साम्राज्य के सम्राट , सामंत एवं उनके परिवार के लोग कोलोसीओ की बालकनी में बैठकर उस समय इन जैसे हट्टे –कट्टे गुलामों और सिंहों के बीच युद्ध देखते थे। इस कार्यक्रम का आयोजन उनके मनोरंजन के लिए किया जाता था। यदि उनमें से किसी गुलाम की मृत्यु हो जाती थी, तो उन लोगों का दिल पसीजता नहीं था बल्कि वे आनंदित होते थे।" राजतन्त्रात्मक व्यवस्था की अमानवीयता, क्रूरता और निरंकुशता को सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। दुःख की बात है कि 21वीं शताब्दी में भी आतंकवाद के रूप में इस प्रकार की अमानवीय घटनाएं घटित हो रही हैं। आतंकवाद विश्व के लिए एक चुनौती बन गया है।

7 जून को फ्लोरेंस जाने की योजना के अनुसार सुबह जल्दी तैयार होकर टर्मनी स्टेशन से सवा आठ की गाड़ी की बोगी में पैर रखते ही लगा कि कहीं वी.आई.पी. कोच में तो नहीं आ गया? क्योंकि अंदर की सारी व्यवस्था एवं साफ–सफाई उच्चकोटि की थी। मैंने एक यात्री से पूछा तो उन्होंने कहा " यूं आर सीटिंग प्रोपर प्लेस" । गाड़ी चल पड़ी और कुछ ही देर में हवा से बातें करने लगी। इटली के गाँव, किसान ,खेत–खलिहान आदि देखने की भरा था मन में नव उत्साह ,सीख लूँ ललित कला का ज्ञान' वाला श्रद्धा का भाव था। पूरे कोच में केवल 15–20 लोग थे। मैं खिड़की वाली सीट के पास बैठ कर पहाड़ों के ऊपर बसे गाँव और उनके बीच के समतल मैदानों में लहलहाती खेती को निरख रहा था। खेतों के बीच वर्किंगसूट पहने किसान खेती के यंत्रों से कार्य कर रहे थे। इनके बीच –बीच में नदियों और झरनों के मनमोहक दृश्य दिखाई दे रहे थे। रेलवे लाइन की दोनों ओर हरीतिमा पसरी हुई थी। मुझे घास–फूस की झोंपड़ी, बाजार–हाट , ग्रामीण जीवन की चहल–पहल, खेत– खलिहान आदि नहीं दिखाई दिए। गाड़ी की रफ्तार के साथ मन भी तरंगित हो रहा था। ऐसा लग रहा था कि कहीं दूसरे लोक में आ गया हूँ।

'आरनो' नदी के किनारे बसा फ्लोरेंस रोमन कला और संस्कृति का अद्भुत शहर जगह –जगह ऐतिहासिक चर्चों से शोभायमान

था। शहर के बीच में एक पुराना संग्रहालय था, जिसमें रोमन की प्राचीन धरोहर विद्यमान थी। सैलानियों के जत्थे गाइड के साथ घूम रहे थे। मुझे भी उनके द्वारा कुछ जानकारी मिल जाती थी। नदी के उस पार 'पीति पालाज' नामक उद्यान था। काफी ऊंचाई पर होने के कारण मैं यहाँ से फ्लोरेंस की खूबसूरती को आँखों में भर रहा था। युवा जोड़े, परिवार के लोग और पर्यटक सब लोग इधर –उधर घूम रहे थे।

दूसरे दिन विभाग में निकोला, सीनाली, ईशा आदि विद्यार्थियों से हिंदी के विभिन्न विषयों पर बातचीत का कार्यक्रम था। सुबह नाश्ते के बाद साढ़े दस बजे विभाग पहुँच गया। हिंदी की किताबें पलट रहा था कि निकोला अपने मित्र सिसीलिया के साथ आ गया। पहली नजर में वह मुझे सिद्ध सम्प्रदाय का औघड़ लगा, लेकिन बातचीत में बहुत विनम्र और मृदुभाषी था। गोवा विश्वविद्यालय के भाषा एवं साहित्य संकाय के अधिष्ठाता, प्रो. औलिन्यू गोमिश ने रोम के पुस्तकालय से एक पांडुलिपि का जेरॉक्स लाने के लिए कहा था। कुछ देर विद्यार्थियों से विचार –विमर्श करने के बाद मैं निकोला के साथ उस पुस्तकालय में गया। एक कर्मचारी ने बहुत परिश्रम से पांडुलिपि की छानबीन की लेकिन वह नहीं मिली। इसके बाद हम लोग एक ऐतिहासिक स्थल पर गए, जहां निकोला ने मुझे रोम के विषय में जानकारी हेतु दो मोटी किताबें खरीद कर दीं।

9 जून को प्रात: 8 बजे मकान मालकिन ने आवाज दी। " हीयर इज योर फोन कॉल।" मैंने कहा "यस मैडम ! आई एम कमिंग। "मैं सारा फ्रआ बोल रही हूँ। प्रो. मिलानेती की छात्रा हूँ। मुझे और जूलिया को आपसे हिंदी साहित्य के विषय में बात करनी है।" मैंने कहा "स्वागत है।" विभाग पहुँचने पर दोनों वहां उपस्थित थीं। एक घंटे से अधिक हिंदी साहित्य और 'गंगा मैया' पर बातचीत हुई। संयोग से उपन्यास पढ़ गया था, इसलिए संवाद में आनंद आया। सारा और जूलिया की टूटी –फूटी अंग्रेजी मिश्रित हिंदी में बातचीत प्रियकर लगी। इसके बाद जूलिया मुझे स्कूटर पर बैठाकर प्रसिद्ध संग्रहालय 'गैलरिया बोर्हेस' दिखाने ले गई। इसमें 15–16वीं शताब्दी के मानव जीवन के रहन–सहन के विभिन्न अवशेष, चित्र और प्रसिद्ध पेंटरों की खूबसूरत पेंटिंग रखी हुई थीं। दीवाल पर उस समय के युद्ध के चित्र अंकित थे। उसमें एक ऐसा चित्र था जिसमें दिखाया गया था कि एक नवयुवक पास की नवयुवती से सहवास करना चाहता है, लेकिन वह तैयार नहीं होती है। पेड़ का सहारा लेते हुए उसे भगवान मानकर रक्षा के लिए पुकारते हुए स्वयं पेड़ में तब्दील हो जाती है। युवक निराश होकर लौट जाता है। 10 जून का दिन भी शैक्षणिक एवं भ्रमण की गतिविधियों में बीत गया।

पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मुझे 11 जून को श्री भारद्वाज से टीबुर टीना स्टेशन पर मिलना था। सुबह नाश्ते के बाद लगभग रोज एक या दो घंटे लिखता–पढ़ना था। नाश्ते में वही जाम ,ब्रेड, टोस्ट , दूध आदि खाते–खाते जी ऊब गया। दस बजे तैयार होकर भारद्वाज से मिलने निकल पड़ा। विगत कई दिनों से बहुत सारे फोटो लिए थे । उन्हें धुलवाने के लिए एक स्टूडियो में गया । स्टूडियो वाला हमारी बात को नहीं समझ रहा था तो मैंने भाषा सम्प्रेषण व्यवस्था का सहारा लेकर उसे संकेतों में समझाया । फिर जल्दी –जल्दी चलकर स्टेशन पहुँचा। दरअसल भारद्वाज को ट्यूशन जाना था और मुझे रोम का समुद्र देखना था।

हम दोनों ने एक –एक कप कैपचीनो पीकर एक दूसरी गाड़ी पकड़ी। रास्ते भर कभी इटली तो कभी भारत के विषय में बातचीत होती रही। रोम के बाहर गाँव की बस्ती में आ गए, जहां मुझे भारतीय पेड़ –पौधे , पशु–पक्षी, ताल –तलैया, खेत–खलिहान, हल्कू, जोखू, होरी–धनिया, गोबर–झुनिया, गाय–बैल, भैंस –भैंसा, छेड़ी–बकरी, मुर्गा–मुर्गी, सूअर आदि कुछ भी नजर नहीं आए। मचिया पर बैठी हुई आँखों में सूरमा लगाए, पान खाती हुई ललाइन के लाल–लाल ओंठ और अंचरा के कोने में बंधा हुआ कुंजियों का गुच्छा भी नहीं दिखाई दिया। पान– सुर्ती खाकर पचर–पचर थूकते और बीड़ी पीते हुए लोग भी नहीं मिले। हां ! नाके –नाके पर रेस्टोरेंटों में एक हाथ में मदिरा का चषक और दूसरे में सिगरेट का कश लेते हुए अधिकांश स्त्री –पुरुष मिले। यहाँ बात–बात पर 'ग्रात्सिए' (धन्यवाद) बोलना , सहयोग की भावना के लिए उतावला होना, पदयात्री को सड़क पार करते समय कार रोक कर जाने देना आदि रोम संस्कृति का अभिन्न अंग है।

मैं गंतव्य स्टेशन पर जैसे ही पहुँचा, भारद्वाज के शिष्य ने झुककर अभिवादन किया। भारतीय गुरू के शिष्य की झलक मिली।

इसी बीच भारद्वाज भी आ गए. फिर हम लोग आपस में बातचीत करते हुए 15 मिनट के अंतर्गत उनके निवास स्थान पर पहुँच गए। अतिथि कक्ष किसी सिनेमा हॉल की तरह सजा था। 'मदर इण्डिया', 'कागज के फूल', 'मोहब्बतें', 'कहो न प्यार है' आदि फिल्मों के पोस्टर लगे हुए थे। तीन –चार आलमारियां पुस्तकों और कैसटों से भरी थीं। चाय पीने के बाद वे हमारे लिए मोहब्बतें फिल्म लगाकर उस विद्यार्थी को पढ़ाने के लिए दूसरे कमरे में चले गए। मैंने उनके अतिथि कक्ष का फोटो लिया और लगभग दो बजे मन बहलाव के लिए समुद्र देखने गया। गोवा के समुद्र तटों की नैसर्गिक सुषमा के समक्ष वह अच्छा नहीं लगा। उसी दिन मुझे भारतीय दूतावास में भारतीय राजदूत श्री सिद्धार्थ सिंह से भी मिलना था। भारद्वाज से तुरंत दुआ –सलाम कर ट्रेन से टर्मिनी स्टेशन और फिर वहां से पैदल ही भारतीय दूतावास गया। स्वागत कक्ष में मैंने राजदूत से मिलने की बात की तो पता चला कि वे बहुत व्यस्त हैं। सिक्योरिटी गार्ड ने कहा कि " आप उनके पी. ए . श्री वीरेंद्र कुमार पाल से मिल सकते हैं।" पाला जी से फोन पर बात हुई थी, इसलिए नाम लेते ही वे अभिवादन और सत्कार के लिए उठ खड़े हुए। विदेश में उनका आवभगत मन को छू गया।

थोडी देर घर–परिवार ,शिक्षा–दीक्षा की बात हुई ,फिर वे मुझे राजदूत के पास ले गए। राजदूत श्री सिद्धार्थ सिंह ने खड़े होकर हमारा स्वागत किया। आपसी परिचय के बाद रोम विश्वविद्यालय में हिंदी की शिक्षण व्यवस्था, विद्यार्थियों की संख्या, हिंदी भाषा ज्ञान एवं साथ में गोवा के विषय में आपसी संवाद हुआ। चूंकि उनको कहीं जाना था ,इसलिए कुछ देर औपचारिक बातचीत के बाद मैंने उनसे विदा ली।

मनुष्य के संस्कार कई मायनों में जड़ होते हैं। मंगलवार के दिन मैंने यहाँ भी व्रत रखा। मकान मालकिन सिगरेट का कश लगाते हुए दूध और चाय लेकर आई और बोली "मिस्टर मिश्रा फोन कॉल फॉर यू।" प्रो. मिलानेती का फोन था। उन्होंने हालचाल पूछते हुए कहा कि "आज मैं किसी कार्य से बाहर जा रहा हूँ। कल 13 जून को दस बजे आपका पब्लिक व्याख्यान है।" कुछ देर के बाद विभाग गया। प्रो. के कमरे में बैठकर पत्रिका पढ रहा था कि पास में बैठी महिला प्रो. ने कहा "आर. यू. डॉ. मिश्रा " मैंने कहा " एस मैडम।" उन्होंने कहा कि " फोन कॉल फॉर यू । " श्रीमती तान्या गुप्ता बोल रही हूँ। मैं भी मूलतः भारत की रहने वाली हूँ । विगत कई वर्षों से हिंदी विभाग में पढा रही हूँ। आपसे मिलना चाहती हूँ लेकिन आज घर पर बहुत जरूरी कार्य है , इसलिए नहीं आ सकती। कल मुलाकात होगी। " मैंने कहा " कोई बात नहीं मैडम! " तत्पश्चात् मैं अगले दिन के व्याख्यान की तैयारी में निरत हो गया।

पांच बजे भारद्वाजजी आए। उनके साथ कुछ गिफ्ट खरीदना था। किसी भी गिफ्ट की कीमत पंद्रह– बीस हजार लीरा से कम नहीं थी। हिम्मत करके थोडा –बहुत खरीदा। भारद्वाज थोड़ी दूर एक दीवार के पास गए और लीरा की चमकती हुई नोट लेकर आ गए। मैं सोचने लगा कि दीवार में से कैसे नोट आ गई ? लेकिन मारे संकोच के पूछा नहीं। दरअसल उस समय भारत में ए.टी.एम. का प्रचलन नहीं था। गोवा में नहीं देखा था। इसी तरह कॉफी और कोल्ड ड्रिंक की मशीन को देखकर भी आश्चर्य हुआ।

13 जून को 'हिंदी भाषा एवं साहित्य' विषय पर 10:30 बजे पब्लिक व्याख्यान देना था। 12 जून की रात कशमकश में बीती क्योंकि जीवन में पहली बार अंग्रेजी में बोलना था। विद्यार्थियों की चिंता नहीं थी, लेकिन प्राध्यापकों के बीच में बोलने को लेकर आशंकित था। सुबह अखाड़े के पहलवान की तरह कई बार रियाज़ किया। तत्पश्चात ठीक दस बजे विभाग पहुँच गया। विद्यार्थियों को देखकर तो थोड़ी खुशी होती लेकिन जैसे ही कोई प्रोफेसर सामने दिखाई पड़ता तो पसीने छूटने लगते। यहाँ तक तो गनीमत थी लेकिन प्रो. मिलानेती ने संकाय के अधिष्ठाता (डीन) को भी आमंत्रित किया था। आप अनुमान लगा सकते हैं कि मुझ पर क्या बीत रही होगी ? मैंने भी बजरंगबली को याद किया। गोवा प्रवास के दौरान विश्वविद्यालय में प्रो. श्याम भट्ट, प्रो. मेनन, प्रो. सुदर्शन आदि के साथ अधिकतर अनौपचारिक संवाद अंग्रेजी में ही होता था। यहाँ उसका लाभ मिला। अन्यथा स्थिति बहुत विकट होती।

प्रो. मिलानेती ने हमारा परिचय देने के बाद व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया। मैंने विनम्र शब्दों में सभी लोगों का अभिवादन करते हुए कहा " विगत बारह वर्षों से मैं हिंदी का अध्ययन-अध्यापन कर रहा हूँ। मंचीय अंग्रेजी बोलने का पहला अवसर है। यदि कहीं कोई त्रुटि हो जाए तो आप लोग क्षमा कीजिएगा। हमारे व्याख्यान का विषय है 'हिंदी भाषा एवं साहित्य'। मैंने सर्वप्रथम माहेश्वर सूत्र का वाचन करते हुए भाषा की अवधारणा एवं स्वरूप की चर्चा की। फिर तो सभी लोग चकित होकर देखने लगे। इसके बाद स्वर ,व्यंजन और मात्रा के

प्रयोग से शब्द एवं वाक्य–निर्माण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला। साहित्य की परिभाषा 'सहितस्य भावः साहित्यम्' से शुरू करते हुए संस्कृत, अंग्रेजी एवं हिंदी के विभिन्न साहित्यकारों की साहित्य संबंधी विविध अवधारणाओं के साथ उनकी प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया।

व्याख्यान के प्रारंभ में थोड़ी झिझक हुई, फिर तो माँ शारदे की ऐसी कृपा हुई कि मैं लगभग दो घंटे अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोल गया। श्रीमती तान्या गुप्ता बीच –बीच में विद्यार्थियों की सहूलियत के लिए इटैलियन भाषा में अनुवाद करती गईं। अंत में आधे घंटे की चर्चा में विद्यार्थियों के अलावा कतिपय प्राध्यापकों ने भी प्रश्न पूछे। श्रोताओं की सकारात्मक प्रतिक्रिया से व्याख्यान पूर्व उच्च ज्वर के तापमान का पारा नीचे आ गया। मन आनंदित हो उठा। कर्म का फल प्राप्त हुआ। प्रो. मिलानेती किसी कार्य से बाहर चले गए। मैं पास के रेस्टोरेंट में एक कैपचीनो पीकर उनके विभागीय कमरे में दस्तावेज़ पत्रिका का अंक पढ़ते हुए वहीं सोफे पर सो गया।

दूसरे दिन 14 जून 2001 को 'हिंदी साहित्य का इतिहास' विषय पर बोलना था। 13 जून की शाम को व्याख्यान के विषय पर मंथन करता रहा। यह रोम विश्वविद्यालय का अंतिम व्याख्यान था। लगभग दो घंटे अंग्रेजी में बोलने से आत्मविश्वास बढ गया था। सुबह नाश्ते के बाद हिंदी साहित्य के इतिहास पर सरसरी निगाह डालकर 10.30 बजे विभाग पहुँच गया।

प्रो. मिलानेती के आने के बाद बिना किसी औपचारिकता के मैंने सर्वप्रथम आदिकाल की प्रवृत्तियों को संक्षिप्त रूप से रेखांकित किया। तत्पश्चात् भक्तिकाल की प्रमुख काव्यधाराओं का उल्लेख करते हुए कबीर की आध्यात्मिक एवं सामाजिक विचारधारा को 'तोको पीव मिलेंगे, घूंघट के पट खोल रे', 'मोको कहाँ ढूढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास', 'संतो सहज समाधि भली', 'साधो देखो जग बौराना' आदि पदों एवं दोहों पर प्रकाश डाला। इसी क्रम में जायसी, सूर, तुलसी और मीरा की रचनाओं के द्वारा उनकी आध्यात्मिक एवं जीवन –जगत संबंधी विचारों और मान्यताओं की चर्चा की। भक्तिकाल की रचनाओं का बीच–बीच सस्वर वाचन कर मैंने व्याख्यान को प्रभावी और रुचिकर बनाने का प्रयास किया। आज तो अंग्रेजी बोलने में भी थोड़ी धार आ गई थी। हिंदी भाषा के प्रचार –प्रसार की दृष्टि से हिंदी –अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग करता था। हिंदी के कतिपय छात्र –छात्राओं ने बीच –बीच में अन्य लोगों को इटैलियन भाषा में भी समझाया। अंत में चर्चा के बाद व्याख्यान समाप्त हुआ। श्रोताओं के हावभाव से लगा कि उन्हें व्याख्यान अच्छा लगा। प्रो. मिलानेती ने आभार व्यक्त किया और तत्पश्चात् हम लोग भोजन के लिए गए।

भोजन के दौरान मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत भारती' और 'हिंदी ,हिन्दुस्तानी' भाषा पर चर्चा हुई। हिंदी साहित्य के अन्य रचनाकारों में प्रसाद की 'कामायनी', हरिऔध के 'प्रियप्रवास' एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का भी ज़िक्र हुआ। भोजन के बाद दो छात्राओं ने 'मैला आंचल' के संदर्भ में आंचलिकता पर बातचीत की थी।

प्रो. मिलानेती ने व्याख्यान का प्रमाण–पत्र तैयार किया जिसे उन्होंने मुझे सम्मानपूर्वक प्रदान किया। मैंने भी उन्हें अंतःकरण से आत्मीय सहयोग के प्रति साधुवाद दिया। मेरी यात्रा के ये महत्वपूर्ण सूत्रधार थे। मुझे उसी दिन शाम को ही इटली से प्रस्थान करना था। मेरी आँखें उनके भावपूर्ण आतिथ्य–सत्कार एवं मनोवांछित सपनों को साकार करने के लिए सजल हो गईं।

क्रोएशिया, यूरोप

'मुड़मुड़ के देखता हूँ' हैदराबाद विश्वविद्यालय की ओर

– डॉ.साईनाथ विट्ठल चपले

आज मैं जहाँ तक (कैसरी, तुर्की) पहुँचा हूँ, उसमें हैदराबाद विश्वविद्यालय का बहुत बड़ा योगदान है। स्पष्ट है कि यहाँ से मेरे जीवन का एक नया मोड़ शुरू हुआ एक वह समय था जब मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय में 2003 में स्नातकोत्तर अध्ययन हेतु आया था। विशुद्ध देहाती था और आज भी हूँ। किसी चीज के बारे में उतनी जानकारी नहीं थी जितनी अन्य लोगों को थी। हैदराबाद का नाम सुना था पर उसी हैदराबाद विश्वविद्यालय में अपने जीवन के लगभग दस साल बिताऊंगा, यह सोचा न था। जीवन के दस साल बहुत मायने रखते हैं पर वहां रहते हुए ये दस साल कैसे गुजर गये, पता नहीं चला।

हर्ष इस बात का है कि मुझे इस विश्वविद्यालय ने बहुत कुछ सिखाया। अपने स्नातकोत्तर (एम.ए.) अध्ययन के दौरान मुझे हिंदी के ही नहीं बल्कि अन्य विषयों के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विद्वानों को बहुत करीब से देखने और सुनने का मौका मिला। नई जगह को देखने और नये लोगों और मिलने का बचपन से शौक होने के कारण मैंने कुछ दोस्त बनाये और हैदराबाद पर हल्ला बोल दिया। मेरे परास्नातक (एम.ए.) के दौरान हिंदी विभाग के आचार्यों से बहुत कुछ सीखने को मिला। वे केवल हमें ज्ञान की बातें या किताबें ही नहीं पढ़ाते बल्कि वे हमें देश–विदेश की ज्ञान को दुनिया में सैर कराते। मुझे याद है कि हमारे अध्यापक गण कहते थे 'हम आपको किताब में क्या कहा गया है यह तो पढ़ाएँगे ही, पर अहम बात तो यह है कि जो किताब में नहीं है वह भी आपको पढ़ाएँगे।' यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी। इसी के बदौलत मुझे आज दुनिया के बारे में कमोबेश जानकारी है। हैदराबाद विश्वविद्यालय शिक्षा के रूप में मेरे लिए गेटवे था। पहली बार घर से दूर आया था और विश्वविद्यालय में आरंभिक दिनों में मुझे विश्वविद्यालय से भाग जाने का मन करता था, बहुत अजीब लगता था। उसी उदासी के कारण मैंने अपने मित्र को यहाँ से वापस आने से संबंधित पत्र भी लिखा था, पर सौभाग्यवश वह पत्र मेरे मित्र को नहीं मिला। कारण यह था कि मैंने वह पत्र डाक के एक ऐसे डिब्बे में डाला था जिसका डाकबाबू प्रयोग नहीं करते थे। खैर अच्छा ही रहा नहीं तो पता नहीं आज मैं कहाँ होता।

खैर, स्नातकोत्तर की पढाई खत्म हुई। उसके बाद बी. एड. करने की इच्छा थी ताकि मास्टर की नौकरी के लिए तो काबिल बन सकूं पर हो नहीं सका। मैं केन्द्रीय हिंदी संस्थान की पूर्व परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाया। 'फिर वही दिल लाया' जैसी स्थिति हुई। अन्ततः दोबारा हैदराबाद विश्वविद्यालय में एम. फिल में दाखिला लिया। नई चीज़ों के बारे में जानने–समझने का शौक होने के कारण अन्वेषण की जिज्ञासा मन में थी ताकि कुछ नया सोचें और समझें। एम. फिल के दौरान प्रो. सुवास कुमार जी के शोध–निर्देशन में कार्य करने का अवसर मिला। सर ने बहुत ही अच्छे ढंग से शोध के लिए मेरा मार्गदर्शन किया था जिसकी बदौलत मैंने 'कनुप्रिया' और 'बाँस का टुकड़ा,' इन दो मिथकीय काव्य–संग्रहों पर अपना शोध–कार्य संपन्न किया और इसमें मुझे स्वर्ण पदक से नवाजा गया।

डॉक्टर बाबू बनने का भूत बड़ा था, इसी कारण फिर पीएच. डी. में दाखिला लिया। पीएच. डी. में शोध कार्य करने का सौभाग्य प्रो. गरिमा श्रीवास्तव जी के निर्देशन में मिला। प्रो. गरिमा जी ने मुझे एक तरह से हिंदी में पढाई–लिखाई करने का नया रास्ता बताया और तब से मुझे लगा कि हाँ मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ छोड़ा है, उसे सीखने और पाने के लिए अधिक से अधिक पढाई की ज़रूरत है। वे पढाई–लिखाई के मामले में काफी सख्त थीं। जो कार्य उन्होंने कहा है उसको अगर सही ढंग से और सही समय पर नहीं किया तो बहुत डाँटती थी और उसी डाँट के कारण मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ सीखा और बहुत पाया। उनसे केवल शोध और पढाई–लिखाई की बातों का ही ज्ञान नहीं मिला। अच्छे संस्कार भी मिले जो मैंने आज तक संजोये हुए हैं। अपने शोध के दौरान ही हैदराबाद विश्वविद्यालय की सहायता से देश–विदेश की यात्रा की। विदेश जाने का मोह था (अमूमन भारतीयों का होता है) पर विदेश जाएँ तो कैसे ? यह एक बड़ी चुनौती मेरे सामने थी और उसका हल हैदराबाद विश्वविद्यालय ने पूरा किया। शोध के दौरान 2009 में तुर्किस्तान (Turkey) के एर्जीएस विश्वविद्यालय, कैसरी (Erciyes University Kayseri, Turkey) में 'भारत में राष्ट्रीय भाषा नीति' इस विषय पर अपना शोध–आलेख प्रस्तुत करने का सुअवसर हैदराबाद विश्वविद्यालय की आर्थिक सहायता से मिला। मैं यह बताते हुए गर्व

का अनुभव करता हूँ कि हिंदी के छात्र भी विदेश में जाकर अपनी भाषा और संस्कृति के बारे में बात कर सकते हैं। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हिंदी को लोग भारत तक ही सीमित मानते हैं, पर ऐसा नहीं है। हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति के लिए अनंत अवसर संपूर्ण विश्व में है। जब मैं विदेश जाकर आया तब से मेरा विश्वास बढ़ गया और ऐसा महसूस होने लगा कि मैं अब हिंदी के माध्यम से कहीं पर भी जा सकता हूँ। पीएच.डी. के दौरान ही हिंदी जगत के अनेक अन्य विद्वानों को करीब से देखने, सुनने और समझने का अवसर मिला और यह सब मुझे हैदराबाद विश्वविद्यालय की बदौलत ही मिला, इसमें दो राय नहीं है। मैं यह विश्वास के साथ कहता हूँ कि हैदराबाद विश्वविद्यालय एक ऐसा वर्ल्ड हब है जहाँ आपको अनेक भाषा, संस्कृति और सूचना प्रौद्योगिकी की जानकारियाँ एक स्थान पर मिल सकती हैं। हैदराबाद विश्वविद्यालय की ऐसी खासियत है कि वहाँ जो भी जाता है उसे वह विश्वविद्यालय अपना बना लेता है। शायद ही ऐसा कोई छात्र, अध्यापक या कर्मचारी हो जो हैदराबाद विश्वविद्यालय को भूल सकता हो। मेरा पीएच.डी का विषय प्रारंभिक उपन्यासों पर होने के कारण मुझे विश्वविद्यालय की सहायता से कोलकाता, दिल्ली और वाराणसी जैसे महानगरों में जाने का अवसर मिला। अपने शोध के दौरान शोध के अलावा भी अन्य विषयों की कमोबेश जानकारी भी हैदराबाद विश्वविद्यालय के माध्यम से ही मिली। हैदराबाद विश्वविद्यालय में पाने के लिए बहुत कुछ था खोने के लिए कुछ नहीं था। खैर मुझे अंततः फरवरी 2012 को पीएच. डी. उपाधि प्राप्त हुई।

पीएच.डी. के बाद भी विश्वविद्यालय परियोजना के तहत राजस्थान की माड़ बोली पर कार्य करने का अवसर डॉ. भीम सिंह जी के निर्देशन में मिला। अन्ततः सबसे बड़ा दुःख था विश्वविद्यालय से विदा होने का, पर एक दिन तो विदा होना ही है चाहे विश्वविद्यालय से हो या इस दुनिया से। खैर अगस्त 2013 को हैदराबाद विश्वविद्यालय से विदा हुआ। आज जब अपने बीते हुए पलों के बारे में सोचता हूँ तो अनेक स्मृतियाँ दिमाग में कौंध जाती हैं। जब कभी मुझे हैदराबाद जाना हुआ तो मैं अवश्य हैदराबाद विश्वविद्यालय गया हूँ। हैदराबाद विश्वविद्यालय मेरे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है और उसका मोह मेरे जीवन में हमेशा के लिए रहेगा। इसी कारण मैं जब भी हैदराबाद जाता हूँ तो मेरा मन विश्वविद्यालय की ओर खींचा जाता है और वहाँ जाकर मैं गौरवान्वित महसूस करता हूँ।

आज मैं अपने देश, परिवार और विश्वविद्यालय से काफी दूर हूँ। मुझे यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि हिंदी के सहारे मैंने बीजिंग विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय, चीन में एक साल तक कार्य किया और पीछले दो साल से एर्जीएस विश्वविद्यालय कैसरी, तुर्क के भारतीय विद्या विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हूँ। मुझे अपने देश, परिवार, अपने गुरुजनों और हैदराबाद विश्वविद्यालय पर गर्व है।

तुर्क

यात्रावृतांत

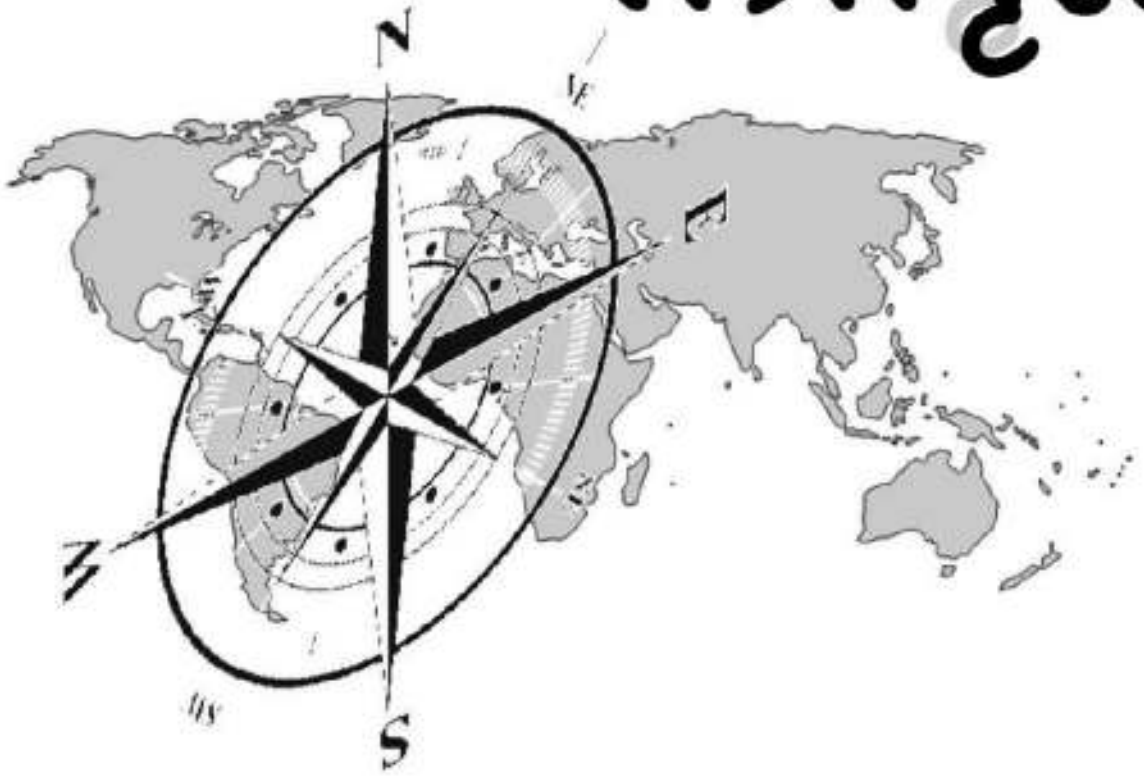

नेतरहाट : बांस का जंगल या चीड़ वन

—श्रीमती रश्मि शर्मा

बचपन से सुना है नेतरहाट के बारे में। एक तो वहां के सूर्योदय और सूर्यास्त का सौंदर्य, दूसरा नेतरहाट विद्यालय, जो अपनी शिक्षण पद्धति और बेहतर परिणाम के कारण बेहद प्रसिद्ध है। बिहार बोर्ड की परीक्षाओं में माना जाता था कि प्रथम दस तक का स्थान नेतरहाट आवासीय विद्यालय के बच्चे ही प्राप्त करते हैं।

यह संयोग ही रहा कि देश की अनेक जगहों में जाना हुआ मगर अपने ही झारखंड की इन सफरम्य वादियों में जा नहीं पाई। शायद मन में यह भाव रहा हो कि यह तो अपने घर के पास ही है। जब चाहे जाया जा सकता है। हुआ भी ऐसा ही। आनन–फानन में नेतरहाट जाने की योजना बनी और 2 घंटे के अंदर परिवार के कुछ लोगों के साथ निकल पड़ी।

रांची से नेतरहाट की दूरी करीब 155 किलोमीटर है। यह क्षेत्र लातेहार जिले में पड़ता है। कुडू के बाद लोहरदगा, फिर घाघरा से दाहिनी ओर मुड़ना पड़ा नेतरहाट के लिए। रास्ता अच्छा और जाना पहचाना था, सो आराम से चल दिए हम। गर्मी का दिन.. दोपहर की धूप मगर पूरे रास्ते हरियाली। आम से लदे पेड़ और नीचे बच्चों का जमावड़ा। कोई पत्थर चला कर आम तोड़ रहा है तो कोई गुलेल से निशाना साध कर पके आम जमीन पर गिरा रहा है। कुछ बच्चियों ने अपने फ्रॉक में आम समेट रखे थे और कुछ तुरंत तोड़े आमों का स्वाद ले रहे थे।

सच कहूं तो अपना बचपन याद आ गया। सारी दोपहर आम के बगीचे में बीतती थी। पूरे रास्ते इन पेड़ों और बच्चों को देखकर अहसास हुआ कि वाकई फलदार पेड़ लगाना परोपकार का कार्य है। मेरे जैसा कोई भी पथिक अपनी इच्छा पूरी कर सकता है अपने ही हाथों फल तोड़ कर खाने की।

खैर ..इन्हीं नजारों के बीच झारखंड के सुंदर गाँवों को पार करते हम पहुंचे 'बनारी' गाँव। इसके बाद सड़क ऊपर की तरफ जाने लगी। गोल–गोल चक्कर खाती सड़कें। ऐसा लगा कि हम किसी पहाड़ पर चढ़ रहे थे। पिछले वर्ष डलहौजी गए तो ऐसा ही लगा था बिल्कुल। नेतरहाट समुद्रतल से 3622 फ़ीट की ऊंचाई पर है। हम जरा आगे बढ़े तो सड़क किनारे बंदर नजर आए, जैसा कि हर पहाड़ी स्थल पर होता है।

सड़क के दोनों तरफ बांस का जंगल था। हमने पहली बार बांस का जंगल देखा। अब जाकर नेतरहाट के नाम का अर्थ भी समझ आया। 'नेतरहाट' नाम इसलिए पड़ा कि नेतुर का अर्थ (बांस) होता है और हातु यानि (हाट)। इन दोनों को मिलाकर बना नेतरहाट। बहरहाल हम बांस के जंगल के बीच से गुज़र रहे थे। बीच–बीच में कचनार के पेड़ भी नजर आ रहे थे। कचनार के फूल बेहद खूबसूरत होते हैं। यहां आदिवासी जनजीवन में कचनार की कोमल पत्तियों का साग खाया जाता है। बहुत स्वादिष्ट होता है यह साग और फूलों की सुंदरता से तो सभी परिचित ही हैं।

हम जंगल की सुंदरता निहारते हुए आगे चलते गए। मन में डर भी था कि कहीं सूर्यास्त रास्ते में ही न हो जाए। बीच जंगल में जाने की इच्छा होते हुए भी समय का ख्याल रखते हुए हम नहीं रुके। अब जंगल का दृश्य बदलने लगा था। बांस का जंगल साल के ऊंचे लंबे पेड़ और चीड के दरख्तों के जंगल में बदल चुका था। हम खुशी और आश्चर्य से चीख ही पड़े....हमारे झारखंड में चीड़ के जंगल..हमें आजतक पता ही नहीं। 'दीया तले अंधेरा' इसीलिए कहा जाता है। यहां ऊंचे यूकेलिप्टस के पेड़ भी हमारा स्वागत कर रहे थे।

हम मुग्ध भाव से आसपास देखते आगे बढ़ चले। शाम 5 बजे हम नेतरहाट में थे। पूछने पर पता लगा कि सनसेट प्वाइंट यहां से करीब दस किलोमीटर की दूरी पर है। अब वक्त नहीं था कुछ देखने–सुनने का। हम सीधे पहुंचे सूर्य के डूबने का नज़ारा देखने। रास्ते में एक खूबसूरत बड़ा–सा तालाब।

जब सनसेट प्वाइंट पहुंचे तो सूर्य अस्ताचलगामी था। एक बछड़ा अपनी मां का दूध पी रहा था। आगे लोगों की भीड़भाड़ थी। सरकार ने सौंदर्यीकरण कर दिया है। बैठने के लिए शेड की व्यवस्था है तो ऊपर से नज़ारा देखने की जगह भी। मतलब ऐसी जगह जहां शाम प्राकृतिक नज़ारे देखकर बिता सकें।

हम जैसे ही बढे..सड़क पर भूरे रंग के फूल बिछे थे। जैसे हमारा स्वागत कर रहे हों। ऊपर नजरें उठाकर देखा तो साल के पेड़

फूलों से लदे थे। नीले आकाश में आधा चांद दमक रहा था। पश्चिम में आकाश पीला था। दो तीन पहाड़ियाँ नज़र आ रही थीं। मुझे डलहौज़ी की पहाड़ियाँ याद आईं। ऐसा ही खूबसूरत लगता था वहां भी। नेतरहाट पठार के निकट की पहाड़ियाँ सात पाट कहलाती हैं। आँखों को ऐसा आभास हुआ कि सातों पहाड़ दिख रहे हैं, सूरज की पीली रौशनी में चमकते हुए।

सखुआ के जंगल के बीच है यह स्थल। आसपास की मिट्टी का रंग लाल था और बैरिकेडिंग के बाद एक सुंदर स्त्री–पुरुष की प्रतिमा भी थी। लड़की के हाथ में बास्केट और लड़के के हाथ में बाँसुरी। स्वभाविक है जिज्ञासा ठाठें मारने लगी मेरे दिमाग में कि प्रतिमा क्यों बनाई गई यहाँ?

पता चला, लड़की का नाम मैग्नोलिया था। मैग्नोलिया एक अंग्रेज़ अधिकारी की बेटी थी। गाँव में एक चरवाहा रहता था। वह प्रतिदिन अपने मवेशियों को लेकर जंगल में एक स्थान पर जाता, जहां से खूबसूरत आसमान से देखते–देखते घाटियों में छुपता था सूरज। वह बहुत मधुर बाँसुरी बजाता था। मैग्नोलिया को इसी आदिवासी चरवाहे से प्यार हो गया। वह रोज चरवाहे की बाँसुरी सुनने के लिए वहाँ जाती।

जब अंग्रेज़ अधिकारी को इसका पता लगा तो बहुत नाराज़ हुआ। उसने चरवाहे को समझाने की कोशिश की। जब नहीं माना तो उसने चरवाहे को मरवा दिया। मैग्नोलिया को जब इसका पता लगा तब विरह से व्याकुल होकर इसी स्थान पर आई और अपने घोड़े सहित यहां से नीचे घाटी में कूद कर अपना जीवन समाप्त कर दिया। उसी की याद में बना है यह सनसेट प्वाइंट जिसे नाम दिया गया 'मैग्नोलिया प्वाइंट'। आज भी वह पत्थर मौजूद है जिस पर बैठकर वह चरवाहा बाँसुरी बजाया करता था। जाने कथा सच्ची है या गढ़ी हुई, मगर लोगों को आकर्षित करती है।

अब भीड़ बढ़ती जा रही थी। कुछ लोग हमारी तरह कैमरा हाथ में पकड़े पश्चिम की ओर टकटकी बांधे बैठे थे। धूप से पत्तियां चमक रही थीं। सखुआ के फूल जमीन पर थे और खुशबू हवाओं में । परिसर में एक चाय की दुकान थी। वहां लोगों की भीड़ लगी हुई थी। गरमागरम पकौड़ियां निकल रही थीं। लोग चाय–पकौड़ी के साथ शाम का आनंद ले रहे थे।

शाम का रंग बदलने लगा। सूरज के आसपास नारंगी रंग फैला था। एक के बाद एक पहाड़ दूर तक नजर आ रहे थे। लोगों का ध्यान सब तरफ से हटकर सूरज की ओर था। आसमान साफ था, सो हम आराम से देख पा रहे थे कि कैसे सूरज के आसपास लालिमा बढ़ती जा रही है और गहरे होते आसमान में सूरज कितना खूबसूरत लगने लगा। धीरे–धीरे सूरज डूब गया। अब भी हल्का उजाला था। लोग वापस जाने लगे। अब हमने वहीं चाय के साथ आलू की पकौड़ी बनवाई क्योंकि दुकान में प्याज़ खत्म हो गए थे। आसपास बस एक दो घर थे जहाँ केवल कुछ गाँववाले बैठे थे।

आसमान में चांद चमक रहा था हम लोग सखुआ के फूल चुनने लगे। वादियाँ और मनमोहक लगने लगीं। शांत वातावरण में ऐसा लगा जैसे कोई बाँसुरी बजा रहा हो। अद्भुत जगह है जहां एक प्रेम कहानी जिंदा है। यहां चरवाहे और मैग्नोलिया के प्रेम की तस्वीरें उकेरी हुई हैं। उस घोड़े की भी प्रतिमा है जिसके साथ वह लड़की कूद गई थी घाटियों में। अब हमें जाना था। एक प्रेम कहानी को मन में गुनगुनाते हुए वहां से निकल गए।

वन विभाग के रेस्ट हाउस में ठहरना था रात को। रास्ते में प्रसिद्ध नेतरहाट विद्यालय मिला। कुछ देर वहां रुककर देखा हमने। कैंपस के अंदर नहीं गए क्योंकि शाम हो गई थी। नेतरहाट विद्यालय की स्थापना 15 नवंबर 1954 में हुई थी। 24 जुलाई 1953 को इस विद्यालय की स्थापना का निर्णय लिया गया था। इसका श्रेय जाता है सर पियर्स को, जिनके प्रयास से एक ऐसे आवासीय विद्यालय की स्थापना हुई, जिसके छात्रों ने अनेकानेक क्षेत्रों में अपने नाम की कीर्ति फैलाई । भारतीय शिक्षा जगत में सर पियर्स का अतुलनीय योगदान है। जाति से अंग्रेज़ होने पर भी उन्होंने भारत को अपनी कर्मभूमि मान लिया था। नेतरहाट का चयन इसलिए किया गया क्योंकि ग्रामीण परिवेश और वहां की जलवायु उत्तम थी।

दरअसल इस तरह के आवासीय विद्यालय की मांग तत्कालीन बिहार के धनी वर्ग की थी, जो अपने बच्चों को सिंधिया, दून आदि दूर के स्कूलों में भेजने के बजाय पास किसी ऐसे स्कूल में भेजना चाहते थे, जिसमें ठीक वैसी ही सुविधाएं हों। विद्यालय में शिक्षा का माध्यम हिंदी है और नामांकन परीक्षा के आधार पर होता है। हालांकि अब पहली सी उज्जवल छवि नहीं रही, कई और स्कूलों का परीक्षाफल भी

अच्छा होने लगा, एक वक्त था जब इसी विद्यालय का डंका बजता था।

इस सफरम्य स्थल को सामने लाने का श्रेय तत्कालीन लेफ्टिनेंट, बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा, सर एडवर्ट गेट को जाता है। उन्हें यहाँ की प्राकृतिक सुंदरता से प्रेम था। उन्होंने ही अपने आवास राजभवन, शैले हाउस' के निर्माण के साथ-साथ अन्य बुनियादी संरचनाएँ भी स्थापित कीं। शैले लकड़ी की एक भव्य इमारत है। नेतरहाट विद्यालय के प्रथम सत्र के छात्रों ने इसी इमारत में पढ़ना शुरू किया था।

अब हम अपने पड़ाव की ओर अग्रसर थे। वन विभाग के रेस्ट हाउस में जाकर आराम करना था। शाम की दूसरी चाय यहीं पी हमने और ढेर सारी बातें भी कीं। बच्चे बैडमिंटन खेलने में लग गए। कुछ देर बाद जब चाँदनी रात में टहलने निकले तो चीड़ के दरख्त और यूकेलिप्टस के गगन छूते पेड़ देखकर हमें रोमांच हो आया। रातरानी की खुशबू से परिसर महक रहा था।

मगर यहां नेटवर्क की समस्या थी। न रिलाइंस का फोन कार्य कर रहा था न जियो, ना वोडाफोन। बस एयरटेल का एक नंबर चालू था। दूसरी दिक्कत यह कि बहुत छोटी जगह है। खाने-पीने के सामान मिलने में भी परेशानी होती है। स्थानीय बाजार साप्ताहिक है, इसलिए सब्जियों की भी आमद कम है। होटल भी कम ही हैं और ऐसी दुकान भी जहाँ से सामान लिया जा सके। हालांकि कुछ घर ऐसे नजर आए हमें जिन्हें देखकर लगा कि उन लोगों ने अपने घर को गेस्ट हाउस में तब्दील कर दिया है। यह देखकर वाकई बहुत दुख होता है। इतनी खूबसूरत जगह को सरकार तरीके से विकसित करे तो पर्यटकों की भरमार हो जाए। नेतरहाट को यूं ही 'छोटा नागपुर की रानी' नहीं कहा जाता। वाकई बहुत खूबसूरत वादियाँ हैं, मगर उपेक्षा की शिकार!

हमारा खाना यहीं रेस्ट हाउस में बना। खाने के बाद सब लोग एक बार फिर टहलने निकले। गर्मी कम थी। रांची का मौसम तो अब बहुत बदल गया है। बिना ए.सी. के काम नहीं चलता। बाहर ठंडी हवा थी। रात को कमरे में एक पंखे से काम चल गया। हमें सूर्योदय के लिए सुबह उठना था मगर सोने को कोई तैयार ही नहीं था। मुश्किल से दो-तीन घंटे की नींद ले पाए। सुबह चार बजे सारे उठकर तैयार।

पता लगा कि सूर्योदय के लिए राज्य पर्यटन विभाग का होटल है प्रभात बिहार, वहीं जाना होगा। हम सब तुरंत वहां के लिए निकले। पहुंचे तो देखा कि होटल और आसपास बन रहे बिल्डिंग के ऊपर चढ़कर लोग देखते हैं सूर्योदय। हमें लगा इससे कहीं बेहतर है अपने रेस्ट हाउस से देखना। वहीं के कर्मचारी ने कहा भी था कि यहीं से ही देख लें सूर्योदय।

अब वापस रेस्ट हाउस। उजाला फैलना शुरू ही हुआ था। बच्चे आनंद लेने लगे। सामने घना जंगल। परतों में पहाड़ दिख रहा था। आसपास चीड़ के पेड़ थे। गुलमोहर के फूल जमीन पर गिरे थे। बच्चे चीड़ के फल जमा करने लगे तो कभी ट्री हाउस पर चढ़कर सूरज को आवाज लगाने लगे। पूरब की तरफ पहाड़ों के ऊपर, चीड़ की पत्तियों के पीछे से सूरज निकलने लगा। हल्की धुंध के पीछे से निकलता सूरज सबको रोमांचित कर रहा था। वैसे भी शहरों में लोग कहाँ देख पाते हैं सूर्योदय। सूरज की पहली किरण का स्पर्श कितना सुखकर हो सकता है..यह देर से बिस्तर छोड़ने वालों को क्या पता।

मैं कैमरा थामे निकल गई वहीं। देखा दूर जंगल में लोग पानी की बोतल थामे चले जा रहे हैं। अब लोटे का रिवाज खत्म हुआ न....सरकार का नारा अभी हर जगह स्वीकार्य नहीं। शायद वह 'सोच नहीं सो शौचालय भी नहीं'। नजरें घुमाकर देखा। फूलों का रंग और चटख था। यूकेलिप्टस के सफेद, चिकने तने और गगनचुंबी डालियों ने हैरत में डाला हमें। बुगेनविलिया की सफेद, गुलाबी फूल मन मोह रहे थे तो तरह-तरह के फूलों से जमीन पटी हुई थी। पेड़ से गिरे भूरे पत्ते और पेड़ों पर लगे हरे पत्ते मिलकर अद्भुत दृश्य बना रहे थे। हमने खूब तस्वीरें लीं।

सूरज की गर्मी महसूस होने लगी। हमें वापस जाना था आज ही क्योंकि अचानक प्लान बना कर आए थे। गर्मी देखकर यह लगा कि दिन में कहीं घूमना संभव नहीं होगा। इसलिए बेहतर है एक बार और घूमने के लिए जाड़ों में आया जाए। यहां आसपास कई फॉल हैं। ऊपरी घाघरा झरना नेतरहाट से चार किलोमीटर की दूरी पर है और निचली घाघरा झरना 10 किलोमीटर की दूरी पर। हालांकि पता चला कि गर्मी के कारण अभी पानी कम है । इसलिए जाने का कोई फायदा नहीं।

हमारा मन लोध झरना जाने का जरूर था। इसे झारखंड का सबसे ऊंचा झरना माना जाता है। कहते हैं कि झरने के गिरने की आवाज़ आस-पास 10 किलोमीटर तक सुनाई पड़ती है। यह नेतरहाट से 60 किलोमीटर की दूरी पर बुरहा नदी के पास है। मगर सुबह के चार बजे उठने की आदत नहीं किसी की, सो सब अलसाए हुए थे। तय किया कि कुछ दिनों बाद फिर आएंगे यहां।

हमने सामान समेटा और निकल गए। थोड़ी दूर पर नाशपाती का बागान मिला। फल लदे थे मगर कच्चे थे अभी। वापसी में वही सब नज़ारा। घने दरख़्त, कोईनार या कचनार के पेड़..चीड़ के ऊंचे पेड़ और बांस के घने जंगल से आती सरसराहट की आवाज़। रास्ते में नदी मिली जिसका पानी कम था।

हां, इस वक्त आम के पेड़ के नीचे बच्चे कम थे मगर सड़कों पर लकड़ी ले जाते कई लोग मिले। खासकर औरतें। सड़क पर जगह–जगह कुछ सूखने के लिए डाला हुआ था। देखा..ये कटहल के बीज थे। जब कटहल पक जाते हैं तो उनके बीज निकालकर सब्ज़ी बनाई जाती है। मैंने अक्सर देखा है गाँव में पक्की सड़क पर कभी धान सूखने के लिए डाला होता है तो कभी महुआ। आज कटहल के बीज देखे, वह भी बहुत सारे। धूप सर पर। सड़कों में सन्नाटा। बच्चे सो गए थे सारे। लगभग चार घंटे का सफ़र था और उसके बाद हम अपने घर में। जल्दी ही दोबारा नेतरहाट जाने के वादे के साथ।

रांची, झारखंड, भारत

साँची का सफ़र

– डॉ. कुसुम नैपसिक

साँची स्तूप के बारे में बहुत बार पढ़ा और सुना था। तस्वीरों के ज़रिये इसकी आंशिक सुंदरता देख भी चुकी थी, लेकिन लोगों से पूछने पर पता चलता है कि बहुत कम लोगों ने इस अद्भुत बौद्ध विहार के दर्शन किये हैं। इस बार जब मैं गर्मियों मे भारत गई तो साँची स्तूप देखने की लालसा दिल में थी, किन्तु दिल्ली की भीषण गर्मी को देखते हुए लगा कि कहीं मेरे साथ बचपन में किये हुए ताजमहल दर्शन की पुनरावृत्ति न हो जाए।

हुआ यूँ था कि जब मैं सातवीं कक्षा में थी तो मैंने ताजमहल की असीम सुंदरता और उसके बनने की दिलचस्प कहानी सुनी, तो अपने घरवालों के पीछे पड़ गई कि मुझे अभी ताजमहल जाना है। खैर जैसे–तैसे मेरे पिताजी ने सपरिवार गर्मियों की छुट्टियाँ पड़ते ही ताजमहल जाने की व्यवस्था कर दी। मन में सफेद, सुंदर, और संगमरमरी ताजमहल के स्वप्न लिए मैं रात भर सो नहीं सकी, लगता था कब सुबह हो और कब चलें आगरा।

खाना–पीना लेकर जब हम अपने सफ़र पर निकले तो बहुत अच्छा लगा लेकिन जैसे–जैसे सूरज देवता अपनी तपिश बढ़ाते रहे वैसे–वैसे मेरे ताजमहल का तिलिस्म टूटता गया। चुभती गर्मी में जब दिल्ली से आगरा तक का चार घंटों का सफ़र खत्म हुआ तो मेरी दूसरी परीक्षा शुरू हो गई ताजमहल में नंगे पाँव जाने की, जो बहुत मुश्किल थी। धूप जब सीधे संगमरमर पर पड़ती है तो वह जलते अंगारे जैसी लगती है। इन अंगारों पर चलकर जब मैंने ताजमहल देखा तो मेरा उत्साह आधा भी शेष नहीं रहा। इससे मुझे बचपन में ही एक अनुभव हो गया था कि सफ़र में मौसम का कितना बड़ा हाथ होता है।

तो अपने इस साँची के सुंदर स्वप्न को, मैं गर्मी के अंगारों में रौंदना नहीं चाहती थी। लेकिन अपने काम की वजह से, मैं गर्मियों में ही भारत जा पाती हूँ। तो मैंने इस यात्रा को टालना उचित नहीं समझा। बस निकल पड़ी सफ़र पर।

अरे अरे, अकेली नहीं। अकेली तो मैं सोच भी नहीं सकती। सच कहूँ तो मुझे बचपन से इतनी हिदायतें दी गई हैं और डराया गया है, "लड़की हो तो लड़की जैसी रहो" कि अब विदेश में इतने साल रहने के बाद भी भारत मे अकेली घूमने की हिम्मत नहीं कर पाती; वैसे भी राहुल सांकृत्यायन और अजीत कुमार जैसे 'सफ़री झोले' उठाने का जोखिम औरतें नहीं करतीं, उसके लिए तो घूमने का मतलब पिकनिक है, कम से कम अपने आसपास के अनुभवों से तो मैंने यही सीखा।

बहरहाल मैंने अपनी इस यात्रा के लिए परिवार के ही कुछ लोगों को मसका लगाया और इस यात्रा से मिलने वाले लाभ और ऐतिहासिक सौंदर्य का वर्णन करके मैं दो लोगों को पटाने में कामयाब हो गई।

जब दिल्ली से ट्रेन चली और भोपाल पहुँची तो मौसम बहुत सुहावना था। भोपाल से विदिशा कुछ घंटों का ही सफर है और फिर वहाँ से कोई भी बस या ऑटो लेकर साँची पहुँचा जा सकता है। हम ऑटो के हिंडोले में बैठकर उबड़-खाबड़ सड़क पार करके विदिशा पहुँचे, खाने-पीने के लिए बहुत सारे ढाबे थे जहाँ हमने आलू के और गोभी के परांठों का आनंद दही के साथ लिया।

साँची में मेरा स्वागत बारिश की बौछारों ने किया। जलती-तपती धूप कहीं पीछे छूट गई थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने मनमोहक स्थान पर लोगों की चहल-कदमी बहुत कम थी। खैर यहाँ आकर लगता है कि बौद्ध-भिक्षुओं को इससे अच्छी जगह मिल ही कहाँ सकती थी।

स्तूप के चारों ओर नक्काशीदार तोरण, जाने कितनी ही कहानियाँ कहते हैं। बस वहाँ जाकर खड़े हो जाइए, ऐसा लगेगा जैसे समय रुक गया है। तोरण के भीतर बौद्ध-मूर्तियाँ ध्यान में तीन बैठी हुई हैं, इसके बाद दो सीढ़ियाँ स्तूप के इर्द-गिर्द हैं जिसपर बौद्ध-भिक्षु प्रदक्षिणा करते रहे होंगे। ब्राह्मी लिपि हर कोने में दिख जाएगी लेकिन क्या है कोई पढ़नेवाला?

बौद्ध-भिक्षुओं के विहार अभी भी ज्यों के त्यों बने हुए हैं कुछ की छतें भले ही वक्त के थपेड़ों ने छीन ली हों लेकिन इसका ढाँचा और बनावट अभी भी सुरक्षित है। पानी का छोटा-सा तालाब विहार के पास ही है, जो कभी बौद्ध भिक्षुओं की प्यास बुझाने के काम आता रहा होगा। इस जगह आकर दिल में खयाल आता है कि वक्त वापस तीसरी शताब्दी में लौट जाए और मैं एक बौद्ध-भिक्षु बनकर इन विहारों में विचरण करूँ। इस मनोरम स्थली से जाने को दिल नहीं करता। ज़िंदगी की भाग-दौड़ से दूर, इतना सकून और कहाँ?

यू.एस.ए.

बुद्ध से साक्षात्कार

– श्री प्रताप सहगल

28 मार्च, 2015 की शाम। दिल्ली तपने लगी थी। हम लोगों का सफर तय था। सफदरजंग रेलवे स्टेशन पर महानिर्वाण एक्सप्रेस हमारे इंतजार में स्टेशन पर खड़ी हमें बुद्ध के जीवन के हर पड़ाव से साक्षात्कार करवाने के लिए तैयार। स्टेशन पर प्रवेश करते ही रोली और फूलमाला से स्वागत किया गया। एक प्याला कॉफी और अपने कूपे में प्रवेश। थोड़ी ही देर में हम व्यवस्थित हो जाते हैं और गाड़ी बोधगया जाने के लिए स्टेशन छोड़ देती है। पहला पड़ाव है गया।

29 मार्च। सुबह के सात बजे हैं। गाड़ी नौ सौ किलोमीटर का सफर तय करके गया पहुँच गई है। गाड़ी से हम लोग बाहर निकलते हैं। मौसम में उदासी है। राजबली सिंह हमारा इंतजार करते प्लेटफॉर्म पर ही मिल जाते हैं। आज से टूर के अंत तक वे ही हमारे गाइड हैं। उम्र साठ पार लेकिन शरीर चुस्त है। उनके साथ परिचय से ही उनकी खुशमिजाजी का परिचय हो जाता है। वे भारत के पर्यटन विभाग से ही सेवा-निवृत्त हुए हैं। बुद्ध से हमारा साक्षात्कार करवाने के लिए वे सभी जानकारियों से लैस नज़र आते हैं। गया के छोटे-छोटे बाज़ारों से गुजरती हमारी वातानुकूलित बस की खिड़कियों से मिले दृश्यों से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि गया एक छोटा लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शहर है। राजबली सिंह बता रहे हैं कि प्राचीन भारत जम्बूदेश सोलह जनपदों वाला एक बड़ा देश था। हम जल्द ही गया से बोधगया में प्रवेश कर जाते हैं। बोधगया महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि यहीं से सिद्धार्थ के बुद्ध बनने की यात्रा शुरू होती है। सारनाथ पहुँच कर बौद्धमत जन्म लेता है और फिर पूरे विश्व में विस्तार पाता है। बता रहे हैं कि उस समय के भारत में मगध सत्ता का सबसे शक्तिशाली केन्द्र था और मुझे यकायक श्रीकान्त वर्मा के कविता संग्रह 'मगध' की याद आती है और याद आती है वह काव्य-पंक्ति 'आज मगध में विचारों की कमी है'। इस काव्य-पंक्ति के पीछे कवि की देखी और भोगी हुई राजनीतिक सड़ांध थी। एक प्रयोजन से भरी हैं मगध की कविताएँ लेकिन

क्या मगध में विचारों की कमी हमेशा नहीं रही? या फिर कवि आदतन ही अपने समय को प्रश्नांकित करता रहता है? और क्या आज भी मगध में विचारों की कमी नहीं है?

रायल रीजेंसी हॉटल के सामने हमारी बसें रुक जाती हैं। कहते हैं कि बोद्धगया का सबसे बढ़िया हॉटल यही है। चैक-इन करने और नाश्ता करने के बाद हम लोग विश्व-प्रसिद्ध बोधगया मंदिर की ओर प्रस्थान करते हैं लेकिन रास्ते में ही है सुजातागढ़। सुजातागढ़ में ही सुजाता कुटीर है। सुजाता कुटीर वह स्थान है, जहाँ सिद्धार्थ ने ढूंगेश्वरी पर्वत पर, जिसे बौद्ध मत में प्राग-बोधि पर्वत कहा जाता है, कई साल (एक अनुमान के अनुसार छह साल) तप करने के बाद तप की निरर्थकता को जाना और वे कृशकाय अवस्था में पर्वत से नीचे उतर आए। यहीं सुजाता नाम की एक ग्रामीण महिला ने सिद्धार्थ को खीर बना कर दी और उन्होंने वर्षों बाद अन्न ग्रहण किया। अन्न के साथ ही शरीर में ऊर्जा का संचार हुआ होगा और सिद्धार्थ यहाँ से फाल्गु नदी की मुख्यधारा निरंजना नदी की ओर चले गए। इसी नदी के सामने आज किसी बौद्ध अनुयायी ने एक छोटा सा बुद्ध मंदिर बनवा दिया है। मंदिर बने, इसकी चिन्ता तो बहुत लोगों को रहती है लेकिन नदियों के लिए चिंता की जगह जैसे लापरवाही ने ले ली है। नदियों के मामले में हम लोग जैसे क्रिमिनल हो गए हैं। मैं भी तो सिर्फ चिंता ही कर रहा हूँ, क्रिया के स्तर पर तो कुछ भी नहीं। इसी नदी को पार करके बुद्ध वहाँ पहुँचे, जहाँ आज बौद्ध मंदिर खड़ा है और खड़ा है वह 'बोधि-वृक्ष', जिसके नीचे बैठा सिद्धार्थ 'बुद्ध' बन सका।

सुजातागढ के आसपास गाँव के कुछ लोग अपनी दिनचर्या में व्यस्त हैं और वहाँ से लगभग एक किलोमीटर दूर एक विष्णु मंदिर खड़ा दिखाई दे रहा है। सुजाता का महत्त्व बौद्धमत में इसीलिए है कि सुजाता सिद्धार्थ के लिए ज्ञान के प्रकाश का एक माध्यम बनी। खीर खाने के बाद ही सिद्धार्थ ने मध्यम मार्ग को पहचाना और इसकी बात की। सुजाता के महत्त्व को रेखांकित करते हुए ही उसकी स्मृति में सम्राट अशोक ने एक स्तूप बनवा दिया। आज उस स्तूप के भग्नावशेष ही देखे जा सकते हैं। कहते हैं कि अलाऊद्दीन खिलजी ने अपने शासन काल में उसे खंडित करवा दिया था।

सुजातागढ से हम निरंजना नदी को पार करते हुए बोधगया मंदिर पहुँचते हैं। धूप में चिलचिलाहट आ चुकी है। बस के अंदर और बस के बाहर के तापमान में बहुत अंतर है। थोड़ा सा चलने के बाद बौद्ध मंदिर के कलश दिखाई देने लगते हैं। जूते खोलकर जाना है। शशि घबरा गई है। ऐसे ही एक बार चिलचिलाती धूप में इंदौर से हम लोग महेश्वर का मंदिर देखने चले गए थे। तपते हुए सूरज ने मंदिर के फर्श में जड़े हुए संगमरमर के पत्थरों को तपा दिया था। अब इतनी दूर आए थे तो जाना तो था। लू के थपेड़े और नंगे पाँव। मंदिर तो गए लेकिन हॉटल पहुँचते-पहुँचते शशि का तन भी तपने लगा। जी मितलाने लगा। वहीं से रमेश सोनी को फोन किया और रमेश एक डॉक्टर से दवा लेकर हॉटल पहुँचा। शाम को खिचड़ी भी घर से बनवा कर लाया। उस दिन के लिए हम रमेश के तब से आभारी हैं।

और आज फिर तपता हुआ पत्थर। इसीलिए मुझे गिरजा घर जाना बड़ा सुखद लगता है। जूते खोलने की जरूरत नहीं। सिर पर टोपी/ हैट हो तो उतारकर हाथ में पकड़ लें। बैंच लगे होते हैं। आराम से बैठिए। श्रद्धा हो तो जो करना है कीजिए, वरना अंदर का स्थापत्य देखकर खामोशी से लौट आइए। बोधगया का यह बौद्ध-मंदिर 2002 से यूनेस्को की एक वैश्विक धरोहर है। इसके बावजूद वहाँ इतनी भी व्यवस्था नहीं कि अंदर जाने के लिए कपड़े के जूते ही उपलब्ध करवा दिए जाएँ। डरते-डरते आसपास पेड़ों की छाँव में पाँव रखते हुए मंदिर के अंदर पहुँचते हैं। भूमि तल से नीचे है मंदिर। कहते हैं कि सम्राट अशोक ने 250 ईसा पूर्व इस मंदिर का निर्माण करवाया था। इस स्थान का महत्त्व इसीलिए है कि यहीं वह बोधि-वृक्ष स्थित है, जिसके नीचे दो दिन और तीन रातें चिन्तन-मनन करने के बाद सिद्धार्थ गौतम से 'गौतम बुद्ध' हो गए। यहीं से मध्यम मार्ग की यात्रा शुरू होती है और यहीं महायान की जड़ें मौजूद हैं। हीनयान की अपेक्षा विश्व में महायान के अनुयायियों की संख्या ज़्यादा है और ये लोग अपनी तरह के कर्मकांड करते हैं जबकि बौद्ध-मत ही ब्राह्मणों के कर्मकांड के विरुद्ध खड़ा हुआ था। समय के साथ, प्राकृतिक या ऐतिहासिक कारणों से मंदिर ज़मींदोज हो गया और उन्नीसवीं शताब्दी में ही इसे मौजूदा रूप मिला। सीढ़ियाँ उतरते ही बाईं ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं, जहाँ बोधि-सत्त्वों का निवास होता था। सामने मंदिर का मुख्य द्वार है। अंदर गौतम बुद्ध की भव्य प्रतिमा है। श्रद्धालु मत्था टेक रहे हैं और मैं मंदिर की छत के स्थापत्य में खोया हूँ। थाईलैंड सरकार ने थाई स्थापत्य के अनुसार 290 किलोग्राम सोने से इस छत का निर्माण करवाया है। यूँ तो हमारे पर्यटक-दल में सभी भारतीय हैं, लेकिन एक थाई जोड़ा और ताइवान का एक नवयुवक तथा एक नवयौवना भी हैं। यह थाई जोड़ा महायानी है और पूरी श्रद्धा के साथ अपने अनुष्ठान करता चल रहा है। दूसरी बस में केवल जर्मन हैं और

उनके साथ जर्मन भाषा जानने वाला एक सरदार प्रोफेसर गाइड। हमारी टोली में थाई जोड़े को थोड़ी–बहुत अंग्रेज़ी आती है और ताइवान जन न अंग्रेज़ी समझते हैं, ना हिंदी। बड़ी मुश्किल से लड़की कुछ टूटी–फूटी अंग्रेज़ी बोल–समझ लेती है।

मंदिर के अंदर प्रवचन जारी है और लोग कतारबद्ध होकर बुद्ध की प्रतिमा के आगे सिर नवाते हुए बाहर की ओर आ रहे हैं। मैं थोड़ी देर वहीं खड़ा रहता हूँ। देखता हूँ कि बौद्ध–मत के महायानी अनुयायी हिंदू मंदिरों की तरह ही कर्म–काण्ड चालू रखे हुए हैं।

हम लोग मंदिर से बाहर निकलते हैं और मंदिर के पीछे उस पीपल–वृक्ष के पास पहुँचते हैं, जिसे विश्व–भर में 'बोधि–वृक्ष' के नाम से जाना जाता है। वृक्ष पुराना है लेकिन ढाई हज़ार साल पुराना नहीं। कहते हैं कि मूल–वृक्ष की जड़ को सुरक्षित रखा गया है। ऐसा कैसे हो सकता है? अगर जड़ मूल है तो वृक्ष भी मूल ही होना चाहिए। श्रद्धालु लोग तो इसे मूल वृक्ष ही मानते हैं और उनकी मानें तो यह हज़ारों–लाखों साल पुराना है। वृक्ष को चारों ओर से लोहे की सलाखों से सुरक्षित किया गया है यानी आप चाहें भी तो अब उस वृक्ष के नीचे बैठकर बुद्ध नहीं बन सकते। हर बुद्ध को अपने लिए अलग वृक्ष की तलाश करनी पड़ेगी। यानी 'अप्प दीपो भवः' ।

वृक्ष के उत्तर में बढ़ते हैं तो चबूतरा–नुमा एक लंबी दीवार नज़र आती है, जिसपर श्रद्धालुओं ने दीपक या मोमबत्तियाँ जला रखी हैं। मन्नत माँगनी हो तो यहाँ पर कोई दीपक या मोमबत्ती जलाइए, तो मन्नत पूरी होगी। श्रद्धालुओं का ऐसा विश्वास है। कहीं न कहीं हम सब असुरक्षित महसूस करते हैं। जब कुछ भी समझ नहीं आता तो दीपक या मोमबत्ती जलाकर, घंटा–घड़ियाल और छैने–ढोलक बजाकर अपने–अपने इष्ट की आरती उतार लेते हैं और सुरक्षा के आश्वस्ति भाव से जीवन के कामों में जुट जाते हैं। आम आदमी यह न करे, तो क्या करे। भक्ति–योग ईश्वर से साक्षात्कार का सबसे सुगम मार्ग है। मंदिर के उत्तरी और पश्चिमी भागों में देखता हूँ कि पाँच–पाँच प्रस्तर बुत अपनी विशालता और ऊँचाई से जैसे कुछ कह रहे हैं। गाइड से पूछता हूँ तो पता चलता है कि बुत बुद्ध के उन शिष्यों के हैं, जिन्हें गौतम ने सारनाथ में अपना पहला प्रवचन दिया और बौद्ध–मत में दीक्षित किया।

तन जला देने वाली धूप में खड़े यह प्रस्तर–पुतले क्या सोच रहे होंगे? उनके चेहरों पर केवल सौम्य–भाव तैरता ही दिखाई देता है। एक पुतले के सिर पर एक लाली बैठी है, क्षण भर में दूसरी भी आ जाती है। कौन नर है, कौन मादा या दोनों एक ही लिंग के हैं, बताना मुश्किल है। वे दोनों एक–दूसरे से प्रणय निवेदन कर रहे हैं और जब उनके सहवास का पल आता है तो पता चल जाता है कि कौन नर है, कौन मादा। प्रणय–निवेदन, काम–क्रीड़ा के यह पल बड़ी राहत के पल हैं। बुद्ध की सच्चाई के सामने क्या यह सच्चाई छोटी है?

लौटकर होटल आते हैं। गरमा–गरम भोजन हमारे इंतज़ार में अपनी गंध बिखेर रहा है। बुद्ध ने की होगी सालों तपस्या, हम अपनी यात्रा के अगले पड़ाव पर खाने के साथ न्याय करके ही पहुँचेंगे। कुछ आराम करने और धूप ढलने के बाद हम विभिन्न देशों के बौद्ध–मंदिरों और बौद्ध–विहारों की ओर प्रस्थान करते हैं। सबसे पहले भूटान, फिर जापान। जापान के बाद थाईलैंड और अंत में श्रीलंका। इन सभी देशों ने बौद्ध–मत को अपने–अपने तरीके से अंगीकार किया है और व्याख्यायित भी। उनके लिए भारत एक तीर्थ है। हमारे थाई मित्र थाईलैंड के बौद्ध–मंदिर से बाहर निकलने को तैयार नहीं। देखने वाली बात यह है कि सभी देशों के बौद्ध–मंदिरों के स्थापत्य अलग–अलग हैं। श्रीलंका के बौद्ध–मंदिर में बुद्ध की 80 फुट ऊँची प्रतिमा आकर्षण का विशिष्ट केन्द्र बनी हुई है। हर जगह की अलग कहानी, अलग रवायतें और अलग अनुशासन। इसी का नाम दुनिया है। अगला पड़ाव राजगीर है।

राजगृह बन चुका है राजगीर

तीस मार्च की सुबह। आकाश में बादल घिरने लगे हैं। बेचैन सी करने वाली गर्मी घेरने लगी है। विदेशियों की बस इस बार भी हमसे पहले निकल चुकी है। हमारी बस में किसी महिला का इंतज़ार है कि आए तो बस चले। महिला का प्रवेश और बस का राजगीर की ओर प्रस्थान। हमें जानकारी नहीं थी कि आज बिहार बंद है। यह खबर दो दिन से गरम थी कि सार्वजनिक रूप से नकल हो रही थी। पुलिस और शिक्षक पैसे लेकर नकल करवा रहे थे। इम्तिहान का खुले आम मज़ाक। खबर टी. वी. चैनलों पर चली तो प्रशासन जागा, कार्यवाही हुई और कार्यवाही के विरोध में छात्रों द्वारा बिहार बंद का आह्वान। सुबह के दस बजे हैं। छात्रों ने सड़क पर यातायात रोकना शुरु कर दिया है। हमसे पहले वाली बस राजगीर जाने वाली सड़क से निकली ही थी कि छात्रों ने सड़क पर टायर जलाकर फेंक दिए। रास्ता बंद। यातायात ठप्प। हम परेशान। बस का क्लीनर आगे तक घूम आया और फिर इत्मीनान से सामने एक नाई की दुकान पर शेव करवाने लगा। वह निश्चिन्त है कि

जाम अब घंटों तक खुलने वाला नहीं और हम मन ही मन उस महिला को कोस रहे हैं, जिसकी वजह से हमारी बस लेट हुई और अब बंद में फंस गई। प्रशासन की ढिलाई और छात्रों की ढिठाई– दोनों पर हैरत हो रही है। कुछ देर इंतजार करके हमारा ड्राइवर हिम्मत करके बस को उल्टी दिशा में मोड़कर किसी लंबे रास्ते का सहारा लेता है। मुझे लग रहा है कि राजगीर और नालंदा का कार्यक्रम चौपट हुआ, लेकिन ड्राइवर की मुस्तैदी काम आती है। क्लीनर शेव करवाकर साफ–सुथरा हो चुका है। लगभग दो–ढाई घंटे देरी से ही सही, हम अपने रास्ते पर आते हैं।

राजगीर की व्युत्पत्ति राजगृह शब्द से हुई है। राजगृह की प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि यह मौर्य साम्राज्य मगध की सबसे पहली राजधानी थी। बाद में अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। पुरातात्त्विक साक्ष्यों से राजगीर का इतिहास 1000 ईसा पूर्व से शुरू होता है। कालांतर में यह जैन और बौद्ध मत का केन्द्र बन गया।

हमारी बस लगभग बारह बजे राजगीर में प्रवेश करती है और सबसे पहले एक ऐसे स्थान पर रुकती है, जहाँ शिला–खंडों पर रथ–चक्र के चिह्न एवं शंख लिपि से उत्कीर्ण कुछ बातें या तथ्य हैं। किंवदन्ती के अनुसार यहीं जरासंध और श्रीकृष्ण के बीच सत्रह बार युद्ध हुआ और हर बार जरासंध की हार हुई लेकिन अठारहवीं बार युद्ध में श्रीकृष्ण रणभूमि छोड़कर भाग गए। इसलिए श्रीकृष्ण का एक नाम रणछोड़ भी है। लेकिन महाभारत के साक्ष्य से मगध नरेश जरासंध और मथुरा नरेश श्रीकृष्ण के बीच युद्ध होने का कारण जरासंध के जामाता कंस का श्रीकृष्ण द्वारा किया गया वध था। जरासंध ने कंस के वध का बदला लेने के लिए मथुरा, यदुवंश और श्रीकृष्ण को समाप्त करने का प्रण ले रखा था। इस पौराणिक कथा को छोड़ फिलहाल हम इसी स्थान पर केन्द्रित होते हैं। मैं देखता हूँ कि चट्टानों को काटते हुए रथ के पहियों के चलने का पथ नजर आता है। संभव है कि यह रास्ता सदियों से हो रहे पानी के कटाव से बना हो, लेकिन लोक–विश्वास महाभारत के साथ अधिक और इतिहास के साथ कम जाता है। वहाँ शंख–लिपि में खुदा हुआ भी कुछ दिखाई देता है लेकिन अभी तक शंख–लिपि को पढ़ा नहीं जा सका। अगर कभी इसे पढ़ा जा सका तो संभवतः इस स्थान के बारे में कोई और जानकारी मिले।

यहाँ से हम गृद्ध–कूट यानी गिद्धों के पर्वत की ओर बढ़ते हैं। किसी समय में यहाँ अवश्य ही गिद्धों का वास होगा लेकिन आज हमें वहाँ कोई गिद्ध नजर नहीं आता। वैसे भी गिद्धों की प्रजाति को नष्ट होने से बचाने के प्रयास हो रहे हैं। पर्वत में एक गुफा दिखाई देती है। यहीं पर कुछ समय बुद्ध रहे और यहीं पहली बुद्ध–परिषद् का पहला अधिवेशन हुआ। इसी प्रदेश में रहते हुए बुद्ध ने मगध–नरेश बिम्बिसार को प्रभावित किया। बिम्बिसार और उनके पुत्र अजातशत्रु, जो बुद्ध के प्रतिद्वंद्वी देवदत्त से प्रभावित थे, के बीच मन–मुटाव का कारण बना और अन्ततः अजातशत्रु ने अपने पिता को जेल में डाल दिया। इसी कथा को आधार बनाकर प्रसाद का नाटक 'अजातशत्रु' याद आता है। अजातशत्रु की उद्धतता और छलना की राजनीति अजातशत्रु को सम्राट बना देती है। वस्तुतः हिंदी नाटकों में स्त्री–विमर्श की शुरुआत छलना के चरित्र से ही मानी जानी चाहिए। यहीं से हम उस जेल की ओर बढ़ते हैं, जहाँ अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को कैद किया था। इस स्थान को चारों ओर से पत्थरों की मेड़ बना कर सुरक्षित रखा गया है। पिछली ओर पहाड़ी और खाई है और आगे सड़क। जेल जैसा तो अब यहाँ कुछ नहीं है। केवल कल्पना के घोड़े दौड़ाकर ही जेल की मानसिक स्थापना की जा सकती है। जेल के ठीक सामने थोड़ा हटकर बुद्ध के वैद्य जीवक का औषधालय है, ऐसा माना जाता है।

यहाँ हम लोग जापान द्वारा निर्मित विश्व शांति –स्तूप (पीस पैगोडा) की ओर बढ़ते हैं। इस शांति –स्तूप की स्थापना राजगीर में सबसे ऊँची पहाड़ी पर की गई है। जाने के लिए पैदल–पथ की व्यवस्था है और ट्रॉलियों की भी। एक ट्रॉली में एक ही व्यक्ति जा सकता है। ट्रॉली में बैठना और उतरना– दोनों ही फुर्ती की मांग करते हैं। इसमें एक सहायक आपकी सहायता के लिए भी तत्पर रहता है। मैं और शशि अलग–अलग ट्रॉलियों में सवार होते हैं। लगभग सात–आठ मिनट का रास्ता। ट्रॉली ज्यों–ज्यों ऊँचाई हासिल करती है, राजगीर का नजारा साफ नजर आने लगता है। हरियाली ज्यादा नजर आने लगती है। मैं ट्रॉली में बैठा अपनी सैल्फियाँ खींचने लगता हूँ। कुछ देर बाद हम विश्व शांति –स्तूप के सामने हैं। यह विश्व के 80 शांति –स्तूपों में से एक है और इसका निर्माण 1969 में जापान द्वारा करवाया गया। इसके आसपास मानव–निर्मित वेणु–वन है। ऊपर पहुँचकर हवाएँ तेज हो जाती हैं। आसमान और भी साफ दिखाई देने लगता है। शांति का रंग श्वेत है और इस पीस पैगोडा का भी। गोलाकार बने हुए इस पीस पैगोडा में चारों दिशाओं में बुद्ध की स्वर्णिम प्रतिमाएँ यही ध्वनित करती हैं कि शांति का संदेश विश्व की चारों दिशाओं में फैले।

नियत समय पर हम लोग नीचे लौटते हैं। बस आगे की यात्रा के लिए तैयार है लेकिन थाईलैंड से आए हमारे मित्र अभी तक नहीं लौटे।

आसपास घूमकर उन्हें तलाशने की कोशिश की जाती है लेकिन सब व्यर्थ। विदेशी सैलानी गायब हो जाएँ, तो अपहरण की संभावना आशंकित कर देती है। मोबाइल भी काम नहीं कर रहे। लगभग आध–घंटा देरी से लौटते हैं। शिष्टाचारवश हममें से कोई भी उनपर नाराज़ नहीं होता। देरी की वजह समय का भ्रम था। भाषा के कारण संप्रेषणीयता का संकट था। बहरहाल यह चाय का समय है। होटल पहुँचते हैं। चाय तैयार थी और बादल भी। काले बादल न जाने अचानक कहाँ से घिर आते हैं और तेज़ बौछारें हमें शीतलता देने लगती हैं। जैसे कि पीस पैगोडा का शांति संदेश हमें यह बादल दे रहे हों।

नालंदा में खोजता हूँ अपनी पहचान

राजगीर में चाय पीने के बाद हमें जल्दी से नालंदा की ओर रवाना होना था। मैं नालंदा देखने के लिए न जाने कितनी सदियों से उत्सुक था। होटल से बाहर निकल कर देखता हूँ कि आसमान में घने बादल तैर रहे हैं। बारिश झमाझम होने लगती है। जल्दी से हम सब लोग बस में सवार हो जाते हैं और बस बढ़ती है नालंदा की ओर। मुझे लगता है नालंदा के साथ मेरा रिश्ता सदियों पुराना है। राजगीर से सिर्फ बीस किलोमीटर का रास्ता है। रास्ते में वही सब ध्वस्त स्थल, जिन्हें हम पहले देख चुके थे। रास्ते में एक बौद्ध विहार है। थोड़ी देर के लिए रुकते हैं। वहाँ पल भर के लिए रुकना मुझे व्यर्थ लगता है, लेकिन कुछ लोगों की राय के साथ चलना पड़ता है। इसे ही सामूहिकता कहते हैं। एक घंटे में नालंदा के विशाल परिसर के सामने खड़ा कुछ देर के लिए एकदम अवाक हो जाता हूँ। विशाल परिसर में दूर–दूर तक फैले हुए कई छोटे–बड़े स्तूप दिखाई देने लगते हैं। हवाओं में मस्ती आ गई है और हमारे चलने में चुस्ती।

नालंदा का वैभव ही था कि एक जमाने में यहाँ चीन, तिब्बत, कोरिया और मध्य एशिया से कई लोग शिक्षा हासिल करने आते थे। गुप्त और पाल साम्राज्य की यह धरोहर हमें हमारे स्वर्णिम अतीत के साथ जोड़ देती है। आज हम शिक्षा को लेकर जैसे पूरी तरह से पश्चिमोन्मुख हो गए हैं। अपनी जड़ों से थोड़ा दूर। नालंदा प्रेरित करता है कि हम इस धरोहर को संभालें और पूर्व–पश्चिम के सम्मिलित रूप को ही अपनी शिक्षा का आधार बनाएँ। नालंदा विश्वविद्यालय को नष्ट करने के लिए बख्तियार खिलजी को जिम्मेदार माना जाता है। मन में कौंधता है यह सवाल कि मुसलमानों ने मूर्तियों को कई जगहों पर और कई बार खंडित क्यों किया? इस्लाम की शुरुआत सऊदी अरब से हुई। उस समय कई कबीले वहाँ रह रहे थे और हर कबीले के अपने–अपने देवता। अपने–अपने धर्म और अपने–अपने कबीले को चलाने के लिए अपने–अपने कायदे–कानून। इसी परिवेश में पैगंबर आए, इल्हाम हुआ और इस्लाम ने जन्म लिया। इतिहास गवाह है कि सबसे पहले पैगंबर की पत्नी जैनब ने ही इस्लाम कबूल किया और उसके बाद कुछ और लोगों ने। फिर काफ़ीला बना, मिशन बना कि कबीलों को एक साथ लाने के लिए और उनके लड़ाई–झगड़े बंद करवाने के लिए उनके देवताओं के बुतों को ध्वस्त करना ज़रूरी है ताकि उन सबको इस्लाम नाम की एक छत के नीचे लाया जा सके। यहीं एकेश्वरवाद पैदा हुआ जो भारत में सदियों पहले हो चुका था। इस्लाम फैलने लगा। तलवार का जोर था। इस्लाम में बुत–परस्ती को कुफ्र माना गया और बुतों को तोड़ा गया। यानी इस्लाम कबूल करने वालों का मनोविज्ञान बुत–भंजक ही बना। वक्त के साथ बहुत कुछ बदला। इस्लाम का स्वरूप भी। हर देश में इस्लाम के अलग–अलग संस्करण मिल जाएँगे, लेकिन मूलाधार 'कुरान' ही है। हिंदुओं में बहुलतावाद शुरू से ही था, आज भी है। आर्य समाज भी मूर्ति–पूजा के विरोध में सामने आया, लेकिन किसी भी आर्य समाजी ने मंदिरों में घुसकर मूर्तियों को तोड़ा नहीं। जिनका अकीदा है, उन्हें मानने दो। रास्ता तो एकेश्वरवाद से आगे भी कहीं है न! मैं खुद अपने को मूर्ति–पूजा, ईश–पूजा, गीता के कर्मवाद के विरोध में पाता हूँ लेकिन ऐसा तो नहीं कि कोई हथियार उठाऊँ और किसी मंदिर–मस्जिद को तोड़ने निकल पड़ूँ। ऐसा करना मेरी साइकी में ही नहीं है। इस्लाम का तालिबानीकरण हुआ तो अफगानिस्तान के बामियान में बुद्ध की विशाल प्रतिमाओं को खंडित किया गया। मूर्ति तोड़ना उनकी साइकी में है। तब हिंदुओं ने बाबरी मस्जिद को क्यों तोड़ा? क्या हिंदुओं की साइकी भी बदल गई है या इसे इकलौती घटना मानकर छोड़ देना चाहिए। यह प्रश्न गंभीर है। तभी तो नालंदा ध्वस्त हुआ। लेकिन क्या आज इन बातों को लेकर हम केवल यहीं रुके रहेंगे? हमें तो यह मंत्र याद रखना है कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

मन में एक जिज्ञासा थी कि नालंदा विश्वविद्यालय का नाम नालंदा क्यों है? इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए यही प्रश्न मैं अपने मार्ग–दर्शक से करता हूँ। बकौल उनके, नालंदा के नाम को लेकर कई लोगों की अलग–अलग राय है, लेकिन हीरानंद शास्त्री की राय है कि इस स्थान पर कमल–नालों की बहुतायत की वजह से ही इस विश्वविद्यालय का नाम नालंदा पड़ा। एक और मत के अनुसार नालंदा का नाम

ना–अलम–दा यानी देने में जिसकी मूख खत्म न होती हो। यहाँ पर आखिर शिक्षक छात्रों को विद्या का दान ही तो देते थे। और फिर देने में सबसे आगे, सबसे ऊपर होना बुद्ध के दर्शन का भी तो एक हिस्सा है। जो भी हो, नालंदा शब्द का नाद है कि देर तक मन में गूँजता रहता है।

कई लोग साथ हैं। सबके अपने–अपने प्रश्न हैं। मैं गाइड को हथिया लेना चाहता हूँ कि ज्यादा से ज्यादा जानकारियाँ मिल सकें। जानकारियाँ तो पुस्तकों से भी मिल जाती हैं लेकिन नालंदा के स्तूपों का स्थापत्य कितना अद्‌भुत है, इसका आनंद तो केवल अपने चक्षुओं से ही लिया जा सकता है। इस समय मैं वही कर रहा हूँ। कहाँ विद्यार्थी रहते थे, कहाँ उनका खाना बनता था, कहाँ वे सोते थे, सभी स्थान इसलिए विस्मित करते हैं कि इतने बड़े स्तर पर प्रबंधन का कौशल यहीं मौजूद है। अपने उत्कर्ष काल में नालंदा में एक ही समय में दस हज़ार विद्यार्थी और दो हज़ार शिक्षक तक समा सकते थे और यह विद्यार्थी भी केवल भारत के नहीं, बल्कि चीन, जापान, पर्शिया, तिब्बत, इंडोनेशिया और टर्की जैसे देशों से पढ़ने के लिए आते थे। यानी नालंदा संग्रहालय को देखना जैसे एक पूरे युग को देखना है।

शाम ढलने लगी है। नालंदा के प्रवेश–द्वार के बंद होने का समय निकट है और हमारा इस परिसर से बाहर निकलने का। मन कहता है, यहीं रुकूँ, संतरी की सीटी कहती है, बाहर चलो।

बस में सवार हम लोग गया के स्टेशन पर पहुँचते हैं। गाड़ी हमारी प्रतीक्षा में उदास है। लोगों के सवार होते ही वह चहकने लगती है। हमारा अगला पड़ाव बनारस है।

बनारस की सुबह

यह मार्च महीने के आखिरी दिन की सुबह है और हम वाराणसी के स्टेशन पहुँच गए हैं। वाराणसी में एक बार पहले भी आना हुआ था। उस यात्रा में पहली बार बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विशाल परिसर को पास से देखने का अवसर मिला। पहली बार ही गंगा आरती भी देखी थी लेकिन सबसे अविस्मरणीय शाम हमारी ज्ञानेन्द्रपति और ओम निश्चल के साथ गुजरी थी। उस शाम को मेरे दोनों अनुज, महेन्द्र और राजेन्द्र भी साथ थे। ज्ञानेन्द्रपति से पहली बार ही निकट से मिलना हो रहा था। वैश्विक स्तर पर चल रही राजनीति और क्षरित होते मूल्यों पर लंबी चर्चा हुई थी।

इस बार हमारे पास समय कम है। सुबह के केवल चार घंटे हमारे पास हैं और हमें नाश्ते तक होटल लौट आना है। दिल्ली में एक निकट के मित्र ने आग्रह किया था कि उनके लिए विश्वनाथ मंदिर का प्रसाद अवश्य लेकर आऊँ। सो हम लोग विश्वनाथ मंदिर पहुँचते हैं। लंबी कतार है और हमारे पास समय नहीं है। जेब में पैसा हो तो विश्वनाथ से मुलाकात भी जल्दी हो जाती है। एक पंडित महोदय का सहारा लेते हैं और आनन–फानन में अंदर जाकर दिल्ली वाले मित्र की मुराद पूरी करते हैं और बाहर। जल्दी से हम होटल पहुँचना चाहते हैं। रास्तों में जाम है। गाड़ी हिल भी नहीं रही। जैसे तैसे होटल पहुँचकर नाश्ता और फिर हम लोग अपनी–अपनी बसों में सवार होकर सारनाथ की ओर रवाना होते हैं।

सारनाथ का महत्त्व

सारनाथ बनारस से केवल 13 किलोमीटर दूर है। कहीं रास्ता साफ, कहीं रौंकरा तो कहीं लोगों और गाड़ियों से भरा हुआ है। लगभग एक घंटे में ही यह दूरी तय हो पाती है। सारनाथ में प्रवेश करते ही एक जगह है चौखंडी। बस वहीं रुक जाती है। सामने एक बड़ा सा पार्क और उसमें विश्व में सबसे ऊँची बुद्ध की प्रतिमा है। 80 फुट। हैदराबाद में हुसैन सागर में स्थित बुद्ध–प्रतिमा से बीस फुट और ऊपर। आजकल धर्म, आस्था और श्रद्धा का प्रदर्शन करने का तरीका यही बन गया है कि कौन अपने आराध्य की प्रतिमा कितनी ऊँची बनाता है। सबसे ऊँची बने तो क्या कहने। दिल्ली में ही शिव और हनुमान के ऊँचे बुत इसका प्रमाण हैं। ऊँची–ऊँची और महंगी से महंगी प्रतिमाएँ बनाना आस्था है या अहंकार? जितना बड़ा अहंकार उतनी ऊँची प्रतिमा। चौखंडी में यह वही स्थान है, जहाँ पहली बार बुद्ध अपने पाँच शिष्यों से मिले थे। आजकल यह प्रेमी–युगलों के लिए इश्कगाह है!आपकी आस्था बुद्ध में है तो प्रतिमा और थाई बौद्ध मंदिर प्रस्तुत हैं और इश्क फरमाने का मन है तो पेड़ों की घनी छाया में हरे–भरे लॉन मौजूद हैं।

यहाँ से हम सारनाथ में ही डीयर पार्क की ओर बढ़ते हैं। यह वही स्थान है, जहाँ पर बुद्ध ने अपना सबसे पहला प्रवचन दिया और अपने धम्म की स्थापना की। उनके पहले पाँच शिष्य बौद्ध धर्म के इतिहास में अपना स्थान सफरक्षित रखे हुए हैं। यहीं पर बुद्ध ने अतिवाद की बजाय

मध्यम–मार्ग का प्रस्ताव रखा, उसे समझाया कि मनुष्य के लिए मध्यम–मार्ग ही उत्तम मार्ग है। प्रसाद के शब्दों में 'मध्य–पथ से लो सुगति सुधार'। अतिवाद चाहे कैसा ही हो, तनाव को तो जन्म देता ही है। लेकिन यह भी सत्य है कि बिना 'अति' के किसी दर्शन की स्थापना नहीं की जा सकती। बुद्ध का मध्यम–मार्ग पर अतिरिक्त आग्रह भी तो एक तरह का अतिवाद ही है।

इस ओर जाने से पहले हम संग्रहालय में प्रवेश करते हैं। संग्रहालय में बुद्ध एवं अशोक के समय के अवशेष सफरक्षित हैं। यहीं पर सफरक्षित है चार शेरों वाला अशोक–स्तंभ। भारत सरकार ने इसे ही अपनी सत्ता का प्रतीक बनाया। चार में से एक शेर खंडित हो चुका है। शेष तीन भी जैसे–तैसे अपने अस्तित्व की लड़ाई में लगे हुए हैं। भारतीय मुद्रा पर यही तीन शेर नजर आते हैं। पीछे वाला शेर अनुपस्थित रहने के लिए अभिशप्त है। इसी अभिशप्तता का शिकार बौद्ध धर्म भी हुआ है। चार नोबल सत्य और आठ आयामी मार्ग की इबारत पर खड़ा हुआ है पूरा बौद्ध–धर्म।

संग्रहालय की यात्रा के बाद हम उस स्थान की ओर बढ़ते हैं, जहाँ बुद्ध ने अपने पहले पाँच शिष्यों को अपना पहला प्रवचन दिया था। एक चबूतरा और उसमें पीपल का एक पेड़। पेड़ की चारों ओर बाड़ लगाकर उसे सफरक्षित कर दिया गया है। कई जड़ें बदलने के बाद भी यह पीपल का पेड़ श्रद्धालुओं के लिए ढाई हजार साल पुराना है। यहीं पर उन पाँच शिष्यों की प्रतिमाएं भी सफरक्षित हैं, जिन्हें बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन दिया था। एक ओर देखता हूँ कि सैंकड़ों की संख्या में अर्जियाँ टंगी हुई हैं। भारतीय जन प्रार्थना और याचना करने में सबसे आगे है। ऐसी ही असंख्य अर्जियां मैंने अल्मोड़ा के गोलू देवता के मंदिर में देखी थीं। अर्जियाँ उलट–पलट कर देखता हूँ। अधिकतर अर्जियाँ हिंदी या टूटी–फूटी अंग्रेजी में हैं। अजीब–अजीब यातनाएँ और अजीब–अजीब कामनाएँ। कुछ तो ऐसी कि उन्हें यहाँ दर्ज करना भी संभव नहीं।

संग्रहालय के ठीक सामने डियर पार्क वह विशाल हिस्सा है, जिसमें अनेक स्तूप और स्मृति–स्थल अपने अस्तित्व की एक खामोश लड़ाई लड़ रहे हैं। बीचोंबीच एक बड़ा सा स्तूप है। कहा जाता है कि इस विशाल और ऊँचे स्तूप में ही बुद्ध के अवशेष सफरक्षित हैं। हैं या नहीं, इस बात पर विवाद बना हुआ है। विशाल पार्क में तीन–चार जगहों पर सफेद और गेरुआ वस्त्रों में कुछ समूह नजर आते हैं। इनमें से कुछ शिष्य हैं, कुछ गुरु। सफेद कपड़ों में नजर आने वाले शिष्य हैं, उनकी संख्या भी ज्यादा है और गेरुआ वस्त्रों में नजर आने वाले गुरु हैं। बन चुके बौद्ध और बनते हुए बौद्ध। दुनिया से बेखबर। अपनी शिक्षा हासिल करने में तल्लीन। डियर पार्क में हिरण तो अब भी हैं लेकिन केवल नाम के। कुछ पक्षी और एक छोटे से जलाशय में मगरमच्छों को रखा गया है।

सारनाथ में केवल बौद्धों के लिए ही नहीं, जैनों एवं हिंदू धर्मावलंबियों के लिए भी आस्था के स्थान मौजूद हैं। उनपर भी एक निगाह डालते हुए हम वाराणसी की ओर लौटते हैं। होटल में खाना हमारी प्रतीक्षा में है। जी भरकर लंच और थोड़ी देर आराम।

सूर्य ढलने से पहले ही हम लोग पुनः बसों में सवार होकर गंगा के दशाश्वमेध घाट की ओर रवाना होते हैं। एक बड़ा स्टीमर हमारी प्रतीक्षा में है। थोड़ी देर तक पैदल मार्च और फिर स्टीमर में सवार होकर हम लोग गंगा के विभिन्न घाटों का नज़ारा दूर से ही लेते हैं। पिछली बार जब बनारस आना हुआ था तो एक कश्ती पर सवार होकर चौरासी घाटों की यात्रा की थी लेकिन इस बार मुख्य रूप से मणि–कर्णिका घाट और हरिश्चंद्र घाट आदि ही देख पाते हैं। इन दोनों ही घाटों पर हिंदू रीति से अंतिम संस्कार की व्यवस्था है। मणि–कर्णिका घाट एक ऐसा घाट है, जहां चिता कभी ठंडी नहीं होती। ऐसा माना जाता है कि पार्वती के कानों के बुंदों की मणि यहाँ गिरी, इसलिए इसे मणि–कर्णिका घाट कहा जाता है। हल्का–हल्का अँधेरा घिरने लगा है। स्टीमर दशाश्वमेध घाट के सामने आकर रुक जाता है। शंख–ध्वनि के साथ ही गंगा आरती शुरू होती है। प्रतिदिन संध्या समय गंगा आरती का वितान सालों से चला आ रहा है। हमारे आसपास सैंकड़ों की संख्या में नावें लगी हुई हैं। पास के दो और घाटों पर भी गंगा–आरती होती है लेकिन अधिक भीड़ इसी घाट पर जुटती है। सबसे पहले आरती की शुरुआत यहां हुई तो आस्था का केन्द्र यही घाट ज्यादा है। गंगा का पानी मैला नजर आ रहा है। मैल के साथ दुर्गंध भी है। मैली है तो क्या, है तो गंगा। गंगा के प्रति भारतीयों की आस्था के सामने कोई और मिसाल मिलना मुश्किल है और गंगा के प्रति इतनी लापरवाही की मिसाल मिलना भी मुश्किल है। गंगा आरती में बजते घंटे हवा में तेज़ी से तैरने लगते हैं। आरती के बड़े–बड़े दीपदान प्रज्ज्वलित कर दिए गए हैं। श्रद्धा, आस्था और शंका का सामूहिक भाव गंगा के पानी में तैरता नजर आने लगता है। अपने विधान के साथ आरती संपन्न होती है और हम वाराणसी स्टेशन पर खड़ी अपनी गाड़ी से मिलने के लिए प्रस्थान करते हैं। हमारा अगला पड़ाव गोरखपुर है। वहीं से हमें लुंबिनी की ओर रवाना होना है।

कैलेंडर का एक पन्ना और पलट गया है। पहली अप्रैल की सुबह। हम गोरखपुर के स्टेशन पर हैं। जरूरी कपड़े और दवाइयाँ एक थैले में भर लेते हैं। बाकी का माल–असबाब छोड़ बाहर खड़ी बस में सवार हो जाते हैं। एक होटल में नाश्ता। यह होटल पहले वाले होटलों से

कमतर है, लेकिन है। बस गोरखपुर की सड़कों से रपटती हुई लुंबिनी की ओर जा रही है। गोरखपुर, गुरु गोरखनाथ की नगरी। गोरखनाथ के मंदिर और अखाड़े कई बार नज़र आते हैं।

पहली बार नेपाल जाना हो रहा है। अधिकतर हम अपने देश में ही घूमना पसंद करते हैं। इतना बड़ा और इतनी विविधताओं से भरा हुआ है अपना देश कि विदेश जाने की ललक बिल्कुल नहीं होती। हाँ, कभी–कभी मन होता है कि विश्व के कुछ ऐतिहासिक शहरों की यात्रा की जाए। इतिहास तो हर शहर के पास होता है लेकिन कुछ शहर ज़रा ज्यादा ऐतिहासिक होते हैं, जैसे अपना दिल्ली शहर। मैं आजतक केवल एक बार बैंकॉक और सिंगापुर तक गया हूँ। वहाँ जाने की कहानी भी दिलचस्प है, लेकिन वह कहानी कहीं और। मैं शशि से मज़ाक करता हूँ कि यह तुम्हारी पहली विदेश यात्रा है। बिना पासपोर्ट और बिना वीज़ा के।

शीशे से बाहर झाँकता हूँ। सड़क के दोनों ओर वीराना है। अचानक ब्रेक लगती है और बस एक बहुत बड़े खाली प्लॉट में दाखिल हो जाती है। यहाँ एक थाई बौद्ध मंदिर का निर्माण हो रहा है। इस तरह के बौद्ध मंदिर पूरे रास्ते में नजर आते हैं। किसी मंदिर का निर्माण थाई सरकार या वहाँ के लोगों के पैसे से हुआ है तो किसी का निर्माण जापान या चीन के पैसे से। इस समय हम एक थाई बौद्ध मंदिर के परिसर में खड़े हैं। निर्माण कार्य तेज़ी से हो रहा है। यहाँ की विशेषता यह है कि यहाँ आप चाय–कॉफी या कुछ हल्के स्नैक्स ले सकते हैं। बिल इज़ निल। पूरा सेवा भाव। ऐसा हमने भारत के कई गुरुद्वारों में तो देखा है लेकिन और कहीं नहीं। एक प्याला कॉफी मैं भी ले लेता हूँ और मंदिर के तीमार होते स्थापत्य को निहारता रहता हूँ। यह स्थापत्य हमारे संस्कारों में नहीं है। इसे समझने के लिए इसके साथ गहरे जुड़ने की जरूरत है। जो भी हो, सौंदर्य तो हर हाल में अच्छा ही लगता है। बीच राह में कई मंदिरों को देखते–परखते हम नेपाल के प्रवेश–द्वार पर हैं। हमारे साथ जो विदेशी हैं, उनके पासपोर्ट ले लिए जाते हैं। हमें कहा गया था कि हम अपने–अपने पहचान–पत्र तैयार रखें लेकिन यहाँ कोई पूछता ही नहीं और थोड़ी देर के बाद हम नेपाल की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं। बस रुकती है। हमारा एक सहयात्री, विश्वनाथ पाठक, तेज़ी से उतरकर मिठाई ले आता है। नेपाली मिठाई। कुछ हिदायतें हमें गाइड की ओर से दी जाती हैं। यहाँ हमारे रुपए की कीमत नेपाली रुपए से ज्यादा है। लगभग दोगुनी। अच्छा लगता है कि कोई देश तो ऐसा है, जहाँ हमारे रुपए की भी आवभगत होती है। वरना तो डॉलर, यूरो डॉलर और पाउंड का ही शोर सुनाई देता रहता है।

प्रवेश–द्वार पार करने के बाद सड़क आठ–लेन की है। भारत की साइड की सड़क केवल डबल लेन है। खुली सड़क है तो बस की रफ्तार भी तेज़ है और हम दोपहर एक बजे के करीब बुद्ध माया होटल में चैक–इन कर लेते हैं। खाना तैयार है। नेपाल का खाना। खाते हैं तो भारत में मिलने वाले खाने से कुछ भी अलग नहीं लगता।

पहली अप्रैल है। कहने को तो यह मूर्ख बनाने का दिन है लेकिन हमारा इरादा मूर्ख बनने का नहीं और न किसी और का। बसें मायादेवी मंदिर की ओर चलने को तैयार हैं और हम भी। लुंबिनी यानी सुंदर। लुंबिनी ही वह स्थल है जहाँ सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। कपिलवस्तु से लगभग 25 किलोमीटर दूर। माना जाता है कि सिद्धार्थ की माता लुंबिनी से यहाँ गुजर रही थीं, तभी उन्हें प्रसव–वेदना हुई और यहीं सिद्धार्थ ने जन्म लिया। आज यहाँ एक विशाल मंदिर और उद्यान है। प्रस्तुत मंदिर जो हमें दिखाई दे रहा है, इसका निर्माण 1993 में जापानियों द्वारा करवाया गया। उनका मानना था कि वहां पर पहले से ही स्थित मंदिर के नीचे बौद्ध विहार के अवशेष हैं। उनके इस आश्वासन पर ही उन्हें उत्खनन की अनुमति दी गई कि बाद में वे ही यहाँ बौद्ध–मंदिर का निर्माण करवाएँगे। जापानियों ने जब उत्खनन करवाया तो वहाँ सचमुच बौद्ध–विहार मिला और मिली बुद्ध की एक बड़ी प्रतिमा जो अभी भी मंदिर में रखी हुई है। मंदिर के प्रवेश–द्वार के सामने अशोक–स्तंभ है। अनुयायियों का मानना है कि यही वह स्थल है, जहाँ सिद्धार्थ ने जन्म लिया। ऐसा हुआ या नहीं, नहीं मालूम। लेकिन भक्तों की आस्था है, तो है। तभी न रामलला का मंदिर वहीं बनाने की जिद पकड़कर करोड़ों हिंदू बेचैन हैं। मंदिर के बाहर बुद्ध के विशाल चरण अनुयायियों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। वहीं बैठकर कुछ बौद्ध चांटिंग कर रहे हैं। अपनी बाईं ओर नज़र डालता हूँ तो बुद्ध की एक और विशाल प्रतिमा खड़ी दिखाई देती है। भक्तों के लिए बुद्ध और मेरे लिए हरियाली को पीने का सुख।

मंदिर के अंदर प्रवेश करते हैं। बुद्ध की पुरानी और कुछ–कुछ खंडित हो चुकी प्रतिमा लेटी हुई है। चारों ओर बाड़ है और श्रद्धालु अपनी–अपनी श्रद्धानुसार धनादि से दान कर रहे हैं। यहाँ तक कि मंदिर की दीवारों के खंडों में भी कुछ डॉलर अथवा नोट आदि ठुंसे हुए नज़र आते हैं। परिक्रमा के बाद बाहर निकलते हैं और जगह के साथ जुड़ने की कोशिश करते हैं। हमारे साथ जो ताइवानी युवा और युवती हैं, वे तो आए ही इसलिए हैं। उनका जुड़ाव पहले से ही है। हाथ जोड़े और आंखें बंद करके वे न जाने किसके लिए क्या–क्या मांग रहे हैं।

लुंबिनी मंदिर के बाहर एक छोटा सा बाज़ार है। वही सब वही सामान उपलब्ध है जो दिल्ली के बाजारों में मिल जाता है। नेपाल के हस्तशिल्प से बनी हुई कोई वस्तु हमें नहीं मिलती। बसें तैयार हैं लेकिन हम हॉटल तक पैदल या रिक्शे पर जाना चाहते हैं। आखिर ज़मीन से आदमी पाँवों के रास्ते से ही जुड़ता है। हॉटल बहुत दूर भी नहीं है और हम बतियाते हुए हॉटल पहुँच जाते हैं। हॉटल में मैनेजर बीजू सहदेव से मुलाकात होती है। हमें अपने लिए अलग–अलग कंबल की ज़रूरत थी। वह हमारे कमरे में आ जाता है और थोड़ी सी बातचीत के बाद सहज होकर एक मित्र हो जाता है। अब हॉटल में किसी चीज़ की कमी नहीं। हर सुविधा सबसे पहले हमारे कमरे में। थोड़ी देर बाद वह अपने छोटे से बेटे को लेकर हमारे पास आ जाता है। बेहद सुंदर बच्चा। मन मोहक। उसकी आँखों में नींद भरी है। शशि उसे झिड़क देती है कि सोए बच्चे को क्यों उठा लाए। बीजू हमसे मिलकर बहुत उत्साहित है। वह दिल्ली आना चाहता है। यह बाद की बात है कि जब नेपाल में भूकंप आया तो हम लोग बहुत चिंतित हुए बीजू को लेकर। कई बार फ़ोन मिलाया, कोई जवाब नहीं। थोड़े दिन बाद उसी का संदेश आ गया। बीजू चैन्नई पहुँच चुका था।

रात हॉटल में ही रहना है। खाना खाने के बाद इधर–उधर टहल कर जगह के साथ अपना रिश्ता मजबूत करते रहते हैं। आकाश साफ है। चांदनी ज़मीन पर दस्तक दे रही है। उसकी दस्तक हम सुनते हैं। चाँदनी के साथ अपना रिश्ता मजबूत करते हैं।

अगली सुबह। नाश्ता और बस से ही कुशीनारा यानी कुशीनगर की ओर प्रस्थान। कुशीनगर एक छोटा सा शहर है। भीड़–भाड़ से परे। बौद्धों के लिए कुशीनगर का महत्त्व वैसे ही है जैसे लुंबिनी का। यही वह शहर है, जहाँ बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। मेरे लिए कुशीनगर का महत्त्व इसलिए भी है कि यह हिंदी के एक बड़े लेखक अज्ञेय की जन्मभूमि है। कुशीनगर की धरती पर पाँव रखते ही अज्ञेय का ध्यान आता कि एक छोटे से शहर से निकलकर इस लेखक, ने साहित्य में कितना ऊँचा स्थान हासिल किया था। बस से उतरकर सबसे पहले हम मोथा कुंअर मंदिर की ओर प्रस्थान करते हैं। एक छोटा सा मंदिर। आज यह मंदिर खस्ता हालत में है। फिर भी इस स्थान का महत्त्व इसलिए है कि यहीं पर बुद्ध ने अपने जीवन का अंतिम प्रवचन दिया था। सारनाथ से कुशीनगर में मोथा कुआं मंदिर तक की यात्रा बौद्ध–धर्म की यात्रा है।

गोरखपुर से लगभग 52 किलोमीटर दूर हिरण्यवती नदी के तट पर स्थित कुशीनगर के नाम को लेकर अनेक मत प्रचलित हैं। रामायण के अनुसार भी इस नगर को राम के पुत्र कुश ने बसाया, जबकि बौद्धों के अनुसार इस नगर का नाम कुश के आने से पहले ही पड़ चुका था। कुशीनगर इसलिए कहा गया कि यहाँ 'कुशा' बहुत मिलती थी। इसीलिए इसका प्राचीन नाम कुशावती है। बुद्ध के समय इसे कुशीनारा नाम मिला जो ईसा पूर्व छठी शताब्दी में मल्ल राज्य की राजधानी थी। मौर्य, शुंग, कुषाण और गुप्तवंश, हर्ष के समय से यह एक महत्वपूर्ण जनपद था। कलुरी राजाओं तक से इसे महत्त्व मिलता रहा लेकिन 12वीं शताब्दी के बाद यह स्थान लुप्त–प्राय: हो गया।

आधुनिक कुशीनगर उन्नीसवीं शताब्दी में किए गए उत्खनन के बाद सामने आया और इसका परिसंस्कार किया गया।

मोथा मंदिर से हम एक ऐसे परिसर की ओर बढ़ते हैं जो कुशीनगर में सबसे अधिक महत्त्व का है। इस परिसर में सबसे पहले रामभर मंदिर पाया जाता है जिसे हम बौद्ध चैत्य एवं स्तूप के रूप में देखते हैं। यह वह स्थान है जहाँ बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी अंतिम रस्में की गईं। अंतिम रस्मों से पूर्व बुद्ध के पार्थिव शरीर को शहर के उत्तरी–द्वार से बाहर ले जाकर पूरे नगर में घुमाया गया और पूर्वी द्वार से शहर से बाहर भी उसकी प्रदक्षिणा हुई। बाद में यहीं बुद्ध का अंतिम संस्कार हुआ और एक स्तूप का निर्माण करवाया गया। समय ने इस स्तूप को ढंक लिया और उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में कार्लाइल के प्रयत्नों से इस स्थान का उत्खनन करवाया गया। उत्खनन के दौरान यहीं ताँबे की एक प्लेट मिली जिसपर निदान–सूत्र था और उसे निर्वाण चैत्य में दबा दिया गया। यहीं पर एक स्तूप का निर्माण हुआ जिस पर बाद में सम्राट अशोक ने एक बड़ा स्तूप बनवाकर इसे सफरक्षित कर दिया। वस्तुत: यह स्तूप तीन स्तरों पर बना है और हर स्तर का समय अलग–अलग है। स्तूप के आगे, यानी प्रवेश–द्वार पर बुद्ध को महापरिनिर्वाण की मुद्रा में रखा गया है।

अब हम इसे देखने के लिए महापरिनिर्वाण मंदिर में प्रवेश करते हैं। बुद्ध की अंतिम वेला में उनके शिष्य सुभद्र उनके साथ थे। सूचना मिलते ही मल्ल राजा की पुत्री मल्लिका भी पहुँची और शिष्य आनंद भी। मंदिर में इन तीनों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। अखंडित लाल पत्थर से निर्मित निर्वाण प्राप्त करते हुए बुद्ध को लेटे हुए मुद्रा में स्थापित कर दिया गया है। लगभग छह मीटर लंबी यह प्रतिमा भव्यता समेटे हुए बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा के अनुसार है। हीनयान में बुद्ध की महापरिनिर्वाण की मुद्रा में सिर नीचे रहता है, जिसका अर्थ है कि बुद्ध अब नहीं आएँगे, जबकि महायान मत के अनुसार बुद्ध का सिर ऊँचा रहता है जिसका अर्थ है कि बुद्ध फिर आएँगे। भक्त–जन आते हैं और बुद्ध–प्रतिमा के पाँवों के पास खड़े होकर अपनी श्रद्धा अर्पित करते हुए निकल जाते हैं। कुछ लोग मंदिर की दीवारों से सटकर खामोश बैठे शायद बुद्ध के लौटने की

प्रतीक्षा कर रहे हैं। 'यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।' सभी अपने–अपने सुपरमैन की प्रतीक्षा में हैं। यह भी 'वेटिंग फ़ार गोदो' ही तो है!

मंदिर से बाहर निकलकर एक बार फिर पूरे परिसर को हम देखते हैं। हरा–भरा है परिसर और अनेक बौद्ध–अनुयायी स्तूप के आसपास बैठकर जप कर रहे हैं। हम बस के पास लौटते हैं, वहीं कपड़े पर बुद्ध की लेटी हुई प्रतिमा उकेरकर कुछ स्थानीय कलाकार उन्हें बेच रहे हैं। यही उनकी रोज़ी–रोटी है। मैं चार खरीद लेता हूँ। दिल्ली लौटकर बुद्ध के भक्तों को बाँट दूँगा।

अगला पड़ाव श्रावस्ती है। हमारी गाड़ी गोरखपुर स्टेशन पर हमारी बाट जोह रही है। दिन भर की थकान के बाद अपने छोटे से अस्थाई आशियाने में आना बहुत अच्छा लगता है। गाड़ी रफ्तार पकड़ती है और हम अपने–अपने जाम। अगली सुबह गाड़ी हमें गोंडा जंक्शन पर उतार देती है और हम बस से श्रावस्ती की ओर रवाना होते हैं।

भारत के हर शहर की तरह श्रावस्ती की भी एक ऐतिहासिक यात्रा है। राप्ती नदी के पश्चिमी छोर पर बसी हुई श्रावस्ती का आज वह वैभव नहीं, जो छठी शताब्दी ईसा पूर्व था। यह वही समय था जब यह कौशल राज्य की राजधानी थी। एक मिथ के अनुसार इस शहर को वैदिक कालीन राजा श्रावस्त ने बसाया था, सो इसका नाम 'श्रावस्ती' हुआ। इतिहास के इस काल–खण्ड के साथ आज श्रावस्ती को कम जोड़ा जाता है। आज श्रावस्ती दो कारणों से एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ एवं पर्यटन–स्थल बन गई है। ऐसा विश्वास है कि यहाँ का शोभनाथ मंदिर ही तीर्थंकर संभवनाथ का जन्मस्थान है। हमारे दल के साथ एक जैन भी हैं और वे चाहते हैं कि पहले इसी मंदिर के दर्शन किये जाएँ। हम सब उसी ओर चल देते हैं। एक बड़ा परिसर है मंदिर का, लेकिन भव्यता की जगह यहाँ सादगी है। कुछ लोग आरती के लिए तैयार हैं। हम भी वहाँ खड़े होकर आरती देखते हैं। जैन–मित्रों की दिली इच्छा पूरी होने के बाद हम जैतवन की ओर बढ़ते हैं।

हमारे मार्ग–दर्शक श्रावस्ती का इतिहास बताते हुए चलते रहते हैं। पढ़े–लिखे हैं। काफी जानकारियाँ हैं उनके पास। बताते हैं कि बृहतकल्प के अनुसार चौदहवीं शताब्दी में इस शहर का नाम साहिद था और फिर साहेत–माहेत के नाम का भी उल्लेख मिलता है। एक समय में शहर एक किले में बसा हुआ था। भारत सरकार ने जब खुदाई करवाई तो यहाँ कई मंदिर और मूर्तियाँ मिलीं जो आज मथुरा और लखनऊ संग्रहालय में सफरक्षित हैं।

इतिहास की बात अपनी जगह। आज श्रावस्ती जैतवन के कारण ही अधिक जानी जाती है और बौद्धों के तीर्थ–स्थलों में यह एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ–स्थल है। ऐसा माना जाता है कि गौतम बुद्ध ने अपने जीवन के चौबीस चौमासे इसी जैतवन में गुज़ारे। एक मत के अनुसार उन्होंने श्रावस्ती में तो चौबीस लेकिन जैतवन में 19 गुज़ारे। इस बहस से बाहर मैं जैतवन के विशाल हरे–भरे परिसर को देखता हूँ। जहाँ–तहाँ बौद्ध–भिक्षु घूमते हुए नज़र आते हैं और एक भिक्षु हमें पकड़कर अपने पास खड़ा करके जैतवन का महत्त्व समझाने लगता है। हर धर्म के अनुयायियों की तरह ही उसके कथनों में भी अतिशयोक्ति की मात्रा पर्याप्त है। वह यहाँ बुद्ध द्वारा किए गए चमत्कारों के बारे में अधिक और बौद्ध–धर्म के मूल–तत्त्वों के बारे में कम बताता है। वस्तुतः सामान्य जन चमत्कारों की ओर ही अधिक आकर्षित होता है, जैसे मूल–तत्त्व तो वह जानता ही है।

जहाँ–जहाँ तक नज़र जाती है, या तो तरह–तरह के पेड़ दिखते हैं या स्तूप। विहार नज़र आते हैं या मंदिर। अब हम आनंद बोधि–वृक्ष की ओर बढ़ते हैं। कहते हैं, जब बुद्ध पहली बार यहाँ आए तो उनके साथ उनके दो शिष्य आनंद और सुदत्त भी थे। आनंद ही अपने साथ बोधगया से बोधि–वृक्ष की कलम लाए और उन्होंने उसे यहाँ रोप दिया। हम अब इसी वृक्ष के नीचे बैठे हैं। वृक्ष की शाखाएँ और जड़ें साफ बता रही हैं कि यह वृक्ष हज़ारों नहीं तो सैकड़ों वर्ष पुराना ज़रूर है। भक्तों के लिए तो यह आदि–वृक्ष है। कोई प्रश्न नहीं, कोई जिज्ञासा नहीं।

श्रावस्ती इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि बुद्ध ने वैशाली छोड़कर यहाँ आने का निर्णय लिया। इसका कारण संभवतः उन्हें मिलने वाले संरक्षक थे। अनाथपिंडिका, विशाख आदि ने उन्हें सब तरह की सुविधा दी और वुडवार्ड के अनुसार उनके चार निकायों में 871 सूत्र हैं और उनमें से 844 की रचना श्रावस्ती के जैतवन में हुई है।

यह तथ्य अकादमिक चर्चा का विषय है लेकिन एक बात तो तय है कि बुद्ध ने वैश्विक स्तर पर अपना और अपने चिंतन का प्रभाव छोड़ा। हमारे इस यात्रा–कार्यक्रम में वैशाली शामिल नहीं है। इसलिए वैशाली छूट जाता है और हम बढ़ते हैं आगरा की ओर। आगरा की चर्चा भी छोड़ता हूँ, क्योंकि आगरा का संबंध बुद्ध से नहीं है। वहाँ बुद्ध से नहीं शाहजहाँ से साक्षात्कार होता है।

वैराग्य की जगह मुहब्बत ले लेती है। इंसानी मुहब्बत और रूहानी मुहब्बत दो मरहले। लेकिन क्या इंसानी मुहब्बत ही असल में रूहानी मुहब्बत नहीं होती?

यूरोप

रेखाचित्र

घर का जोगी

—श्री आत्माराम शर्मा

जब हम बच्चे थे तो जोशी कक्का हमें बूढे लगते थे। उन्हें रामायण कंठस्थ थी और 'बदोबास', यानी राम का वनगमन प्रसंग अत्यधिक प्रिय। जब वे इसे सस्वर गाते तो उनकी आँखों से आँसू झरते। कक्का का रोना हमारी समझ से बाहर होता। हम सभी बच्चों को उनकी स्थायी सीख मिली थी कि हमें राम की तरह आज्ञाकारी होना चाहिए। पर वही राम जब पिता के आदेश का पालन करते हुए वनगमन करते हैं तो फिर इसमें रोने की क्या बात हुई? आखिर रामजी अपने पिताजी की आज्ञा का पालन ही तो करते हैं। जो भी हो, कक्का इस प्रसंग में धार-धार रोते और हम सभी आँसुओं से भीगता उनका चेहरा देखते।

कक्का की आवाज पतली है। उनकी चाल भी नाजुक है। मसखरी करने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि कक्का घर में काम करते हुए तौलिया सिर पर डाल लेते हैं, बिलकुल काकी की तरह।

हमारे घर में मंदिर था। अब भी है। शाम की पूजा-आरती में कक्का नियमित आते। आरती के बाद जय बोलने में कक्का सबसे आगे रहते।

'श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन।' की स्तुति प्रारंभ करते ही कक्का मगन हो जाते। हमें आज तक समझ नहीं आया कि मंदिर में मूरत कुंजबिहारी यानी राधा-कृष्ण की है और स्तुति रामचन्द्रजी की गायी जा रही है!

कक्का का पूरा नाम नारायणदास जोशी था, लेकिन वे जगत कक्का थे। जैसे 'जिज्जी', 'फुआ', 'मौसी', 'काकी', 'मामी' संबोधन व्यक्तिगत और चारित्रिक गुणों की वजह से मिल जाते हैं – सभी उन्हें कक्का ही कहते हैं।

वे शनीचरी माँगते, मूल पूजते – मूल नक्षत्र में पैदा हुए बच्चों पर से मूल उतारने की पूजा। हमारे मोहल्ले में भी वे आते, लेकिन हमारे घर से वे शनीचरी नहीं लेते। हमारा घर देवस्थान के साथ ही उनका गुरु स्थान भी था, सो उसका दान वे कैसे स्वीकार कर सकते हैं – ऐसा वे कहते हैं।

हमारे पी.टी.आई. मास्साब, जो हमें अँगरेजी भी पढ़ाते और जो अशोकवारी बखरी की अटारी में रहते थे, कक्का के संदर्भ में सहज ही कहा करते कि शनीचरी माँगना भी एक तरह से भीख माँगना है। लेकिन शनीचरी माँगना भीख माँगना नहीं है। राम-राम की सुरीली टेर लगाते कक्का ज्यों ही किसी दरवाजे पर रुकते, आगे वाले घर की महिलाएँ भी शनीचरी देने के लिए सामान उठाने लगतीं। शनिवार को दिया जाने वाला दान यानी मीठा तेल, आटा, दाल और खड़े नमक की दो डिगरियाँ। कक्का के कँधे पर कई झोलियाँ होतीं जिनमें वे सीधे के सामान को अलग-अलग रखते। हाथ में तेल के लिए पीतल की बाल्टी होती।

कक्का अपने मुँह से कभी कुछ नहीं माँगते। वे तो बस राम-राम की टेर लगाते। कई बार वे मोहल्ले के किसी पेड़ के नीचे बैठ जाते और कई घरों से महिलाएँ आकर उन्हें शनीचरी देती जातीं। इसी के साथ दुनिया-जहान की बातें भी चलती रहतीं। तीज-त्यौहार, अवसर-काज, पूनें-अमावस, महूरत-ग्रह-दशा संबंधी दसियों सवाल के जवाब कक्का सहजता से देते रहते। उनके सामने अपनी निजी समस्याओं को भी रखते। 'कक्का लरका बिगर गओ है – बात नईं सुनत', 'मोड़ी के लाने कुंडली नहीं मिल रई', 'बाहर गाँव जाने है – मुहूरत कैसो है', जैसी समस्याओं के कक्का सहज भाव से जवाब देते। 'रामजी सब ठीक करिहैं', कक्का की रामबाण दवा है जो अचूक भी है और असरकारी भी।

कक्का बड़े आस्थावान हैं। दुनिया जैसी भी है उसमें उनकी बड़ी आस्था है। अत्यंत विनम्रता से वे कहते– 'बड़े भाग मानुष तन पावा।' उनकी दार्शनिकता गहरी है कि नहीं, लेकिन महिलाओं को उस पर गहरा भरोसा होता, हाथ से काम और मुँह से राम वाली पद्धति का प्रचार कक्का की अनोखी शैली है। 'जाही बिधि राखे राम – ताही बिधि रहिए' उनका जीवन सार है। वे हर हाल में निश्चिंत रह लेते हैं। वे कहते 'कछु लेके तो जाने नइयाँ, इतई धरो रह जाने सब।'

'एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुनि आधि, तुलसी संगत साधु की, हरे कोटि अपराध।' साधु की संगत पाने के लिए कक्का की हुलास कभी खत्म नहीं होती। गाँव में कहीं भी कथा-सत्संग हो, कक्का स्थाई श्रोता हैं। वे पहले पहुँचते और आखिर में जाते। 'राम रस बरसन लगो गलियन में' बरसते हुए राम रस को कक्का तल्लीनता से समेटते। इधर कानों में रसमयी कथा प्रवेश करती, उधर आँखों से

धारा बह निकलती। कक्का की भाव विह्वलता जग ज़ाहिर है। शायद इसी वजह से मसखरों की जमात में वे लुगया कहाते हैं। इसका उन्हें भान है या नहीं, पता नहीं।

कक्का क्रोधित हों तो रोते हैं, प्रसन्न हों तो रोते हैं। किसी पुराने से मिलना हो जाए तो रोयें। काहू से बिछड़ना हो गया तो रोते हैं। वे इतना क्यों रोते हैं? उनका रोना भी अजीब है। आँखों में पानी भर आया और हो गया रोना।

कोई पूछे 'कक्का कैसे हो' वे कहते– 'सब रामजी की कृपा है।' यह रामजी की कृपा सब जगत पर लगातार बरस रही है। वे कहते– 'देखो घाम मिल रओ, पानू मिल रओ, हवा मिल रई। जेई तो कृपा है रामजी की। ईके लाने कौनऊ पइसा तो खरचने नहीं पड रए हैं।' ईश्वर तूने इतनी सारी नियामतें हमें दी हैं। मजा यह कि इसके बदले तू हमसे कुछ नहीं चाहता। कक्का की भावना बड़ी प्रबल है, ईश्वर की निष्ठा में कक्का तृप्ति बोध महसूस करते हैं। वे कहते कम और महसूस ज़्यादा करते हैं।

आत्मा परम हो गई है जिनकी ऐसों को कक्का परम–आत्मा यानी परमात्मा कहते। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।' इस संसार में दिखने वाली हर वस्तु में उस ईश्वर का अंश विद्यमान है, कक्का इस बात पर हमेशा दृढ़ रहते।

वे विशुद्ध रूप से काम से काम रखने वालों में से एक हैं। 'न ऊधौ को लेने, न माधव को देने' वाली परंपरा वाले। उनकी बातों में गहरा दर्शन जैसा प्रतिबिम्बित होता, जो होता गहरा पर लगता सहज। यही कारण है कि महिलाओं में वे बड़े लोकप्रिय हैं। 'मो सम दीन न दीन हित' वाली छवि उनके चेहरे पर स्थायी तौर पर विराजमान रहती। मनुष्य का करुणावतार उनकी आँखों में हरेक के लिए छलकता।

गिने–चुने लोगों को छोड़कर शायद ही वे किसी पर नाराज होते होंगे। वे व्यस्त दिनचर्या के आदी थे। 'हाथ में काम, मुँह में राम' के हामी होने के कारण उनका मन लगातार काम में रमा रहता था। वे काम को छोटा या बड़ा कभी नहीं मानते। यही कारण है कि महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कामों को भी कक्का सहजता से कर लेते थे। दोर–दरवाजे पर फेरने में उन्हें कोई लज्जा नहीं, ढिक देकर लीपने में उन्हें आलस नहीं आती, मीठे कुएँ पर महिलाओं की भीड़ में कक्का सुबह से देखे जा सकते हैं। उन्ना वे फीवें, बासन वे मॉंजें, रोटी बनाने में उन्हें कोनऊ संकोच नई आउत, स्वपाकी होने के दसियों फायदे कक्का गिना सकते हैं। सच तो यह है कि अपने पाँच बच्चों को कक्का ने ही पाला है।

कक्का और काकी विरले ही एक साथ दिखाई देते। आपस में उनकी कद–काठी विपरीत ध्रुव थी। काकी का स्वभाव ही मर्दाना नहीं था, बल्कि उनका ऊँचा–पूरा कद उन्हें मुकम्मल 'मरदाना' व्यक्तित्व बनाता था। कक्का रोज मंदिर जाते, जबकि काकी एकादशी की कथा सुनने ही मंदिर जाया करतीं। कक्का का जब अपने बड़े भाई से बँटवारे को लेकर झगड़ा हुआ तब इसमें काकी ने कक्का को पीछे धकेल दिया और हाथ में बका लेकर खुद मोर्चा सम्हाला। काकी ने इस झगड़े में मोर्चा क्या संभाला, बाकी सब मोर्चों पर भी वे ही आगे रहती आयीं। काकी की मुस्कान बड़ी प्रेरक थी। आधे उनकी दबंगता से उनसे दबते और बाक़ी बच्चों को वे अपनी मोहकता से कब्जे में कर लेती थीं।

कक्का किसी से भी झगड़ा नहीं करते थे। काकी से भी नहीं। मगर एक दिन उनका काकी से झगड़ा हो गया। चौंतरे पर बैठकर कक्का गालियाँ दे रहे थे। उनकी गम्मखोरी उड़न–छू हो गयी थी। गालियाँ वे अपने लड़कों को दे रहे थे जिन्हें वे अक्सर धुंधकारी कहते। उनके दोनों बेटे दारू पीकर लड़ पड़े थे। एक अस्पताल में, दूसरा पौर में पड़ा था बेसुध। कक्का के मुख से गालियों की हिलोरें उठ रही थीं। कभी बेटों, फिर बहुओं और फिर काकी तक गालियाँ पहुँच रही थीं। काकी पड़ोसन के पापड़ बिलवा रही थीं। उन्हें जैसे कुछ पता नहीं था, जबकि कक्का की पतली आवाज पड़ोसन साफ तौर पर सुन रही थी। पड़ोसन ने काकी को छेड़ा– 'काय काकी, कछु हो गओ का', काकी सहज भाव से बोलीं– 'तुमाओ मों।'

कक्का की समझ में लड़कों की दो ही छवियाँ रहतीं– या तो वह धुंधकारी होगा या फिर गोकर्ण। उनके दोनों बेटे धुंधकारी थे। अब बाकी के जितने बचे उन्हें कक्का गोकर्ण बनाने का प्रयास करते रहते। यह प्रयास वे बड़ी उम्मीद से करते। कक्का नियम से अपने बनाये सभी ठिकानों पर जाते और कच्ची उमर के तमाम बच्चों को तथाकथित अच्छी शिक्षा देते। एक दिन इन्हीं कम उमर बच्चों में से किसी ने कक्का की परदनी में करेज लगा दी और कक्का के पुण्य का काम छूट गया।

उमर के तीन 'पन' यानी बचपन, जवानी और बुढ़ापा तो सभी जानते हैं, पर कक्का कहते कि हरेक 'पन' की भी यही तीनों स्टेजें होती हैं। मतलब बचपन का बचपन, बचपन की जवानी और बचपन का बुढ़ापा, जवानी का बचपन, जवानी की जवानी और जवानी का बुढ़ापा। इसी तरह बुढ़ापे का बचपन, बुढ़ापे की जवानी और बुढ़ापे का बुढ़ापा।

जब हम बचपने की जवानी में थे, तब कक्का बुढ़ापे की जवानी में थे।

कक्का जिस ज़माने में पले–बढ़े, उस दौर में श्रद्धा–भक्ति का बड़ा ज़ोर था। हरेक को किसी न किसी पर भरोसा था और कोई न मिले तो भगवान पर हरेक का भरोसा था। सीमित आय, सीमित खर्च का स्वावलम्बी समाज था, जहाँ 'जाही विधि राखे राम ताही विधि रहिए' में सभी आस्था रखते थे, जीवन दौड़ का नहीं बल्कि जीने की कला का नाम था। अच्छे–बुरे में ज्यादा फ़र्क नहीं था। क्योंकि बुराई को कम लोग पसंद करते थे या लोग बुरे लोगों को नहीं बुराई को नापसंद करते थे। कक्का कलारी कभी नहीं गए। पर कलारी की खबरें कक्का के पास हर दूसरे दिन पहुँचती थीं। कक्का के दोनों बेटे दारूखोर थे और दारू पीकर झगड़ा करने में कभी गुरेज़ नहीं करते थे। वे रोज़ कमाते, रोज़ दारू पी जाते। उनके बाल–बच्चों का खर्चा कक्का के सिर पड़ता था। कक्का अपने बेटों से जितनी चाहे नफरत करें, पर अपने नाती–पोतों से बहुत प्यार करते थे। कक्का अपनी खून–पसीने की कमाई का एक बड़ा हिस्सा उन पर खर्च कर देते थे। कक्का टायर की चप्पलें पहनते, पर कक्का के नाती पंप–शू डालकर चलते। कक्का जीवनभर लट्ठा की कुरती और लंकलाट की धोती पहनते रहे, पर उनके नाती–पोतों ने टेरीकॉट की शर्ट और पॉपलीन का पजामा पहना। कक्का और काकी में इस बात पर भी झगड़ा होता और काकी झगड़कर अपनी लड़कियों के यहाँ रहने चली जातीं। उनकी एक लड़की सरकारी नौकर हो गयी थीं और काकी हमेशा के लिए उसके साथ रहने को चली गयीं। बाद में उसकी शादी हो गयी, तब भी काकी वहीं बनी रहीं।

ठंड हो, बरसात हो, कक्का के नियम में मौसम कभी बाधा नहीं बन पाया। 'चुटइय्या में गाँठ बाँध लो' वाली परंपरा कक्का को विरासत में मिली। बचपन में कर्म–काण्ड लायक श्लोक सीखते समय उन्हें जो संस्कार मिले उनमें समय की पाबंदी और प्रतिदिन का अभ्यास शामिल था। काम की महत्ता को कक्का गहरे तक समझते थे, वे कहते– 'मियाँ क्या कर, पयजामा फाड़कर सियाँ कर।' ठलुआ बैठने से हाथ–पाँव में जंग लगती है अत: कुछ न कुछ काम करते रहना ज़रूरी है, फिर चाहे पायजामे को फाड़कर दोबारा क्यों न सिलना पड़े।

समाज में कक्का की छवि 'गऊ' आदमी की थी। उनसे उनके हमउम्र जिस बेफिक्री से बात कर लेते थे, बच्चे और महिलाएँ भी उसी अधिकार से बातें कर लेते थे। हरेक उन्हें अपने सुख–दुख में शरीक करता था। दूसरों से छुपाने योग्य बातें भी कक्का को बतायी जाती थीं। मज़ा यह कि वे बड़ी गंभीरता से बातों को सुनते और सनातन समाधान प्रस्तुत करते। बातों को इधर–उधर न करने की कक्का की ख्याति थी। उन्हें अपनी छवि का बड़ा खयाल रहता। उनका सारा आचार–व्यवहार इसी छवि की लक्ष्मण रेखा के इर्द–गिर्द घूमता रहता। सज्जनता के उदाहरण कक्का पर जाकर रुकते। कक्का ने अपने गुरू पंडित शोभारामदास शास्त्री की संस्कृत पाठशाला में चपरासी के तौर पर जीवन की शुरुआत की। उस ज़माने में नौकरी को बुरा माना जाता। 'सबते अधम चाकरी।' हालाँकि नौकरी मिलती भी नहीं थी। चूँकि पंडितजी पाठशाला चलाने का नेक काम कर रहे थे सो कक्का ने उनकी पाठशाला में यह काम करना शुरू कर दिया। यह बात आज़ादी से पहले की थी और कक्का को तनख्वाह मिलती थी बारह रुपए महीना। सस्ते का ज़माना था सो बारह रुपए भी बड़ी कीमत रखते थे। कक्का का काम था शिक्षा समिति के सदस्यों से स्कूल की गतिविधियों से संबंधित कागज़ात पर दस्तखत करवाना। इसके अलावा कक्का इस पाठशाला में 'पीर, बाबर्ची, भिश्ती, खर' थे। उन सारे कामों को, जिन्हें दूसरे छोड़ देते, कक्का सहजता से स्वीकार कर लेते। चंदे की रसीदें बाँटना, विद्यार्थियों की रहने की व्यवस्था करना, शास्त्री जी की सेवा–टहल करना कक्का के अघोषित काम थे।

सहजता कक्का के स्वभाव का मूल आधार है। 'हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि हाथ' में उनकी गहरी आस्था है। रोजमर्रा की सामान्य गतिविधियाँ उन्हें उद्वेलित नहीं करतीं। बच्चे रो रहे हैं, महिलाएँ झगड़ रही हैं, बाप को बेटे ने पीट दिया है, किसी के घर बेटी की बारात आ रही है, किसी की हवेली बन रही है, कोई नयी दुकान खुल रही है, सरपंची का चुनाव प्रचार हो रहा है, राय बहादुर की मौड़ी कलुआ के संग भाग गई है, 'प्रेमीद्वारे' में छापा पड़ गया है, 'चौकी' में अनाचार हो गया, इंटरमीडिएट की परीक्षा के पेपर बाज़ार में

बिक रहे हैं, झंडा छाप बीड़ी वाले प्रचार में एक बंडल पर एक बंडल मुफ्त में बाँट रहे हैं।' 'तिलयाँत' में जुआ पकड़ा गया है', 'रमुआ का कुआँ 'भैं' गया है', मनगोले को लरका जेबकटी में 'बिद' गओ', रासबिहारी खाँ ठकुरास ने दत्रक दओ', जैसी खबरों से कक्का निर्विकार बने रहते हैं, वे पानी में तेल जैसे हैं। दुनिया–जहान की घटनाओं का, घतकरमों का कक्का की दिनचर्या पर कोई फर्क नहीं पड़ता। वे औंचक होकर कहीं नहीं रुकते। अपनी सहज गति और तन्मयता से वे अपने में मगन बने रहते हैं। 'काहु न कोऊ सुख–दुख कर दाता' कहकर वे हरेक छोटी–बड़ी घटना को खारिज कर देते हैं। वे कोई घटना नहीं बनना चाहते और समरस बने रहते हैं।

स्वाबलंबन में उनकी गहरी आस्था है। वे अपनी जरूरत के हर छोटे–बड़े काम स्वयं ही कर लेते हैं। सहज जिज्ञासुवृत्ति होने के कारण उन्होंने बहुत सारी बातें सीख ली है। टोने–टोटकों का मनोविज्ञान वे समझते हैं इसलिए उनका समाधान भी वे चतुराई से हँसते हुए कर लेते हैं। 'चद सूंटना' उन्हें आता है, बिच्छू के काटे का इलाज उनके पास है, फोड़ा–फुन्सी को पकाने की दवा वे जानते हैं, हवा–बैर का उतार उनके पास है, तीज–त्यौहार, ग्रह–दशा, दिशा–शूल, दिनमान, शुभ–अशुभ उन्हें कण्ठस्थ हैं, ढेरों बातों के वे रामबाण हैं, अँधों की लाठी हैं और कइयों के लिए वे 'लत्ता के साँप' भी बन जाते हैं।

कक्का की एक और छवि है। वे पक्के रामभक्त हैं। गाँव में कहीं भी कथा–कीर्तन हो, कक्का सबसे पहले वहाँ पहुँचेंगे और आखिर में 'फट्टा उठाकर' ही लौटेंगे। कथा–प्रवचन के समय उनकी जिम्मेदारी और सामाजिकता देखने लायक होती है। आरती फेरने से लगाकर प्रसाद वितरण का काम उनको सहज ही सौंपा जाता है। कक्का अपने को सेवक मानते। वे कहते 'सबते सेवक धर्म कठोर' और इस कठोर धर्म का पालन भी वे हँसते–हँसते करते। उनकी बोली में अपनेपन की मिठास घुली होती। कार्तिक में जब कतकारीं 'भई न बिरज की मोर, सखी री मैं' गातीं तो कक्का के कण्ठ से स्वर अपने आप फूट पड़ते। हालांकि कक्का बेसुरे नहीं थे, पर भाव–विभोर होने से उनका गला और आँखें भर आती थीं और उनका स्वर मर्रा जाता था।

कक्का को पैतृक सम्पत्ति के तौर पर तीन मकान और कुछ बीघा जमीन मिली थी। यह जमीन उन्हें अपने भाई से लंबी लड़ाई के बाद हासिल हुई थी। तीनों मकान कच्चे–पक्के थे यानी आधे कच्ची और आधे पकी ईंटों से बने। गाँवों के परंपरागत मकानों, जैसे गोबर से लिपे और पोतनी से पुते। जिसमें कक्का रहते उसमें पहले पौर थी, उसके आगे आँगन था। आँगन से लगी हुई छपरी थी। आँगन के एक किनारे पर घिनौंची थी, जहाँ एक अमरूद, एक नींबू, एक अनार और एक नागदौन का झाड़ लगा था। घिनौंची के बगल से अटारी के लिए सीढ़ियाँ थीं। अटारी पर कक्का के बहू–बेटे का कब्जा था। कक्का हमेशा से पौर में ही सोते थे। उनकी खाट हमेशा पौर में टिकी रहती। दीवार में ठुके खुल्लों पर उनकी बंडी और परधनी टंगी रहती। दीवार के आरों में ढिबरी रखी रहती। दस फीट गुणा सात फीट का हिस्सा 'जोई राम–सोई राम' के अंदाज़ में रहता, बिल्कुल कक्का के अंदाज़ में, बिना किसी बदलाव के।

तीन मकानों में से एक में उनकी बेटी रहती और एक मकान हमेशा किराये पर लगा रहता। कक्का के मकान में रहने के लिए जब लोग आते तो वे किरायेदार होते और जब मकान खाली करते तो घरवालों में बदल जाते। कक्का सबको घराती बना लेते। उनके किरायेदार ट्रांसफर होने पर ही मकान खाली करते। कक्का का संग–साथ एक बार होने पर उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। कक्का बहुत कम गाँव बाहर जाते, लेकिन वे जब भी आसपास के किसी गाँव, शहर जाते तो इन्हीं अपने पुराने किरायेदारों के यहाँ रुका करते। कक्का के पहुँचने से सभी परिजनों में खुशी की लहर दौड़ जाती। कक्का का आत्मीय संग हरेक पाना चाहता। कक्का की तासीर ही कुछ ऐसी थी कि वह हरेक में घुल–मिल जाती। लोग अपने भीतर चलने वाली उथल–पुथल को कक्का के सामने उजागर कर देते और कक्का धीरज से उनकी बातें सुनते और खरे समाधान प्रस्तुत करते, नहीं तो सांत्वना प्रदान करते। कक्का किसी के मेहमान बने तो चार–छह दिन से पहले उनका छुटकारा नहीं, लोग उन्हें मनुहार कर करके रोकते। कक्का के लिए अच्छे लोगों की कभी कमी नहीं रही।

कक्का ने कभी किसी से अनुचित व्यवहार नहीं किया। वे उस परंपरा के थे जहाँ अपने बच्चों का परिचय भी 'आपके बच्चे हैं' के तौर पर दिया जाता है। इस तरह से कक्का का अपना कुछ नहीं था, जो था सब दूसरों का था। इसलिए उनका आचरण हमेशा दूसरों के लिए अनुकरणीय रहता आया। 'सादा जीवन उच्च विचार', 'कम खाना गम खाना' कक्का के जीवन का मूल स्वभाव है। उनका चरित्र रक्षात्मक है।

गाँव का किसान चैत में, फसल आने पर अपनी सब देनदारियाँ चुकाया करता है। बढ़ई, कुम्हार, नाई, धोबी, लुहार, साहूकार और

अंत में बामन की भी देनगी चुकता करनी होती है। कक्का के भी सैकड़ों किसान जजमान थे जो सालभर में एक बार हिसाब–किताब चुकता करते थे। बैत के दिनों में कक्का की व्यस्तता बढ़ जाती। सभी किसानों के खलिहानों में कक्का 'अन्ना छूने' जाते। वे खड़े–खड़े हालचाल पूछते, ज्ञान की बातें करते और किसान की दी हुई अन्न राशि को हाथ से छू देते और अगले खलिहान की ओर रवाना हो जाते। कक्का द्वारा स्वीकार किया गया अन्न, उनके घर तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी किसान की होती। कक्का एक दिन में दस–बारह किसान तक निपटा लेते और चार–छह दिनों में बीमार हो जाते। बाकी बचे किसानों के लिए वे कहते 'जोई राम सोई राम।' अधिकांश किसान कक्का का हिस्सा उनके घर बगैर उनके छुए पहुँचा जाते।

'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, सत चेतन घन आनंद राशी', कक्का भाव विभोर होते और चौपाइयाँ गाने लगते। वे सचमुच हरेक में ईश्वर को देखते। 'चींटी मारने से पाप लगता है, क्योंकि उसमें भी वही आत्मा है जो हमारे भीतर है' जैसी सीखें उन्होंने सैकड़ों बच्चों को सिखाई होंगी। दूसरों को तकलीफ पहुँचाने को भी वे पसंद नहीं करते। 'परहित सरस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।' हर बात, हर घटना, प्रत्येक आचरण के संबंध में उनके पास चौपाइयाँ थीं। मुश्किल से मुश्किल समस्याओं के समाधान वे 'रामचरितमानस' में से खोज देते। मानस की प्रश्नोत्तरी उन्हें सधी हुई थी। 'कक्का अड़चन आन पड़ी, कैसे सुलझेगी?' कक्का जिज्ञासु की उँगली रामायण के प्रश्न–श्लोका चक्र में रखवाते। वे यह भी बता देते कि उँगली रखते समय जिज्ञासा मन में चलनी चाहिए और आँखें बंद होनी चाहिए। कक्का ने हज़ारों लोगों की जिज्ञासाएँ शांत की हैं। कक्का कहते हैं– 'पूजा तीन प्रकार की छोटी, बड़ी, मझोल' जैसा यजमान होता, उसके लिए वैसा समाधान वे हाज़िर कर देते।

कक्का को जीवन की सहज लय प्राप्त हो गई थी। वे उसी में रमे रहते थे। अवसर–काज, शादी–विवाह, मेले–ठेले, जनम–मरण के कैसे भी आयोजनों में वे बहुत कम जाते। बढ़ाई–बुराई की वृत्तियों से वे ऊपर उठ गए थे। वे कहते– 'बहुत दुनिया देखी है हमने, सार यही है कि माटी को जौ तन, माटी में मिल जानें, कछू साथ नईं जानें।' वे गाँधीवाद नहीं जानते, लेकिन गाँधी गुमनाम अनुयायी थे, बुरी बातों को बोलने, सुनने और देखने से परहेज करते। भारत छोड़ो आंदोलन के समय 'गाँधी बब्बा' की सभा के धुंधले चित्र कक्का को याद थे। तब गाँव–देहात से लोगों के हुजूम के हुजूम गाँधी बब्बा को एक नज़र देखने के लिए उमड़ पड़े थे। तब तक गाँधीजी रहस्यमय व्यक्तित्व के तौर पर सारे इलाके में प्रचारित हो गए थे।

कक्का का भरोसा कर्म में था– 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा।' कर्म की तरफदारी और आलस्य के खिलाफ उन्हें दसियों श्लोक, पचासों कैनातें याद थीं। कक्का गुड़ पहले छोड़ते फिर गुलगुलों से परहेज़ करने की सीख देते। 'तीन खायें, तेरह की भूख' से भी वे मुक्त हो चुके थे। 'गोधन, गज धन, बाज धन और रतन धन खान, जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।' वे संतोषी जीव थे। हाय–हाय को वे 'मनसा–वाचा–कर्मणा' अपव्यय मानते।

कक्का हफ्ते में एक दिन मौन व्रत रखते और नमक नहीं खाते। पारणा करते और आखिर में रामधुन गाते। इस दिन वे चीटियों के लिए आटा बिखेरते, मछलियों के लिए आटे की गोलियाँ बनाकर तालाब जाते और घाट पर शांति से बैठकर उन्हें गोलियाँ चुगाते। कक्का के कार्य–व्यापार में पितृ–ऋण, मातृ–ऋण, माटी–ऋण से ऊऋण होने की भावना संचालित रहती। खाने–सोने और रोने को वे जीवन का उद्देश्य नहीं मानते। 'जो जनम अकारथ गवाने को थोड़ी है'। कक्का कबीरपंथी भजन भी गुनगुनाते। 'जस की तस धर दीन्हीं चदरिया' गाते हुए वे मगन हो जाते। उनका सर्वाधिक प्रिय भजन था– 'श्रीरामचंद्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणं'।

'कम खाना, गम खाना, आये का सत्कार करना' के संस्कार कक्का ने अपने बुजुर्गों से पाये थे। कक्का अपने भाई–बहनों में सबसे छोटे थे सो माँ का दुलार उन्हें बड़ी उमर तक मिलता रहा। उनकी माँ बड़ी गबनारी थीं। भोर चार बजे से उनकी चकिया शुरू हो जाती। वे पीसतीं और गाती जातीं। कक्का एक टाँग पर सिर रखे सोते। मन हुआ तो माँ का दूध भी पीते जाते। कक्का ने पाँच साल तक माँ का दूध पिया। माँ के अत्यधिक संरक्षण ने उन्हें नाजुक बना दिया। कक्का का नाजुकपना पूरे जीवन चला। कक्का का 'मैं' पता नहीं कब समाप्त हो गया था। अब वे 'हम' में बदल गए थे। सम भाव और सामूहिक चेतना कक्का की हमेशा जगी रहती। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की छवि उनकी आस्था में इस कदर व्याप्त थी कि अपने–पराये का भेद वहाँ नहीं था। जिसे हम कंजूसी कहते हैं उसे वे बचत मानते। जिसे

हम लालच कहते, उसे वे मोह मानते– 'मोह सकल व्याधिन कर मूला, तेहि ते पुनि उपजहिं बहु शूला।'

'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।'

एक दिन कक्का के बेटों में झगड़ा हुआ और वे हमेशा के लिए अपना पैतृक घर छोड़कर अपनी बेटी के मकान में रहने चले गए। उनकी बेटी सरकारी नौकर हो गयी थी। कक्का के यजमानों को उनके दामाद ने स्वीकार कर लिया था। कक्का द्वारा अपने बेटों के लिए घर छोड़ देने पर पूरे पड़ौस में उनकी भारी खुसफुस हुई। उन्हें वापस घर लाने के लिए मान–मनौव्वल हुई, लेकिन कक्का अंतिम सांस तक वापस नहीं लौटे।

कक्का के यजमान कई गाँवों में फैले हुए थे।

बच्चों की अधिक शैतानी कक्का को सख़्त नापसंद थी। पूजा–आरती ख़त्म होने के बाद परिक्रमा करने में कक्का सबसे आगे रहते। एक बार किसी ने परिक्रमा में कपड़ों का ढेर रख दिया। कक्का को लगा कोई लेटा है। वे घबरा गए और थोड़ी देर में जब सहज हुए तो उन्हें बच्चों की शरारत समझ आई फिर तो उन्होंने सभी को कसकर डांट पिलाई। बाद में बच्चे इस घटना को लेकर कक्का को चिढ़ाने लगे– 'कक्का कोऊ परो है।'

मंदिर के बरामदे में छाया के लिए टीन की चद्दरें लगी हुई थीं, मंदिर पुराना था और ऊपर से खस्ताहाल हो रहा था, जिससे चूने की रेत जैसे कण प्लास्टर गाहे–बगाहे झड़ता और चद्दरों पर गिरता जिससे कई बार लगता कि पानी की बूँदें गिर रही हैं, कई बार लगता कि कोई दबे पैर चल रहा है।

रामकथा चल रही हो तो कक्का कहते हनुमान जी कथा सुनने आ रहे हैं, कृष्णलीला होती तो वे कहते बालकृष्ण लकड़ी की गाड़ी चला रहे हैं– 'गड़–गड़ गड्डी।' गाँव में डेढ़ दर्जन मंदिर थे और जहाँ भी कथा प्रवचन होते कक्का वहाँ एक के बाद एक पहुँचते। एक जगह की आरती करवाते, फिर दूसरी जगह कथा प्रारंभ करवाने पहुँच जाते।

कक्का की सुमरनी हमेशा उनके हाथ में बनी रहती। 'राम नाम' के प्रताप को उन्होंने आत्मसात कर लिया था। वे कहते– 'राम ते अधिक राम कर नामा।' रामभक्तों की हमारे समाज में बड़ी पूछ–परख है। 'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम' की तर्ज पर वे लगातार काम करते रहते। काम को वे कभी छोटा या बड़ा नहीं मानते।

हमारे समाज में बुजुर्गों की एक बनी–बनायी छवि स्थापित हो जाती है और अधिकांश बुजुर्ग इस छवि को ना–नुकुर के बाद देर–सबेर अपना लेते हैं। कक्का ने बुजुर्गों की इस स्थापित छवि के विपरीत अपनी अलहदा तस्वीर गढ़ी थी और बुजुर्ग भी सम्मानपूर्वक आखिरी समय तक समाज में रह सकते हैं, इसे मिसाल के तौर पर स्थापित किया था। कक्का बहुत कम बीमार पड़ते। उनका रहन–सहन, खान–पान बहुत संतुलित था। 'बातें कम और काम ज्यादा'। काम से उनका आशय पैसा कमाने के लिए किया जाने वाला काम नहीं है। काम उनके लिए 'कर्म' है यानी कर्म वह जो आशक्ति पैदा न करे, परिणाम की चिंता को ध्यान में रखकर न किया जाने वाला कर्म। उनका पुनर्जन्म में पक्का भरोसा था, वे मानते थे कि आज किये जाने वाले अच्छे कर्म का परिणाम अगले जन्म में प्राप्त होगा।

कक्का का नैतिकता बोध हमेशा जागृत रहता। इस मामले में उनकी दृढ़ता जग जाहिर थी। एक बार मूल दिवाली पर उनका एक लड़का जुआ खेलते पकड़ा गया। जुआ पकड़ने वाला थानेदार कक्का की सादगी का कायल था, सो उसने नरमी में कक्का के पास सिपाही भेजा और कहलवाया कि कक्का अगर जमानतनामे पर थाने आकर दस्तखत कर दें तो उनके बेटे को छोड़ दिया जाएगा। कक्का ने सिपाही से कहा– 'काय भईय्या, हमारे दस्तखत करबे सें तुम सबको छोड़ दोगे? अगर हाँ तो ठीक है हम चलते हैं और अगर नहीं तो जो हाल सबका होगा वही हमारे लड़के का होगा। हमारो लड़का हमसें पूछ कें तो जुआ खेल नई रओ तो। अब पकड़ो गओ तो सजा भुगते।' नैतिकता के इस प्रदर्शन के चलते कक्का–काकी में लम्बा झगड़ा चला। महीनों अबोला रहता आया, लेकिन कक्का हमेशा कहते रहे कि उन्होंने जो किया सही किया, जबकि काकी का कहना था कि अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए लोग–बाग क्या–क्या नहीं करते। कक्का का कहना था कि हाँ करते हैं– शेर अपने बच्चों को शिकार करना सिखाता है, नेवले का बच्चा साँप को मारना अपने माँ–बाप से सीखता है, लेकिन आदमी इसलिए आदमी है क्योंकि वह 'आहार–निद्रा–भय और मैथुन' के अलावा भी बहुत कुछ अपने बच्चों को सिखाता है। वह सिखाता इसलिए है क्योंकि उसे भी किसी ने सिखाया है। अच्छी शिक्षा, अच्छे विचार हमारे बुजुर्गों ने हमें सिखाये हैं।

इसलिए अपने बच्चों को उन्हें बताना हमारा दायित्व है। बच्चे मानें या न मानें यह उनके ऊपर है। मानें तो ठीक, न मानें तो भुगतें।

'अजरा अमरवत् प्राज्ञो, विद्याम्–अर्थम् च चिनायेत, गृहीत इव केशेशु, मृत्युनाम भय आचरेत।' हितोपदेश का यह श्लोक कक्का को बहुत प्रिय था। वे मृत्यु से भयभीत नहीं थे। भयभीत नहीं थे यानी वे सहज भाव से मृत्यु की बात करते थे, अक्सर जिससे हम डरते हैं उसकी चर्चा नहीं करते। वे मृत्यु की चर्चा करते हैं इसलिए उनकी जीवनचर्या जीवन और ऊर्जा से भरी हुई रहती। उन्हें कहीं नहीं जाना है, लेकिन उनकी चाल में तेज़ी है। उन्हें कुछ नहीं पाना है, लेकिन उनकी करने की गति उत्साह से भरी हुई है। कक्का की दिनचर्या सुबह चार बजे से शुरू होती और रात नौ बजे वे सोने चले जाते।

कक्का के पहनावे से पता चल जाता कि मौसम बदल गया है। गर्मियों में वे बंडी पहनते। बरसात में कक्का की काली बरसाती पहले से निकल जाती। वे उसे धो–पोंछकर सुखा लेते। जाड़ों में कक्का की सदरी हफ्तों पहले धुल जाती, सूख जाती और काँसे के कटोरे को गरम करके उस पर इस्तरी कर ली जाती। कक्का की सदरी बरसों चलती। एक सदरी कक्का ने अबार के मेला से खरीदी थी। काले रंग के ऊन से बनी इसमें सफ़ेद रंग की धारियों की डिजाइन बनी हुई थी। कक्का का मानना था कि तन को ढँकने के लिए कपड़ा चाहिए। कपड़ों से शरीर की शान नहीं है, बल्कि शरीर से कपड़ों की शान बनती है। 'सोहे न बसन बिना नारी।'

कक्का के बुजुर्ग राजदीवानी के अघोषित चाकर थे। खरगापुर दीवानी में बावन गाँव थे और दीवान को सात तोपों की सलामी मान्य थी। दीवान किशोर सिंह बड़े प्रतापी हुए। उनकी ख्याति साम–दाम–दण्ड–भेद के जानकार के तौर पर थी। कक्का के परदादा को किशोर सिंह आनगाँव से लेकर आए थे। उन्हें फलित विद्या सिद्ध थी। ज्योतिष के विद्वान और झाड़–फूँक के ओझा के तौर पर उन्हें पूरी अबेर में जाना जाता था। वे खरगापुर अपनी शर्तों पर आए, जिनमें से कुछ यूँ थीं– वे दरबार के घोषित चाकर नहीं रहेंगे। यानी दरबार से वे पगार नहीं लेंगे। वे किले में पगड़ी और जूते पहनकर जा सकेंगे। उन्हें खेती की ज़मीन और मकान की ज़मीन दरबार दान करे। उन दिनों दान की ज़मीन पर कोई कर देय नहीं होता था। उनकी आखिरी शर्त थी कि पूरा गाँव उनका जजमान होगा और स्थानीय पंडित उनके काम में अड़ंगा नहीं लगायेंगे। किशोर सिंह ने उनकी सभी माँगें स्वीकार कीं और इस तरह वे खरगापुर आ बसे। खेती की ज़मीन भी उन्हें गाँव के पास और नाले के किनारे मिली। काली मिट्टी की इस ज़मीन में लकड़ी के रहट वाला एक कुआँ भी था। दस एकड़ के रकबे की इस ज़मीन को उन्होंने अपने खून–पसीने से सींचा। इस ज़मीन की मेढ़ों पर अशोक, चंदन, नीलगिरि, शाल, शीशम, बेल, आम, महुआ जैसे कीमती और फलदार वृक्ष लगाये। वहीं शहतूत, अंग्रेज़ी इमली, ऊमर, नीम, खैर आदि के पेड़ वहाँ पहले से ही मौजूद थे। नाले की दोनों ओर कबा के पेड़ थे। जिन नदी–नालों के किनारों पर कबा के पेड़ हों उनको सनातन माना जाता है। ज़मीन की बगल से नाला होने के कारण कुआँ भी हमेशा भरा रहता।

कक्का के पाँव बहुत कम डगमगाए। उनकी सुमरिनी हमेशा चलती रही और उन्हें हमेशा ही दूसरों का ख्याल बना रहा। 'एक बार त्रेता युग माहीं' की तर्ज़ पर उनकी कथाएँ चलती रहतीं। उनकी आँखों की नमी और दिल की उमंग कभी समाप्त नहीं होती। सच्ची बात और सुरीली बानी उनके कंठ में हमेशा मौजूद रहती आई। कक्का की छाप–तिलक पक्की है यानी वे रामानंदी तिलक लगाते हैं, गले में कंठी और पैरों में खड़ाऊँ पहनते हैं। वे वीतरागी नहीं हैं, पर वे गृहस्थ संन्यासी हैं।

भारत

रूप बदलता मॉरीशस

—श्रीमती सविता तिवारी

मॉरीशस में एक पहाड है, मुडिया पहाड। यह लगभग पूरे मॉरीशस से दिखाई देता है। बस अलग-अलग स्थानों से इसका रूप बदल जाता है। जैसे मेरे गॉव लालोरा से यह ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई स्वानिम्हनी भविष्य देख रहा हो। वही कई ऐसे भी स्थान हैं जहॉ से यह बच्चे जैसा दिखाई देता है। यही हाल मॉरीशस देश का भी है। अलग-अलग स्थानों से यह नए रूपों में दिखाई देता है। कभी लगता है यह देश बहुत समझदारों का है, कभी लगता है, अभी बहुत कुछ समझना बाकी है। अब यदि हम स्थान परिवर्तन की जगह समय परिवर्तन करके देखें तो भी यह टापू रोज नए रूप धारण करता प्रतीत होता है।

पहली बार जब मॉरीशस की झलक एरोप्लेन से मिली तो समुद्र नहीं सड़कें दिखी। हरे-भरे मैदानों के बीच काली-काली धंसी हुई सड़कें। समझ नहीं आया कि जमीन खोदकर सड़कें नीची क्यों बनाई गई हैं, क्योंकि सड़क के दोनों तरफ ऊंचे मैदान दिखाई दे रहे थे। फिर जब प्लेन थोड़ा और नीचे आया तो पता चला यह मैदान नहीं है बल्कि खेत हैं जो गन्ने की फसल से लहलहा रहे हैं। इन्हीं गन्ने के खेतों के कारण सड़कें धंसी हुई प्रतीत हो रही हैं। मॉरीशस में स्थान परिवर्तन करते ही दृश्य परिवर्तन होने का मेरा यह पहला मौका था। इसके बाद ये मौके बहुत मिले।

शुरुआती कुछ महीनों में मॉरीशसीय संस्कृति ने मुझे बहुत आश्चर्यचकित किया। भारत से दूर हिंदी बोलते लोगों का मिलना एक सुखद आश्चर्य था। मैं उत्साहित होकर भारत फोन कर के कहती कि यहां तो लोग बहुत अच्छी हिंदी बोलते हैं। समय बीतने के साथ मेरी इस सोच में भी परिवर्तन आया। पहले मैं टूरिस्ट की तरह विचार करती थी। धीरे-धीरे मुझे लोगों के बोलने के तरीके और उनके कारण समझ में आने लगे। तब मुझे लगा इनकी भाषा का उच्चारण फ्रेंच, क्रियोली और हिंदी के मिश्रण से बना है, जिसके कारण बोलते समय यहॉ कुछ मात्राएँ बढ़ जाती हैं तो कभी कम हो जाती है। यहां के नाम भारतीय नामों से मिलते-जुलते तो है, जैसे 'प्रवीण' को 'प्रवीण' लिखते तो हैं लेकिन उच्चारण 'प्रावीन' करते है, क्योंकि फ्रेंच भाषा में 'र' वर्ण का उच्चारण मन में किया जाता है। इसी तरह अन्य उच्चारण की विकृतियाँ भी देखी जा सकती हैं। इनको हिंदी सिखने में हिंदी फिल्मों और सीरियलों का बड़ा योगदान रहा है। इनका प्रभाव इनकी भाषा पर भी देखा जा सकता है। जैसे पिता को आम भाषा में बाप कहते हुए लोगों को सुना जा सकता है। जैसे मेरे बाप का नाम फलां है, यह मेरे बाप की गाड़ी है, आदि। लेकिन जो भी हो, भारत से दूर हिंदी सुनकर आज भी मन बाग-बाग हो जाता है। इस देश में हिंदी और हिंदुस्तान दोनों का असर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जैसे गॉधीजी का यहॉ आना।

गाँधीजी के सपनों का देश

गाँधी जी मॉरीशस एक बार ही आए थे। 1901 में 18 दिनों के लिए। तब वे महात्मा नहीं हुए थे बल्कि अफ्रीका से भारत जाते हुए एक बैरिस्टर के तौर पर यहॉ रुके थे। लेकिन उन 18 दिनों का मॉरीशस पर बहुत प्रभाव दिखाई देता है। गाँधीजी का ध्येय वाक्य कि 'अपने कार्य स्वयं करो' या 'स्वच्छता में ही भगवान का वास है' –ये दोनों वाक्य यहाँ के जन-जन के जीवन में उतरे हुए दिखाई देते हैं। जो स्वप्न गांधीजी भारत के परिप्रेक्ष्य में देखते थे और जिस समानता की भावना को वे भारत में पैदा करना चाहते थे, वह भावना यहाँ सहज ही लोगों के बीच अनुभव की जा सकती है। इसके कारण जो भी हों लेकिन इस समाज के सारे तबके एक ही साथ बैठकर भोजन करते हैं। पद, प्रतिष्ठा और धन इनके बीच भेद पैदा नहीं करते। जहां गरीब की शादी में सात करी(पारंपरिक मॉरीशसीय भोजन) परंपरा है वहीं अमीर से अमीर व्यक्ति भी उसी परंपरा का सगर्व अनुकरण करता हुआ दिखाई देता है। यहां पद और प्रतिष्ठा मित्रता और रिश्तेदारी में आड़े नही आती। एक ही टेबल पर बैठे हुए मंत्री और उनके ड्राइवर मित्र को भोजन करते हुए देखा जा सकता है। गाँधीजी के सपनों को इस टापू पर रोज पूरा होते देखती हूँ।

प्रत्येक काम के प्रति सम्मान यहां के प्रत्येक नागरिक के मन में देखा जा सकता है। जहाँ एक मिनिस्ट्री में काम करने वाला व्यक्ति अपने काम को सगर्व बताता है वहीं सफाई कर्मचारी भी अपने काम को नहीं छुपाता।

हमारे पड़ोसी प्राइम मिनिस्टर ऑफिस में फाइनेंस सेक्रेटरी हैं। वे रोज सुबह चार बजे उठकर खेत जाते है। 6 बजे तक सब्जी के बंडल तैयार करते हैं और 7 बजे ऑफिस के लिए निकलते हैं। अपनी मर्सिडीज में, जिसकी डिक्की में सब्जी के बंडल रखे होते हैं। यह सब्जी के बंडल वे ऑफिस जाने से पहले बाजार में थोक विक्रेता के पास छोड़ते जाते हैं। यह है मॉरीशस का जमीन से जुड़ा आदमी।

मॉरीशस में नियमित काम वाली बाइयों की संस्कृति नहीं है। यहां सब अपना काम स्वयं करते हैं। ज्यादातर महिला-पुरुष दोनों कामकाजी

होते हुए भी घर की सफाई में कोई कमी नहीं करते। इस बात का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि जाले क्या होते हैं यहां के ज्यादातर बच्चों को पता नहीं है। देखे ही नहीं उन्होंने अपने घरों में कभी जाले।

एक मिनिस्टर, जो स्कूल टीचर थे, ने स्कूल से छुट्टी लेकर चुनाव लड़ा, जीतने पर 5 साल की छुट्टी लेकर मिनिस्टर बने, अगली बार चुनाव हारने पर वापस स्कूल में टीचर बन गए। ऐसे कई उदाहरण यहां देखने को मिल जाएँगे। यह एक दो लोगों की कहानी नहीं है, यहाँ की हवा ही ऐसी है। मेहनत वाली। चाचा सहदेव ने टमाटर उगाकर अपने 4 बच्चों को फ्रांस भेज दिया और 2 गाड़ियाँ खरीदीं। अब 82 की उम्र में बच्चों ने खेती के लिए मना कर रखा है। इसलिए उन्होंने पूरे खेत में केले के पेड़ लगा दिए हैं। कहते हैं माटी की सेवा जरूरी है और केले में ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। साथ ही अपनी पोती के लिए एक कंटेनर में स्नैक की दुकान खोल कर दी है जिसमें वे भी रोज हाथ बंटाते हैं। यह है मॉरीशस का माटी से जुड़ा बुजुर्ग।

हरीश जी पुलिस में हैं। अपने गांव की मंदिर की कमेटी में सदस्य भी हैं, जहाँ वे भंडारे का काम देखते हैं। भंडारे को मॉरीशस में 'महाप्रसाद' कहते हैं। राशन लाना, खाना बनवाने से लेकर बर्तन धुलने और सफाई करने तक की जिम्मेदारी उनकी। कई बार वे काम से आते हुए पूलिस की वर्दी में आलू की बोरी कंधे पर रखकर लाते हैं। एक दिन हरीश जी को सेंपियर के सब्जी बाजार में रविवार के दिन अपने 12 साल के बेटे माधव के साथ भुट्टे बेचते देखा तो मन किया फोटो खींच लूं। फिर उनकी पुलिस की वर्दी वाली फोटो, खाना बनाते फोटो और सब्जी बेचते फोटो का एक कोलाज बनाकर उन्हें उपहार दूँ। फिर सोचा कितनों के कितने कोलाज बनाऊँगी। वैसे इनके और भी कई रूप हो सकते हैं जिनसे मैं अपरिचित हो सकती हूँ।

जीवटता का देश

मॉरीशस वासियों के कपड़ों में भी काफी विविधता दिखाई देती है। एक ही महिला या पुरुष को आप 5–6 अवतारों में देख सकते हैं। वे भी इतने अलग की पहचान में ना आएँ। शुरुआती दिनों में मुझे इसीलिए लोगों को पहचानने में काफी समस्याएँ होती थीं। चाहे जो हो जाए, मंदिर में औरतें कभी जींस टीशर्ट या स्कर्ट टॉप और पुरुष शॉर्ट्स या सूट आदि कपड़े पहनकर नहीं आते। इनके मंदिर आने के कपड़े निश्चित होते हैं। शादी में जाने के और पार्टी में जाने के भी। एक महिला की बात करें। मैं उनसे पहली बार मंदिर में मिली थी तब उन्होंने लाल साड़ी और सोने के बहुत से गहने पहने थे। आधे हाथों में चूड़ियां थीं। नारंगी रंग की 10 इंच की मांग भरी थी। लाल लिपस्टिक। मैंने 50 वर्ष की महिला को कभी इतने मैकअप के साथ नहीं देखा था। अगले दिन वही महिला 10 इंच के स्कर्ट में मिलीं।

पहले कुछ साल मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती थी। बुजुर्ग महिलाओं का सजना, बुजुर्ग पुरुषों का बच्चों के साथ सेगा गीतों पर नाचना। फिर परिवर्तन का दौर आया और लगने लगा कि यह तो अच्छी बात है। इस जन्म की इच्छाएँ इसी जन्म में पूरी कर ली जाएँ। पहले पैसे नहीं थे सजने के लिए, अब हैं तो अब सज रहे हैं, उसमें बुरा क्या है? कई लोग अध्यापक हैं, साथ में शादियों में गाते भी हैं। यह बात भी पहले अच्छी नहीं लगती थी। अध्यापक की अपनी गरिमा होती है। अब लगता है अपना शौक पूरा कर रहे हैं। मन मार के जीना कौन सा अच्छा काम है।

नियम से जीने वालों का देश

छुट्टियाँ इस देश के लोगों के जीवन का आवश्यक अंग बन गया है। छुट्टियों के साथ समझौता करना इनको नहीं भाता। इसका हो सकता है कोई अन्य कारण हो पर मुझे यह बात ऐतिहासिक गुलामी के दिनों से जुड़ी लगती है। जब यह बीमारी, त्यौहार या मांगलिक कार्यों के लिए छुट्टी लेना वहन नहीं कर सकते थे। क्योंकि तब मजदूरों की एक दिन की छुट्टी पर दो दिनों की तनख्वाह काटी जाती थी। इसलिए आज भी यहाँ शादियाँ और पारिवारिक समारोह शनिवार और रविवार को ही आयोजित किए जाते हैं। हाँ, आजकल कुछ लोग मुहूर्त का ज्यादा ध्यान रखने लगे हैं। फिर भी शनिवार–रविवार के मुहूर्त ही अधिक खोजे जाते हैं। वैसे आम दिनों में शनिवार की सुबह घर की सफाई और शाम बाहर घूमने के लिए रिजर्व होता है। वहीं रविवार की सुबह सब्जी बाजार और बाकी का दिन आराम के लिए रिजर्व होता है। इस नियम में आम तौर पर लोग कम ही खलल डालना पसंद करते हैं।

एक और बात जिसने यहाँ आकर मेरे मन को छुआ। सड़क पर बिना हॉर्न बजाते चलती गाड़ियाँ और सड़क के नियमों का पालन करते लोग।

महादेव के लिए टूटते हैं नियम

मॉरीशस अपनी दिनचर्या में बंधा हुआ देश है जिसको तोड़ना यहाँ के नागरिक अमूमन पसंद नहीं करते। लेकिन अगर बात महाशिवरात्रि की हो

तो लोग अपनी दैनिक दिनचर्या को छोड़कर शिव जी के लिए पैदल ही घरों से निकल पड़ते हैं।

महादेव शिव के लिए एक सप्ताह तक मॉरिशसवासी उन सारे नियमों को एक तरफ रख देते हैं जो उनकी लाइफ लाइन हैं। बड़े ऑफिस से छुट्टी लेते हैं, बच्चे स्कूल बंक कर देते हैं। आम तौर पर मॉरीशस में लोग सड़कों पर चलते दिखाई नहीं देते, पर शिवरात्रि के दौरान पूरा मॉरीशस सड़कों पर पैदल 'गंगा तालाब' की ओर बढ़ रहा होता है। गंगा यहाँ जल धारा के रूप में नहीं बहती बल्कि जन धारा के रूप में पूरे मॉरीशस से बहकर गंगा तालाब पहुँचती है। यह है मॉरीशस वासियों की भक्ति।

मॉरीशस वासियों को हिंदी से जोड़ने वाली कड़ियाँ

हिंदी इस देश की अपनी भाषा नहीं थी। हिंदी यहां पर्यटक की तरह आई और अपने लोगों को देखकर यहीं की होकर रह गई। हिंदी ने इनके लिए कुछ अपने को बदला और कुछ इन लोगों ने अपने को हिंदी के लिए बदला। यहां लोगों ने हिंदी बैठकों (आर्य समाज द्वारा चलाई जा रही हिंदी कक्षा), 'रामायण' आदि से सीखी जो भोजपुरी के साथ मिलकर और समृद्ध हुई, भजनों, गीतों और लोकगीतों ने इसको भोजपुरी भाषियों में लोकप्रिय बनाया। समय-समय पर भारत से आए विद्वानों ने भी इसकी यथा योग्य सेवा करने की कोशिश की। बहुत सारी हिंदी प्रचार में जुटी संस्थाओं और यहां हिंदी के विकास को देखते हुए लगता है हिंदी भाषा का भविष्य यहां समृद्ध है। कभी विचार यह भी आता है कि यह कुछ लोगों तक सीमित हो गई है। हिंदी के कार्यक्रमों में सदैव वे ही जाने-पहचाने चेहरे दिखाई देते हैं। कभी लगता है कि कोई ऐसा तरीका ढूंढा जाए जिससे हिंदी से ऐसे लोग भी जुड़ें जिन्हें हिंदी आती न हो पर वे हिंदी प्रेमी हों। क्योंकि रोजमर्रा में हिंदी बोलने वालों की कमी हो सकती है पर समझने वाले बहुतायत में दिखाई देते हैं। इसी कारण भारत से आने वाला हर व्यक्ति यहाँ होम-सिक महसूस नहीं करता।

मॉरीशस का एक बड़ा वर्ग हिंदी भाषा से जुड़ा है। वे हिंदी के अध्यापक हो सकते हैं या एम.बी.सी. के हिंदी कार्यक्रमों के लिए काम करने वाले कर्मचारी। ये वे लोग हैं जो प्रत्यक्ष रूप से हिंदी से जुड़े नजर आते हैं। लेकिन ये वास्तविक संख्या का केवल 10 प्रतिशत हो सकते हैं। हिंदी से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ एक बड़ा वर्ग है जो आम तौर पर हिंदी के कार्यक्रमों में दिखाई नहीं देता पर हिंदी उनके जीवन में रची-बसी देखी जा सकती है।

इनमें मुख्य रूप से वे लोग हैं जो भारत से सामानों के आयात से जुड़े हैं। इन्हें व्यापार के सिलसिले में भारत की कई यात्राएँ करनी पड़ती हैं। लोग इन्हें विदेशी समझकर ठग न लें, इसलिए ये बड़ी शिद्दत से शुद्ध हिंदी सीखने की कोशिश करते हैं। इसके अलावा मॉरीशस में एक बड़ा वर्ग भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं नाटकों से भी जुड़ा हुआ है। एम.जी.आई., आर.टी.आई., इंदिरा गांधी सेंटर फॉर इंडियन कल्चर आदि संस्थाओं के अलावा कई निजी संस्थाओं में शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य से जुड़े लोगों को देखा जा सकता है। ये सभी अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी सीखते हैं। चाहे वे राग हों या ताल हों या गाने हों, हिंदी तो इन्हें सीखनी ही पड़ती है।

इसके अलावा हिंदू धर्म से जुड़े और मंदिर जाने वाला एक बड़ा वर्ग है जो मंत्र उच्चारण करता है और अपने बच्चों को भी सिखाता है। इनके अलावा यहां अधिकतर गाँवों में एक न एक भजन मंडली भी होती ही है। मंडली के लोग भले ही हिंदी न बोलते हों पर हिंदी में भजन वे आराम से गा लेते हैं। गाते-गाते हिंदी भी सीख जाते हैं।

इनकी धरती इनके नियम

13 लाख की आबादी वाले इस देश में लगभग 50 हजार विदेशी रहते हैं और हर साल 12 लाख पर्यटक भी आते हैं। सब इस छोटे से टापू देश के बारे में अलग-अलग धारणाएँ बनाते हैं और लौट जाते हैं। पर यह देश यही रहता है, इसके नियम और इन नियमों को जीने वाले यहाँ रहते हैं और उसी तरह रहते हैं जैसे रहते आए हैं। किसी के आने-जाने से उन्होंने न अपनी जीवनचर्या बदली है, ना अपना अंदाज। बिना बताए कोई किसी के घर नहीं जा धमकता। बारात के लिए बस-गाड़ी लड़के वाले बुक करते हैं पर बाराती अपनी-अपनी टिकट के पैसे खुद देते हैं। देवरानी के बच्चे को जेठानी बड़े प्यार-दुलार से पालती है पर उसके लिए महीने की तनख्वाह भी मिलती है। लेकिन इससे उनके आपसी प्रेम और रिश्तों में कोई फर्क नहीं पड़ता। यह मॉरीशस के लोगों के जीने का अंदाज है। यह इनकी धरती है और ये इनके नियम हैं।

मॉरीशस

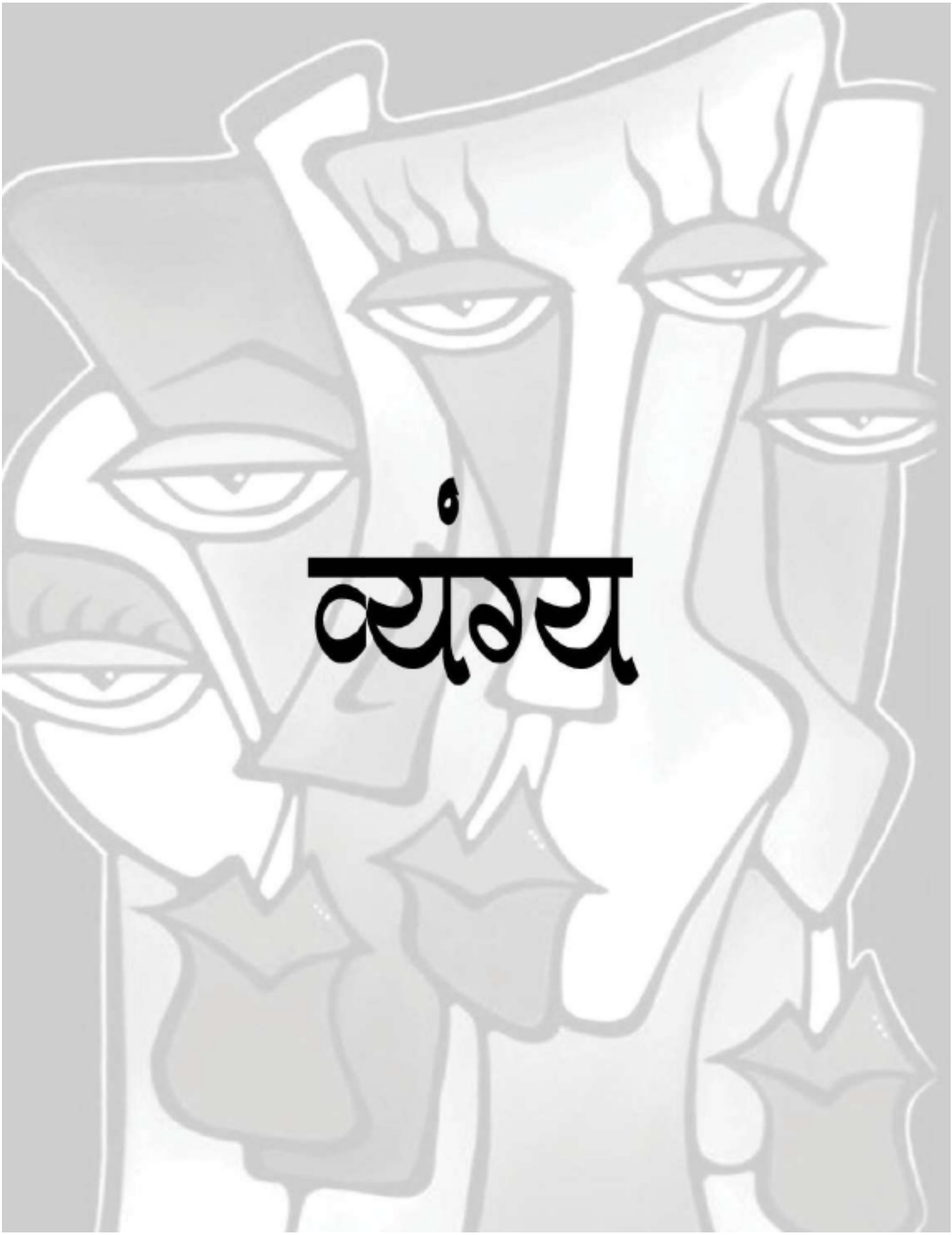

व्यंग्य

सम्मानित करने का टुकड़ा

—अशोक गौतम

ज्योंही यह खबर पूरे जंगल में जंगल की आग की तरह फैली कि मैं अबके फिर अपनी टांग अड़ा सरकार की गोवंश अधिसूचना कमेटी का सक्रिय सदस्य हो गया हूँ, तो मुझे देश के समस्त पशुओं, जानवरों के संगठनों के फोन पर फोन आने लगे। आदमी तो मुझे देखते ही ऐसे गायब हो जाते हैं जैसे गधे के सिर से सींग। फोन पर फोन आने पर पहली बार ये भी पता चला कि आदमी से अधिक संगठन, संप्रदाय तो देश में पशुओं और जानवरों के हैं। संगठनों, संप्रदायों को लेकर हम बेकार में अपनी-अपनी दरी अपनी बगल में दबाए, हर गली मोहल्ले में बिछाए इतराते फिरते हैं।

अपना बस एक यही पैशन है कि मैं सरकार की हर कमेटी में टांग अड़ा कर ही दम लेता हूँ। या कि अब सरकार मेरी टांग के लिए जगह हर हाल में हर कमेटी में आरक्षित रखती है कि होशियार! खबरदार !! एक टांग आना अभी बाकी है। जगह बचाए रखो। अब तो कई बार मुझे भी इस बात का पता नहीं चलता कि मेरी टांगों में इस उम्र में भी इतनी ताकत आखिर है कैसे जो हर कमेटी में मजे से अड़ जाती हैं। मानता हूँ, टांगों में अब पहले जितना दम नहीं, पर ये भी तो हो सकता है अब टांग अड़ाने का अनुभव ही अपना फर्ज़ अदा कर रहा हो? अब तो पता ही नहीं चलता कि कब कैसे मेरी कौन सी टांग किस सरकारी कमेटी में मेरे बिना प्रयास के ही फिट हो गई? बस, पता तब चलता है जब मैं अपने को सरकार की अमुक कमेटी का सक्रिय सदस्य नॉमिनेट हुआ पाता हूँ।

धन्य हो भगवान तुम! तुमने मुझे और कला दी हो या न पर सरकार की हर कमेटी में अपनी टांग अड़ाने की सब कलाओं की मां एक कला तो ऐसी दी है कि उसके आगे लोक, परलोक, स्वर्गलोक की सारी कलाएँ बिना किसी चूं चां के पानी भरती हैं। जिसके पास जहाँ उसका मन करे, अपनी टांग अड़ाने की सिद्ध कला हो उसकी इस कला के आगे शेष सब कलाएँ बौनी लगती हैं, आप बौनी लगती हैं।

अधजले का भरापन इसी में है कि जब कोई उसको फोन कर रहा हो तो वह उसे दो-चार बार कॉल करने दें, अपने फोन को व्यस्त करते हुए। ऐसा करने पर दूसरे को ऐसा लगेगा कि अधजला हद से अधिक व्यस्त है। ऐसा होने पर उसे अधजले का कद न होने के बाद भी अधजले के ताड़ से भी ऊंचे कद का भ्रम होगा। अतः जो बौने अपने बौने कद को लेकर चिंतित हों उन्हें मेरी नेक सलाह है कि जब उनको किसी का फोन आए तो एकदम न उठाएँ। ऐसी आदत डालने पर उन्हें अपने बौनेपन से पक्का छुटकारा मिल सकता है।

लगातार आते फोन को जब मैं व्यस्त करते-करते ऊब गया तो मैंने अनमने से आई कॉल अटैंड कर ही ली,' कौन??

'नमस्कार सर! सादर प्रणाम सर! चरणवंदना सर!' दूसरी ओर से एक साथ इतने सारे नमस्कारी वाले आदर सूचक संबोधन सुनने को मिले तो मैं पल में ही भांप गया कि जो कोई भी हो, बंदा हद से आगे का चापलूस होगा, 'कहिए कौन'

'सर, मैं गधा संघ का दुखिया बोल रहा हूँ।'

'दुखिया या मुखिया?'

'मुखिया तो तब बनूँ जब आपकी कृपा बरस जाए।'

'देखो! अभी तो बादल भी नहीं बरस रहे। इंद्र तक गर्मी से परेशान हो विदेश भ्रमण पर निकल गए हैं। अब रहे दूसरे कृपा बरसाने वाले, सो वे खुद अंदर हो दूसरों की कृपा की राह निहार रहे हैं। सॉरी, ऐसे में...' मैं फोन काटने को हुआ तो दूसरी ओर से पीड़ा भरी आवाज यों आई जैसे बंदे ने एन. एस. डी. से एक्टिंग की डिग्री की हो, मैरिट के साथ,' सर एक विनती करनी थी आपसे? आपका हुकुम हो तो....'

'कहो, पर शॉर्ट में कहना,' मैं अहंकार का साक्षात् रूप हुआ।

'ओके सर, मुझे समय देने के लिए आपका बहुत-बहुत आभार! सर असल में बात यह है कि पहले तो आपको गोवंश अधिसूचना में जानवरों को शामिल करने की योजना पर काम करने का सुअवसर मिलने पर हार्दिक बधाई। आप ही इसके लिए सबसे फिट थे सर! इस शुभ अवसर पर हम सर पूरे देश के गधे चाहते हैं कि आपको सम्मानित कर अपने को कृतार्थ करें। सरकार ने आपकी खूबी जानकर हम पर बहुत बड़ा अहसान किया है सर।'

'वह कैसे??' मैं चौंका।

'सर! आपके हाथों ही हमारा कल्याण लिखा था शायद खुदा ने कि आप इस अधिसूचना कमेटी के सक्रिय सदस्य बनेंगे तो हमें अपने गधेपन से सदा– सदा की मुक्ति मिलेगी। अब आपसे निवेदन है कि हमें भी गोवंश में आप सरकार से कहलवाकर शामिल करवा दें तो..... सर, बहुत दुख झेले हैं हमने युगों से... प्लीज सर.....' उसकी बातें सुन मुझे बड़ा गुस्सा आया। क्या ये मुझे भी अपनी तरह गधा ही समझ रहा होगा? पर बात सम्मानित होने की थी, सो चुप रहा और गोलमोल सी बात शुरू कर दी,' सो तो बंधु ठीक है पर...'

' पर क्या सर .....'

'अभी बहुत व्यस्त चल रहा हूँ। कई और जानवर संघों को भी सम्मानित करने के ऑफर आ रहे हैं सो.....'

'सर! मरने तक आपका इंतजार कर सकते हैं हम, पर प्लीज निराश मत कीजिएगा। मुद्दत बाद तो आशा की एक किरण आपमें दिखी है। प्लीज हमारे हाथों सम्मानित होने से न मत कीजिएगा सर! आपको सम्मानित कर हमें लगेगा कि जिंदगी में किसी एक को तो हमने सम्मानित कर सही किया।'

' तो तुम चाहते क्या हो??' मैंने उसे मुद्दे पर संकेत ही संकेत में संकेत दिया तो वह फोन पर ही लतियाया।

'सर, बस यही कि हमें भी गोवंश की अधिसूचना में जैसे भी हो शामिल कर दो तो हमारा परलोक भले ही सुधरे या न पर कम से कम ये लोक तो सुधर जाए। हम तो हम, हमारी आने वाली पीढ़ियाँ तक आपके इस उपकार को सदा याद रखेंगे सर। इसके लिए हम तब तक आपके आभारी रहेंगे जब तक धरती पर गधा समुदाय रहेगा। बाकी रही बात उसकी, तो वह सब आप तक पहुँच जाएगा।'

' तुम्हारी प्रॉब्लम क्या है जो गोवंश में शामिल होना चाहते हो?' मैंने देश की साधारण सी बात भी बेहद गंभीर होकर कहा तो लगा वह जैसे अपनी हँसी रोकने की कोशिश कर रहा हो ,'सर! हम देश का हर काम करते हैं। पर अपना काम निकाल बाद में गधे तक हम गधों को लात मारकर आगे हो लेता है। हमें तब बड़ा दुख होता है सर जब आप जैसों की नस्ल को भी हमारे संप्रदाय का मान लिया जाता है। युगों से हमारा शोषण, उत्पीड़न हो रहा है सर! इसीलिए हम आपको बस सम्मानित करना चाहते हैं सर! आपका ऐसा सम्मान करेंगे कि....रत्न, श्री तक अपने को हमसे सम्मानित करने हेतु कांटैक्ट करते फिरें।'

' ठीक है। कहीं बीच में समय देखता हूँ।'

' पर सर! अधिसूचना में शामिल करने का जरूर देख लीजिएगा सर! हो सके तो जो हमें राष्ट्रीय पशु घोषित करवा दें तो ..... हमारी ओर से कोई कमी न रहेगी। युगों से गधों तक से बहुत लातें खाई हैं। अब अपना उद्धार केवल और केवल आपके हाथों में है,' अब इस गधे का कुछ तो करना ही पड़ेगा न। सम्मानित होने के सवाल के साथ एक और सवाल का सवाल जो है भाई साहब!

हिमाचल प्रदेश, भारत

प्रसाद माहात्म्य

—श्री सीताराम गुप्ता

हम पूजा–पाठ के लिए चाहे स्थानीय मंदिर में जाएँ अथवा तीर्थाटन के लिए देश के अन्य किसी भी कोने में वहीं से प्रसाद अवश्य लाते हैं और जितनी श्रद्धा से लाते हैं उससे कई गुना श्रद्धा के साथ स्वयं खाते हैं और अन्य सभी को खिलाते हैं। प्रसाद एक ऐसी चीज है जो लोगों को फेविकोल के मजबूत जोड़ की तरह आपस में जोड़ने में बहुत मददगार होती है। प्रसाद का माहात्म्य ही ऐसा है कि आपका शत्रु भी आपके सामने हाथ फैलाकर श्रद्धा से प्रसाद ग्रहण कर अपने माथे से लगाने को विवश होता है। बिलकुल उसी तरह जैसे एक भिखारी भीख में मिली वस्तु को माथे से लगाते हुए भीख देने वाले को दुआएँ देता जाता है कि अगर ये न मिलती तो मेरा क्या होता? यही ठीक ढंग भी है प्रसाद लेने का क्योंकि कहा गया है कि दाता एक राम भिखारी सारी दुनिया। ये प्रसाद उसी दाता एक राम के सौजन्य से ही तो मिलता है। वैसे हमारे यहाँ जितने भगवान हैं आप उनका एक सूचीपत्र भी बना दें तो मैं आपको साहित्य का नोबल पुरस्कार दिलवाने का वादा कर सकता हूँ।

इन्हीं सब अगणित भगवानों व भगवतियों की बदौलत ही प्रसाद की महिमा दिगंत में फैल कर संपूर्ण संसार के लोगों को एक सूत्र में बाँधे हुए है। पता नहीं ये लोगों की प्रसाद के प्रति श्रद्धा का परिणाम है अथवा प्रसाद की उपेक्षा से अनिष्ट की आशंका का भय कि जो लोग आपका मुँह–माथा भी नहीं देखना गवारा करते और आपको देखते ही मुँह फेर लेते हैं प्रसाद के नाम पर उनके ग्रेनाइट की शिला सदृश कृष्ण कठोर थोबड़े भी श्वेत संगमरमर की सुगढ़ मसृण मूर्तियों में रुपांतरित होकर उनसे भी श्रद्धा टपक–टपक कर आपके हृदय को ही गीला नहीं कर देती अपितु आसपास के क्षेत्र की आर्द्रता में भी वृद्धि कर देती है। पड़ोस की भाभियाँ जो आपको भूल कर भी कभी घास नहीं डालतीं और आपका बिल्ली की तरह रास्ता काट दिए जाने पर वापस हो लेती हैं अथवा अपना रास्ता बदल लेती हैं आपके हाथ में प्रसाद का दोना देखकर न केवल अपने हाथ आगे बढ़ाकर श्रद्धापूर्वक प्रसाद का दोना ग्रहण कर लेती हैं अपितु पूछ भी लेती हैं कि दर्शन तो ठीक से हो गए न? मन कहता है कि दर्शन तो अब हुए हैं पर जबान से कहना पड़ता है हाँ हाँ दर्शन बहुत अच्छे से हो गए आपकी कृपा से और पूरा यात्रावृतांत सुनाए बिना नहीं छोड़ते। ऐसे दुर्लभ अवसर रोज–रोज थोड़े ही मिलते हैं? ये प्रसाद की ही महिमा है जो आज अच्छे से दर्शन हो गए और बातचीत भी वरना कितनी कोशिशें बेकार जा चुकी थीं और लगता था इस जीवन में तो ये साध पूरी होने से रही। तो ऐसे में निराश जनों की एकमात्र आशा की किरण है प्रसाद और प्रसाद से उत्पन्न सोश्यलाइज़ेशन। जो लोग किन्हीं कारणों से आज के सोशल मीडिया से नहीं जुड़ पाए हैं प्रसाद उनको इसका परोक्ष अवसर उपलब्ध करवाने में पूर्णतः सक्षम है।

प्रसाद की महिमा अनंत है। तभी हर मंदिर के पास पीने या हाथ धोने का पानी मिले या न मिले जूतों को रखने का स्थान व प्रसाद की दुकानें जरूर मिलेंगी। जैसे ही मंदिर परिसर में घुसेंगे प्रसाद बेचने वाले आग्रह करेंगे कि बहन जी जूते यहीं दुकान के नीचे रख दो। जूते तो रख दो प्रसाद चाहे जहाँ से ले लेना। कोई उठा तो नहीं ले जाएगा? पूछना स्वाभाविक है। अरे नहीं। हम हैं न। आश्वस्त होकर जब बहन जी अपने जूते यहीं रखेंगी तो जीजा जी व भांजे–भांजियाँ भी सब अपने–अपने जूते यहीं उतार कर रख देंगे इसमें संदेह नहीं। अब भाई साहब सबके हाथ धुलवाएँगे। उनके हाथ धुलवाने में भी बड़ी बरकत होती है। एक लोटा पानी में सैकड़ों श्रद्धालुओं के हस्त प्रक्षालन व शुद्धि करवाने के बावजूद उनके लोटे में पानी बचा रह जाता है। इसके बाद प्रसाद तो यहीं से लेना बनता है। पैसे देने लगेंगे तो कहेंगे क्या जल्दी है पहले मंदिर हो आओ बाद में ले लेंगे। वैसे तो हम बैंकों के चाहे नौ हजार करोड़ लेकर भाग जाएँ पर प्रसाद का आज तक किसी ने किसी का एक पैसा भी नहीं मारा होगा। इसको कहते हैं सच्ची श्रद्धा।

श्रद्धा पर एक बात और याद आई। हम प्रसाद को बड़ी ही श्रद्धा से उदरस्थ करते हैं। पहले उसे नाक माथे से लगाते हैं फिर मुँह के अंदर ले जाते हैं। पहले मैं समझता था कि लोग पहले प्रसाद को सूँघकर देखते हैं कि स्मैल तो नहीं है पर मेरी धारणा मिथ्या थी। प्रसाद को भी कहीं सूँघकर खाया जाता है? कई बार प्रसाद में थोड़ी बहुत महक भी होती है तो भी हम शिकायत नहीं करते और प्रसाद को सीधे पेट के हवाले करके ही दम लेते हैं। मेरे कई परिचित हैं जो प्रसाद के बड़े शौकीन हैं। जब भी उन्हें कुछ मीठा खाने की इच्छा होती है और आसपास कहीं से भी प्रसाद नहीं मिल पा रहा होता है तो वो मंदिर हो आते हैं। पूजा के साथ पेट पूजा भी आसानी से हो जाती है। पुजारी जी भगवान का भोग लगाने के बाद जितना भी प्रसाद लौटाते हैं सारा उनके पेट के हवाले हो जाता है। वैसे प्रसाद बाँट कर खाना चाहिए। यदि प्रसाद में

थोड़ी बहुत महक हो तो एक बूँदी मुँह में डालने के बाद बाकी का सारा प्रसाद बाँट देना चाहिए। समझदार लोग ऐसा ही करते हैं। ठीक हो तो सारा खा लेंगे वरना सारा पड़ोसियों में बाँट देंगे। ये सिलसिला चलता रहता है और पड़ोसियों में आपसी संबंध प्रगाढ़ होते रहते हैं। किसी कॉलोनी में नए आए हैं तो मुहूर्त के दिन यदि खाने–पीने का सामान बच जाता है तो न केवल प्रसाद के नाम पर उसको ठिकाने लगाने में आसानी होती है अपितु नए पड़ोसियों से मुफ्त में अच्छे संबंध भी बन जाते हैं। प्रसाद का माहात्म्य ही है ये कि हर्र लगे न फिटकरी रंग भी चोखा आए।

बच्चों से लेकर बूढ़ों तक प्रसाद सभी चाव से खाते हैं। यदि प्रसाद बहुत अच्छा न हो तब भी लोग यही कहते हैं कि प्रसाद बड़ा स्वादिष्ट है। श्रद्धा कहें या माले–मुफ्त कहें ये दोनों मिलकर प्रसाद को स्वादिष्ट बनाने में पूर्णतः सक्षम हैं। एक बार एक बच्चे ने प्रसाद मुँह में डालते ही कहा कि ये कैसा प्रसाद है खट्टा–खट्टा सा तो उसकी दादी ने ये कहकर कि प्रसाद के बारे में ऐसा नहीं बोलते भगवान नाराज़ हो जाएँगे उसे चुप करवा दिया। बच्चे ने बड़ी मुश्किल से भगवान को नाराज़ होने से रोककर अपनी आस्तिकता का प्रमाण दिया लेकिन इसके परिणामस्वरूप वह पूरे एक सप्ताह के लिए पढ़ाई के जानलेवा बोझ से बच गया। ये प्रसाद का ही चमत्कार था इसमें संदेह नहीं वरना कहीं इस मुई जानलेवा पढ़ाई के बोझ से मुक्ति मिलती है? इस घटना से मुझे एक बढ़िया आइडिया और आया और वो ये कि अगर कोई डॉक्टर चाहे तो प्रसाद की दुकान के पास उसका भी अच्छा काम चल सकता है, अगर वे प्रसाद विक्रेता से कॉलेबोरेट कर ले। प्रसाद विक्रेता को भी कोई दिक्कत नहीं होगी क्योंकि मंदिर परिसर मे कोई सैंपल भरने वाला तो आने से रहा। वहाँ तो सब श्रद्धालु ही आते हैं। प्रसाद भी श्रद्धा की चीज है अतः आसपास की कम चलने वाली दुकानों की बची हुई हफ्तों पुरानी मिठाई भी आसानी से खप सकती है। प्रसाद की महिमा से प्रसाद विक्रेता और डॉक्टर दोनों का ही भला हो सकता है।

हमारे देश में भगवानों की संख्या कितनी होगी शायद ही आप गिन पाएँ। भगवानों की संख्या की तरह ही उन पर चढ़ाए जाने वाले प्रसादों में भी कम विविधता हमारे देश में नहीं मिलती। कहीं बूँदी के लड्डुओं से भगवान का भोग लगता है तो कहीं बेसन के लड्डुओं से। कहीं पेड़ों से तो कहीं जलेबियों से और कहीं चूरमे से तो कहीं पंच मेवों से भगवान का भोग लग रहा है। किसी भगवान को माखन–मिश्री पसंद है तो किसी को इलायचीदाना। कोई भुने चनों से ही संतुष्ट है तो कोई दो बेरों से। कोई दूध चढ़ाने से प्रसन्न हो जाता है तो एक आध भगवान ऐसा भी है जिसकी डिमांड दारू की रहती है। अपने भैरव जी शराब बिना तृप्त नहीं होते। कई भगवान बड़े नखरे वाले होते हैं और केवल शुद्ध घी से बने मिष्ठान्न से ही अपनी उदरपूर्ति करते हैं। अब ये तो भगवान जी या भगवती जी की मर्ज़ी पर है कि वह क्या डिमांड करे और जो वो पसंद करे वही हमारा प्रसाद। हम थोड़े कंजूस हैं इसलिए तीर्थाटन आदि के लिए कम ही बाहर निकलते हैं लेकिन इस मामले में हमारे कई पड़ोसी बड़े अच्छे हैं। वे सपरिवार तीर्थाटन के लिए जाते ही रहते हैं और इससे हमें कभी भी प्रसाद की कमी नहीं खलती।

पिछले दिनों हमारे एक पड़ोसी तीर्थाटन के लिए वैष्णो देवी गए थे। वैष्णो देवी जाने वाले श्रद्धालु प्रसाद के रूप में वहाँ से मुख्य रूप से अखरोट और मुरमुरे व चीनी से बना इलायचीदाना लाते हैं। उसमें बेर के आकार के काले–काले से कुछ जंगली फल व किसी फल की कटी हुई सूखी हुई फाँकें भी होती हैं। पड़ोसियों के यहाँ से प्रसाद आया। अब प्रसाद तो प्रसाद है। प्रसाद के रूप में लाए जाने वाले अखरोट कई बार थोड़े छोटे निकल आते हैं तो कुछ लोग उन्हें देखते ही मायूस हो जाते हैं क्योंकि उनको तोड़ना थोड़ा मुश्किल होता है। और किसी तरह तोड़ भी दिया जाए तो वे प्रायः खाली भी निकल आते हैं। कोई भी काम थोड़ा मुश्किल हो सकता है असंभव नहीं लेकिन हममें धैर्य ही नहीं रहा। सब्र का फल हमेशा मीठा होता है। तो ये अखरोट भी थोड़े छोटे थे। हम ही नहीं अन्य सभी लोग प्रसाद को बड़ी श्रद्धा से देखते हैं और किसी भी सूरत में फेंकते नहीं हैं। हम भी नहीं फेंकते। अखरोट थोड़े छोटे थे लेकिन थे बड़े मजबूत और जीवट वाले अतः अखरोटों से गिरी निकालने के लिए पहले तो हाथ–पैर चलाए और दरवाजों के पल्लों के कब्जों का सहारा लिया लेकिन जब हाथ–पैरों और दरवाजों के पल्लों के कब्जों से बात नहीं बनी तो अन्य औजारों का सहारा लिया। चिमटा, हथौड़ी, प्लायर्स, पेचकश, नेलकटर, पेपरकटर, चाकू व किचन तथा घर में उपलब्ध अन्य सभी औज़ार आज़माए।

अखरोट रूपी ग्लोब पर या तो उसके ध्रुवों पर चोट मारते हैं या फिर उसकी भूमध्य रेखा पर। अब चोट कहीं भी मारें अखरोट को चोट कम मारें तो टूटता नहीं और चोट ज़रा ज़ोर से लग जाए या गलत जगह लग जाए तो बेचारे का कचूमर निकल आता है और उसमें जो थोड़ा बहुत मगज होता है वह अखरोट के छिलकों के चूरे के साथ चिपक कर बेगाना हो जाता है। ये बात नहीं कि हर अखरोट खाली ही निकलता है। कभी–कभी एक आध अखरोट में गिरी निकल भी आती है लेकिन टूटे हुए अखरोट के टुकड़ों में से उसको निकालने के लिए पेचकश,

नेलकटर, पेपरकटर या चाकू जैसे नोकदार हथियार की जरुरत पड़ती है। अब ये काम रोज–रोज तो करना नहीं होता इसलिए अनुभव की कमी के कारण कभी उँगलियाँ घायल हो जाती हैं तो कभी पेचकश, नेलकटर, पेपरकटर अथवा चाकू का ही राम नाम सत्य हो जाता है। लेकिन यदि हम अनुभवहीन हैं तो इसमें प्रसाद का क्या कसूर?

कहते हैं न कि प्रसाद कोई पेट भरने के लिए थोड़े ही होता है प्रसाद के तो दो दाने ही बहुत। तो हमने प्रसादवत दो दाने निकाल कर ही दम लिया। कभी कभार ये दो दाने कड़वे निकल आते हैं तो कुछ लोग तो फौरन थू–थू करने लगते हैं लेकिन यहीं पर परीक्षा होती है असली और नकली भक्तों की अथवा श्रद्धालुओं की श्रद्धा की। यही है आस्तिक और नास्तिक की परीक्षा। सुकरात ने कहा है कि वह जीवन जीने के योग्य नहीं जिसकी परीक्षा न हो चुकी हो। परीक्षा जीवन का अनिवार्य अंग है। परीक्षाओं से गुजरकर ही जीवन जीने योग्य होता है। परीक्षा ही एक ऐसी भट्टी के समान है जिसमें तपकर खरा सोना तो कुंदन बन जाता है लेकिन खोटा सोना अपना अस्तित्व ही खो बैठता है। हमारा संपूर्ण जीवन एक परीक्षा ही है और प्रसाद इसमें सहायक होता है। प्रसाद हमारी परीक्षा लेता है और जो इस परीक्षा में पास होता है जीवन का आनंद भोगता है और अंत समय में मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

जो नकली श्रद्धालु या नास्तिक होते है वही प्रसाद को थूकते हैं, असली श्रद्धालु या आस्तिक नहीं। अरे साथ में मुरमुरा और मीठा इलायचीदाना किसलिए होता है? वैसे तो किसी अखरोट में गिरी निकलेगी नहीं लेकिन यदि आप सच्चे श्रद्धालु या आस्तिक हैं और इस कारण से किसी अखरोट में गिरी निकल आए और वो कड़वी निकल आए तो उसको मीठे इलायचीदाने के साथ नीचे उतार लीजिए। हम ठहरे सच्चे श्रद्धालु व आस्तिक अतः हमने भी यही किया। अखरोट की गिरी और मुरमुरे व मीठे इलायचीदाने का प्रसाद तो ले लिया लेकिन अब उस बचे हुए बेर के आकार के जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी हुई फाँकों का क्या करें ये समस्या आन खड़ी हुई। आप कहेंगे कि बड़े बेसब्र हैं हम। क्या अखरोट और मुरमुरे व मीठे इलायचीदाने के प्रसाद से पेट नहीं भरा? अब बस भी करो! कुछ असहिष्णु लोग जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी फाँकों को अखरोटों के मलबे के साथ ही फेंक देते हैं जो प्रसाद का घोर अनादर है। ये हमारी घोर नास्तिकता का प्रमाण है जो हम प्रसाद में भी स्वाद खोजते हैं।

असली श्रद्धालु या आस्तिक लोग जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी फाँकों को भी सँभालकर रख देते हैं और ये उनकी भक्ति–भावना की पराकाष्ठा ही है जिसके कारण जब तक उन पर फंगस नहीं लगता किसी भी सूरत में फेंकते नहीं। फेंकेंगे भी तो कूड़े में हर्गिज नहीं फेंकेंगे। किसी पड़ोसी की छत पर फेंक देंगे ताकि किसी जीव–जंतु अथवा पक्षी के मुँह पड़ सके। प्रसाद कैसा भी क्यों न हो उसको इधर–उधर फेंकना अशुभ माना जाता है इसलिए जो प्रसाद नहीं खाया जाता या खाना संभव नहीं होता उस प्रसाद को फेंकने की बजाय लोग पड़ोसियों में बाँट देते हैं। पड़ोसी उपलब्ध न हों तो किसी राह चलते को रोक कर उसके हाथों पर धर देते हैं। कोई राह चलता भी हाथ न आए तो रिश्तेदारों के यहाँ भिजवा देते हैं या कोई मिलनेवाला आया हो तो उसको बाँट देते हैं। एक बार मैं भी इस प्रसाद के फेर में फँस गया था। मैं एक रिश्तेदार के यहाँ गया था। रात के नौ बज रहे थे। चाय पिलाने के बाद उन्होंने कहा कि हमने तो खाना खा लिया है आपके लिए बना देंगे। आप खाना खाकर जाना।

मैंने खाने को मना किया तो जैसे वह मौके की तलाश में ही बैठे थे कहने लगे कि खाना नहीं खाना है तो प्रसाद लेकर जाओ। अजीब ऑप्शन था। मैं सुनकर हैरान रह गया। मैंने कहा कि मैं प्रसाद नही ले जाऊँगा खाना ही खा लूँगा। उन्होंने कहा कि कहोगे तो खाना भी बना देंगे खा लेना लेकिन प्रसाद तो जरुर ले जाना। मैं कह तो चुका था कि खाना खा लूँगा और कैसे कहते हैं? उनको खाना नहीं खिलाना था सो नहीं खिलाया लेकिन फौरन पचास–साठ ग्राम वजन की प्लास्टिक में लिपटी हुई एक पुड़िया–सी मेरे हाथ में थमा दी जैसे कामवाली बाई को तीन दिन पुरानी बची हुई दाल थमा देते हैं और वह उसे बड़ी सफाई से अगले घर की चारदीवारी पर चुपचाप रखकर आगे बढ़ जाती है। ये मेरे उठ जाने का संकेत भी था। मुझे उठना पड़ा लेकिन उठने का प्रसाद भी पा गया। उठते–उठते मैंने पूछ लिया कि कहाँ से आया है ये प्रसाद तो बतलाया गया कि पड़ोसियों के यहाँ से आया है। वह कहाँ गए थे? उनके यहाँ उनका एक दोस्त दे गया था जो उस दोस्त की मौसी के जेठ की ससुराल से आया था। उनकी कॉलोनी में बहुत बड़ा भंडारा था। तो तुमने क्यों नहीं खाया? बहुत सारा था। प्रसाद तो जितना बँट जाए उतना अच्छा। प्रसाद के तो दो दाने भी बहुत। मगर ये लालाजी तो डायबिटीज व हाई बीपी के बावजूद पाव बेढ़ पाव मिठाई रोज उदरस्थ कर जाते हैं फिर ये पचास–साठ ग्राम वजनी पुड़िया बची कैसे रह गई? मैं पूछना तो चाहता था पर लिहाज कर गया। आखिर शिष्टाचार भी

कोई चीज होती है। सारी दुनिया अशिष्ट हो जाए तो भी हम कैसे अशिष्ट हो सकते हैं वो भी प्रसाद के नाम पर?

मुझे एक सबक मिल गया था कि प्रसाद को कभी भी फेंकना नहीं चाहिए। प्रसाद बाँटने की चीज है। प्रसाद तो जितना बँट जाए उतना ही अच्छा है। प्रसाद के तो दो दाने भी बहुत। हमारे जैसे छोटे लोग ही नहीं, जो बड़े लोग होते हैं वो भी प्रसाद को कभी नहीं फेंकते। बड़े लोग इस बचे हुए प्रसाद को खुद न खाकर अपने सर्वेंट या मेड को दे देते हैं जो पहले तो उस प्रसाद को कई बार माथे से लगाते हैं लेकिन जब उसे गले से नीचे उतारना संभव नहीं होता तो अपना माथा पीटकर रह जाते हैं। जो सर्वेंट या मेड अनुभवी होते हैं, और अधिकांश प्राय: अनुभवी ही होते हैं क्योंकि उन्हें रोज ही किसी न किसी घर से प्रसाद मिलता ही रहता है, वह प्रसाद को नहीं खाने की बजाय ये कहकर अपने थैले में रख लेते हैं कि घर जाकर सबको थोड़ा-थोड़ा दे देंगे। प्रसाद तो जितना बँट जाए उतना अच्छा। प्रसाद के तो दो दाने भी बहुत। सर्वेंट या मेड भी प्रसाद को फेंकते नहीं अपितु रास्ते में जिस भी पहली गऊ-माता के दर्शन हो जाते हैं हाथ जोड़कर उसके हवाले कर देते हैं। हम भी पूरे आस्तिक हैं और प्रसाद में हमारी पूरी श्रद्धा है। हमने भी जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी हुई फाँकों को सँभालकर रख दिया और यदि किसी ने गलती से उन्हें नहीं फेंका तो वो किसी दिन किसी की आस्तिकता अथवा भक्ति-भावना की परीक्षा लेने के काम तो अवश्य ही आ जाएँगी।

दिल्ली, भारत

एक नेता का कबूलनामा

–राजीव मणि

चुनाव की घोषणा हो चुकी थी। सीट बटवारे की पहली लिस्ट पार्टी जारी कर चुकी थी। कई नेताओं के नाम इस लिस्ट में नहीं थे। सभी असंतुष्ट नेता पार्टी कार्यालय में आकर हंगामा मचा रहे थे। कुछ नेता 'पार्टी अध्यक्ष मुर्दाबाद' के नारे लगा रहे थे, तो कुछ गमला-मेज-कुरसी पटक रहे थे। लोटन दास अपनी धोती खोलकर प्रवेश द्वार पर बिछा धरने पर बैठ गये। अन्य नेताओं से चिल्लाकर बोले, 'भाइयों, आप भी इस मनमानी के खिलाफ हमारा साथ दें। पैसे देकर खरीदे गये हैं टिकट! इसके खिलाफ हम यहां रंग-धड़ंग धरना देंगे, प्रदर्शन करेंगे।'

लोटन दास की बात सुनकर कुछ और नेता वहां आ गये। सभी धोती-कुरता खोलने लगे। भीड़ में से आवाज आयी, "नहीं चलेगी, नहीं चलेगी, सौदेबाजी नहीं चलेगी।"

कुछ ही देर में मीडियाकर्मी वहां पहुँच गये। दर्जनों कैमरा देख नेताओं में और जोश आ गया। कुछ तो अपनी चड्डी उतारने लगे, लेकिन बगलवाले ने ऐसा करने से रोका। फुसफुसाकर नेता को बताया, "चैनल पर लाइव आ रहा है।"

दूसरी तरफ शनिचर महतो मैदान में लोट रहे थे। चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे, "एक बीघा जमीन बेचकर पैसे दिये थे। मेरी तीनों पत्नियाँ मना कर रही थीं। बेटा घर छोड़कर चला गया। बेटी एक कार्यकर्त्ता के साथ भाग गयी। फिर भी मैं टिकट के लिए रात-दिन लगा रहा। पैसे लेकर भी मुझे टिकट नहीं दिया गया। अब मैं कौन-सा मुँह लेकर घर जाऊँ।" इतना बोलते ही शनिचर की हालत खराब हो गयी। ... और फिर, हृदयगति रुक जाने से उनकी मौत हो गयी।

इसपर पार्टी कार्यालय में जमकर हंगामा मचा। भारी संख्या में पुलिस आ गयी। डंडे चले। टीवी पर लाइव चलता रहा। ... और देखते ही देखते यमराज को शनिचर महतो की मौत की खबर मिल गयी। पलक झपकते यमराज वहाँ पहुँच गये और अपनी भैंस पर शनिचर महतो की आत्मा को जबरन बैठा चलते बने।

यमराज ने चित्रगुप्त के दरबार में लाकर शनिचर को पटक दिया। चित्रगुप्त ने इशारे से पूछा, "कौन है यह?"

"महाराज, अभी–अभी मरा है। नाम शनिचर महतो है। खुद को वहाँ नेता बताता था। चुनाव में टिकट नहीं मिलने का दर्द बर्दाश्त नहीं कर सका। हृदयगति रुक जाने से इसकी मृत्यु हो गयी।" यम ने हाथ जोड़कर कहा।

"ठीक है, शनिचर, तुम कठघरे में आ जाओ। तुम्हारे पाप–पुण्य का हिसाब–किताब हो जाने पर ही यह निर्णय लिया जाएगा कि तुम्हें स्वर्ग भेजना है या नरक।" चित्रगुप्त ने कड़ककर कहा।

शनिचर महतो दुखी मन से कठघरे में आ गये। उनसे कुछ पूछा जाता, इससे पहले ही बोल पड़े, "महाराज, या तो हमें स्वर्ग भेजिए या फिर से धरती पर। हम जिंदगी भर जनता की सेवा किये हैं। हमें यह मौका मिलना ही चाहिए ... ।"

बीच में ही चित्रगुप्त महाराज बोल उठे, "कम्बख्त, दुष्ट, इसे भी क्या तुम धरती समझते हो ? जब कुछ पूछा जाए तो बोलना।" फिर कुछ फाइल निकालकर चित्रगुप्त देखने लगे। कुछ देर बाद नाराज होते हुए तेज आवाज में बोले, "दुष्ट, तुम पर पहला आरोप यही है कि तुमने अबतक जनता को लूटा है।"

"नहीं महाराज, यह गलत है, बल्कि लूटा तो मैं गया हूँ। सारे खेत बेचकर टिकट के लिए पैसे दिये थे, टिकट भी नहीं मिला! और इसी गम में मुझे अपने प्राण गंवाने पड़े।" शनिचर ने विनम्र भाव से कहा।

"तुमने अपने स्वार्थ में खेत बेचकर टिकट पाने के लिए पैसे दिये थे। इसमें जनता का क्या भला ? पापी, तुमने यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारे बीवी–बच्चों का क्या होगा ?" चित्रगुप्त नाराज हुए।

"क्षमा महाराज, मैं तो .. ।"

"दुष्ट, तुमने आज तक जनता के लिए क्या किया ? अपनों के बीच ठेके बाँटे, कमीशन के पैसों से ज़मीन–जायदाद बनाया। गरीब–असहायों की जमीन हड़प ली। मकान पर कब्जा जमाया। अबलाओं की इज्ज़त लूटी। बेशरम !" चित्रगुप्त क्रोधित हो गये।

"ये सब झूठ हैं महाराज, किसी ने गलत खबर दी है। पूरा इलाका जानता है कि ... ।"

चित्रगुप्त बीच में ही बोले, "क्या यह सच नहीं कि तुमने तीन शादियां की है ?"

"सच है महाराज।"

"क्या तुमने बलात्कार के आरोप से बचने के लिए दूसरी शादी नहीं की थी ?"

शनिचर कुछ देर सिर झुकाए खड़ा रहा। फिर बोला, "की थी महाराज।"

"तो क्या तीसरी शादी के बारे में भी मुझे ही भेद खोलना पड़ेगा।"

"मैं अपना गुनाह कबूलता हूँ महाराज।"

चित्रगुप्त कुछ देर शनिचर महतो को देखते रहे, फिर कुछ सोचकर बोले, "शनिचर, तुम मान चुके हो कि तुम्हारे ऊपर लगाया गया पहला आरोप सही है। अब मैं तुम्हें दूसरा आरोप बताता हूँ।" चित्रगुप्त कुछ क्षण शनिचर का चेहरा देखते रहे। वे कठघरे में खड़ा–खड़ा डर रहे थे, न जाने चित्रगुप्त क्या आरोप लगा बैठे। मन में सोच रहे थे, आखिर चित्रगुप्त को यह सब जानकारी कहाँ से मिल गयी। धरती पर तो आजतक किसी ने इस तरह आरोप लगाने का साहस नहीं किया। तभी पूरे दरबार में कड़क आवाज गूंजी, "तुमपर दूसरा आरोप है कि तुमने अपने जीवन में जमकर ऐयाशी की। इसी ऐयाशी के कारण अपने घर–परिवार को उपेक्षित रखा।"

शनिचर अंदर तक काँप गये। जिस बात की आशंका थी, वही हुई। वे धीमी आवाज में बोले, "महाराज, अभी आपने जो ज़िक्र किया था, उसके अलावा कुछ नहीं किया।"

शनिचर की बात सुनकर चित्रगुप्त फिर क्रोधित हो गये, "नालायक, तुम क्या समझते हो, यह तुम्हारी धरती है, पार्टी कार्यालय है ? तुम क्या–क्या गुल खिलाकर यहाँ आये हो, मुझे पता नहीं ? अगर तुम ऐसा सोचते हो, तो यह तुम्हारी भूल है। मैं सब जानता हूँ। यहीं से सारा खेल देखा करता हूँ। लेकिन, फैसला सुनाने से पहले मैं तुम्हारे ही मुँह से यह सब सुनना चाहता हूँ। बाद में यह ना कहना कि मुझे सफाई का मौका नहीं दिया गया। यह चित्रगुप्त का दरबार है, और यहाँ सबको अपनी बात रखने का बराबर मौका दिया जाता है। इस दरबार के न्याय की चर्चा तीनों लोकों और दसों दिशाओं में होती है। क्या तुम भूल रहे हो?"

"क्षमा महाराज, क्षमा ! मैंने कुछ और युवतियों की इज्ज़त लूटी है। कभी रैली के बहाने राजधानी ले जाने पर, कभी काम करवाने का लालच

देकर। लेकिन, मुझे ठीक–ठीक संख्या नहीं मालूम। स्मरण नहीं है महाराज।"

चित्रगुप्त को अंदर से काफी गुस्सा आ रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि अपनी खड़ाऊं फेंककर ही शनिचर को मार बैठेंगे। लेकिन, उन्होंने संयम से काम लिया। सहज होते हुए पूछा, "तुम्हारी बेटी क्यों तुम्हारे ही कार्यकर्ता के साथ भाग गयी ?"

"मैं अपना दायित्व ठीक से नहीं निभा सका, महाराज। मैं तो वरुण सोनार को भला आदमी समझता था। उसके लिए क्या नहीं किया। अधिकांश ठेके उसी को दिये। जब वह सामने आता था, हाथ जोड़े रहता था। उसके मुंह से तो कोई आवाज ही नहीं निकलती थी। मेरे कदमों में बैठा रहता था। मेरे एक इशारे पर घर–बाहर का सारा काम कर दिया करता था। उसकी बनावटी ईमानदारी ने मुझे धोखा दिया, महाराज। मुझे क्या मालूम था कि वह घर का काम करने के बदले कौन–सा काम कर रहा है।" इसके आगे शनिचर कुछ बोल न सका। मुँह लटकाये खड़ा रहा।

"क्या तुम वरुण सोनार से हर ठेके में कमीशन नहीं खाते थे ?"

"खाता था महाराज।"

"तो फिर किस मुँह से कह रहे हो कि जनता के सेवक हो ?"

"हूँ महाराज, मैंने जनता की काफी सेवा की है। गलियाँ, सड़कें, पुल, पुलिया, काफी कुछ बनवाया है।" शनिचर के चेहरे पर थोड़ी चमक दिखी।

"मुझे भी ठगने चला है शैतान।" चित्रगुप्त डाँटते हुए बोले, "क्या तुमने खुद कमाकर ये सारी चीजें बनवायी थीं ? जनता के पैसों से बनवाया, उसमें भी कमीशन खाकर हीरो बनता है। दुष्ट, अगर सेवा की भावना ही होती, तो टिकट न मिलने पर अपनी जान क्यों देता। क्या जनता की सेवा के लिए चुनाव लड़ना जरुरी था ? तुम बिना चुनाव लड़े जनता की सेवा नहीं कर सकते थे, किसी ने मना किया था ?"

"नहीं महाराज, किसी ने मना नहीं किया था।" इससे ज्यादा शनिचर कुछ बोल न सका।

"तो तुम मान रहे हो कि जनता को लूटने के लिए ही तुमने राजनीति की राह ली ?"

शनिचर के मुँह से कुछ नहीं निकल सका। सिर्फ 'हाँ' में सिर हिलाकर रह गया। चित्रगुप्त ने राहत की साँस ली। रुककर बोले, "तुम्हारे ऊपर लगा यह आरोप भी सच साबित होता है। दरअसल तुम धरती के भार थे। तुम्हारे मरने से धरती पर एक पापी कम हो गया। अब बताओ, तुम्हारा पुत्र घर छोड़कर क्यों गया?"

"उसे मेरा राजनीति में आना पसंद नहीं था, महाराज। वह हमेशा मुझे इससे दूर रहने की सलाह देता था। लेकिन, मैं उसकी बात ...।" इतना कहकर शनिचर चुप हो गया।

"देखा पापी, तुम्हारा बेटा भी तुम्हें पसंद नहीं करता था। बीवी तुमसे घृणा करती थी। और तुम जनता के सेवक बने फिरते थे।" चित्रगुप्त ने गुस्से में कहा।

चित्रगुप्त का क्रोध देखकर शनिचर की सारी नेतागिरी हवा हो गयी। उसे अब काफी डर लग रहा था कि चित्रगुप्त न जाने क्या आरोप लगा दें। उनके कैसे–कैसे प्रश्नों का सामना करना पड़े। चित्रगुप्त के प्रश्नों से बचने के लिए शनिचर बीच में ही बोल पड़ा, "महाराज, अब मैं न स्वर्ग जाना चाहता हूं और न ही धरती पर, मुझे नरक में ही भेज दें। मैं अपने सारे गुनाह कबूल करता हूँ। मैं पापी हूँ, दुष्ट, नालायक और वह सब कुछ हूँ, जो इस तरह के व्यक्ति को कहा जाता है। कृपया मुझे नरक भेज दें, महाराज।"

शनिचर की बात पर चित्रगुप्त उसे तीरछी नज़र से देखने लगे और बोले, "यह तुम्हारा अनुरोध है या मुझे आदेश दे रहे हो !"

"मैं आपसे अनुरोध कर रहा हूँ महाराज।"

"हूँ ... ठीक है। जाओ, मैं तुम्हें नरक भेजता हूँ। वहाँ तुम्हारे कई साथी व कार्यकर्ता पहले से ही सजा भोग रहे हैं। तुम भी उनके साथ जाकर काम में लग जाओ। और हाँ, देखो ध्यान रहे, वहाँ कोई ऐसा काम न करना जिससे नरक की व्यवस्था बिगड़ जाये।" सभा यहीं खत्म की जाती है। चित्रगुप्त उठकर चल देते हैं। जाते–जाते नीचे धरती पर झाँककर देखते हैं, शनिचर महतो के सम्मान में एक शोकसभा का आयोजन किया गया था। एक वक्ता काफी गंभीर होकर बोल रहा था, "शनिचर जैसा राजनेता का यूँ चले जाना हमारे समाज के लिए काफी दुखदायी है। वे एक सच्चे, ईमानदार व महान नेता थे। स्वर्ग में ईश्वर उन्हें शान्ति दे।"

भारत

मिलना न मिलना केमेस्ट्री का

—श्री विनोद साव

यह समझ में नहीं आ रहा है कि अपनी केमेस्ट्री दूसरों से कैसे मिले। आखिर वह कौन सी केमेस्ट्री है जो दूसरों से जा मिलती है और कितने ही लोग ऐसी केमेस्ट्री के धनी हैं पर मैं क्यों कंगाल हूं! अपनी केमेस्ट्री की मूल धातु में ऐसा क्या है जिसे दूसरे किसी से मिलाया जा सके। यह कार्बनिक है कि अकार्बनिक है। मेरे भीतर जैव रसायन बह रहा है कि भौतिक रसायन। या यह किसी विश्लेषणात्मक रसायन का हिस्सा है। इसी के विश्लेषण में खोया हुआ हूं। जब तब किसी भी अभिनेता का किसी अभिनेत्री से या किसी नेता का किसी नेत्री से केमेस्ट्री मिल जाने का हल्ला सुनने में आता है तो और भी उलझन बढ़ जाती है कि उनके पास रसायन भरा ऐसा कौन सा अस्त्र है या उनके रसायन की धार में ऐसा कौन सा जलजला फूट रहा है जो उनकी केमेस्ट्री किसी न किसी से मिल जाती है और मेरी भौतिकी में किस रसायन की कमी है जो आज तक मेरी केमेस्ट्री किसी से नहीं मिल पाई।

संभवतः यह चूक अपने छात्र जीवन में ही हो गई थी जब मैं विज्ञान संकाय की कक्षा से बाहर निकलकर कला निकाय में जा बैठा था। कला निकाय (आर्ट सेक्शन) में लड़कियाँ अधिक प्रवेश लेती थीं। साइंस सेक्शन में केमेस्ट्री में अपना माथा खपाने से अच्छा सुंदर किशोरियों के बीच बैठकर अपनी केमेस्ट्री खपाना अधिक उपयुक्त लगा। खुदा ने उन्हें कला और सौंदर्य का ऐसा नायाब नमूना बनाया था कि जब भी कोई नाभि–दर्शना हमारे गांव की शाला में भरती होतीं तो वे सीधे कला निकाय में ही आ बैठती थीं। गोया वे सब गाय हों और कला–निकाय कांजीहाउस। साइंस से उनका कोई ताल्लुक न हो। उस समय में स्कूल–कालेज में ये धारणा भी पुख्ता हुआ करती थी कि 'आर्ट्स ग्रुप वाले सब गधे होते हैं।' जिन्हें साइंस और कामर्स में ऐंट्री नहीं मिलती थी वे सब आर्ट्स में जा बैठते थे। हम सबका शरीर भले ही विज्ञान के लिए चुनौती रहा हो पर दिमाग पूरी तरह अवैज्ञानिक था। इस अवैज्ञानिकता के बावजूद अपने पाठ्यक्रम से बाहर जाकर और डाक्टर–इंजीनियर बनने का सपना पाले मित्रों की संगत में रसायन विद्या की गूढ़ता को पकड़ने की हरदम कोशिश मैं करता रहा, पर मित्रगण डाक्टर इंजीनियर नहीं बन पाया और न किसी से मेरी केमेस्ट्री फिट हो पाई।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे।। यहां बाबा लोगों की केमेस्ट्री बाबी से जुड़ जाती है। रसायन विद्या का इतिहास उतना ही पुराना है जितना प्राचीन है मनुष्य का इतिहास। यह मनु और श्रद्धा की केमेस्ट्री मिल जाने से जन्मा इतिहास है। इस इतिहास की निरंतरता को बनाए रखने के लिए मनु के जीवन में फिर इड़ा को आना था। इन्होंने एक ऐसे फल को चख लिया था जिसके रसायन ने संतान संख्या में वृद्धि की। मनु से पैदा हुई संतानें मनुष्य हैं। मनु की इस उन्मादक भूमिका पर कालजयी कवि मुक्तिबोध फ़रमाते हैं:

"वस्तुतः मनु की प्रकृति ठीक उस पूंजीवादी व्यक्तिवादी की प्रकृति है जिसने कभी जनतान्त्रात्मकता का बहाना भी नहीं किया, केवल अपने मानसिक खेद, अंतर्विप्लव और निराशा से छुटकारा पाने तथा स्वस्थ शांत अनुभव करने के लिए श्रद्धा और इड़ा के समान अच्छी साथिनों का सहारा लिया जो उसके सौभाग्य से उसे प्राप्त हुई।

'और श्रद्धा क्या है?'

श्रद्धावाद घनघोर व्यक्तिवाद है – ह्रासग्रस्त पूंजीवाद का, जनता को बरगलाने का जबरदस्त साधन है।

मनु चल पड़ते हैं 'पुराने में अब मज़ा नहीं रहा, इसलिए नया चाहिए' इड़ा मिल जाती है। वह कौन है ?

मुक्तिबोध चेतावनी देते हैं, 'ध्यान रहे कि ह्रासग्रस्त सभ्यता की उन्नायिका है – इड़ा।'

(मुक्तिबोध– 'कामायिनी एक पुनर्विचार')

रसायन – इसका शाब्दिक विन्यास रस अयन है जिसका शाब्दिक अर्थ रसों (द्रवों) का अध्ययन है। रसायन विज्ञान, रसायनों के रहस्यों को समझने की कला है। इस विज्ञान से विदित होता है कि पदार्थ किन–किन चीजों से बने हैं, उनके क्या–क्या गुण हैं और उनमें क्या–क्या परिवर्तन होते हैं। इस विद्या की थ्योरी को पकड़ते हुए भी इसके प्रेक्टिकल में हमेशा कमजोर साबित होता रहा और प्रेम की किसी भी परीक्षा में किसी नाभि–दर्शना से कोई नाभिकीय रसायन नहीं जोड़ पाया। माँ के हाथों से बने रसायन कतरा (बेसन की सीरे वाली सब्जी) को बार–बार सुड़कने के बाद भी अपने भीतर वांछित रसायन का अपेक्षित स्तर नहीं ला पाया। आखिरकार कला निकाय की एक

सहपाठिनी ने कह भी दिया कि 'जब केमेस्ट्री का मिलान करना था तो यहाँ क्यों आए विज्ञान में पड़े सड़ते रहते।' फिर ये भी कह दिया कि 'तुम कहीं भी रहो तुम्हारी केमेस्ट्री किसी से मिल नहीं सकती क्योंकि 'अफेयर' के लायक तुम आदमी नहीं हो।'

कितना अच्छा लगता था जब साइंस की कक्षाओं में फिजिक्स–केमेस्ट्री के नाम सुना करते थे। फिजिक्स यानी भौतिकीय में एक मर्दानापन महसूस होता था और केमेस्ट्री अपनी रसायनीय तरलता से कमनीय हो उठती थी। बिल्कुल वही आकर्षण जो 'मेस्क्यूलिन' और 'फेमिनिन' में होता है। जैसे फिजिक्स उसे पुकार रहा हो 'हाय केमि। कम–ऑन डार्लिंग।' दोनों एक दूजे के लिए बने हैं। एक के अभाव में दूसरा अधूरा है। जहाँ फिजिक्स होगा वहीं केमेस्ट्री होगी। जैसे फिल्मों में धर्मेन्दर–हेमामालिनी की जोड़ी। दोनों के फिजिक्स की क्या केमेस्ट्री मिली रे बाबा कि एक स्वप्न–सुंदरी ने अपने से बीस साल बड़े मर्द जो पहले ही चार बच्चों का बाप हो और उनकी माँ के साथ रहता हो वहाँ जाकर सर्वांग सुंदरी ने अपना सर्वांग निछावर कर दिया। इस तरह केमेस्ट्री का मिल जाना अपने आप में एक भयानक दुःस्वप्न की तरह भी होता है। फिल्मों के इस स्वप्नलोक में ऐसे दुःस्वप्न भी देखने में आते हैं। इस सिने संसार का पूरा अर्थशास्त्र ही केमेस्ट्री का मिलान पर टिका हुआ है। नायक–नायिका की जोड़ी जमी तो मामला सुपर–डुपर हिट। नहीं तो करोड़ों अरबों का झटका लगा और सारी चकाचौंध चौराहे पर। इसी दुनिया में एक रचनात्मक उदाहरण भी सुना करते थे कि 'गाइड' में देवानंद और वहीदा की केमेस्ट्री कुछ इस कदर मिली कि गाइड एक क्लासिक कृति बन गई।

पर मेरी समस्या यह है कि आज तक मेरी केमेस्ट्री किसी से नहीं मिली जिससे मैं कोई क्लासिक कृति आपको दे नहीं पा रहा हूँ। इस बौद्धिक–वैचारिक उर्जा को प्राप्त करने के लिए गाँधीवादी जैनेन्द्र ने 'पत्नी नहीं प्रेयसी चाहिए' का हल्ला बोल कर केमेस्ट्री का एक नया सूत्र बताया जरूर था पर अवैज्ञानिक साहित्य समाज ने उसे असाहित्यिक करार कर दिया। अब यह सूत्र ज्यादातर मंचीय कार्यक्रमों में आजमाया जा रहा है जहाँ ग्लैमर की चकाचौंध है। मंच में कविता और रसायन की धारा साथ–साथ बह रह रही है ये गाते हुए कि 'तू गंगा की मौज मैं जमना की धारा।'

राजनीति में केमेस्ट्री मिलान को गठबंधन कहा जाता है। आजकल कांग्रेस से किसी भी पार्टी की केमेस्ट्री नहीं बैठ रही है। इसके भीतर जैसे तैसे सोनिया–मनमोहन की केमेस्ट्री ने पार्टी को दस साल खींच लिया था फिर यू.पी. में भाजपा के साथ केमेस्ट्री मिलाने की जबरदस्त कोशिश जबरदस्ती कोशिश साबित हुई और भाजपा विरोधी पूरा कुनबा डूब गया। प्रियंका की केमेस्ट्री भी काम नहीं आई। यहां पहले भी मुलायम और मायावती की केमेस्ट्री नहीं जमी। देश के इस सबसे बड़े राज्य में एक ऐसी पार्टी का राज आ गया जिसके प्रधान ने अपने दाम्पत्य जीवन में ही केमेस्ट्री मिलाना जरूरी नहीं समझा और पत्नी का त्याग कर देना ही श्रेयस्कर समझा। अब उनकी अर्द्धांगिनी स्मृति–दंश के गलियारे में कहीं खो गई हैं। इतिहास गवाह है बहुतों ने इस चक्कर में अपने राजे–रजवाड़े गंवाए हैं। बात जब निकलेगी तो दूर तलक जाएगी। बड़े लोगों की बड़ी बातें उनका फिजिक्स क्या और केमेस्ट्री क्या ? उनकी केमेस्ट्री कहीं भी मिल जाए तो उनका कोई क्या बिगाड़ लेगा। इसलिए बड़े लोगों के पचड़े में ज्यादा पड़ना नहीं।

छत्तीसगढ़, भारत

भारत -

खमीर सा उठता ज़मीर

—श्री मलय जैन

ज़रा सोचिये , क्या हो तब, जब बरसों से सोया जमीर एकाएक खमीर सा उठने लगे । चिकुनगुनिया के माफिक जमीरजगिया जैसा कोई संक्रामक रोग सा फैले और कई–कई को चपेट ले । कई–कई के बरसों से सोये ज़मीर एकसाथ जाग पड़ें । एक का जागे, फिर दूसरे का फिर तीसरे का और फिर गिनना मुश्किल हो जाए ।

जमीर जागरण का ज्वार जब–जब आता है तो बड़ी हलचल पैदा करता है। यह जीवविज्ञानियों और रसायनशास्त्रियों के लिये तो अध्ययन का विषय है ही, समाजशास्त्रियों के लिये भी उतने ही चिंतन का विषय हो सकता है कि ज़मीर का व्यवहार हर बार अलग–अलग क्यों होता है! यूं तो रहिमन इस संसार में भांति–भांति के लोग की भांति संसार में भांति–भांति के ज़मीर भी पाए जाते हैं । जज्बाती ज़मीर, फितरती जमीर, करामाती जमीर, खुरापाती जमीर, अकड़े जमीर, जकड़े जमीर, पैर पकड़े जमीर ऐसी तमाम किस्में हैं जमीर नामक इस विचित्र जीव की। विचित्र इसलिये कि ये कब अपनी अकड़न, जकड़न या पकड़न से मुक्त होकर जागता है, इसका कोई तयशुदा स्टैण्डर्ड नहीं देखने में आया। जितने उदाहरण हमें हमारे समाज और चहु ओर देखने को मिलते हैं, उससे तो लब्बोलुआब यही निकलता है कि ज़मीर के न सोने का टाइम फिक्स है न ही जागने का।

जैसे आपने सुना होगा न कि "हरे रंग का यह तोता, जाने कब जागता कब सोता," ऐसे ही ज़मीर भी अच्छा भला जागते कब सो जाता है या सोते–सोते न जाने कौन सी आहट पर जाग जाए, पता ही नहीं चल पाता। ज्यादातर तो यह देश, काल और परिस्थिति के हिसाब से ही अपनी निद्रा का प्रबंधन करता दिखता है।

किसी का ज़मीर जज्बाती होता है सो चौबीसों घण्टे पुलिस की भांति ड्यूटी पर रहकर जिस्म, जेहन और जुबान को जागते रहो ... जागते रहो का अलर्ट जारी करता रहता है, मगर ऐसे सतत् जागृत ज़मीर विरले ही देखने में आते हैं।

कुछ ऐसे हैं जिनका जमीर 'श्वान निद्रा, बको ध्यानम' के नियम का पालन करता बाय डॉग की मुद्रा में रहता है। सही वक्त पर झट जागकर हांउ–हांउ करने लगता है। मौके पर यह से कूद कर काम होते ही फिर आंखें मूंदकर बगुले की भांति ध्यानासन ग्रहण कर लेता है। कुछ प्रजातियाँ ऐसी हैं जिनके चरित्र और गुणसूत्र सरीसृप वर्ग से एकदम ठीक–ठाक मेल खाते हैं। उनका जमीर प्रायः शीतनिद्रा यानी हायबरनेशन में चला जाता है। नेशन वेशन चाहे जितना भी हो हो का हायगुल्ला करे, ये कठमुल्ला ज़मीर अपना समय पूरा कर ही जागता है। इस प्रकार के ज़मीर के सोने की अवधि कितनी होगी, ये भी ठीक–ठीक तय नहीं होता। ये कुछ महीनों से लेकर कुछ साल, बल्कि यूं कहिये, चार साढ़े चार साल तक ये नहीं जागता। कुंभकर्ण की भांति कर्ण में रुई को डीप इन्सर्ट कर ये डीप स्लीप में चला जाता है और फिर निर्लज्जता के ऐसे खर्राटे मारता है कि इसकी अनुगूंज दिग्दिगंत तक सुनाई देती है। जमीर की ऐसी जबरनींद जगत की चीखपुकार और विरोध की ढोलनगाड में भी नहीं टूटती।

ज़मीर के जागने के कारण भी बड़े विचित्र होते हैं। कभी तो बड़े–बड़े पहाड खड़े होने पर न जगे और कभी राई के पहाड खड़े होने पर खुद खड़ा होकर अपना ही एक पहाड़ खड़ा कर दे। ज़मीर हवाओं पर भी बहुत निर्भर करता है। कभी हवा चली तो अंधड़ का रूप धर ज़मीर उसी रौ में सबके अंधे, लूले, लंगड़े ज़मीर को लपेटता चलता है। ऐसी हालात में अधजागे या उनींदे ज़मीर भी उबासियाँ लेते सांय–सांय बहने लग जाते हैं क्योंकि न तो उनके पैर धरातल को पकड़े रह पाते हैं न ही वे धारा की दिशा के प्रति बहुत जाग्रत मनःस्थिति में होकर बहने से खुद को बचा पाते हैं और हवा के रुख से ही अपनी दिशा तय करते हैं। सबसे ज्यादा दुखी उस वर्ग के लोग होते हैं जिनके ज़मीर हर वक्त जागे रहते हैं और तेली का तेल जलने पर इनका भी जी जलता है और ये भी मुल्ला जी की तरह शहर के अंदेशे से दुबले होते पाये जाते हैं। ये जज्बाती वर्ग के ज़मीर होते हैं और प्रायः दुर्लभ होते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी तर्क देते हैं कि जो सोवत है सो खोवत है और जो जागत है सो पावत है । ऐसे ही लोग करामाती जमीर के धनी होकर हालात् के प्रति बड़े जागरुक होते हैं और वक्त जरुरत ज़मीर को जगाकर पावत हैं यानी मन वांछित फल पाते हैं। ये थोड़े भी सहकारी प्रवृत्ति के हुए तो दूसरों के सोये ज़मीर को जगाने का पूरा यत्न करते हैं कि हम तो जाग गये सनम तुम क्यों सोये पड़े हो। कुछ

ऐसे भी होते हैं जो फ्रंटलाइन में चलने के शौकीन होते हैं और "जो मारे सो मीर" में यकीन रखते हैं। ऐसे लोग अपने जमीर को तत्काल जगाकर एक्शन लेते हैं। कुछ इस मान्यता के होते हैं कि "नहीं लगा तो तुक्का और लग गया तो तीर"। ऐसे लोग जुआरियों की भांति जमीर का दांव लगाते हैं और ऊंट की करवट की प्रतीक्षा करते हैं।

जमीर की इन मुख्तलिफ किस्मों के अलावा ऐसी नज़ीर इफरात में उपलब्ध हैं जहां लोग ही बेजमीर पाए गए हैं । ऐसे लोग प्राय: सबसे अच्छे होते हैं और " न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी", "न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी" और "कोउ होय नृप हमें का हानि "जैसी क्रांतिकारी मान्यताओं का पोषण करते हैं और सबसे सुखी होते हैं ।

मध्यप्रदेश, भारत

डॉगी का फ़िटनेस ट्रेकर

—श्री राजशेखर चौबे

अमीर खुसरो ने कहा था कुछ अमीर ऐसे होते हैं जो हमें पैसे से घृणा करना सिखाते हैं। इसी तरह कुछ कुत्तों (जानवर), घोड़ों आदि की लाईफ स्टाइल देखकर लखपतियों को भी अपने मनुष्य होने पर घृणा हो सकती है और वे सोच सकते है कि काश मैं कुत्ता होता। मनुष्य और जानवर का चोली दामन का साथ है। मनुष्य की तुलना जानवर से की जाती है। मसलन वह गाय जैसी सीधी है। वह बहुत कुत्ती चीज है। उसमें कुतत्व कूट-कूट कर भरा हुआ है। वह में पुरुष और महिला दोनों शामिल है। अमेरिका में गधे को मूर्ख नहीं माना जाता परंतु हमारे यहाँ मूर्ख व्यक्ति को गधा कहा जाता है, बेचारा गधा। नेता की तुलना लोमड़ी से की जाती है, बेचारी लोमड़ी। पता नहीं जानवर भी ऐसी कोई तुलना करते हैं या नहीं ।

खैर अभी यह सब चर्चा क्यों? मैंने अखबारों में पढ़ा – अब आपके डॉग की हेल्थ के लिए फिटनेस ट्रेकर उपलब्ध है। अमेरिका में ह्यूमन सोसायटी वेटनरी मेडिकल एसोसिएशन के वी.एम.डी. बेरी केलाग कहते हैं – "जब आप दफ्तर में होंगे, तब भी आप यह जान सकते है कि आपका डॉग मोटापे का शिकार है या नहीं। उसकी पल्स रेट क्या है। उसकी गतिविधियाँ सामान्य है या नहीं। ये फिटनेस ट्रेकर बियरेबल डिवाइस है जो विशेष तौर पर श्वान (कुत्ते) के लिए तैयार किया गया है। श्वान कहने पर कुत्ता प्रसन्न होगा या नाराज यह भी पता नहीं है। इस खबर को पढ़ने के बाद मेरी तरह बहुत से लोग सोच रहे होंगे – वाह री उन कुत्तों की किस्मत और मेरी कुत्ते जैसी किस्मत। इस खबर से ही पता चला कि कुत्ते भी मोटापे के शिकार होते हैं। मोटापे से बचने के लिए क्या कुत्ते भी जिम जाते हैं या मॉर्निंग वॉक करते हैं। आवारा कुत्ते दिन भर वॉक करते हैं उन्हें चलने, दौड़ने या काटने के अलावा और कोई काम नहीं है। एक विज्ञापन में अवश्य ही कुत्ते को कार चलाते दिखाया गया है।

इस डिवाइस से आपके कुत्ते की श्वांस संबंधी परेशानी भी पता चलेगी। स्वाभाविक रूप से इस डिवाइस की सुविधा सेलेब्रेटी कुत्ते को ही उपलब्ध होगी। गली के कुत्तों को मोटापा या अन्य बीमारी नजर नहीं आती। उन्हें किसी चीज से डर नहीं लगता सिवाय म्युनिसिपल के रसगुल्लों के। ये सभी बीमारी "सुखियार" कुत्तो को ही होगी । इस संबंध में मुझे एक वाकया याद आता है। रेलवे स्टेशन में एक फैशनेबल महिला का अलशेसियन कुत्ता ट्रेन और प्लेटफोर्म के बीच फंस गया। वह महिला चीख-चीख कर रोने लगी। ट्रेन की सीटी भी बज गई थी। अलशेसियन को बचाने के प्रयास में कई लोग लगे थे। कुत्ता "सुखियार" था। उसकी तोंद की तुलना थानेदार के तोंद से की जा सकती थी। कुत्ता टस से मस नहीं हो रहा था। कुछ जोशीले नौजवानों ने ट्रेन की होज पाईप भी काट दी थी । बड़ी मशक्कत के बाद ही कुत्ते को बाहर निकाला जा सका। महिला कुत्ते के छूटते ही अत्यन्त प्रसन्न हो गई। शायद अपने पति के आफिस से घर वापसी पर भी इतनी प्रसन्न

नहीं होती होगी। मैं सोच रहा था कि हमारी गली का कुत्ता एक तो ऐसी जगह पर फँसेगा नहीं और फँस भी गया तो एक ब्रेड का टुकड़ा दिखाने पर तुरंत निकल आएगा।

भगवान ने जानवरों को जुबान व दिमाग नहीं दिया। कल्पना कीजिए उनके पास जुबान व दिमाग दोनों होते तो क्या स्थिति होती। कुत्ते धर्मेन्द्र पर मुकदमा कर मांग करते कि इस व्यक्ति ने उन्हें उनका खून पीने की धमकी दी है अतः हमें उनका खून पीने की इजाज़त दी जाए। सियार मुकदमा करते कि उनकी तुलना नेताओं से कर उनकी बेईज्जती न की जाए। गली के कुत्ते "सुखियार" कुत्तों से बराबरी का हक माँगते। गधा भी अपने बच्चों को डाँटकर कहता "इतना भी नहीं समझता आदमी कहीं का।" सभी पशु-पक्षी व अन्य जीव-जंतु एक अखिल विश्व सम्मेलन बुलाते और माँग करते कि उन्हें समानता, रोजी-रोटी और कश्मीर में बसने का अधिकार नहीं चाहिए। उन्हें केवल एक ही मौलिक अधिकार चाहिए और वह है जीने का अधिकार, ताकि वे मनुष्यों के साथ मिल-जुलकर पृथ्वी की रक्षा कर सकें।

रायपुर, भारत

शुद्ध हिंदी में बता दूँ?

-डॉ. हरि जोशी

एक कहावत है 'कौन कहता है सभ्यता का विकास नहीं हुआ है? प्रत्येक युद्ध में नए-नए तरीकों से अधिकाधिक नरसंहार किया जा रहा है 'ठीक इसी तरह हम कह सकते हैं स्वाधीन भारत में हिंदी का विकास खूब हुआ है, हर वाक्य में हिंदी गुम होती जा रही है, अंग्रेजी शब्दों का चलन निरंतर बढ रहा है।

शुद्ध हिंदी में बताने को तो आप समझते हैं न? शुद्ध हिंदी में बताने से ही भारतीय लोगों का दिमाग झंकृत होता है। साधारण भाषा पर तो उनका ध्यान ही नहीं जाता?" वे भाषा में अपभ्रंश या अशुद्धि को लेशमात्र भी पसंद नहीं करते? हाँ, आजकल के हिंदी के उच्च शिक्षा प्राप्त युवकों के हस्तलिखित दो चार वाक्य पढकर देख लीजिए। आपका दिमाग दुरुस्त हो जायेगा।"

मैंने सोचा क्यों न आपको हिंदी के बारे में शुद्ध हिंदी में ही बता दूँ? कहा गया है कि आभिजात्य वर्ग गधों का एक समूह होता है जो घोड़ों के बारे में चर्चा करके गौरवान्वित होता रहता है। भारत में अंग्रेजी आभिजात्य वर्ग की भाषा है। ग्रामीण व्यक्ति इसे नहीं बोलता किन्तु अच्छी नौकरी दिलाने के लालच में, बच्चों को अंग्रेजी पढने को प्रेरित अवश्य करता है। रूस, जर्मनी या चीन के लोग हमारे देश के लोगों की इस गुलामी मानसिकता पर हँसते हैं। वे आश्चर्य व्यक्त करते हैं 'भारतीय लोग अभी भी गुलामों की भाषा बोलकर गर्व की अनुभूति क्यों करते हैं?" सामाजिक रूप से भले ही चली गई हो मानसिक रूप से हमारी गुलामी गई कहाँ है? स्वतंत्रता तो उसे कहते हैं जब हम अपनी ही मातृभाषा में पढें लिखे और बोलें ?" वे लोग अपनी ही भाषा में सारे कार्य संपन्न करते हैं।

हम यदि सामान्य भारतीय बच्चे से पूछें – उनहत्तर क्या होता है या नीला रंग बताओ, तो वह बताने में असमर्थ होगा, किन्तु सिक्सटीनाइन या ब्लू कलर का पूछोगे तो सही-सही बता देगा। यह स्थिति घर-घर बनी हुई है। हम लोग गाँव-गाँव जाकर देख लें कान्वेंट स्कूल घड़ल्ले से खुल रहे हैं। जब तक प्रत्येक वाक्य में चार छः शब्द अंग्रेजी के न हों हमारी विद्वता की धाक सामने वाले पर नहीं जमती। भले ही हिंदी भीतर से धक-धक या बिक-बिक कर रही हो अंग्रेजी में अधिकांश शब्दों को बोलना हमारे लिए गर्व का विषय हो गया है। हमारी भाषा जो दो-तीन दशक पहले थी अब वह नहीं रही। यद्यपि हम अंग्रेजी में तो पारंगत हो ही नहीं पाए, हिंदी को पढना छोड़ दिया है। कुल मिलाकर यह कि हम गूंगे होते जा रहे हैं।

गलती हमसे यह हुई कि हमने हिंदी को उच्च शिक्षा विशेषतः तकनीकी ज्ञान की भाषा बनाई, रोजगार की भाषा आज तक नहीं

बनाया। यद्यपि डिप्लोमा और आई.टी.आई. के पाठ्यक्रम हिंदी में खूब उपलब्ध हैं। उत्तरप्रदेश और राजस्थान में जरूर तकनीकी ज्ञान के लिए हिंदी माध्यम अपनाया जा रहा है। यही कोशिश मध्यप्रदेश में हिंदी विश्वविद्यालय भी कर रहा है। रूस, जर्मनी या चीन के सारे पढ़े-लिखे नागरिक अपनी ही भाषा में अंतरराष्ट्रीय स्तर के शोध करते हैं। अभी ब्रम्होस रूस की सहायता से बनाया गया। अनेक बुजुर्ग भारतीय महिलाएँ अमेरिका में भारतीय घरों में काम करती हैं और वहां की स्थायी निवासी हैं। अमेरिकी पेंशन पाती हैं जबकि उन्हें अंग्रेजी बिलकुल नहीं आती। लॉस एंजेलॉस में मेरे बेटे-बहू के घर एक गुजराती बुजुर्ग महिला सीधे पल्ले की साड़ी पहनकर आती है, जिसे सिर्फ गुजराती या हिंदी ही आती है और वहीं की स्थायी नागरिक है, वहाँ की पेंशन लेती है, खुश है। दो बच्चों और पति के साथ वहीं रहती है। एक दो वर्ष में अपने घर अहमदाबाद आकर वापिस अमेरिका चली जाती है।

जब मैं अमेरिका में रहते हुए अंग्रेजी की कवि गोष्ठियों में भाग लेता हूँ तो वहाँ के अनेक कवि-लेखक दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्ते' कहकर हमारी भाषा का सम्मान करते हैं। अंग्रेजी के शब्द-कोश में हिंदी के अनेक शब्द समाहित कर लिये गए हैं, जैसे गुरु, जंगल, गोंडवाना, बाजार, आदि। विदेशी जब भी भारत आते हैं तो उन्हें मजबूरी में व्यवहार के लिए थोड़ी हिंदी सीखनी ही पड़ती है। किन्तु हम लोग उसे अपने देश में ही दोयम दर्जे की मानते हैं। मोदी जी के प्रधानमंत्री बनने के बाद हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी ही है। वे देश-विदेशों में यथासंभव हिंदी में ही बोलते हैं। हमारे मुहावरे, हमारी कहावतें बेजोड़ हैं। समय की नब्ज को पहचानते हुए मोदीजी कुशल कर्मियों को बड़ी संख्या में तैयार करने पर जोर दे रहे हैं, गले में ऊंची डिग्री टाँगने पर नहीं। कुशल कर्मियों के बीच, अंग्रेजी की आवश्यकता अधिक नहीं रहेगी। इन कुशल कर्मियों को भारत में ही भरपूर काम मिलेगा। यद्यपि बी. ए. या एम. बी. ए. कर लेने के बाद जो बेकारी और बेरोजगारी का सामना बच्चों को देश-विदेश में इन दिनों करना पड़ रहा है, शायद उसके कारण उनका अंग्रेजी से मोह भंग हो गया हो? माँ तो बेचारी अपने बारे में बोलने से रही किन्तु मराठी मौसी एक सार्थक उपदेश दे रही हैं। उसे जरा ध्यान से सुनो, वह कहती हैं 'माता तशी स्वभाषा, सेवावा होय आपणा उचित, किंबहुना मातेहुनि अधिक, हिची योग्यता असे खचित, दे जन्म माता, भाषा व्यवहार चालवी सकल, माते शिवाय जन्म ही जा, न भाषे शिवाय एक पल।' इसका अर्थ है, माता मातृभाषा के समान है, जिसकी उचित सेवा की जानी चाहिए। कभी-कभी तो इसका महत्तव माँ से भी अधिक हो जाता है। क्योंकि माँ तो जन्म दात्री होती है किन्तु बाद में दुनिया में समूचा व्यवहार मातृभाषा से होता है, माँ न रहे तो भी व्यक्ति का जीवन चल सकता है किन्तु भाषा न रहे तो एक पल भी उसके बिना रहना कठिन है।

अब तो अमेरिका में भी बेरोजगारी फैल रही है, भारतीय बच्चों को वहाँ नौकरी पाने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ रहा है। एक अच्छी बात यह है कि भारतीय बच्चे अमेरिका में इसलिए सफल हो जाते हैं क्योंकि अंग्रेजी में वे चीन के बच्चों की तुलना में अच्छा सम्प्रेषण कर लेते हैं। किन्तु एक ही भाषा में रचे-बसे होने के कारण ओलिंपिक में अमेरिका और चीन के बच्चे अच्छा प्रदर्शन करते हैं। भारतीय बच्चे पिछड़ जाते हैं। मैं कभी-कभी अमेरिकी लोगों से पूछता हूँ अमेरिकी बच्चे, भारतीय बच्चों की तरह एक भी विदेशी भाषा क्यों नहीं सीखते? उनका उत्तर होता है कि हमें जरूरत ही नहीं है। जब विदेशों के लोग ही हमारे देश को आकर्षण का केंद्र मान रहे हैं, तो हम क्यों उन अविकसित देशों में जाएँ? या वहाँ की भाषा सीखें। हिंदी कहावतों के गूढ़ अर्थ चमत्कृत करते हैं। वे अन्य भारतीय भाषाओं में खूब प्रयुक्त होती हैं। अन्य भारतीय भाषाओं से हिंदी में भी उनका पदार्पण हुआ है। यह भी माना कि अन्य भाषाओं के शब्द हमारी भाषा को समृद्ध बनाते हैं किन्तु भाषा के प्रति हमारे गर्व में कमी के कारण ही हम अजनबी रह गए हैं।

अमेरिका

रिपोर्ताज

विश्व हिंदी सम्मेलन: एक विहंगम दृष्टि

–डॉ. श्याम नारायण कुंदन

10 से 14 जनवरी, 1975 को विश्व हिंदी नगर, नागपुर में प्रथम विश्व हिंदी दिवस का आयोजन किया गया, जिसमें मॉरीशस गणराज्य के प्रधानमंत्री, सर शिवसागर रामगुलाम, अध्यक्ष, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री, श्री वी.पी. नाईक, स्वागताध्यक्ष तथा मराठी साहित्यकार, श्री अनंत गोपाल, महासचिव के रूप में उपस्थित थे।

यह सब कुछ बड़ा ही अद्‌भुत था। जब विश्व हिंदी नगर का पंडाल देश–विदेश से आए हुए दस–बारह हजार प्रतिनिधियों से खचाखच भर गया तो 'विश्व हिंदी सम्मेलन' की राष्ट्रीय समिति के सहायक मंत्री श्री लल्लन प्रसाद व्यास ने घोषणा की कि–''मानव के इतिहास में आयोजित 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन' का अब श्रीगणेश हो रहा है,''[2] तो पूरा पंडाल दो–तीन मिनट के लिए करतल ध्वनि से गूँज उठा। इसके बाद अथर्ववेद का मंत्रपाठ किया गया। दादू दयाल के पद गाए गए। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वी.पी. नाईक ने अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि 'आज का दिन विश्व इतिहास का एक स्वर्ण दिवस है, जब पहली बार भारत में विश्व हिंदी सम्मेलन हो रहा है। इस सम्मेलन में दूर–दूर के देशों के हिंदी विद्वानों ने अपनी उपस्थिति से हमें गौरवान्वित किया है।''[3] इसके बाद महासचिव श्री शेवड़े ने सम्मेलन की पृष्ठभूमि और अभिप्रेत लक्ष्यों की जानकारी दी। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने सम्मेलन का उद्‌घाटन करते हुए कहा कि– ''हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से एक है। यह करोड़ों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं जो इसे दूसरी भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। गंगा–यमुना के निकटवर्ती प्रदेशों से विकसित होकर इस भाषा का प्रयोग भारत के सुदूरवर्ती भागों तक प्रचलित है। इसका स्वर उन देशों में भी सुना जा सकता है, जहाँ हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गए और विदेशों के हिंदी विश्वविद्यालय में भी, जहाँ विद्वान लोग हिंदी का अध्ययन–अध्यापन करते हैं।''[4]

इस अवसर पर युनेस्को के प्रतिनिधि असर डनियाल उपस्थित थे। उद्‌घाटन समारोह में उद्‌बोधन भाषण देते हुए महान गाँधीवादी, दार्शनिक काका साहब कालेलकर ने कहा कि 'हमने हिंदी के माध्यम से आजादी से पहले और आजाद होने के बाद समूचे राष्ट्र की सेवा की है और अब इसी हिंदी के माध्यम से पूरी मानवता की सेवा करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।'[5] अपने अध्यक्षीय भाषण में मॉरीशस के प्रधानमंत्री ने कहा कि "हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है लेकिन हमारे लिए इस बात का महत्व है कि यह एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है।' 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' के अध्यक्ष श्री मधुकर राव चौधरी के आभार प्रदर्शन के बाद समापन भाषण में तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री श्री कर्ण सिंह ने कहा कि "करोड़ों लोगों की यह भाषा विश्वभाषा के रूप में आए, इसलिए मैं माँग करूँगा कि जिस प्रकार युनेस्को ने अपने यहाँ हिंदी को स्थान दिया है उसी प्रकार 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में जहाँ छः अन्य विश्व भाषाओं को स्थान मिला है, वहाँ हिंदी को भी अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थान मिले।'[7]

सम्मेलन में सात विचार गोष्ठियों को निम्न तीन विषयों के अन्तर्गत विभाजित किया गया–

1. हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति,

2. विश्व मानव की चेतना, भारत और हिंदी

3. आधुनिक युग और हिंदी: आवश्यकताएँ और उपलब्धियाँ, 11 जनवरी 1975 को सम्मेलन के पूर्ण अधिवेशन में प्रथम विषय पर विचार गोष्ठी हुई दूसरे विषय पर समुचित विचार करने के लिए उसे निम्न तीन भागों में बाँटा गया– 1. शाश्वत मूल्यों की खोज, 2. जनसंचार साधनों की भूमिका। 3. विश्व मानव का मूल्यगत संकट और भाषा तथा लेखन के संदर्भ में युवा पीढ़ी की मानसिकता।

तीसरा विषय हिंदी के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित था। 13 जनवरी 1975 ई. को इस विषय पर विभिन्न पहलुओं से विचार करने के लिए तीन विचार गोष्ठियों का आयोजन किया गया–

1. प्रशासन, विधि और विधायी कार्यों की भाषा 2. ज्ञान–विज्ञान माध्यम 3. भाषा शिक्षण और सहायक सामग्री। सम्मेलन के दौरान कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। 13 जनवरी को आयोजित समारोह में सुश्री महादेवी वर्मा सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं के पंद्रह विद्वानों एवं चौदह अहिंदी भाषा–भाषी हिंदी विद्वानों को, समापन समारोह के अध्यक्ष तथा भारत के उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती ने

सम्मानित किया। 10–13 जनवरी 1975 तक उपर्युक्त विषयों पर गहन विचार विमर्श के बाद सर्वसम्मति से निम्नलिखित निर्णय लिए गए।

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाय
2. वर्धा में 'विश्व हिंदी पीठ' की स्थापना हो
3. विश्व हिंदी सम्मेलनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ठोस योजना बनाई जाय

निःसन्देह ही यह महान पर्व की शुरुआत थी। इसकी जितनी भी सराहना की जाय कम है। लेकिन यहाँ एक बात खटकती है कि इस सम्मेलन में जिस विषय पर चर्चा की जानी चाहिए थी उस पर चर्चा नहीं की गई। शायद यही कारण है कि आज सम्मेलन के 35 सालों बाद भी हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में जगह नहीं मिल पाई। यदि इस सम्मेलन में 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' में हिंदी को स्थान दिलाने की माँग करने की बजाय यदि इस विषय पर चर्चा की गई होती कि हिंदी को सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए क्या किया जाय तो आज संयुक्त राष्ट्र तो क्या दुनिया का कोई भी क्षेत्र, देश, संस्था हिंदी को सिर–आँखों पर बिठाने के लिए लालायित होता। पर शायद ऐसा नहीं होना था। इसलिए आज विश्व हिंदी सम्मेलन केवल और केवल पिकनिक मनाने का ज़रिया बनकर रह गए हैं। इन सम्मेलनों पर कोई विश्वास नहीं करता। खैर आगे क्या होने वाला था इसको हम 'द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन' के अध्ययन से जानने का प्रयास करेंगे।

दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलन
तिथि– 28–30 अगस्त 1976
स्थान– महात्मा गाँधी संस्थान, पोर्ट लुई, मॉरीशस
अध्यक्ष– डॉ. कर्ण सिंह
बोधवाक्य– 'वसुधैव कुटुम्बकम्'

सही अर्थों में हिंदी के प्रति सच्चा प्रेम मॉरीशस जैसे देशों में ही है। मॉरीशस के लोग अपनी भाषा और संस्कृति के बारे में क्या सोचते हैं इसको श्री मधुकर राव चौधरी ने अपने एक लेख 'प्रथम और द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन: उद्देश्य और उपलब्धियाँ' में लिखते हैं कि "भाषा और संस्कृति की रक्षा में तो उनके पूर्वजों ने अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया था क्योंकि उनका विचार था कि यदि भाषा बनी रही तो संस्कृति भी बनी रहेगी और संस्कृति बनी रही तो हमारा अस्तित्व भी बना रहेगा। भाषा तो सामाजिक अस्मिता का प्रतीक है इसीलिए इसे संजोए रखना चाहिए।"[8] अपनी इसी अस्मिता की रक्षा के लिए ही मॉरीशस के सच्चे हिंदी सेवियों ने 'द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन' का आयोजन अपने सुरम्य देश में किया। भारत से भी दो विमानों में लोग 'लघु भारत' गए। 28 अगस्त 1976 को गणेश चतुर्थी के दिन गणेश वंदना से इस अद्वितीय भाषा अनुष्ठान का शुभारम्भ हुआ।

"हे जगत्राता, विश्वविधाता, हे सुख शांति निकेतन हे।'
प्रेम के सिंधु, दीन के बंधु, दुःख दरिद्र विनाशक है।
नित्य अखण्ड अनंत अनादि, पूरणब्रह्म सनातन हे।
जगाश्रय जगपति जगवंदन, अनुपम अलख निरंजन है।
प्राणसखा त्रिभुवन प्रतिपालक, जीवन के अवलंबन हे।
हे जगत्राता विश्व विधाता, हे सुख शांति निकेतन हे।"[9]

इस सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजते हुए प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा था कि– "हिंदी विश्व की महान और सशक्त भाषाओं में से एक है। हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान और आजादी के बाद भारत में और दूसरे देशों में भी हिंदी भाषा की अभिवृद्धि हुई है तथा इसके साहित्य का बहुत विकास हुआ है। आज कई महादेशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढाई जाती है। यह बहुत अच्छी बात है कि विश्व के हिंदी–प्रेमी ऐसे सम्मेलनों में मिलते हैं, जिससे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना बढ़ती

है। लेकिन हिंदी को किसी अन्य भाषा का अहित करके आगे नहीं बढ़ना है, बल्कि उन्हें साथ लेकर चलना है, जैसे कि एक परिवार छोटे–बड़े सभी सदस्यों के सहयोग से चलता है।"[10] विश्व भर से आए प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए मॉरीशस के युवा एवं क्रीड़ामंत्री श्री दयानन्द वसंत राय ने कहा कि, "नागपुर में पहली बार हमें हिंदी के विश्वव्यापी स्वरूप का दर्शन हुआ। उसी समय हमारे मन में विचार उठा कि जो शुभ कार्य नागपुर में हुआ उसे हमें आगे बढ़ाना चाहिए।"[11]

अपने उद्‌बोधन भाषण में श्री अनंत गोपाल शेवड़े ने कहा कि "नागपुर में हिंदी के विश्व सूर्य का जो उदय हुआ उसका प्रकाश अब दूर–दूर तक फैलने लगा है। हम चाहते हैं कि यह प्रकाश दसों दिशाओं में फैले, क्योंकि हिंदी को हम प्रेम, सेवा और शांति की भाषा मानते हैं।"[12]

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता डॉ. कर्ण सिंह ने कहा कि "आज जब हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा से विश्वभाषा बनने जा रही है, तब हिंदी साहित्यकारों का दायित्व बढ जाता है। हिंदी विश्व भाषा बनकर मानव को शांति प्रेम, बंधुत्व और नई चेतना का संदेश दे, तभी उसकी सार्थकता होगी। हिंदी युनेस्को की भाषा बन चुकी है और एक न एक दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनेगी।"[13]

इस सम्मेलन में भारत के 160, मॉरीशस के 100 तथा विश्व के अन्य देशों के 25 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वास्तव में हिंदी के इतिहास में यह पहला अवसर था जब भारत से बाहर विदेश में हिंदी के कवियों, लेखकों, मनीषियों, साहित्यकारों, पत्रकारों ने एक साथ मिल–बैठकर विचार विमर्श किया। इनमें प्रमुख थे, पं. श्री नारायण चतुर्वेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, विमल मित्र, अनंतगोपाल शेवड़े, आदि। सम्मेलन के शैक्षिक सत्रों में हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप, जनसंचार के साधन और हिंदी, हिंदी के प्रचार में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका तथा विश्व में हिंदी के पठन–पाठन की समस्या पर विश्व भर से आए हिंदी के विद्वानों ने गहन विचार विमर्श किया।

इस अवसर पर एक भव्य पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई गई। तीन डाक टिकट जारी किए गए। मॉरीशस के कलाकारों ने 'एवम् इंद्रजीत' नाटक का मंचन किया। समापन समारोह में डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम, डॉ. कर्ण सिंह, डॉ. निकोल बलवीर (फ्रांस), डॉ. लुथर लुत्से (जर्मनी), फादर कामिल बुल्के और अमृतलाल नागर ने तथा मॉरीशस के युवा एवं क्रीड़ा मंत्री दयानन्द वसंत राय ने व्याख्यान दिए। सम्मेलन के अन्त में कहा गया कि "द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी प्रतिनिधियों और पर्यवेक्षकों का मत है कि, 'यह सम्मेलन मात्र हिंदी के इतिहास में ही नहीं वरन् मानवता की निरन्तर यात्रा में भी एक युगान्तकारी घटना है। इसीलिए यह सम्मेलन उन समस्त स्त्री–पुरुषों की ओर स्नेह और मैत्री का हाथ बढ़ाता है, जो ऐसे ही महान आदर्शों के लिए काम कर रहे हैं।'"[14]

सम्मेलन तीन दिन तक चलता रहा। इसमें जिन प्रमुख विषयों पर चर्चा हुई वे निम्न हैं–

1. हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप
2. जनसंचार के साधन और हिंदी
3. स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
4. विश्व में हिंदी के पठन–पाठन की सामग्री।

उक्त चारों सत्रों में विचार–विमर्श का स्तर काफी ऊँचा रहा। इसमें हिंदी के प्रचार–प्रसार, प्रयोग, प्रशिक्षण आदि पहलुओं पर गंभीरता और विस्तार से विचार किया गया। इस विचार मंथन के परिणामस्वरूप सम्मेलन के अंत में मंतव्य पारित किए गये, जिनकी प्रमुख बातें निम्न हैं–

1. इस सम्मेलन में प्रथम विश्व सम्मेलन के बोधवाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को स्वीकार किया गया, जिसके अनुसार विश्व को एक परिवार कहा गया। प्रथम विश्व सम्मेलन में कहा गया था कि किसी के ऊपर हिंदी को जोर–जबरदस्ती के साथ नहीं थोपा जाएगा, बल्कि जो भाषा स्वेच्छा से स्वीकार की जाएगी, वही सारे विश्व में मान्यता प्राप्त करेगी।
2. सम्मेलन में 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन' के इस प्रस्ताव को दोहराया गया कि हिंदी को 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में आधिकारिक

स्थान मिले और यह सिफारिश की कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक क्रमबद्ध कार्यक्रम बनाया जाय। सम्मेलन को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'प्रथम विश्व सम्मेलन' के अन्य निर्णयों के बारे में भी ठोस कदम उठाए गए हैं, जिनमें 'विश्व हिंदी विद्यापीठ' की स्थापना का निर्णय भी शामिल है।

3. सम्मेलन में भारत में समाचारपत्रों के संकलन के बारे में निर्गुट देशों के उस सम्मेलन का भी स्वागत किया गया, जिसमें सभी संवाद–सामग्रियों का एक पूल बनाने का निर्णय लिया गया। सम्मेलन की धारणा है कि जनसंचार के अन्य सभी साधनों, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म तथा अन्य प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों का हिंदी के प्रचार–प्रसार में उपयोग किया जाय। इसी के अन्तर्गत एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका के प्रकाशन की बात की गई जो भाषा के माध्यम से एक ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे तथा विज्ञान और अध्यात्म की महान शक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण कर सके।
4. सम्मेलन की धारणा है कि मॉरीशस, फीजी, गुयाना, त्रिनीडाड, भारत आदि देशों की स्वैच्छिक संस्थाओं ने हिंदी के प्रचार–प्रसार में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है इसलिए वहाँ की सरकारों तथा जनता से उनको सहायता मिलनी चाहिए।
5. सम्मेलन ने विश्व के अनेक देशों में हिंदी के पठन–पाठन से सम्बन्धित समस्याओं पर भी विचार–विमर्श किया तथा उसे दूर करने के सुझाव भी दिए।
6. यह मांग की गयी कि मॉरीशस में एक हिंदी केन्द्र की स्थापना की जाए जो सारे विश्व में हिंदी की गतिविधियों का समन्वय कर सके।
7. सम्मेलन में यह सुदृढ़ धारणा प्रकट की गई कि तृतीय विश्व सम्मेलन के आयोजन होने तक हिंदी राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में आदर्श प्रगति कर लेगी।

उक्त सभी निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए तृतीय विश्व सम्मेलन होने से पहले भारत सरकार की तरफ से कई बैठकें बुलाई गईं। कई निर्णय भी लिए गए।

कुछ को सफलतापूर्वक क्रियान्वित भी किया गया पर हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दिलाने सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रस्ताव न तो तब पूरा होना था, न ही आज होगा और भविष्य को किसने देखा है।

तीसरा विश्व हिंदी सम्मेलन

तिथि– 28 से 30 अक्टूबर 1983

स्थान– इंदिरा गाँधी इनडोर आडीटोरियम, नई दिल्ली,

अध्यक्ष– श्री बलराम जाखड़

कार्याध्यक्ष– श्री मधुकर राव चौधरी,

महासचिव– प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद

संरक्षक– श्रीमती इंदिरा गाँधी (प्रधानमंत्री, भारत)

28 अक्टूबर 1983 को सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा था –"अब चर्चा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता प्राप्त हो। हिंदी के लिए यह वास्तव में बड़ी बात होगी, किन्तु उससे बड़ी बात यह होगी कि भारत में मौलिक साहित्य इतना आगे बढ़े कि शोध तथा अन्वेषण का वह माध्यम बने और हिंदी का साहित्य इतनी उच्चकोटि का हो कि संसार के लोगों को हिंदी न जानने का अभाव महसूस हो।"[4] उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अध्यक्ष श्री आर.एस. मैग्रेगर ने हिंदी के विश्वव्यापी स्वरूप पर प्रकाश डाला तथा मॉरीशस के प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री हरीश बुदू ने स्मारिका का विमोचन और प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। वरिष्ठ हिंदी विद्वान श्री वियोगी हरि ने अपने उद्बोधन भाषण में कहा कि, "हिंदी को

सब प्रेम से सीखतें हैं, क्योंकि यह प्रेम की भाषा है। इसका किसी के साथ कोई विरोध नहीं है।" सम्मेलन की प्रतिनिधि समिति के अध्यक्ष श्री श्रीकांत वर्मा ने कहा कि, "हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे मंचों से मान्यता मिलने से उपनिवेशवाद के विरुद्ध लड़ाई को बल मिलेगा।"[17] सम्मेलन के विचार सत्रों के खुले अधिवेशन के तीन सत्रों में निम्नलिखित विषयों पर गंभीर चर्चा हुई–

1. अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रसार की सम्भावनाएँ और प्रयास, 2. भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध और हिंदी तथा मानव मूल्यों की स्थापना में हिंदी की भूमिका। इसके अतिरिक्त हिंदी तथा भारतीय भाषाओं से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय रूप से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विषयों पर पंद्रह समानान्तर संगोष्ठियों आयोजित की गईं। सम्मेलन के समापन समारोह की अध्यक्षता श्री बलराम जाखड़ ने की। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए महीयसी महादेवी वर्मा ने कहा कि, "हम अक्सर राष्ट्रसंघ की बात करते हैं। बिना अंतरराष्ट्रीय हुए हम जी नहीं सकते और राष्ट्रीय होने की हमें चिन्ता नहीं है। अंतरराष्ट्रीय वही हो सकता है जिसकी राष्ट्र में जड़े हों। जिसकी राष्ट्र में जड़ ही नहीं, वह क्या अंतरराष्ट्रीय होगा ?"[18] इस अवसर पर महादेवी जी ने 40 विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं हिंदी तथा विदेशी हिंदी विद्वानों को सम्मानित किया। सम्मेलन में भव्य कवि सम्मेलन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के विभिन्न विचार गोष्ठियों में 110 घण्टों की चर्चा के दौरान कुछ बातें स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आईं। पहला यह कि अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार तथा विकास की अनेक संभावनाएँ हैं पर उन्हें साकार करने के लिए जितने प्रयासों की आवश्यकता है उसका बहुत ही कम अंश अभी तक हो पाया है। यह भी तथ्य उभरकर सामने आया कि आधुनिक भारत में हिंदी का बहुमुखी विकास हुआ है। हिंदी ने वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में काफी प्रगति की है। शिक्षा के माध्यम भाषा के रूप में, पत्रकारिता के क्षेत्र में तथा जनसंचार के अन्य क्षेत्रों में इसका उपयोग निरन्तर बढ़ रहा है।

हिंदी के विकास में शैक्षिक संस्थाओं का भी अमूल्य योगदान है। यह बात भी उभरकर सामने आई कि हिंदी का अपना एक अन्तर–भारती रूप बना है। इस स्वरूप के निर्माण में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में आदान–प्रदान की प्रक्रिया का बहुत बड़ा योगदान है। हिंदी अन्य देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों की कड़ी के रूप में काम कर रही है। इन सभी क्षेत्रों में प्रयासों की गति बढ़ाने की नितान्त आवश्यकता है ताकि तमाम संभावनाओं को हम शीघ्र ही मूर्त रूप दे सकें। श्रीमती इंदिरा गाँधी की इस घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया कि, हिंदी भारत की राजभाषा के साथ–साथ विश्व भाषा भी है। उन्होंने इस स्वरूप को विकसित करने की दृष्टि से 'विश्व हिंदी विद्यापीठ' की योजना को क्रियान्वित करने के लिए एक समिति का गठन किया। उनसे अनुरोध किया गया कि इस योजना को शीघ्र ही मूर्त रूप दिया जाए। इस सम्मेलन ने पिछले दोनों सम्मेलनों में 90 पारित संकल्पों की संपुष्टि की तथा अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास के लिए निम्नलिखित प्रयत्न करने का प्रस्ताव किया। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक स्थाई समिति का गठन किया जाय और तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन की संगठन समिति को इस कार्य के लिए यह अधिकार दिया जाय कि वह भारत के प्रधानमंत्री से परामर्श कर उनकी सहमति से एक स्थाई समिति गठित करे जिसमें देश–विदेश के लगभग 25 व्यक्ति हों। इसके प्रारूप एवं संविधान, कार्यविधि और सचिवालय की रूपरेखा निर्धारित करने के लिए यह समिति अपनी एक उपसमिति गठित करे जो तीन महीने के भीतर अपनी संस्तुति संगठन समिति को दे और उपर्युक्त विधि के अनुसार कार्यवाही की जाए। यह भी निर्णय लिया गया कि भाषाई संघर्ष के युग में हिंदी को जोड़ने की भाषा के रूप में प्रयुक्त होना है न कि तोड़ने वाली भाषा के रूप में।

चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन

तिथि– 2 से 4 दिसम्बर 1993

स्थान– मॉरीशस

अध्यक्ष– श्री मुकेश्वर चुनी

संरक्षक– श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ, मॉरीशस के प्रधानमंत्री

केन्द्रीय विषय– विश्व में हिंदी

काफी विचार–विमर्श के बाद 'चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन' को मॉरीशस में 2 से 4 दिसम्बर 1993 को करने का निर्णय लिया गया।

जिसमें सर्वश्री यशपाल जैन, विद्यानिवास मिश्र, शंकर दयाल शर्मा, बच्चू प्रसाद सिंह, वीणा वर्मा (सांसद), असलम शेर खाँ (सांसद), इंदिरा गोस्वामी, रामशरण जोशी के साथ नारायण कुमार ने भी सरकारी प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में भाग लिया था। भारत से सौ सदस्यीय गैर–सरकारी प्रतिनिधि मंडल मॉरीशस गया था जिसमें हिंदी के अनेक विद्वान शामिल थे। विदेशों से भी लगभग चालीस प्रतिनिधि वहाँ उपस्थित थे। सरकारी प्रतिनिधि मण्डल के नेता थे महाराष्ट्र विधान सभा के अध्यक्ष श्री मधुकर राव चौधरी और उपनेता भारत सरकार के गृह राज्यमंत्री श्री रामलाल राही थे। सम्मेलन की आयोजन समिति के अध्यक्ष थे श्री मुकेश्वर चुनी जो उस समय मॉरीशस के कला एवं संस्कृति मंत्री थे, और संप्रति भारत में मॉरीशस के उच्चायुक्त थे। 2 दिसम्बर 1993 ई. को श्री राजेन्द्र अरुण के गीत 'यह हिंदी परिवार मिलन है' से उद्घाटन समारोह का शुभारम्भ हुआ। इसके बाद भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्री मधुकर राव चौधरी ने कहा कि "आज हिंदी विश्व भर में फैल गई है, क्योंकि हिंदी में पूरी मानव जाति के कल्याण के गुण विद्यमान हैं।"[19] मॉरीशस के प्रधानमंत्री तथा 'चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन' के संरक्षक श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि,' 'हिंदी इस देश के भारतीय मूल के लोगों के चिंतन, मनन, प्रार्थना, वेदना, सांस्कृतिक एवम् आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की भाषा है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कारण ही मॉरीशस की जनता के अन्दर प्रेम सद्भावना, त्याग, परिश्रम के साथ–साथ एकता, प्रगति और राष्ट्रवाद की भावना पाई जाती है। मॉरीशस सरकार की यह धारणा है कि इस देश में त्रिभाषा सूत्र शिक्षा तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।"[20] चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत सहित विदेशों से पधारे 200 तथा मॉरीशस के असंख्य हिंदी प्रेमियों ने निम्नलिखित विषयों की चर्चाओं में भाग लिया:

1. विश्व में हिंदी के प्रचार–प्रसार की स्थिति और समस्याएँ
2. विश्व में हिंदी भाषा तथा साहित्य की उपलब्धियाँ और भावी स्वरूप
3. प्रवासी भारतीयों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता बनाए रखने में हिंदी का योगदान
4. विश्व में हिंदी शिक्षण तथा अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी । सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था– 'विश्व में हिंदी ।' शैक्षिक सत्रों में कुल 56 लेख पढ़े गए और 100 अन्य वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए।

सम्मेलन में निम्न मंतव्य पारित किए गए:

1. विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में स्थापित किया जाए
2. भारत में अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय स्थापित किए जाएँ
3. विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ खोले जाएँ
4. भारत सरकार विदेशों से प्रकाशित दैनिक समाचार, पत्र–पत्रिकाएँ, पुस्तकें प्रकाशित करने में सक्रिय सहायता करे
5. हिंदी को विश्वमंच पर उचित स्थान दिलाने में शासन और जनसमुदाय विशेष प्रयत्न करें
6. विश्व के समस्त हिंदी प्रेमी अपने निजी एवं सार्वजनिक कार्यों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करें और सम्मेलन के सभी प्रतिनिधि अपने–अपने देशों की सरकारों से संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए समर्थन प्राप्त करने का सार्थक प्रयास करें। सम्मेलन के द्वारा भारत के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा मोहन राकेश के नाटकों का मंचन किया गया। महात्मा गाँधी संस्थान मॉरीशस तथा मॉरीशस सरकार के संस्कृति एवं कला मंत्रालय ने नाटकों का मंचन किया।

पं. विद्यानिवास मिश्र ने अपने समापन भाषण में कहा कि "मॉरीशस की जनता जितनी सहनशील है उतनी ही प्रतिरोध की भी भावना रखती है। इस द्वीप में जहाँ भारतीय मजदूरों के आँसू बह रहे थे, आज हिंदी के इस महान उत्सव के अवसर पर उनके नेत्रों से आनंदाश्रु उमड़ रहे हैं। हिंदी को विश्वभाषा का रूप दिलाने का संकल्प सराहनीय है। हम इसके कार्यान्वयन के लिए पूर्ण संकल्प करते हैं।"[21] चौथे विश्व सम्मेलन से ही यह आयोजन भारत सरकार की सहायता और सहयोग से नहीं बल्कि भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित होने लगा।

———

पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन
तिथि– 4 से 8 अप्रैल 1996,
स्थान – पोर्ट ऑफ स्पेन (त्रिनीदाद और टोबैगो की राजधानी)
आयोजक– 'हिंदी निधि' एवं 'वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय'
केन्द्रीय विषय– आप्रवासी भारतीय और हिंदी

'पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन' 4 से 8 अप्रैल 1996 में त्रिनीदाद और टोबैगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में सम्पन्न हुआ। इसके आयोजक हिंदी निधि एवम् वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय बने। भारत के तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री सलमान खुर्शीद तथा त्रिनीडाड में हिंदी निधि के संयोजक श्री चनका सीताराम की अध्यक्षता में सम्मेलन के लिए आयोजक समितियाँ गठित की गईं। इस सम्मेलन में अरुणांचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री माता प्रसाद के नेतृत्व में भारत के 17 सदस्यीय सरकारी प्रतिनिधि मण्डल के अलावा स्वयं सेवी संगठनों के भी अनेक प्रतिनिधि शामिल हुए। शैक्षिक सत्रों में 'प्रवासी भारतीयों में हिंदी चेतना' सम्बन्धी विषय पर मुख्य रूप से चर्चा हुई। इसके अतिरिक्त 6,7 तथा 8 अप्रैल को 150 से भी अधिक विषयों पर समानांतर सत्रों में संसार भर से पधारे प्रतिनिधियों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किए। इस सम्मेलन में भारत के 17 सदस्यीय सरकारी प्रतिनिधि मंडल के अलावा नेपाल के 4, मॉरीशस के 4, दक्षिण अफ्रीका के 2, सूरीनाम के 55 और त्रिनीदाद के 58 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनके अतिरिक्त भारत के गैरसरकारी प्रतिनिधि मंडल में अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के 11, प्रवासी भारतीय समाज के 14, हिंदी निधि त्रिनीदाद द्वारा आमंत्रित 14, और व्यक्तिगत रूप से 80 प्रतिनिधियों ने, यानी कुल मिलाकर 274 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। विदेशों से भी अनेक प्रतिनिधि आए थे जिनमें दक्षिण अफ्रीका, कोरिया, चीन, जापान, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, यु.के., नार्वे, स्वीडन, स्वीटजरलैंड और न्युजीलैंड के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 8 अप्रैल को आयोजित समापन समारोह की अध्यक्षता त्रिनीदाद एवम् टोबैगो के सीनेट के अध्यक्ष माननीय गणेश रामदयाल जी ने की। 5 अप्रैल को हिल्टन होटल में विदेशों के 13 एवं भारत के 5 विद्वानों को सम्मानित किया जाना था लेकिन इनमें 4 विद्वान डॉ. ओदेलन स्मेकल (चेक गणराज्य) तथा भारत से डॉ. नगेन्द्र, डॉ. लोकेशचन्द्र और डॉ. नागवर सिंह किन्हीं कारणों से उपस्थित नहीं थे।

सम्मेलन द्वारा पारित मन्तव्य में कहा गया कि –

1. विश्वव्यापी भारतवंशी समाज हिंदी को अपनी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करेगा

2. मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना के लिए भारत में एक और अन्तर सरकारी समिति बनाई जाय

3. सभी देशों में विशेषकर जिन देशों में जहाँ अप्रवासी भारतीय बड़ी संख्या में हैं उनकी सरकारें अपने–अपने देशों में हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था करें

4. उन देशों की सरकारों से आग्रह किया जाय कि वे हिंदी को 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' की भाषा बनाने के लिए राजनीतिक योगदान एवं समर्थन दें

5. यह सम्मेलन भारत सरकार द्वारा महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय स्थापित करने के निर्णय का स्वागत करता है और आशा करता है इस विश्वविद्यालय की स्थापना से हिंदी को विश्वव्यापी बल मिलेगा

6. यह सम्मेलन भारत तथा त्रिनीदाद और टोबैगो की सरकारों तथा 'हिंदी निधि', त्रिनिदाद एवं टोबैगो के प्रति 'पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन' के इस सफल आयोजन के लिए आभार व्यक्त करता है और जिन देशों से सरकारी प्रतिनिधि मंडल इस सम्मेलन में भाग लेने आए हैं उन देशों की सरकारों को यह सम्मेलन साधुवाद देता है।

छठा विश्व हिंदी सम्मेलन
तिथि– 14 से 18 सितम्बर 1999
स्थान– 'स्कूल ऑफ ओरियण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज', इंग्लैंड
बोधवाक्य– 'हिंदी और भावी पीढ़ी'
मुख्य अतिथि– सुश्री पेट्रीसिया हेबिट (ब्रिटेन की व्यापार और उद्योग राज्य मंत्री)

हिंदी को भारतसंघ की राजभाषा के रूप में संविधान द्वारा स्वीकृति मिलने की 50 वीं वर्षगाँठ पर यह सम्मेलन आयोजित किया गया था। सम्मेलन में भारत के विदेश राज्यमंत्री के नेतृत्व में 26 सदस्यों के एक प्रतिनिधि मंडल ने भाग लिया। इसके उपनेता थे हिंदी के सुप्रसिद्ध विचारक पं. विद्यानिवास मिश्र। भारत सरकार ने सम्मेलन के लिए 20 विदेशी और 13 भारतीय विद्वानों को यात्रा व्यय तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करवाईं। इनके अतिरिक्त भारत के विभिन्न राज्य सरकारों एवं सरकारी संस्थानों के प्रतिनिधियों ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन में भारत से 350, इंगलैंड से 200 तथा अन्य देशों से 150 यानी कुल 700 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन, लंदन के विख्यात वैम्बले कान्फ्रेंस सेंटर में हुआ, जिसमें 2500 व्यक्तियों के बैठने की जगह थी। सम्मेलन का उद्घाटन विदेश राज्यमंत्री वसुन्धरा राजे सिन्धिया ने किया। इसके मुख्य अतिथि के रूप में ब्रिटेन की व्यापार और उद्योगराज्य मंत्री सुश्री पेट्रीसिया हेबिट थीं। विचार सत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी, ज्ञान–विज्ञान की भाषा हिंदी, युवा पीढ़ी और हिंदी, हिंदी के प्रचार–प्रसार में विश्व हिंदी सम्मेलनों का योगदान विषय पर चर्चा हुई। 15,16,17, सितम्बर को प्रतिदिन सम्मेलन के लिए विशेष रूप से बने रसखान–कक्ष, सूरकक्ष, मीरा–कक्ष, तुलसी–कक्ष और कबीर–कक्ष में 10–10 विचार सत्र आयोजित किए गए। साहित्य, पत्रकारिता, संचार माध्यम, हिंदी एवम् अन्य भाषाएं, प्रवासी हिंदी लेखन, अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी आदि विषयों पर विद्वानों ने आलेख पढे अथवा अपने वक्तव्य दिए। 18 सितम्बर 1999 को 97 वेस्टमिनिस्टर थिएटर, लंदन में आयोजित समापन एवं सम्मान समारोह में अकादमिक अध्यक्ष श्री महेन्द्र वर्मा ने सत्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। प्रो. कृष्ण कुमार ने सामान्य सहमति पर आधारित मंतव्य प्रस्तुत किया। नेहरू केन्द्र के निदेशक प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी ने समापन भाषण दिया। इस सम्मेलन में निम्नलिखित मंतव्य पारित किए गए–

1. विश्वभर में हिंदी के अध्ययन–अध्यापन, शोध, प्रचार–प्रसार और हिंदी सृजन में समन्वय के लिए महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय एक अंतरराष्ट्रीय केन्द्र की सक्रिय भूमिका निभाए
2. विदेशों में हिंदी के शिक्षक, पाठ्यक्रमों का निर्धारण, पाठ्यपुस्तकों के निर्माण, अध्यापकों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था भी विश्वविदयालय करे और सुदूर शिक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाए,
3. मॉरीशस सरकार अन्य हिंदी प्रेमी सरकारों से परामर्श कर शीघ्र विश्व हिंदी सचिवालय को स्थापित करे
4. हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता दी जाए
5. हिंदी की सूचना–तकनीक के विकास मानकीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी लेखन, प्रसारण एवं संचार की अद्यतन तकनीक के विकास के लिए भारत सरकार एक केन्द्रीय एजेंसी स्थापित करे
6. नई पीढ़ी में हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए आवश्यक पहल की जाए
7. भारत सरकार विदेश स्थित अपने दूतावासों को निर्देश दे कि भारतवंशियों की सहायता से विद्यालयों में एक भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की जाए। इस तरह एक बार फिर विश्व हिंदी सम्मेलन की इतिश्री हो गई। परिणाम वही ढाक के तीन पात। पुराने मंतव्य दोहराए गए और कुछ नए जोडे गए। पर सही मायने में कोई भी ठोस कार्यवाही नहीं हुई।

सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन
तिथि– 5 से 9 जून, 2003,
स्थान– सूरीनाम
केन्द्रीय विषय– 'विश्व हिंदी : नई शताब्दी की चुनौतियाँ

सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में 5–9 जून 2003 तक सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें विदेश राज्य मंत्री श्री दिग्विजय सिंह के नेतृत्व में भारत का 75 सदस्यीय एक प्रतिनिधि मंडल तथा अनेक गैर सरकारी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। संसार के 20 अन्य देशों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। सम्मेलन का शुभारम्भ 6 जून 2003 को सूरीनाम के राष्ट्रपति श्री आर.आर. वेनेटिशयान के उद्घाटन भाषण से हुआ। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता विदेश राज्य मंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने की तथा मुख्य अतिथि थे पोलैंड के सुप्रसिद्ध भाषाविद प्रो. बृस्की। सम्मेलन के अकादमिक सत्रों में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी, विश्व व्यापार और हिंदी, हिंदी पत्रकारिता, हिंदी की बोलियों में सृजनात्मक लेखन, विश्व हिंदी की चुनौतियाँ, हिंदी और सूचना प्रौद्योगिकी, विदेशों में हिंदी शिक्षण, भारतीय संस्कृति और हिंदी जैसे प्रमुख विषयों पर चर्चा हुई। इस सम्मेलन में सम्मानित किए जाने वाले बारह विदेशी विद्वानों में लोठार लुत्से (जर्मनी) तथा प्रो. तोसियो तनाका (जापान) उपस्थित नहीं हो सके। इसी प्रकार दस भारतीय विद्वानों में भी दो प्रो.एन.वी. राजगोपालन और कुँवर नारायण अनुपस्थित थे। इस सम्मेलन में निम्नलिखित संकल्प पारित किए गए:

1. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया जाए
2. विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ की स्थापना हो
3. भारतीय मूल के लोगों के बीच हिंदी के प्रयोग के प्रभावी उपाय
4. हिंदी के प्रचार हेतु हिंदी वेबसाईट की स्थापना और सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग
5. हिंदी विद्वानों की विश्व निर्देशिका का प्रकाशन
6. विश्व हिंदी दिवस का आयोजन
7. कैरेबियन हिंदी परिषद की स्थापना
8. दक्षिण भारत के विश्वविद्यालयों में हिंदी विभागों की स्थापना
9. हिंदी पाठ्यक्रम में विदेशी हिंदी लेखकों की रचनाओं को शामिल करना
10. सूरीनाम में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था

सम्मेलन के उद्घाटन सत्र के बाद सूरीनाम के महामहिम राष्ट्रपति ने 'विश्वहिंदी पुस्तक मेला, हमारी धरोहर हिंदी तथा हिंदी भाषा प्रौद्योगिकी' पर लगाई गई प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। सम्मेलन के दौरान भव्य कवि सम्मेलन एवं अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गए। यह प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, के अथक प्रयत्नों से और विश्व हिंदी सम्मेलनों के प्रस्ताव के अनुसार भारत सरकार ने वर्धा में अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना से निश्चित रूप से देश–विदेश के विद्यार्थी हिंदी में स्नातकोत्तर पदवी प्राप्त करेंगें एवं उसके साहित्य के प्रचार–प्रसार, विकास एवं शोध की दिशा में यह विश्वविद्यालय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना महत्वपूर्ण कार्य करेगा। यह भी प्रसन्नता की बात है कि मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हो गई है। आशा है कि भारत तथा मॉरीशस की सरकारें, अन्य हिंदी प्रेमी सरकारों के परामर्श से इस सचिवालय को सुगठित बनाएँगी ताकि वह हिंदी के विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर सके। 1993 में 'सूरीनाम हिंदी परिषद' ने कैरेबियन देशों के बीच तृतीय अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन आयोजित किया था। उस अवसर पर सूरीनाम के राष्ट्रपति श्री आर.आर वेनेत्शियान ने अपने संदेश में कहा था कि "भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवंत रखने के लिए हिंदी भाषा एक महत्वपूर्ण चाबी है।"[22] शायद इसी चाबी की खोज के लिए ही सूरीनाम के आप्रवासी भारतीयों ने 2003, में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन करवाया था। पर क्या यह चाबी उन्हें मिल पाई है? शायद नहीं क्योंकि केवल आयोजनों से काम नहीं चला करता, इसके

लिए समर्पण भी चाहिए होता है। भाषा को गले का हार बनाना पड़ता है, जो काम सूरीनाम की आगे आने वाली पीढ़ी नहीं कर पा रही है। इस बात को प्रो. पुष्पिता ने अपने एक लेख में कुछ इन शब्दों में बयान किया है "जिस भाषा से जीवन नहीं चलता वह भाषा मर जाती है। जिससे रोटी नहीं चलती वह भाषा नहीं बचती है। अपनी संस्कृति के इतिहास को जिलाने वाली भाषा ही बचती, बसती और जीती-जिलाती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी। बोलचाल में संपर्क के लिए सरनामी बनाम हिंदी के प्रयोग के बावजूद सरनामी प्रवासी भारतवंशियों की हथेली और हस्तलिपि का हिस्सा नहीं बन पाई है। ....सूरीनाम की सरनामी– हिंदी की यह सबसे बड़ी विसंगति है और यही दुर्भाग्य भी।"[23] और कमोवेश भारत में भी हिंदी की यही सच्चाई है। लोग कितना भी कहें आज हमारे देश में हिंदी केवल गँवारों की भाषा कहलाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति दिलाने जैसी बातों को तो छोड़ ही दिया जाय।

आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन

तिथि– 13 से 15 जुलाई, 2007

स्थान– 'संयुक्त राष्ट्र संघ' का मुख्यालय, न्यूयार्क, अमेरिका

केन्द्रीय विषय– 'विश्वमंच पर हिंदी'

विदेश मंत्रालय के तत्वावधान में 13 से 15 जुलाई, 2007, तक आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यूयार्क में हुआ। इस सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता थी संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्य कार्यालय में ही इसका आयोजन। मंच पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव श्री बान की मून, भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता, विदेश राज्य मंत्री श्री आनंद शर्मा, अमेरिका में भारत के राजदूत श्री रनेंद्रसेन, संयुक्त राष्ट्र में भारत के स्थाई प्रतिनिधि श्री निरूपम सेन, मॉरीशस के शिक्षा और मानव संसाधन मंत्री श्री धरमबीर गोखुल, नेपाल के उद्योग, वाणिज्य मंत्री राजेन्द्र महतो, भारतीय विद्या भवन न्यूयार्क के अध्यक्ष डॉ. नवीन मेहता विराजमान थे। सर्वप्रथम उद्घोषिका सुश्री शीला चमन ने मंचस्थ महानुभावों एवं प्रतिनिधियों का स्वागत किया। इसके बाद रनेंद्रसेन ने अपना स्वागत सम्बोधन दिया। इसी उद्घाटन सत्र में प्रधानमंत्री का संदेश वीडियो द्वारा दिखाया गया जिसमें उन्होंने कहा था कि "अमेरिका में हो रहे आठवें सम्मेलन की एक खास अहमियत है। आज अमेरिका दुनिया के विकसित देशों में सबसे आगे है। हमारे दोनों देशों की जनता और सरकारों के बीच दोस्ताना रिश्ता है। अमेरिका में बसे भारतीय लोगों ने इस देश के हर क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है। चाहे वह विज्ञान हो या तकनीकी क्षेत्र, आर्थिक हो या शिक्षा, साहित्य हो या संस्कृति, कोई भी क्षेत्र हो, भारतीयों के योगदान से सभी परिचित हैं। मुझे यकीन है कि आने वाले दिनों में भारत और अमेरिका के रिश्ते और मज़बूत बनेंगे। आज हिंदी विश्व भाषा बन चुकी है। आँकड़े यह बताते हैं कि दुनिया की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी दूसरे स्थान पर है। दुनिया के सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। आज अमेरिका में भी हिंदी की पढ़ाई का ख्याल किया जा रहा है। अनेक हिंदी संस्थाएँ बच्चों को शनिवार और रविवार के दिन हिंदी पढ़ाती हैं। कुछ अमेरीकी स्कूलों के पाठ्यक्रम में भी हिंदी ने अपनी जगह बनानी शुरू कर दी है, जो कि शुभ संकेत है। किसी भी देश की तरक्की उसकी भाषा की तरक्की से जुड़ी होती है। आज हिंदी का बढ़ता विस्तार हमारे देश के विकास में साफ दिखाई दे रहा है। हिंदी को इंटरनेट की ताकतवर भाषा बनाने के लिए अच्छे हिंदी सॉफ्टवेयर–हार्डवेयर एवं सर्च इंजन बनाने होंगे।"[24] भारत सरकार के विदेश राज्य मंत्री और भारत सरकार के प्रतिनिधि मण्डल के प्रमुख आनंद शर्मा ने कहा कि 'आज हिंदी सम्मेलन ने 32 साल का सफ़र पूरा कर लिया है। आज 110 करोड़ भारतीयों की आवाज़ दुनिया सम्मान के साथ सुन रही है क्योंकि यह आवाज़ केवल एक भाषा हिंदी की नहीं है, यह आवाज़ महान परंपरा, एक बहुलतावादी संस्कृति और सभ्यता, शांति, विश्वबंधुता और अहिंसा की आवाज़ है। "हिंदी हमारे लिए केवल भाषा नहीं है, हमारी अस्मिता, हमारे अस्तित्व का महत्वपूर्ण अंग है। हिंदी दुनिया की दूसरी बड़ी भाषा है।"25

इस अवसर पर विदेश राज्य मंत्री आनंद शर्मा ने 'गगनांचल' के विशेषांक एवं 'हिंदी उत्सव ग्रंथ' और अमेरिका के हिंदी विद्वानों की 'निर्देशिका' का लोकार्पण किया। इस सम्मेलन में कुल 9 शैक्षिक सत्रों का आयोजन किया गया। वे निम्न प्रकार हैं:

1. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी
2. विदेशों में हिंदी शिक्षण: समस्याएँ और समाधान

3. वैश्वीकरण मीडिया और हिंदी
4. विदेशों में हिंदी सृजन (प्रवासी हिंदी साहित्य)
5. हिंदी के प्रचार–प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका
6. हिंदी के प्रचार–प्रसार में हिंदी फिल्मों की भूमिका
7. हिंदी युवा पीढ़ी और ज्ञान–विज्ञान
8. हिंदी भाषा और साहित्य: विविध आयाम
9. समानान्तर तीन भागों में विभक्त–

(क) साहित्य में अनुवाद की भूमिका
(ख) हिंदी और बाल–साहित्य
(ग) देवनागरी लिपि

इस सम्मेलन में देश–विदेश के चालीस विद्वानों को पुरस्कारों से नवाजा गया। इसमें पुस्तक प्रदर्शनी, सूचना प्रौद्योगिकी प्रदर्शनी के अलावा राष्ट्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा हिंदी की विकास यात्रा पर प्रदर्शनियाँ लगाई गईं। इस अवसर पर कवि सम्मेलन, नाट्य प्रस्तुति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए गए।

निष्कर्ष

अगर हम इन समस्त विश्व हिंदी सम्मेलनों पर समग्रता में बात करें तो एक बात साफ नज़र आती है कि कुछ सफलताओं के अलावा कोई भी महत्वपूर्ण उपलब्धि दिखाई नहीं देती। हाँ इससे एक बात साफ हुई है कि विश्व में एक हिंदी परिवार है जो एक अन्तःसूत्र द्वारा बँधा हुआ है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को स्थाई भाषा बनाने की बात जोर तो पकड़ रही है लेकिन पश्चिमी देशों के कान में इससे जूँ तक नहीं रेंग रही है। वैसे भी अमेरिका द्वारा अफ़गानिस्तान और ईराक पर बेतार्किक युद्ध थोपने से दुनिया जान गई है कि संयुक्त राष्ट्र कोई वैश्विक संगठन नहीं, बल्कि अमेरिका की संपत्ति है। वह चाहे जैसे इसका उपयोग कर सकता है। फिर मेरी समझ में यह नहीं आता कि हमारे देश के संविधान के रक्षक और विदेशों में घूमने के अवसर तलाशने वाले लोग संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को रखवाने पर भला क्यों अड़े हुए हैं? आखिर वे तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन में दिए गए महीयसी महादेवी वर्मा के उस वक्तव्य को क्यों नहीं समझना चाहते जिसमें उन्होंने कहा था कि 'हम अंतरराष्ट्रीय हुए बिना रह नहीं सकते, पर हमारे अन्दर राष्ट्रीय होने की कुव्वत नहीं है।' सच उस महान कवयित्री की बात लोगों को समझ में आ जाए तो हिंदी की समस्या सुलझने में देर नहीं लगेगी। अनेक 'विश्व हिंदी सम्मेलनों' में पारित संकल्पों के कार्यान्वयन के हेतु वर्धा में अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय अपना कार्य तो शुरू कर चुका है लेकिन देखना है, वह इसमें कितनी ईमानदारी बरत पाता है। मॉरीशस की संसद में विश्व हिंदी सचिवालय विधेयक पारित होने के बाद वहाँ सचिवालय स्थापित तो हो गया है लेकिन अभी उसके कार्य में तीक्ष्णता आनी बाक़ी है। भारत सरकार तथा भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने विश्व के कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन, अनुसंधान के लिए हिंदी पीठ स्थापित किए हैं। इसी प्रकार सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ स्थापित करने की आवश्यकता है। एक बात साफ है कि शुरू के एक दो सम्मेलनों के बाद इसमें राजनीति शुरू हो गई है और इसके लिए बनाई जा रही समितियों में अयोग्य लोग चुने जा रहे हैं। ऐसे में हिंदी में पुरस्कार पाने वाले लोग अयोग्य न हों, इसकी क्या गारंटी है? जो भी हो इन समस्त सम्मेलनों को हम केवल बकवास कहकर नहीं टाल सकते। क्योंकि जाने–अनजाने पूरे विश्व में हिंदी के प्रति एक आम धारणा बनी है। यह बात साफ हुई है कि उपनिवेशवादी भाषा की धौंस अब ज्यादा दिन नहीं चलने वाली है। हिंदी प्रेमियों को आप्रवासी भारतीयों की संघर्ष–गाथा को आदर्श के रूप में सामने रखना चाहिए और अपनी भाषा और संस्कृति के सम्मान के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। जैसा कि 'सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन' में कहा गया था कि विदेशी हिंदी लेखकों को हिंदी के पाठ्यक्रमों में स्थान दिया जाएगा, इस पर कड़ाई से विचार किया जाना चाहिए। यही नहीं गाहे–बेगाहे दक्षिण भारत के हिंदी साहित्यकारों की भी शिकायत रहती है कि उन्हें हिंदी साहित्यकारों के बीच उचित स्थान

नहीं दिया जा रहा है, अगर सचमुच में ऐसा ही होता रहा तो हिंदी का भविष्य अच्छा नहीं होगा। भारत में हिंदी पढने–लिखने वाले हीन भावना के शिकार होते रहते हैं। इसके पीछे, समस्त भारतीय मानसिकता की अंग्रेजी भाषा का पिछलग्गूपन है। इससे निपटने के लिए ठोस कदम उठाए जाने चाहिए, नहीं तो, एक दिन ऐसा आएगा कि हिंदी कोई नहीं पढ़ेगा और बस विश्व में हिंदी के नाम पर केवल दिखावटी सम्मेलन ही रह जाएँगे।

सन्दर्भ

1. नारायण कुमार, साहित्य अमृत (जुलाई– 2007), पृष्ठ 10,
2. वही, पृष्ठ–10,
3. वही, पृष्ठ–10,
4. वही, पृष्ठ–11,
5. वही, पृष्ठ–11,
6. वही, पृष्ठ–11,
7. वही, पृष्ठ–11,
8. श्री मधुकर राव चौधरी, 'तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका', पृष्ठ– 307,
9. श्री राजमणि तिवारी, 'तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका', पृष्ठ– 244,
10. वही, पृ.– 244
11. नारायण कुमार, साहित्य अमृत (जुलाई– 2007), पृष्ठ– 11,
12. वही, पृ.–11,
13. वही, पृ.–11,
14. वही, पृ.–11,
15. वही, पृ.–12
16. वही, पृष्ठ–12
17. वही, पृष्ठ–12
18. वही, पृष्ठ–12
19. वही , पृ.–13
20. वही , पृ.–13
21. वही , पृ.–13
22. पुष्पिता, साहित्य अमृत (जून– 2003), पृ.– 20,
23. वही, पृ.–21,
24. प्रो. अनन्तराम त्रिपाठी, 'राष्ट्रभाषा '(सितम्बर–अक्टूबर), पृ.– 10–11
25. वही, पृ.–11

भारत -

साहित्य का महातीर्थ हिन्दी भवन भोपाल

—श्री गोवर्धन यादव

हिंदी भवन भोपाल में आयोजित बाईसवीं पावस व्याख्यानमाला में, हिंदी साहित्य के गौरव कवि, प्रदीप एवं डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की जन्मशताब्दी समारोह पर केंद्रित त्रि–दिवसीय समारोह 17 जुलाई 2015 तक विशाल जनसमूह की उपस्थिति में, अपनी संपूर्ण भव्यता और गरिमा के साथ सानन्द संपन्न हुआ। यह वह अवसर था जब स्वयं देवराज इन्द्र अपने अनुचरों (मेघों) की उपस्थिति में जल बरसा रहे थे। भीषण गर्मी और उमस से आतप्त तन और मन दोनों खिल से जाते हैं। मौसम खुशनुमा हो उठता है।

इस प्रतिष्ठा समारोह में कवि प्रदीप की सुपुत्री नितुल प्रदीप, सुमनजी के सुपुत्र कर्नल अरुणसिंह सुमन, धर्मयुग के संपादक रहे प्रख्यात साहित्यकार स्वर्गीय धर्मवीर भारतीजी की पत्नी श्रीमती पुष्पा भारती, रमेशचन्द शाहजी, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ. प्रमोद त्रिवेदी, डॉ. दामोदर खड़से, ध्रुव शुक्ल, डॉ विजय बहादुर सिंह, डॉ श्रीराम परिहार आदि एवं महिला कथाकारों सहित देश के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार, लेखक, कवि, चित्रकार, संपादक एवं पत्रकार बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

विगत बाईस वर्षों से अनवरत आयोजित की जा रही पावस व्याख्यानमाला के अलावा शरद–व्याख्यानमाला, वसन्त व्याख्यानमाला तथा अन्य होने वाले साहित्यिक अनुष्ठानों की अनुगूंज देश के कोने–कोने में सुनी जा सकती है। यदि इस नगरी को साहित्य का महातीर्थ की संज्ञा से अलंकृत किया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

हिंदी भवन भोपाल में लगभग पूरे वर्ष साहित्यिक अनुष्ठान आयोजित होते रहते हैं। इन आयोजनों के बारे में जानने के साथ ही, हम हिंदी भवन की स्थापना तथा अन्य आयोजनों के बारे में, संक्षिप्त जानकारी भी प्राप्त करते चलें, तो उत्तम होगा।

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल, अपने विशाल ताल के लिए जगप्रसिद्ध है। इसके अलावा यहाँ बहुत कुछ है देखने के लिए। जैसे लक्ष्मीनारायण मन्दिर, मोती मस्जिद, ताज–उल–मस्जिद, शौकत महल, सदर मंजिल, पुरातात्विक संग्रहालय, भारत भवन, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भीमाबेडका, भोजपुर। इनके अलावा श्यामला हिल्स पर स्थित है गाँधी भवन, मानस भवन और इन दोनो भवनों के बीच स्थित है साहित्य का महातीर्थ, हिंदी भवन।

संभवतः भारत का यह एक मात्र ऐसा स्थान है जहाँ होली के पावन पर्व पर शहर के तथा बाहर से आए हुए साहित्यकार एकत्र होकर रंग–बिरंगे त्यौहार को सौहार्द्र के साथ मनाते हैं। यह वह स्थान है जहां दीपवाली जैसे त्योहार पर सभी साहित्यकार इकट्ठा होकर दीपपर्व मनाते हैं। यह वही स्थान है, जहाँ पर ऋतुओं के अनुसार पावस व्याख्यानमाला, शरद व्याख्यानमाला, वसन्त व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है। इसके अलावा हिंदी दिवस पर साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। हिंदी से इतर जो साहित्यकार अपनी साहित्य–साधना कर रहे हैं, उन्हें भी यहाँ आमंत्रित कर उनका सम्मान किया जाता हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी भवन भोपाल देश का एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ वर्ष भर साहित्यिक आयोजन बड़े पैमाने पर आयोजित किए जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार होगा, जो यहाँ न आया हो। सभी ने अपनी उपस्थिति से इस भवन के प्राँगण को गुलज़ार बनाया है। पावस व्याख्यानमाला अपने आप में एक ऐसा अनूठा आयोजन है, जिसमें भारत के कोने–कोने से साहित्यकार आकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते है और अपने आपको अहोभागी मानते हैं।

पावस व्याख्यानमाला एक ऐसी अनूठी व्याख्यानमाला है जो प्रत्येक वर्ष के जुलाई मास में आयोजित की जाती है। यह वह समय होता है, जब समूचा आकाश बादलों से अटा पड़ा होता है या बादलों का जमघट होना शुरू होता है। बादल तो खूब आते हैं, लेकिन बरसते नहीं हैं। शायद उन्हें इस बात का इंतजार रहता होगा कि कब व्याख्यानमाला शुरू हो? जैसे ही इसकी शुरुआत होती है, वे जमकर बरस पड़ते हैं। भीषण गर्मी और उमस के चलते जहाँ प्राण आकुल–व्याकुल हो रहे होते हैं, बादलों के बरसते ही राहत मिलनी शुरू हो जाती है। मन प्रसन्नता से झूम उठता है।

जैसा कि आप जानते ही हैं कि 1 नवम्बर 1956 को नए मध्यप्रदेश का गठन हुआ और पं रविशंकर शुक्ल प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। ठीक इसी समय समिति का कार्यालय, जो इंदौर में स्थित था, भोपाल स्थानांतरित हुआ और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्यों में गति

मिलती गई। हिंदी के प्रति उत्कट प्रेम रखने वाले पंडितजी ने हिंदी भवन के लिए सवा एकड़ भूमि आवंटित कर दी।

कालांतर में मध्य प्रदेश के जो राज्यपाल और मुख्यमंत्री आए, उन सबका स्नेह और सहयोग मिलता गया। दानदाता भी पीछे कहाँ रहने वाले थे, उन्होंने भी इस के निर्माण में तन, मन, धन से सहयोग दिया। फलस्वरूप, हिंदी भवन का निर्माण पूरा हुआ और हिंदी प्रचार समिति की व्यवस्थापिका सभा ने सर्वानुमति से प्रस्ताव पास कर पं. रविशंकर शुक्ल हिंदी भवन न्यास का गठन किया। वर्तमान में राष्ट्रभाषा समिति के अध्यक्ष श्री सुखदेव प्रसाद दुबेजी, मंत्री–संचालक श्री कैलाशचन्द्र पन्तजी, महामहिम राज्यपाल मुख्यमंत्री, मध्य प्रदेश प्रशासन, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के प्रधानमंत्री सहित अन्य गणमान्य नागरिक इस न्यास के न्यासी हैं।

"रामकाज किए बिना मोहे कहाँ विश्राम" की तर्ज पर चलने वाले माननीय श्री कैलाशचन्द्र पन्तजी आखिर चुप कैसे बैठ सकते थे ? नयी–नयी योजनाएँ आपके मन के भीतर आकार लेती चलती हैं।

उसी का सुपरिणाम है कि इस पावन भूमि पर एक भव्य और सुन्दर साहित्यकार–निवास ने आकार ग्रहण किया। इसी भवन में निर्मित तेरह कमरे, देश के मूर्धन्य साहित्यकार श्री माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य श्री विनयमोहन शर्मा, श्री भवानी प्रसाद मिश्र, श्री रामेश्वर शुक्ल "अंचल", डॉ. शिव मंगलसिंह सुमन, डॉ. चन्द्रप्रकाश वर्मा, श्री बालकृष्ण शर्मा "नवीन", श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द श्री हरिकृष्ण प्रेमी तथा श्रीकृष्ण सरलजी की पावन स्मृतियों को समर्पित किया गया। इसके अलावा एक वातानुकूलित सेमिनार कक्ष और एक सामान्य संगोष्ठी कक्ष का भी निर्माण किया गया, जिनका उपयोग साहित्यिक आयोजनों के लिए किया जाता है। यहाँ एक पुस्तकालय भी संचालित किया जाता है, जिसमें अनेकानेक विषयों की करीब छब्बीस हजार पुस्तकें पाठकों के लिए उपलब्ध हैं। सन् 1972 से इस पुस्तकालय का संचालन मध्य प्रदेश शासन के स्कूल शिक्षा विभाग एवं नगर निगम भोपाल के सहयोग से किया जा रहा है साहित्य की बेजोड़ द्वैमासिक पत्रिका 'अक्षरा' का प्रकाशन विगत तीस वर्षों से हो रहा है। आज इसकी गणना देश की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं में होती है। मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री–संचालक श्री कैलाशचन्द्र पन्तजी इस पत्रिका के प्रधान संपादक और डॉ. सुनीता खत्रीजी संपादक हैं। पद्मश्री रमेशचन्द्र शाहजी के आलेख 'शब्द निरन्तर' इस पत्रिका के प्राण होते हैं, जिन्हें पढकर आप चमत्कृत हुए बिना नहीं रह सकते। वक्ताओं के व्याख्यानों की ऑडियो–विडियो बनाकर उन्हें संरक्षित करना और 'संवाद और हस्तक्षेप' का प्रकाशन कराना, कोई सरल काम नहीं है। इसी क्रम में 'हिंदी भवन संवाद' का मासिक अंक प्रकाशित होता है, जिसमें प्रदेश की साहित्यिक खबरें प्रमुखता से स्थान पाती हैं। हिंदी भवन प्रदेश में संचालित समितियों के माध्यम से 'प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिताओं' का आयोजन सितम्बर माह में करवाती है। इसमें कक्षा नौ से लेकर बारहवीं तक अध्ययनरत छात्र–छात्राएँ भाग लेते हैं। देश–भक्ति पर आधारित प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का मुखाग्र पाठ, साहित्यिक अंत्याक्षरी, लोकगीत गायन प्रतियोगिता तथा वाद–विवाद प्रतियोगिताएँ होती हैं और इनमें विजेताओं को स्मृति–चिन्ह, प्रमाणपत्र, तथा नगद राशि आदि प्रदत्त किए जाते हैं। इन प्रतियोगिताओं के आयोजन के पीछे बच्चों में देश–प्रेम के अलावा अपनी मातृभाषा हिंदी के प्रति ललक जगाना होता है।

HUMAN SERVICE TRUST - U.K.

शरद व्याख्यानमाला का शुभारंभ 2003 में हुआ था। इसका उद्देश्य ज्ञान आधारित तथा मौलिक लेखन को प्रोत्साहित करना था। विख्यात कवि एवं कथाकार, स्वर्गीय श्री नरेश मेहताजी की स्मृति में वांङमय पुरस्कार स्थापित किया गया। इसी वर्ष, 2003 में सम सामयिक सामाजिक विषयों पर विचार करने की परम्परा को स्थापित करने के लिए, सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायमूर्ति श्री रमेशचन्द्र लाहोटीजी की गरिमामय उपस्थिति में वसन्त व्याख्यानमाला की शुरुआत हुई। यात्रा सिर्फ यहीं आकर रुकती नहीं। निर्बाध गति से बहती यह पुण्यसलिला अपने प्रवाह में अनेकानेक कीर्तिमान स्थापित करती हुई, अनेकों पड़ावों को स्पर्श करती हुई, आगे बढ़ती रही है। इन्हीं

अनूठे आयोजनों में प्रतिष्ठित पुरस्कारों की भी स्थापना की गई। श्री नरेश मेहता वांडमय सम्मान 31000/–रु., श्री शैलेश मटियानी स्मृति चित्रा–कुमार कथा पुरस्कार 11000/– रु., श्री वीरेन्द्र तिवारी स्मृति रचनात्मक पुरस्कार 21000/– रु., श्री सुरेश शुक्ल 'चन्द्र' नाट्य पुरस्कार 11000/–रू., श्रीमती दुलारदेवी स्मृति प्रकाश पुरस्कार 5000/– रु., इन पुरस्कारों के अलावा अन्य चौदह पुरस्कार दिए जाने की यहाँ व्यवस्था है जिनमें हिंदीतर भाषी हिंदी सेवियों(सभी भारतीय भाषाओं के) को प्रदेश के महामहिम राज्यपाल द्वारा प्रदत्त किए जाते हैं।

प्रथम सत्र

दिन शुक्रवार, 17 जुलाई 2015

विषयः 'कवि प्रदीप' व्यक्ति और रचना संसार

अध्यक्षता : श्रीमती पुष्पा भारती जी

वक्ताः डॉ प्रमोद त्रिवेदी, सुश्री मितुल प्रदीप, डॉ. दामोदर खडसे, ध्रुव शुक्ल, डॉ. विजयबहादुर सिंह

संचालनः डॉ. सुनीता

द्वितीय सत्र

विषयः डॉ. शिवमंगलसिह सुमन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

अध्यक्षताः डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय

वक्ता : श्री सुधाकर शर्मा, डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, डॉ श्रीराम परिहार, प्रो. रमेश दवे
श्री प्रयाग शुक्ल, श्री अरूण सिंह सुमन

इन विषयों पर विचार किया गया:

1) कवि प्रदीप: व्यक्तित्व और रचना संसार
2) हिंदी कहानियाँ: नये आयाम
3) महिला कथाकारों द्वारा नये रास्ते की तलाश
4) विश्व हिंदी सम्मेलन की अपेक्षाएँ

महाशिवरात्रि

—श्रीमती लक्ष्मी झमन

पर्व का अर्थ है क्रमिक उत्थान। एक के बाद एक कदम ऊपर की ओर बढ़ते जाना। इस की प्रेरणा हमें तब-तब मिलती है जब-जब हमारे देश में पर्वों को मनाया जाता है। इन पर्वों में महाशिवरात्रि पर्व की प्रतीक्षा सभी लोग अत्यंत उत्सुकता से करते हैं। महाशिवरात्रि फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को मनाई जाती है। यह पावन पर्व आध्यात्मिक दृष्टि से जीव मात्र के लिए महान सन्देश प्रदान करता है। इस अवसर पर चहुँ ओर आध्यात्मिक वातावरण तथा पूरी प्रकृति शिवमयी हो जाती है।

महाशिवरात्रि का पर्व हमारे देश में धूमधाम से मनाया जाता है। भगवान् सदाशिव इस दिन अत्यंत प्रसन्न रहते हैं और प्रत्येक की मनोकामना पूर्ण करते हैं। जहाँ आज परिवार में कलह, क्लेश और लड़ाई-झगड़ों की घटनाएँ आए दिन सुनने में आती हैं, वहीं भगवान् शंकर के परिवार में अटूट प्रेम के बंधन दिखाई देते हैं। इस पर्व के अवसर पर मॉरीशस के कोने-कोने से पदयात्री गंगा तालाब से जल लाने हेतु अपने-अपने घर से प्रस्थान करते हैं। इस पदयात्रा के अंतर्गत सभी भक्तों में परस्पर उसी एकता व प्रेम की झलक मिलती है जो भगवान् शिव के परिवार में निहित है। यह एकता देश एवं समाज के कल्याण के लिए नितांत आवश्यक है। महाशिवरात्रि का पर्व न केवल देश के लोगों में आध्यात्मिकता का भाव लाता है अपितु यह हमारे हिंदू समाज में नवजागरण का शंख भी फूंकता है।

भगवान् शिव पर अविरल टपकने वाली जलधारा जटा में स्थित गंगा का प्रतीक है। यह ज्ञान गंगा है भगवान शिव पर अविरल बहनेवाली धारा रस धारा है, इसका तात्पर्य है कि जीव को सदैव रस से ओत-प्रोत होना चाहिए। जीवन में कभी भी शुष्कता नहीं आए, ईश्वर कृपा की यह रस धारा जीवन में आनंद की रसधारा और ज्ञान की रसाधारा निरंतर प्रवाहित होती रहनी चाहिए। इन्हीं बातों की ओर ध्यान देते हुए भक्त-गण गंगा तालाब से जल लाकर महाशिवरात्रि के अवसर पर भगवान् आशुतोष का अभिषेक करते हैं तथा यह पवित्र जल उनको समर्पित करते हैं। पदयात्री सुंदर-सुंदर काँवरों को अपने कन्धों पर ढोते हुए अपने गंतव्य की ओर निरंतर बढ़े जाते हैं। कुछ काँवरों का निर्माण पहियों पर किया जाता है और ये काफी भारी भी होती हैं। सच तो यह है कि भक्त-गणों से यह माँग की जाती है कि वे पहियों पर निर्मित काँवरों को जहाँ तक हो सके छोटी बनावें परन्तु दुःख इस बात का है कि बहुत कम शिवभक्त इस बात पर अमल कर पाते हैं। इस पदयात्रा के अंतर्गत वे ही समस्याएँ बार-बार सामने आ जाती हैं। बड़ी एवं गगन को छूने वाली काँवरों के परिणामस्वरूप यातायात की आवा-जाही कष्टदायक हो उठती है। संकरे रास्तों में तो समस्या और भी गंभीर हो जाती है। घंटों तक गाड़ी तथा अन्य वाहनों से यात्रा करने वाले यातायात में फंसे रहते हैं। उन दिनों में ऐसा कोई घर नहीं मिलेगा जहाँ से भक्त-गण भगवान शिव व गंगा तालाब के दर्शन के लिए नहीं जाते। यही कारण है कि बार-बार भक्तों से यह माँग की जाती है कि वे यथासंभव काँवरों के आकार को छोटा ही रखें जिससे आने-जाने में सबको सुविधा हो। इन काँवरों की शोभा निराली होती है। कुछ भक्त-गण अपने इष्टदेव के चित्रों या भगवान शंकर के चित्रों से अपनी काँवरों की शोभा में चार चाँद लगाते हैं।

पूरे रास्ते, भक्त-गण झाल, ढोलक व करतल ध्वनि के साथ कीर्तन भजन का आनंद लेते हैं अलग-अलग टोलियाँ अपने-अपने ढंग से भक्ति व श्रद्धा दर्शाते हुए प्रेमपूर्वक गंगा तालाब की ओर कदम बढ़ाते चली जाती हैं। चाहे कितनी भी थकान हो पर मुँह से उफ तक नहीं निकलती और न ही कोई शिकायत सुनने को मिलती है। हाँ, टोली की काँवर के अग्रभाग में उसके गाँव अथवा मंदिर का नाम लिखा होता है, जिसके फलस्वरूप, यह अनुमान बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है कि देश के किस कोने से, कितने भक्त-गण काँवरसहित गंगा तालाब के लिए निकल चुके हैं। बच्चे, जवान तथा वृद्धजन सब अपने लक्ष्य की ओर बड़े उत्साह से कदमों को बढ़ाए जाते हैं। महाशिवरात्रि पर्व के अवसर पर मॉरीशस भर में पदयात्रियों की यात्रा का अनुपम सौंदर्य देखकर पर्यटक-गण दाँतों तले उंगली दबाते हैं। ये पदयात्री सम्मानपूर्वक तथा सामाजिक परम्पराओं को निभाते हुए इस पर्व की गरिमा की अभिवृद्धि करते हैं। चहुँ ओर आनंद दृष्टिगोचर होता है। कुछ लोग त्रिशूल, डमरू, कमण्डल, नकली सर्प आदि भी लेकर चलते हैं। कुछ भक्त ऐसे भी होते हैं जो पूर्णरूपेण भगवान् शंकर का स्वरूप धारण करके इस यात्रा को संपन्न करते हैं। इस दृश्य का तो कहना क्या। लगता है भगवान शंकर स्वयं स्वर्ग से धरती पर उतर आए हैं। भक्त-गण भौतिक जीवन की चिंताओं से मुक्त, आत्मविश्वास व मैत्रीपूर्ण भावना के साथ

देश के कोने–कोने से उस यात्रा को तय करते हैं। यह पदयात्रा पूरे देश के हिंदुओं की एकता का प्रतीक है।

यात्रा के दौरान पदयात्रियों का संघर्ष जीवन के संघर्ष का प्रतीक है। इस से यह संदेश मिलता है कि हमें अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए सदैव संघर्षशील रहना चाहिए। इसके साथ ही हम अपनी बुद्धि व अपने समय का सदैव सदुपयोग करें तो सोने में सुहागा हो जाए। किसी के चेहरे पर न कोई तनाव, न कोई शंका और ना ही लेशमात्र निराशा दिख पड़ती है। सब बस चलते रहते हैं जैसे चरैवेति सिद्धांत को चरितार्थ करने हेतु अपनी कटिबद्धता का प्रदर्शन कर रहे हों। सब के चेहरे पर एक अनंत शांति की छाप, सब की जिह्वा पर भगवान शंकर का नाम होता है। अपनी भक्ति में सारे भक्त 'ॐ नमः शिवाय' पंचाक्षर मन्त्र का जाप करते हैं परन्तु मजाल है कि इनकी भक्ति में कोई कमी हो। ये भक्त भले ही परंपरावादी भक्तों की अपेक्षा अधिक आधुनिक होते हैं परंतु अपनी मंजिल की ओर आरूढ हो शिवमय वातावरण की स्थापना में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ते। धूप से बचने के लिए आँखों पर काले चश्मे, सिर पर टोपी, स्वच्छ श्वेत वस्त्रों में सजे नवयुवक एवं नवयुवतियों को देखकर अपने देश की युवा पीढ़ी पर गर्व होता है। परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुछ नवयुवक इस पवित्र पदयात्रा के बीच सिगरेट का सेवन करके युवा पीढ़ी के सम्मान को ठेस पहुँचाते हैं। अपने गंतव्य तक पहुँचने की ऐसी तन्मयता भक्तों की भक्ति को अधिक दृढ़ता प्रदान करती है। सब इतने खुश होते हैं जैसे उन्हें प्रसन्नता की पूंजी प्राप्त हो गई है जो पदयात्री तथा भक्त गंगा तालाब से जल लेकर लौटने की राह पर होते हैं, उनके मुख–मंडल पर अनंत संतुष्टि छाई रहती है। अपने–अपने गाँव पहुँचने की शीघ्रता एवं तत्परता स्वतः दिखाई देती है क्योंकि जगह–जगह मंदिरों में सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन में ये भक्त अपना योगदान अवश्य देते हैं। उन दिनों गंगा तालाब के पास लोगों का जमघट लगा रहता है। वहाँ के मंदिरों में आरती की जय–जयकार से सारा वातावरण गूंज उठता है।

रास्ते में चहुँ ओर लोग पंडालों का प्रबंध करते हैं जहाँ वे शिवभक्तों का सेवा–सत्कार, फल, मिठाई, चाय तथा प्रसाद आदि से करते हैं। हर गली में कोई न कोई भक्तों की सेवा में हर समय उपस्थित रहता है। सच में महाशिवरात्रि का पर्व हम सब के लिए आनंद एवं प्रेम का भण्डार लेकर आता है। इस कथ्य से कोई अनभिज्ञ नहीं है कि शिव ही सुंदर हैं, शिव ही सत्य हैं और शिव ही नित्य हैं। शिव का अर्थ ही है, मंगलमय और मंगलदाता। महाशिवरात्रि के अवसर पर भगवान शिव के भक्तों को उनकी विशिष्ट कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

मॉरीशस

साक्षात्कार

श्री यशपाल निर्मल से बातचीत

श्रीमती बंदना ठाकुर

{ सन् 1977 में जम्मू–कश्मीर के सीमावर्ती गाँव गढ़ी बिशना में जन्मे डोगरी भाषा के साहित्यकार, आलोचक, अनुवादक, सांस्कृतिककर्मी एवं पत्रकार यशपाल निर्मल को पिछले वर्ष साहित्य अकादमी के अनुवाद पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रस्तुत है उनके साथ बंदना ठाकुर की बातचीत}

बंदना– यशपाल निर्मल जी आपने डुग्गर प्रदेश के ऐतिहासिक लोक नायक तथा देशभक्त '?'मियां डीडो' को अपने अनुवाद के द्वारा फिर से ज़िंदा कर दिया है तथा जम्मू वासियों को उनकी शहादत की याद दिलाई है। क्या आप हमें बतायेंगे कि यह नाटक आपको कब और कहाँ से मिला और कैसे आप इसका अनुवाद करने के लिए प्रेरित हुए ?

यशपाल– आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं यह कहना चाहूँगा कि 'मियां डीडो' नाटक, जिसका मैंने डोगरी भाषा में अनुवाद किया है वास्तव में यह मूल पंजाबी भाषा में है। इसका नाम 'डीडो जम्बाल' है। इसको लाला कृपा सागर ने लिखा है और यह सन् 1934 ई0 में लाहौर से प्रकाशित हुआ था। अक्सर सुनता रहता था कि पंजाबी भाषा में 'डीडो' कोई किताब है। चूंकि हमारे यहाँ 'डीडो' एक लोकनायक के रूप में प्रसिद्ध है। लोग उन्हें बहुत मानते हैं। हमारा लोक साहित्य मियाँ डीडो की बहादुरी के किस्सों से भरा पड़ा है। लोक गीतों, लोक कहानियों एवं लोक गाथाओं के माध्यम से हम अपने बड़े बुजुर्गों से डीडो की बहादुरी के बारे में बचपन से ही सुनते आए हैं। परंतु इतिहास में डीडो नदारद था। एक तरफ जहां लोक मानस में डीडो को इतना मान सम्मान हासिल था, वहीं उसके बारे में हमारे बुद्धिजीवी एवं साहित्यिक समाज के पास कोई खास जानकारी नहीं थी। सन् 2008 की बात है। उन दिनों मैं सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन लैंग्वेजज, मैसुर की शाखा, नॉर्दन रीजनल लैंग्वेज सेंटर, पंजाबी यूनिवर्सिटी कैंपस, पटियाला में देश के विभिन्न भागों से आए हुए प्रशिक्षुओं को भाषाविज्ञान और डोगरी पढ़ाने के लिए बतौर गैस्ट लैक्चरर कार्य कर रहा था। हमने उस वर्ष प्रशिक्षुओं को एक्सटेंशन लेक्चर देने के लिए डोगरी के सुप्रसिद्ध कवि, नाटककार एवं आलोचक श्री मोहन सिंह को पटियाला बुलाया था। उन्होंने बातों–बातों में मुझे कहा "यार निर्मल पद्मश्री रामनाथ शास्त्री जी अक्सर कहा करते थे कि मियां डीडो पर पंजाबी भाषा में कोई पुस्तक है। परंतु क्या है किसी को कुछ पता नहीं है। आप यहाँ पर हैं तो वह किताब ढूंढने का प्रयास करें जो मियाँ डीडो पर पंजाबी भाषा में लिखी गयी है ताकि पता चल सके कि पंजाबी लेखक ने डीडो के बारे में क्या लिखा है ?"डीडो का संघर्ष, उसकी लड़ाई पंजाब के शासक महाराजा रंजीत सिंह के खिलाफ थी। मैं मोहन सिंह की बातों से बहुत प्रभावित हुआ और मियां डीडो पर लिखी हुई पंजाबी किताब की खोज में जुट गया। मैंने बहुत खोजबीन की नॉदर्न रीजनल लैंग्वेज सेंटर, पटियाला की लाइब्रेरी, पंजाबी यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी, पब्लिक लाइब्रेरी और भाषा विभाग, पंजाब की लाइब्रेरी के साथ–साथ स्थानीय साहियकारों की व्यक्तिगत लाइब्रेरियों में भी खोज की, परंतु डीडो पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं हुई।

आखिर में हार कर मैंने अपने एक विद्यार्थी, हरप्रीत सिंह से इस विषय में बात की। वह डोगरी सीखने के साथ–साथ पंजाबी यूनिवर्सिटी के थिएटर डिपार्टमेंट से पीएच. डी. भी कर रहा था। उसने कहा "सर किताब तो मिल जाएगी, आपको पार्टी करानी पड़ेगी।" मैंने कहा–"कोई बात नहीं, पार्टी भी करवा दूँगा, पहले वह किताब तो लाकर दो।" कुछ दिनों के बाद हरप्रीत वह किताब ले आया। मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। किताब थी सन् 1934 में लाहौर से प्रकाशित लाला कृपा सागर का लिखा हुआ पंजाबी नाटक 'डीडो जम्वाल'। आप सोच भी नहीं सकते कि मुझे कितनी खुशी हुई होगी पुस्तक के मिलने की। परंतु पुस्तक थी बहुत ही खस्ता हालत में। मैं जैसे ही उसका पन्ना पलटता तो वह भुरभुरा जाता, इस बात से मैं परेशान हो गया। मैंने उसको सबसे पहले फोटोस्टेट करवाया। असली वाला वापिस कर दिया और फोटोकापी पढ़ने लगा।

जब मैंने इसको पढ़ा तो मुझे अपनी डोगरा कौम पर एक तरह से शर्म महसूस हुई। जिस व्यक्ति ने अपनी मातृभूमि और अपनी कौम के लिए इतना कुछ किया, अपना और अपने परिवार का बलिदान दे दिया, उसको हमने भुला दिया! हमारे इतिहासकारों ने उसे इतिहास में उपयुक्त स्थान नहीं दिया। इतिहास में अगर कहीं नाम आता भी है तो वह इस तरह से कि डीडो लुटेरा था। मैंने इस पंजाबी नाटक को दो–तीन बार पढ़ा। जब भी नाटक को पढ़ता, आँखों से आँसू अपने आप बहने लगते। नाटक पढ़ते–पढ़ते मैं कब डीडो बन जाता मुझे पता ही न चलता। डीडो के बारे में बचपन से ही किस्से–कहानियाँ अपने बड़े बुजुर्गों से सुनते आए थे। उनके व्यक्तित्व से मैं बहुत ही प्रभावित था। डीडो मेरे आदर्श पुरुषों में से एक हैं। मैंने विचार किया कि इस महान आत्मा के साथ डोगरा कौम को परिचित करवाना चाहिए। यही कारण है कि मैंने इसका डोगरी भाषा में अनुवाद कर दिया। इस प्रकार सन् 2011 में पंजाबी नाटक 'डीडो जम्वाल' डोगरी में 'मियां डीडो' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और डोगरी पाठकों के हाथों में पहुँचा।

बंदना– यशपाल निर्मल जी, जैसा कि आपने कहा कि इस नाटक की खोज काफी समय से की जा रही थी और अब जब आपने इसे ढूंढ कर डोगरी भाषा में प्रकाशित भी करवा दिया तो लोगों की क्या प्रतिक्रिया रही ? मतलब आपको कैसा रिस्पोंस मिला ?

यशपाल– मैंने जब इस नाटक का अनुवाद किया था तो मेरा मकसद सिर्फ और सिर्फ डोगरी कौम को अपने लोकनायक डीडो से परिचित करवाना था। लेकिन इसका जो मुझे रिस्पोंस मिला, वह मेरी उम्मीद से कहीं बढ़ कर है। इसका पहला संस्करण एक वर्ष के भीतर ही समाप्त हो गया । इस नाटक को लोगों ने हाथों हाथ खरीदा जबकि डोगरी की किताबों को खरीद कर तो क्या, लोग मुफ्त में भी नहीं पढ़ते। फिर दूसरा संस्करण प्रकाशित करवाना पड़ा। इस नाटक का जम्मू में इतना स्वागत हुआ कि डोगरी के स्तम्भ कहे जाने वाले कई स्थापित साहित्यकारों, विद्वानों और आलोचकों ने इस नाटक पर अपने शोधपरक एवं आलोचनात्मक लेख लिखे। डोगरी शोध पत्रिका 'सोध–साधना' ने इस नाटक पर आधारित अपना विशेषांक प्रकाशित किया जिसमें हिंदी, डोगरी एवं अंग्रेजी भाषा में डोगरी नाटक 'मियां डीडो' पर अलग–अलग विद्वानों के लगभग 20 आलोचनात्मक एवं शोध लेखों को संकलित किया गया है। ये लेख पहले ही राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे। इसके साथ ही वर्ष 2014 का साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय अनुवाद पुरस्कार भी मेरे इस अनुवाद पर मुझे मिला। मेरे इस अनूदित नाटक को आधार बनाकर इसके अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू एवं कश्मीरी भाषाओं में अनुवाद हो रहे हैं। इस प्रकार मैं कह सकता हूं कि मुझे इसका बहुत अच्छा रिस्पोंस मिला।

बंदना– निर्मल जी क्या आपने 'मियां डीडो' के अलावा और भी अनुवाद कार्य किए हैं ? और आप कौन–कौन सी भाषाओं में अनुवाद कार्य कर रहे हैं ?

यशपाल– बंदना जी मैंने सन् 1996 में 'श्रीमद्भागवत पुराण' के डोगरी अनुवाद से अनुवाद कार्य आरम्भ किया था। उसके बाद 'सिद्ध बाबा बालक नाथ' पुस्तक का हिंदी से डोगरी भाषा में अनुवाद किया। सन् 2011 में 'मियां डीडो' का

पंजाबी से डोगरी अनुवाद प्रकाशन किया और फिर सन् 2013 में डॉ0 सुशील शर्मा के शोध कार्य 'देवी पूजा विधि विधान : समाज सांस्कृतिक अध्ययन' का पंजाबी से डोगरी अनुवाद, सन् 2014 में प्रो0 एस0एस0 छीना के संस्मरण 'वाहगे आहली लकीर' का पंजाबी से डोगरी में अनुवाद , सन् 2015 में 'मनुक्खता दे पैहरेदार : लाला जगत नारायण' जीवनी का हिंदी से डोगरी अनुवाद, सन् 2015 में बलजीत सिंह रैणा के पुरस्कृत पंजाबी कहानी संग्रह 'सुधीश पचौरी ने आक्खेआ हा' का जम्मू–कश्मीर कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी के लिए डोगरी में अनुवाद, सन् 2015 में ही श्री मोहन सिंह के डोगरी निबंध काव्य 'घड़ी' का हिंदी अनुवाद और सन् 2016 में श्री प्रदीप बिहारी के साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत मैथिली कहानी संग्रह 'सरोकार' का डोगरी अनुवाद किया है। इसके अलावा बहुत सी किताबों का अनुवाद किया हुआ है जो प्रकाशन के इंतज़ार में हैं, जिनमें 'सरकार', 'लैहरां', 'क्लीन चिट्ट', 'ऐंटीगोनी', 'दस दिन दा अनशन', 'हैलो माया', 'पाखलो', 'अंतिम साक्ष्य', 'हंस अकेला रोआ' आदि प्रमुख हैं। आपका दूसरा प्रश्न था किन–किन भाषाओं में अनुवाद करते हैं। मैं डोगरी, हिंदी, पंजाबी, अंग्रेजी और उर्दू भाषाओं में काम कर रहा हूँ।

बंदना– अनुवाद के अलावा अपने मौलिक लेखन के बारे में बताएँ ?

यशपाल– मौलिक लेखन की मेरी पहली पुस्तक 'अनगोल ज़िंदगी' शीर्षक से सन् 1996 में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद सन् 2007 में 'लोक धारा', सन् 2008 में 'बस तूं गै तूं ऐं' प्रकाशित हुई। अब तक मेरी कुल 24 पुस्तकें सभी विधाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

बंदना– आपको 'मियां डीडो' के लिए साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय अनुवाद पुरस्कार प्राप्त हुआ है। क्या इसके अतिरिक्त आपको कोई और पुरस्कार प्राप्त हुआ है ?

यशपाल– बंदना जी, 'मियां डीडो' के लिए मुझे साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय अनुवाद पुरस्कार 2015 में प्राप्त हुआ। इसके अलावा जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी और कुछ गैर–सरकारी संस्थाएँ हैं जिन्होंने मुझे समय–समय पर पुरस्कृत एवं सम्मानित किया है। उनमें कमला भारती, बिहार, डोगरी कला मंच ज्यौड़ियां, त्रिवेणी कला कुंज, कठुआ, तपस्या कला संगम, अखनूर, डोगरी भाषा अकादमी, जम्मू, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जम्मू, राष्ट्रीय कवि संगम, जम्मू–कश्मीर, डुग्गर मंच, जम्मू, राइटर्स क्लब, अखनूर, नटमंच, जम्मू , प्रोग्रेसिव यूथ सोसाइटी, रामनगर आदि प्रमुख हैं।

बंदना– निर्मल जी क्या आप जम्मू–कश्मीर के बाहर भी साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय हैं ?

यशपाल– जी बंदना जी, मुझे सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन लैंग्वेजज, मैसूरु, नॉदर्न रीजनल लैंग्वेज सेंटर (पटियाला), साहित्य अकादमी, नार्थ ज़ोन कल्चरल सेंटर, चण्डीगढ़, उर्दू टीचिंग एण्ड रिसर्च, (सोलन) राष्ट्रीय कवि संगम एवं केंद्रीय हिंदी निदेशालय के कई साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लेने का सुअवसर मिला है।

बंदना– आप हिंदी, डोगरी और पंजाबी भाषाओं में अनुवाद एवं सृजनात्मक लेखन करते हैं। भाषाविज्ञान और व्याकरण पर भी आपने कार्य किया है। आलोचना में भी आपका हस्तक्षेप है। सृजनात्मक लेखन में भी आपने कविता, कहानी, लघु–कथा, निबंध, बाल साहित्य आदि बहुविधाओं में कलम चलाई है तो इतना सब कैसे कर लेते हैं आप ?

यशपाल– बंदना जी, मैंने लेखन की शुरुआत कविता से की थी। उसके बाद कब मुझसे प्रकृति ने कहानी लिखवाना शुरू करवा दिया मुझे स्वयं भी पता नहीं चला। अनुवाद तो शुरू से ही मेरा पसंदीदा विषय रहा है। सन् 1998 के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में आने के बाद मैंने आलोचना में भी हाथ आज़माया। सन् 2007 में मेरी नियुक्ति नॉदर्न रीजनल लैंग्वेज सेंटर,

पंजाबी यूनिवर्सिटी कैंपस, पटियाला में देश के विभिन्न भागों से आए हुए प्रशिक्षुओं को भाषाविज्ञान और डोगरी पढ़ाने के लिए बतौर गैस्ट लैक्चरर हुई। वहाँ मैंने महसूस किया कि अध्ययन सामग्री की कमी थी। जब मैंने उन प्रशिक्षुओं के लिए अध्ययन सामग्री तैयार करने की दिशा में कार्य करना आरम्भ किया तो भाषाविज्ञान एवं व्याकरण में मेरी रुचि बढ़ी। मैंने नॉदर्न रीजनल लैंग्वेज सेंटर, पंजाबी युनिवर्सिटी कैंपस (पटियाला), सैंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन लैंग्वेज (मौसुरु) और उर्दू टीचिंग एण्ड रिसर्च सेंटर (सोलन) के लिए कई प्रोजैक्ट्स पर कार्य किया और भाषाविज्ञान, व्याकरण और शिक्षण से संबंधित कई पुस्तकों का लेखन किया। मैं तो केवल मात्र साधन हूँ। करने–करवाने वाली तो कोई और शक्ति है। वह मुझसे जो करवाती है वह हो जाता है। मैं स्वयं कुछ नहीं करता और ना ही मुझमें इतनी योग्यता है कि मैं कुछ कर पाऊँ। परम शक्ति ही है जो मेरे माध्यम से यह सब करती है। मैं तो इतना ही जानता हूँ।

बंदना– आपका रुझान कैसे हुआ इन सब चीजों की ओर ? क्या घर में कोई साहित्यिक माहौल था ?

यशपाल– घर में उस प्रकार का कोई साहित्यिक माहौल तो नहीं था। मेरी माता जी सात्विक विचारों की महिला थीं। पिता जी किसान थे। दादा जी 'श्रीमदभागवत पुराण' और 'श्रीमद्भगवत गीता' का पाठ किया करते थे और हम सभी भाई–बहन उनके पास बैठ कर सुना करते थे। जब तक हम दादी से कोई लोक–कथा न सुन लेते, हम बच्चों को नींद न आती। इन सब चीजों का मिला–जुला प्रभाव मेरे बालमन पर भी पड़ा होगा। बचपन में मुझे डायरी लिखने का बहुत शौक था। मैं किसी पर अन्याय होते नहीं देख सकता। प्रकृति से मुझे असीम प्रेम है। यही कारण रहे हैं जिन्होंने मुझे लेखन की ओर प्रेरित किया।

बंदना– अनुवाद के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे ?

यशपाल– अनुवाद एक कठिन एवं श्रमसाध्य कार्य है। किसी मूल भाषा के विचार को सौंदर्यपूर्वक लक्ष्य भाषा में परिवर्तित करना ही अनुवाद है। मेरा यह मानना है कि अनुवाद तो मौलिक लेखन का पुनर्सृजन है। मूल भाषा की रचना को आत्मसात करके अनुवादक को लक्ष्य भाषा की सुंदरता को बरकरार रखते हुए पुनर्सृजन ही करना पड़ता है। अनुवादक का कार्य इतना कठिन होने के बावजूद उसे वह मान–सम्मान और मानदेय नहीं मिलता जो उसे मिलना चाहिए। जबकि अनुवादक का कार्य है बहुत ही महत्वपूर्ण। जहाँ मूल लेखक एक भाषा को समृद्ध करता है, वहीं अनुवादक दो भाषाओं को समृद्ध करता है। अनुवादक जोड़ने का कार्य करता है। वह विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों को आपस में जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। भारत जैसे बहुभाषीय देश में अनुवाद और अनुवादक का महत्व और भी अधिक है।

बंदना– आपको 'मियां डीडो' के लिए साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय अनुवाद पुरस्कार प्राप्त हुआ है। आप कैसा महसूस करते हैं ?

यशपाल– मैं समझता हूँ कि यह केवल मेरा ही सम्मान नहीं है। यह डुग्गर के महान लोक नायक, मियां डीडो का सम्मान है। डुग्गर प्रदेश का सम्मान है और डुग्गर प्रदेश की वीर बहादुर एवं राष्ट्रवादी डोगरा कौम का सम्मान है। मैं इस सम्मान का सम्मान और सत्कार करता हूँ। इस से मेरे कंधों पर जिम्मेवारी और भी बढ़ गयी है। मैं अपने कार्य को और भी उत्साह और पूरी ईमानदारी से करूँगा।

बंदना– आप पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सक्रिय रहे हैं, इस पर प्रकाश डालना चाहेंगे?

यशपाल– मैंने कई समाचार पत्रों के साथ बतौर संवाददाता कार्य किया है जिनमें, 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'विदर्भ चंडिका'

आदि प्रमुख हैं। वर्तमान में भी मैं तीन साहित्यिक पत्रिकाओं के साथ जुड़ा हुआ हूँ जिनमें 'सोच–साधना' एवं 'डोगरी अनुसंधान' पत्रिकाएँ डोगरी भाषा की हैं और 'अमर सेतु' हिंदी की पत्रिका है।

बंदना– अंत में युवाओं के लिए क्या कहना चाहेंगे ?

यशपाल– मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि आप जीवन में कभी भी निराश न हों। मेहनत करें, काम करें और सिर्फ काम करने की नियत से काम करें। जिस भी क्षेत्र को चुनें उसमें अपनी पूरी जान लगा दें। फल भी बहुत अच्छा मिलेगा, चाहे देर से ही क्यों न मिले। मिलेगा जरूर।

भारत

भारत -

साहित्य अकादमी, भारत के सचिव डॉ. के. श्रीनिवास राव से बातचीत

– श्री प्रदीप सरदाना

आज भी हिंदी का भविष्य बहुत अच्छा देखता हूँ–श्रीनिवास राव
मुंशी प्रेमचंद को लोग आज भी बहुत पसंद करते हैं–श्रीनिवास राव
हिंदी के कारण ही नरेंद्र मोदी जनप्रिय नेता बने हैं–श्रीनिवास राव

साहित्य अकादमी भारत का एक ऐसा राष्ट्रीय साहित्य संस्थान है जो सर्वाधिक प्रतिष्ठित होने के साथ साहित्य क्षेत्र में सर्वाधिक सक्रिय भी है। इस साहित्य अकादमी की स्थापना मार्च 1954 में की गयी थी। तभी से इस संस्थान का कितना महत्व है, इस बात का अनुमान इससे भी होता है कि भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू स्वयं इसके प्रथम अध्यक्ष बने और अपने अंतिम समय तक इसके अध्यक्ष रहे। उनके बाद भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति, डॉ एस. राधाकृष्णन और डॉ ज़ाकिर हुसैन भी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष बने। साहित्य अकादमी भारत सरकार के दिशा निर्देशों के अनुसार चलते हुए भी एक स्वायत्तशासी संस्था है जो विश्व भर में भारतीय साहित्य के प्रसार के लिए समर्पित होने के साथ अंग्रेजी सहित 24 भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कृतियों को प्रति वर्ष प्रतिष्ठित अकादमी पुरस्कार प्रदान करती है। किसी भी लेखक को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना भारत के साहित्य में ऑस्कर जैसा है। अभी तक यह पुरस्कार भारत के जिन हिंदी लेखकों को मिल चुका है उनमें माखन लाल चतुर्वेदी, सुमित्रा नंदन पन्त, राहुल सांकृत्यायन, डॉ हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, अमृत राय, अज्ञेय, भीष्म साहनी और कमलेश्वर जैसे नाम भी शामिल हैं। अकादमी पुरस्कारों के साथ साहित्य अकादमी प्रति वर्ष अनुवाद पुरस्कार, बाल साहित्य पुरस्कार और युवा पुरस्कार भी प्रदान करती है। अपने अब तक के 60 वर्षों से भी अधिक की यात्रा में साहित्य अकादमी 6 हजार से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन कर चुकी है।

साहित्य अकादमी हिंदी साहित्य और हिंदी के लिए क्या कर रही है? यह जानने के लिए हमने साहित्य अकादमी के सचिव, डॉ. के. श्रीनिवासन राव से विश्व हिंदी साहित्य के लिए एक विशेष बातचीत की। डॉ. राव को पिछले 25 वर्षों से साहित्य अकादमी के विभिन्न पदों पर रहते हुए अकादमी में कार्य करने का लंबा अनुभव है। यह उनके इस दीर्घकालीन अनुभव के साथ उनकी कर्मठता और दूरदृष्टि का परिणाम है कि सन् 2013 से जबसे उन्होंने अकादमी का सचिव पद संभाला है, तब से अकादमी और भी ऊँचे शिखर की ओर तीव्रता से बढ़ने लगी है। आइये जानते हैं क्या कहते हैं डॉ. के. श्रीनिवास राव –

साहित्य अकादमी भारतीय साहित्य जगत की सर्वाधिक प्रतिष्ठित संस्था है। अकादमी यूँ तो 24 भाषाओं में काम कर रही है लेकिन हिंदी साहित्य को लेकर अकादमी कितना सक्रिय है और अकादमी द्वारा हिंदी में क्या–क्या विशेष हो रहा है ?

साहित्य अकादमी चूँकि भारत का राष्ट्रीय साहित्य संस्थान है, इसीलिए हम अंग्रेजी सहित 24 भारतीय भाषाओं में काम कर रहे हैं। लेकिन हिंदी देश के 10 राज्यों की राज्यभाषा भी है। इसके अलावा, दक्षिण भारत में भी हिंदी बहुत विकसित है। दक्षिण मूल की सी. राजगोपालाचारी जैसी हस्तियों ने भी हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए बहुत काम किया है। इसलिए अकादमी हिंदी भाषा को पूरा महत्त्व देती है। हम पिछले कुछ वर्षों से प्रति वर्ष 150 से 200 पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित करते आ रहे हैं। पिछले वित्त वर्ष की ही बात करें तो अकादमी ने 24 भारतीय भाषाओं की कुल 680 पुस्तकों का प्रकाशन किया, यानी हर 13 या 14 घंटे में एक पुस्तक का प्रकाशन हमने किया। इनमें से हिंदी की ही 200 पुस्तकें हैं, बाकी 480 पुस्तकें अन्य 23 भाषाओं में हैं। इसी से आप अनुमान लगा सकते हैं कि साहित्य अकादमी सर्वाधिक पुस्तकें हिंदी में ही प्रकाशित करती है। इनमें अधिकांश अनुवाद ही हैं। साहित्य अकादमी का उद्देश्य यही है कि भारतीय भाषाओं के साहित्य को एक दूसरे तक पहुँचाया जाए। मणिपुर में जो लिखा जा रहा है, उसे उत्तर भारत के लोग हिंदी में पढ़ें। हिंदी में जो लिखा जा रहा है उसे दक्षिण के लोग मलयालम ,तमिल आदि में पढ़ें जिससे सब एक–दूसरे की संस्कृति और लेखन को जान सकें।

हिंदी में अनुवाद के अतिरिक्त आप हिंदी लेखकों की किस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशन को महत्व देते हैं?

हम हिंदी के मुख्य लेखकों के लिए काफ़ी काम करते रहते है जिनमें विभिन्न लेखकों का रचना संचयन भी है। पिछले वर्ष हमने डॉ. हरिवंशराय बच्चन जी का रचना संचयन प्रकाशित किया। ऐसे ही प्रेमचंद जी और अन्य बहुत से लेखकों के रचना संचयन भी हम पहले निकाल चुके हैं। फिर अकादमी कमलेश्वर के संपादन में 'बीसवीं सदी की श्रेष्ठतम कहानियाँ' के चार संकलन भी प्रकाशित कर चुकी है। इसका पाँचवाँ संकलन भी है जिसे गायत्री कमलेश्वर ने सम्पादित किया। जिन लेखकों के जन्म शताब्दी वर्ष मनाते हैं उनके भी हम विनिबंध (मोनोग्राफ) और रचना संचयन निकालते हैं। सन् 2015–16 में हमने भीष्म साहनी और अमृत लाल नागर की जन्म शताब्दी मनाई, अब हम मुक्तिबोध और प्रभाकर माचवे का जन्म शताब्दी वर्ष मनाने जा रहे हैं। कुछ लेखकों का 125 वाँ या 150 वाँ जन्म वर्ष भी मनाते है। इस वर्ष राहुल सांकृत्यायन का 125 वाँ वर्ष भी मनाएँगे। ऐसे उत्सवों के दौरान लेखकों के रचना संकलन के पुस्तकाकार का प्रकाशन के साथ दो दिवसीय उत्सव भी मनाया जाता है, जिससे उनके बारे में आज की पीढ़ी भी अधिक से अधिक जान सके।

हिंदी की पुस्तकों की बात करें तो साहित्य अकादमी की हिंदी पुस्तकों में सर्वाधिक बिक्री वाली यानी 'बेस्ट सेलर' पुस्तक कौन सी हैं, जिससे हम यह भी जान सकें कि आज किस हिंदी लेखक का साहित्य सर्वाधिक लोकप्रिय है?

'प्रेमचंद रचना संचयन' हमारी सर्वाधिक बिक्री वाली हिंदी पुस्तक है। अकादमी ने इसका पहला मुद्रण 1994 में किया था। अब इसका छठा पुनर्मुद्रण हो गया है, पर आज भी इसे वैसे ही पसंद किया जाता है और यह पुस्तक वैसे ही बिकती है जैसे यह पहले बिकती थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद को लोग आज भी बहुत पसंद करते हैं। यूँ टैगोर के रचना संचयन की भी काफ़ी माँग रहती है। सच कहूँ तो मेरा भी यही मानना रहा है कि मुंशी प्रेमचंद का हिंदी साहित्य को लोकप्रिय करने में बहुत बड़ा योगदान है।

लेकिन यहाँ मैं आपसे यह भी जानना चाहूँगा कि जैसे आपने पीछे बताया कि दक्षिण के सी. राजगोपालाचारी ने हिंदी को दक्षिण में लोकप्रिय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यदि हम आज के समय में किसी ऐसे व्यक्ति को देखें जो ग़ैर हिंदी भाषी होते हुए भी हिंदी को लोकप्रियता दिलाने में अपना विशेष योगदान दे रहे हों तो आपकी दृष्टि में वह व्यक्ति कौन हैं?

वह व्यक्ति है हमारे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी। प्रधानमंत्री मोदी जी गुजराती हैं लेकिन इसके बावजूद हिंदी का बहुत अच्छा उपयोग करते हैं। आज वे जिस प्रकार जनप्रिय नेता बने है तो मेरा मानना है कि इसका बड़ा कारण हिंदी है। वे अपनी बातें लोगों तक हिंदी के माध्यम से बहुत अच्छे ढंग से पहुँचा रहे हैं। मैं उनके सभी भाषण बहुत ही गहराई से सुनता हूँ, वे हिंदी का प्रयोग इतने सुंदर ढंग से करते हैं कि सभी के दिलों में बस जाते हैं।

आप स्वयं दक्षिण से हैं लेकिन मैं आपको बराबर देखता रहा हूँ कि आप हिंदी में नियमित बात करते हैं। आपके कार्यक्रम, आपकी पत्रकार वार्ताएँ, संगोष्ठियाँ, सम्मेलन आदि में भी हिंदी को विशेष महत्व दिया जाता है। तो क्या आप हिंदी से विशेष प्रेम करते हैं या यह प्रशासनिक विवशताओं के चलते है?

आपने मुझसे यह सीधे और साफ शब्दों में बहुत अच्छा प्रश्न पूछा तो मैं भी आपको साफ शब्दों में ही बताऊँगा कि भारतीयता जितनी हिंदी भाषा में महसूस होती है उतनी किसी और भाषा में नहीं होती। यही कारण है कि हम सभी भाषाओं की पुस्तकें हिंदी में अवश्य प्रकाशित करते हैं और सर्वाधिक बिक्री भी हिंदी पुस्तकों की होती है। पुनर्मुद्रण भी हिंदी पुस्तकों का अधिक होता है। आज अनुवाद भी सबसे अधिक हिंदी में हो हो रहा है। यहाँ तक कि अनुवाद में जो अकादमी पुरस्कार हैं, वे भी सबसे अधिक हिंदी में दिए जाते हैं। दक्षिण के लेखक दक्षिण भाषाओं में लिखी पुस्तकों का सबसे ज्यादा हिंदी में अनुवाद करते है। इसलिए हिंदी अनुवाद के पुरस्कार भी दक्षिण लेखकों को ही ज्यादा मिल रहे हैं। इन्होंने हिंदी से भी दक्षिण भाषाओं में अनुवाद किया है। यह सब देख हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा एक लिंक के रूप में, अर्थात सभी को जोड़ने का काम कर रही है। जैसे हमको मराठी से मणिपुरी में अनुवाद करवाना होता है तो ऐसे लेखक नहीं मिलेंगे जो यह अनुवाद सीधे मराठी से मणिपुरी में कर पायें। यहाँ पर भी हम अधिकतर हिंदी या फिर कभी अंग्रेजी को माध्यम बनाते हैं। इसलिए हिंदी एक ऐसी भाषा है जो सामान्य व्यक्ति को रोटी दे रही है। हिंदी के माध्यम से एक छोटा–सा–छोटा व्यक्ति भी आय अर्जित कर सकता है। मुझे स्वयं हिंदी दिल

से पसंद है। मेरा व्यक्तिगत विचार तो यह भी है कि हिंदी का उपयोग देश भर में साहित्य के अतिरिक्त भी होना चाहिए। चाहे वह कार्यालयों में हो या विद्यालयों या महाविद्यालयों में हो, तभी हम हिंदी के महत्त्व को बढ़ा सकते हैं।

आप साहित्य अकादमी के कार्यालयों या अन्य कार्यक्रमों में हिंदी का उपयोग कितना या किस स्तर तक कराते हैं ?

हमारे संविधान के अनुसार साहित्य अकादमी का मुख्यालय उत्तर भारत में होने के कारण हमारे यहाँ हिंदी का प्रयोग शत् प्रतिशत् होना चाहिए। इसलिए हमारा यह पूरा प्रयास रहता है कि पत्र व्यवहार और बातचीत हम ज्यादा से ज्यादा हिंदी में ही करें। हमारे कार्यक्रमों में भी जब हम लेखकों को बुलाते हैं तो उनसे भी यही कहते हैं कि वे हिंदी अनुवाद को ही पढ़ें हाँ यदि कोई लेखक अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में पत्र व्यवहार करता है तो हम उसे हिंदी में ही जवाब दें यह अच्छा नहीं लगता, तब हम उसी की भाषा में जवाब देने का प्रयास करते हैं।

साहित्य अकादमी हिंदी में अपनी नियमित पत्रिकाएँ भी निकाल रही है?

जी, साहित्य अकादमी की 'समकालीन भारतीय साहित्य' का प्रकाशन तो 37 बरसों से हो रहा है। हमारी यह त्रैमासिक पत्रिका हिंदी साहित्य की एक प्रतिष्ठित पत्रिका बन चुकी है। इसके अतिरिक्त हिंदी में साहित्य अकादमी की गतिविधियों आदि को लेकर भी एक त्रैमासिक गृह पत्रिका 'रविंद्र' का भी प्रकाशन कर रहे हैं। साथ ही एक त्रैमासिक पत्रिका 'इंडियन लिटरेचर' अंग्रेजी में और एक त्रैमासिक पत्रिका 'संस्कृतप्रतिभा' संस्कृत में भी है।

हिंदी साहित्य विदेशों में भी लोकप्रिय हो, इसके लिए अकादमी की ओर से आप क्या प्रयास कर रहे हैं ?

साहित्य अकादमी विश्व हिंदी सम्मेलन में भी भाग लेती रहती है। दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका में हुए सम्मेलनों में हमने भाग लिया। इनमें हमने भारत से कुछ लेखकों को वहाँ भेजा। इसके अतिरिक्त साहित्य अकादमी के कार्यक्रम भी विदेशों में होते रहते हैं तो उनमें भी हम लेखकों को भेजते हैं, इससे हिंदी और हिंदी साहित्य बहुत देशों में पहुँच रहा है।

आपसे यह भी जानना चाहूँगा कि प्रतिष्ठित और अकादमी पुरस्कार विजेताओं के लिए तो अकादमी बहुत कुछ कर रही है लेकिन नए लेखकों को प्रोत्साहित करने में भी अकादमी की कुछ विशेष योजनाएँ हैं क्या ?

बिल्कुल हैं। इसमें अकादमी प्रति वर्ष युवा पुरस्कार तो युवा लेखकों को प्रदान करती ही है। साथ ही 40 वर्ष के युवाओं तक की पहली पुस्तक के लिए हमारी एक–'नवोदय' योजना है। इसके अलावा एक पुस्तक है 'आधुनिक कविता संकलन'। इसका हम करीब 10 भाषाओं में अनुवाद भी करा चुके हैं, इसमें भी नव लेखकों को प्राथमिकता दी जाती है। फिर महिला लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए भी हम बहुत कुछ करते रहते हैं।

मुझे याद है कि महिला लेखन पर तो आपने अलग–अलग खण्डों में कुछ संकलन भी प्रकाशित कराए हैं ?

जी हाँ, हम महिला लेखन पर तीन खंड प्रकाशित कर चुके हैं। एक प्रारंभिक लेखन पर है जिसे सुमन राजे ने संपादित किया, दूसरा महिलाओं के काव्य पर है जिसे अनामिका ने संपादित किया और एक ममता कालिया का सम्पादित किया हुआ है जिसमें महिलाओं के गद्य लेखन का संकलन है।

आज जब कई बार हम अनुभव करते हैं कि अंग्रेजी युवा पीढ़ी पर हावी होती जा रही है,हिंदी के प्रति कुछ लोग बिल्कुल ही लगाव नहीं रखते। आप इतने बरसों से साहित्य की दुनिया को इतने करीब से देख रहे हैं तो आपको आज हिंदी का भविष्य कैसा दिखता है?

हिंदी की भूमिका हमारे भारतीय समाज में उच्च स्तर की है। जैसे इसमें सभी रिश्तों के लिए अलग शब्द हैं। मौसा, फूफा, 'ताऊ जी' पर अंग्रेजी में सभी के लिए एक शब्द है 'अंकल'। ऐसे ही हिंदी में बहुत से मुहावरे हैं जो बहुत कम शब्दों में बहुत कुछ कहते हैं। लेकिन जब हम उनका अंग्रेजी में अनुवाद करवाना चाहते हैं तो दो से तीन लाइनों में लिखने पर भी हम उस मुहावरे का सटीक अर्थ नहीं समझा सकते। फिर हिंदी की लिपि देवनागरी होने के कारण और भी बहुत सी भाषाओं को देवनागरी में लिख कर पढ़ा जा सकता है। मैं देख रहा हूँ सिर्फ उत्तर भारत के ही नहीं, दक्षिण और उत्तर पूर्व के गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों के युवा भी हिंदी में लिख रहे हैं। हमने अभी उत्तर पूर्व के एक लेखक को उसकी हिंदी पुस्तक के लिए युवा पुरस्कार के लिए चुना है। इसलिए मैं तो आज भी हिंदी का भविष्य बहुत अच्छा देखता हूँ।

भारत -

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा से बातचीत 'बेबाक मन की बात'

—श्रीमती सुनन्दा वर्मा

चकाचौंध से दूर, चुपचाप, निरंतर काम में जुटे डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, प्रवासी भारतीय साहित्य का परिचय भारतीय पाठकों से करा रहे हैं। प्रवासी भारतीय साहित्य से उनका परिचय पहली बार तब हुआ जब भारतीय उच्चायोग, सूवा, फ़िजी में उन्होंने प्रथम सचिव, शिक्षा व हिंदी के रूप में कार्यभार सम्भाला। प्रवासी साहित्य में रुचि उन्हें दुनिया के कई कोने ले गई। सूरीनाम, ट्रिनिडाड और टोबैगो, मॉरीशस और दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी साहित्य पर उन्होंने शोध किया और पाँच महत्वपूर्ण किताबें लिखीं।

डॉ. वर्मा से इस ख़ास बातचीत के दौरान यह स्पष्ट हो जाता है कि 'वसुधैवकुटुंबकम्' का दृष्टिकोण उनके व्यक्तित्व का हिस्सा है। यही वजह है कि हिंदी और हिंदी के हर रूप में लिखने वाले लेखकों और कवियों को वे प्रेरित करते हैं और बिना किसी संकोच या झिझक, अपने मन की बात लिखने का उत्साह दिलाते हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्य में आपका रुझान कैसे हुआ?

बात 1984 की है जब मैंने सूवा, फ़िजी के भारतीय उच्चायोग में प्रथम सचिव, शिक्षा और हिंदी का कार्यभार सँभाला। फ़िजी पहुँचने से पहले मैंने वहाँ के बारे में कुछ पुस्तकें तो पढ़ी थीं लेकिन मुझे इसका ज्ञान बिल्कुल भी नहीं था कि उनकी अपनी एक विकसित की हुई हिंदी की अलग भाषिक शैली है। इसका अनुभव तो मैंने तभी किया जब मंत्रालय के अधिकारियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, धार्मिक नेताओं, शिक्षाविदों और भारत प्रेमियों से मेरी बातचीत शुरू हुई। मैंने देखा कि मुझ से तो वे अंग्रेज़ी में बातचीत करते हैं लेकिन जब आपस में बात करते हैं तो वे एक ऐसी भाषा में बोलते हैं जिसमें अवधी के शब्द हैं, भोजपुरी के है, खड़ी बोली के भी शब्द हैं। मैं अवध प्रदेश का हूँ, एक दिन मैंने भी उनसे अवधी में बात शुरू की। भाषा संस्कृतियों को जोड़ती है। उनकी आँखों में चमक आ गई। मैं उन्हें अपना लगने लगा। उसके बाद वे मुझसे अपनी हिंदी, 'फ़िजीबात' में ही बात करने लगे। इन्होंने हिंदी जन समाज के माध्यम से सीखी थी। फ़िजीबात में अवधी , भोजपुरी, खड़ीबोली, उन सभी जगहों की भाषा है जहाँ से 1879 से लोग फ़िजी काम करने आए थे। 'फ़िजी हिंदी' या 'फ़िजीबात' में अंग्रेज़ी और 'काइवीती' (फ़िजी की अपनी भाषा) के भी शब्द हैं। मैं एक भाषा–वैज्ञानिक हूँ, मैं इस भाषा के बारे में और जानना चाहता था। फ़िजी हिंदी में लेख, कविताएँ, कहानियाँ लिखने वालों से मैं मिला। फ़िजी हिंदी के पत्रकारों और रेडियो पर कार्यक्रम करने वालों से भी मिलना हुआ। 'शान्तिदूत' वहाँ का साप्ताहिक हिंदी अख़बार है। उसका फ़िजी हिंदी में लिखा स्तंभ 'थोरा हमरो भी तो सुनो' पूरे पैसिफ़िक में लोकप्रिय था।

मैं अब सूरीनाम, मॉरीशस, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ़्रीका– उन सभी देशों में विकसित हुई शैली को जानने के लिए उत्सुक था जहाँ कई वर्ष पूर्व भारत से लोग गिरमिटिया के रूप में पहुँचे थे। जब मैं सूरीनाम गया तो देखा कि उन्होंने अपनी हिंदी, 'सरनामी' – को, अवधी के आधार पर विकसित किया है। सरनामी में डच और श्रानन टोंगो, सरनामी की मूल भाषा के शब्द भी हैं। मॉरीशस ने फ़्रेंच के साथ हिंदी विकसित की और दक्षिण अफ़्रीका ने अपनी हिंदी को 'नैताली' नाम दिया। इन सभी देशों में मैंने भारत और हिंदी के लिए उत्साह और अनुराग देखा। हिंदी के ये रूप सुनने में कुछ अलग लगते हैं क्योंकि इन सब में उन देशों की संस्कृति भी जुड़ी है, लेकिन हिंदी का मूलतः ढाँचा एक ही है।

आपने इन्हीं देशों के हिंदी प्रवासी भारतीय साहित्य पर क्यों काम किया ?

फ़िजी, सूरीनाम, मॉरीशस, ट्रिनिडाड और दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी साहित्य में मुझे ऐसी निधि मिली जो भारत में अनछुई सी

थी। विदेशियों ने इन भाषा शैलियों पर कोश बनाये, इनके व्याकरण भी लिखे लेकिन भारत में ये अनदेखे ही रहे। कुछ हिंदी वालों का मानना था कि हिंदी की ये शैलियाँ अवैज्ञानिक हैं, अशुद्ध हैं, इनमें व्याकरण के दोष हैं। कुछ भारत स्थित हिंदी विद्वानों ने इनका मज़ाक भी उड़ाया।

मेरी राय अलग थी। यह समझना ज़रूरी है कि भाषा का काम संप्रेषण है। जिस भाषा से हम अपनी बात एक दूसरे को समझा सकते हैं, धीरे–धीरे वह व्याकरणिक हो जाती है। वही भाषा मान्य हो जाती है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि जिस तरह बंबइया हिंदी (मुंबई में विकसित हुई हिंदी) और हैदराबादी हिंदी (हैदराबाद में विकसित हुई हिंदी) हैं, उसी तरह 'फिजीबात', 'सरनामी' और 'नैताली' भी हिंदी के रूप हैं। फर्क है तो सिर्फ़ यही कि ये भारत के बाहर विकसित हुईं। हमें इन सब भाषाओं को मान देना चाहिए और अध्ययन करना चाहिए। इन भाषाओं को नज़रअंदाज़ करना संस्कृति को नज़रअंदाज़ करना है।

इन देशों के कई लेखक भारत कभी नहीं आए, लेकिन वे भारत से जुड़े हुए हैं। वे यहाँ के भारतीयों से अपना एक भावनात्मक संबंध मानते हैं। उन्होंने वहाँ 'रामचरितमानस' को आज दो सौ वर्षों के बाद भी जीवित रखा है, उनकी चौपाइयां वे बड़े भाव विभोर हो कर गाते हैं। हर गाँव में रामायण मंडली है। ये बात सिर्फ़ फ़िजी की ही नहीं है, सूरीनाम में भी ऐसा है, मॉरीशस में भी ऐसा ही है, दक्षिण अफ़्रीका में भी ऐसा ही है। यह इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने जीवन मूल्यों के लिए तुलसी की 'रामचरितमानस' कृति को चुना, सुख–दुःख में वह उनका साथ देती है। 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', कबीर सब उनके करीब हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी वे इनको पढ़ते आए हैं। सदियों से उन्होंने हिंदी को संजोया है। हिंदी उनके लिए ज़रूरी नहीं है पर हिंदी उनके लिए वह पूंजी है जो उनके पूर्वज लाए थे। इन देशों के प्रवासी साहित्य में ये भाव और लगाव झलकते हैं। ये साहित्य, भाषा और समाज, दोनों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन का क्या महत्व है ?

अगर आप समाज को समझना चाहते हैं तो उसके साहित्य का अध्ययन ज़रूरी है। साहित्यिक दस्तावेज़ समाज, उसकी सोच, भावनाओं, चुनौतियों, महत्वाकांक्षाओं प्रगति और विकास को दर्शाता है। लोकगीत मौखिक दस्तावेज़ हैं। ये दोनों समाज के दर्पण हैं और उनकी अभिव्यक्ति का, उनकी भावनाओं का भंडार हैं। अगर हम प्रवासी भारतीयों से जुड़ना चाहते हैं, तो हमें उनके साहित्य को पढ़ना होगा, समझना होगा, सराहना होगा और भारतीय साहित्य के साथ बराबर की जगह उसे देनी होगी। जब हम प्रवासी भारतीयों को संबोधित करते हैं तो हम उनसे कुछ न कुछ माँगते हैं– निवेश की बात हो या कुछ और। हमें यह सोचना चाहिए कि हम उन्हें देते क्या हैं। मुझे लगता है कि यदि उनके लिखे साहित्य को हम प्रकाशित करें, प्रचारित करें, उनका मूल्यांकन करें तो अच्छा होगा।

आपने हिंदी की रचनाओं पर ही क्यों काम किया?

मुझे ऐसा लगता है कि व्यक्ति अपनी भाषा में अपनी बातों को सबसे अच्छी तरह कह सकता है। जो भाषा उसने सीखी है, जो उसकी अपनी नहीं है, उसमें वह अपने मन की बात उतने अच्छे ढंग से नहीं कह पाता है। यही कारण है कि फ़िजी में ही नहीं, चाहे वह सूरीनाम हो, मॉरीशस हो या चाहे दक्षिण अफ़्रीका हो, सब जगह के प्रवासी भारतीय जो अपनी विकसित की हुई शैली में लिखते हैं, वह अधिक मन को छूती है, उसमें अपनापन होता है। यही कारण है कि जब फ़िजी के डॉ सुब्रमणी ने अपना उपन्यास 'डउका पुरान' फ़िजी हिंदी में लिखा तो सारे फ़िजी में ही नहीं, हर जगह जहाँ भी भारतीय रहते थे, चाहे वे हॉलैंड के हों, चाहे न्यूज़ीलैंड के हों या वहाँ से दूर बसे फ़िजी के भारतीय हों, उनको वह अपना लगा। यही बात सरनामी में लिखने वाले हरदेव सहतू, डॉ. जीत नारायण और हरिदत्त लक्ष्मन की कविताओं के साथ हुआ।

इस विषय पर आपके पाँच महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। उनके बारे में बताएँ।

भारत में प्रारंभ में जब मैंने फ़िजी का काम शुरू किया तो मैंने पहले अपने फ़िजी संबंधी अनुसंधानपरक लेखों को पत्रिकाओं में प्रकाशित कराना शुरू किया जिससे लोगों में उसके बारे में थोड़ी जानकारी हो। कई वर्षों तक वह काम चलता रहा। भारत आने के 13 वर्ष बाद मेरी पुस्तक, 'फ़िजी में हिंदी –स्वरूप और विकास' प्रकाशित हुई। इस किताब में फ़िजी में हिंदी के स्वरूप और स्थिति का विस्तार से विवेचन है। इसके 12 वर्ष बाद साहित्य अकादमी ने मेरे फ़िजी के हिंदी साहित्य का एक संचयन प्रकाशित किया। इस संकलन का नाम रखा गया–'फ़िजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य'। उसके प्रकाशन से फ़िजी के अनेक लेखकों का परिचय भारतीय हिंदी जगत से हुआ। इसी तरह 'सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य', और 'मॉरीशस का सृजनात्मक हिंदी साहित्य' संचयन प्रकाशित हुए । हर देश के लिए मैंने उस देश के एक विशेषज्ञ का सहयोग लिया। इनके प्रयत्न और सहयोग से वहाँ के लेखकों की मैं सहमति प्राप्त कर सका और चयन का काम हुआ। मुझे फिर लगा कि अलग–अलग देश की रचनाएँ तो प्रकाशित हो गईं, लेकिन एक ऐसे समूचे संकलन की आवश्यकता है जिसमें इन सारे देशों की रचनाओं का संकलन हो। फिर भारतीय ज्ञानपीठ ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के सहयोग से मेरा एक बड़ा संकलन, 'प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य' प्रकाशित किया। इसमें फ़िजी, सूरीनाम, मॉरीशस और दक्षिण अफ़्रीका की रचनाएं हैं। इस संचयन में सह सम्पादक धीरा वर्मा, भावना सक्सेना, सुनंदा वी अस्थाना और डॉ. अलका धनपत हैं जिन्होंने फ़िजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका तथा मॉरीशस के साहित्य संचयन में बड़ी प्रतिबद्धता और श्रम से मेरा सहयोग किया है और इस प्रकार 'प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य' ग्रंथ भारत से बहुत दूर विभिन्न देशों में बसे हुए इन प्रवासी भारतीयों के सर्जनात्मक हिंदी लेखन का समेधित, प्रामाणिक और शोधपरक दस्तावेज़ बन गया है।

प्रवासी भारतीयों के साथ संबंध मज़बूत करने के लिए क्या किया जा सकता है?

सांस्कृतिक राजनय, दो मित्र देशों के मध्य कूटनीतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में सबसे अधिक प्रभावकारी परोक्ष माध्यम है। मैंने अपने काम के ज़रिए प्रवासी भारतीय हिंदी लेखकों का परिचय भारत के पाठकों से कराया है। इन किताबों को पढ़ने से व्यक्ति की सोच का दायरा बढ़ता है। उसे यह समझ में आता है कि हिंदी में साहित्यिक लेखन केवल अपने ही देश में नहीं, हिंदी प्रदेश में ही नहीं, विश्व में अनेक जगह भारतीयों द्वारा हो रहा है और यह अनेक रूप में हो रहा है– कहानी, कविता, निबंध, आलोचना, संस्मरण के रूप में, हर विधा में हो रहा है। जब हम एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझते हैं तो हमारे संबंध अधिक गहरे होते हैं, सच्चे होते हैं। मुझे लगता है कि प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य का प्रवेश विश्वविद्यालय के हिंदी पाठ्यक्रमों में होना चाहिए। जैसे हिंदी का साहित्य केवल हिंदी क्षेत्र का साहित्य नहीं है, वह भारत में जो अन्य प्रदेश हैं वहाँ पर जो हिंदी में लिखा जा रहा है, वह भी उसके अंतरगत आता है, इसी तरह जो विदेशी भूमि पर हिंदी में लिखा हुआ साहित्य है वह भी हिंदी साहित्य है। हिंदी की विश्व में एक बहुत बड़ी भूमिका है और यह भूमिका, इसकी प्रतिष्ठा वहाँ बसे प्रवासी भारतीयों ने सबसे अधिक की है। इसलिए उनके साहित्य का संकलन हो, उनके साहित्य का विवेचन हो, उसका मूल्यांकन हो और उनको अपनी भाषा में साहित्य लिखने के लिए हम प्रोत्साहित करें जिससे वे अधिक से अधिक अपनी हिंदी में लिख सकें।

मुझे तो लगता है कि हिंदी में जो कुछ देश–विदेश में लिखा जा रहा है, वह सब हिंदी को और अधिक संपन्न बनाने वाला है, हिंदी की शक्ति को बढ़ाने वाला है और हिंदी के माध्यम से विश्व के अनेक देशों से भारत के संबंध को सुदृढ़ करने वाला है। यह राजनीतिक दृष्टि से, सांस्कृतिक दृष्टि से और कूटनीतिक दृष्टि से भारत के लिए बहुत मूल्यवान है। एक दूसरे को समझने की इच्छा और प्रयास, दोनों ज़रूरी है।

भारत

भारत -

रचनात्मक लेखन वादों में बँधकर नहीं लिखा जाता

—डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी

व्यास सम्मान से सम्मानित लेखिका मृदुला गर्ग किसी विचारधारा या विमर्श में बँधकर लेखन नहीं करतीं। 'चुकते नहीं सवाल' में वे लिखती हैं कि 'हम सृजन भावबोध से करते हैं, लिंगबोध से नहीं।' समस्त मानव समुदाय ही उनकी चिंता के केंद्र में है। उनका जितना लेखन स्त्रियों की पीड़ा को संबोधित है उतना ही समाज की अन्य समस्याओं को लेकर भी। पर्यावरण की चिंता उनके लेखन को खास बनाता है, जिसकी जद में समस्त चराचर जगत है। 'उसके हिस्से की धूप', 'कठगुलाब', 'चितकोबरा' जैसे चर्चित उपन्यासों की लेखिका के साथ डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी की यह बातचीत काफी पहले हुए थी, लेकिन उसकी उपयोगिता आज भी बनी हुई है। प्रस्तुत है उस वार्तालाप के महत्त्वपूर्ण अंश–

आपने पुरुष रचनाकारों की तुलना में अधिक उम्र में लिखना आरंभ किया, लेकिन आपको सफलता और शोहरत जल्दी मिली।

ऐसा तो नहीं है, तीस वर्ष हो गए लिखते हुए। वैसे हिंदी की अधिकतर लेखिकाओं ने देर से ही लिखना आरंभ किया है। इसका कारण है कि हम परिवार में रहते हैं और उसके दायित्वों और परेशानियों को संभालते और उनका सामना करते हुए लिखते हैं। यह एक समाजशास्त्रीय अध्ययन का विषय है, पच्चीस वर्ष पहले मैंने इसकी ओर इशारा किया था।

आपके पहले उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका परिवार, प्रेम और विवाह के बीच झूलती रहती है और अंत में किसी सुसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाती। इसकी क्या वजह है?

आप उपन्यास का अंत याद कीजिए– वह कहती है कि 'मैं गर्भ में शिशु को रखकर लेखन करूँगी और मुझे बच्चा भी होगा।' वह परिवार, लेखन और शिशु, तीनों के दायित्वों के निर्वहन की बात करती है। असल में मैं जिस समय यह उपन्यास लिख रही थी, उस समय भारत में स्त्रीवादी विमर्श आरंभिक दौर में था और लेखिकाएँ आदर्श पुरुष की तलाश और विवाहेतर संबंधों पर जमकर लिख रही थीं। तब मैंने सोचा कि आखिर इससे क्या मिलेगा–एक पुरुष, दूसरा पुरुष, फिर तीसरा पुरुष। मुझे लगा कि एक आदर्श पुरुष या एक आदर्श स्त्री की सोच केवल रोमांटिक सोच है। 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका भी रुमानी ख्यालात की है लेकिन इस रुमानियत से गुजर कर जो एक यात्रा है, अंततः वह इस बिंदु पर पहुँचती है कि जो कुछ भी प्राप्त करना है, अपने भीतर से प्राप्त करना है।

लेकिन दूसरे उपन्यास 'चित्तकोबरा' में तो रुमानियत को ही आपने आधार बनाया है?

उसमें रुमानियत नहीं है, प्रेम है। प्रेम रुमानियत नहीं होता। असल में गड़बड़ यह है कि हमारे यहाँ हिंदी सिनेमा के प्रभाव में आकर प्रेम और रुमानियत को एक कर दिया गया है। प्रेम बहुत ही निष्ठा और ईमानदारी की माँग करता है, उसके माध्यम से आपके व्यक्तित्व का विकास होता है। अलहड़ उम्र का प्रेम रुमानी हो सकता है लेकिन 'चित्तकोबरा' का प्रेम तो दो परिपक्व स्त्री–पुरुषों का प्रेम है। इसमें निष्कलुष और निस्स्वार्थ प्रेम का चित्रण हुआ है। 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका तो तलाक भी लेती है लेकिन 'चित्तकोबरा' के प्रेम में कुछ भी नष्ट नहीं होता। 'चित्तकोबरा' में एक गहन प्रेम है जो रिचर्ड और मनु दोनों के व्यक्तित्व को विकसित करता है, उनके अनेक आयामों को उद्घाटित करता है। जीवन को देखने का उनका नजरिया बदल जाता है। मनु एक गृहिणी के रूप में जीवन के छोटे से दायरे में जी रही थी लेकिन रिचर्ड के प्रेम में वह उसकी ही आँखों से दुनिया के अनेक देशों को देख, समझ और महसूस कर पाती है। समय और काल की अवधारणा उसके समक्ष स्पष्ट हो जाती है।

पहले उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में रुमानियत भरा प्रेम, दूसरे उपन्यास 'चित्तकोबरा' में रुमानियत से उबरकर प्रेम की गहराइयों में डूबने का भाव, लेकिन 'कठगुलाब' में न रुमानियत है और ना ही प्रेम, केवल

स्त्रियाँ हैं, उनका शोषण और उनका संघर्ष है। तो क्या आप अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि एक स्त्री की नियति अंततः शोषित होना है?

देखिए कोई निष्कर्ष नहीं होता बल्कि एक ही समय में अनेक स्थितियाँ होती हैं और हम उनमें से किसी एक का चयन कर लेते हैं। अब एक उपन्यास में सारी दुनिया की समस्याओं को तो समाहित नहीं किया जा सकता न। जिस समय मैंने 'उसके हिस्से की धूप' लिखी, उसे प्रमाणिक नहीं माना गया, लेकिन 1995 तक आते–आते वह प्रमाणिक हो गया। किसी रचना में केवल वर्तमान का चित्र नहीं होता बल्कि उसमें भविष्य की भी दृष्टि होती है। 'कठगुलाब' में केवल स्त्री का शोषण नहीं है, बल्कि स्त्रीत्व का विद्रोह भी है। 'कठगुलाब' की हरेक स्त्री शोषण से गुजरकर परिपक्व होती है और अपने–अपने कर्मक्षेत्र का चयन करती है। नर्मदा, असीमा की माँ, स्मिता, मारियान–सब अपने–अपने क्षेत्र में सफल होती हैं। यदि कोई चरित्र उसमें असफल होता है तो वह प्रचंड नारीवादी असीमा, और अंत में उसे महसूस होता है कि एक कुटुम्ब होता है जिसको बचाना चाहिए। तो 'कठगुलाब' अंततः स्त्री की भागीदारी को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है।

'कठगुलाब' पर यह आरोप लगाया गया है कि आपने इसमें समस्याओं का एक निष्कर्ष दिया है। प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यासों की तरह आपने एक आश्रम की परिकल्पना की है, जहाँ 'कठगुलाब' के अधिकतर पात्र पहुँचते हैं। प्रेमचंद ने ऐसा अपने लेखन के आरंभिक दौर में किया था जबकि आप काफ़ी कुछ लिखने के बाद कर रही हैं।

यह जबरदस्त सरलीकरण है। 'कठगुलाब' की पूरी यात्रा को देखिए। यदि आप सतही निगाह से देखेंगे तो 'कठगुलाब' और 'सेवासदन' में कुछ समानता मिलेगी। पहली बात तो यह कि 'कठगुलाब' के सारे पात्र उस गाँव में नहीं जाते बल्कि केवल स्मिता और असीमा जाती हैं। वे दोनों भी वहीं संन्यास लेकर नहीं गई हैं बल्कि एक प्रोजेक्ट के तहत गई है। स्मिता और असीमा बुरी तरह शोषित स्त्रियाँ हैं। स्मिता का पहला प्रेम प्रकृति है जिससे निकटता के लिए वह उस गाँव में जाती है। असीमा परिवार के सुख को कभी महसूस नहीं कर पाई, वहाँ जाकर उसे एक वृहत् परिवार मिला। बाद में, विपिन वहाँ जाता है तो अपने जीवन के निरर्थकता बोध से मुक्ति के लिए। तो यदि चरित्रों की संरचना, उनके गाँव में जाने के कारण और स्थितियों पर समग्रता के साथ विचार करेंगे तो आप 'कठगुलाब' की तुलना 'सेवासदन' से नहीं कर सकते।

'कठगुलाब' पर यह भी आरोप लगता है कि इसके सारे मुद्दे, मुहावरे और घटनाएँ पश्चिम–प्रेरित हैं।

देखिए, हमारे देश का लोकतंत्र, न्यायपालिका, राजनीति, साहित्यिक विमर्श, सब कुछ पश्चिम से आया है। हम वर्षों से पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान से आक्रांत रहे हैं। भारत का स्त्री–विमर्श भी पश्चिम से आया है, इसलिए 'कठगुलाब' पर भी उसकी थोड़ी–बहुत छाप हो सकती है, लेकिन वह नकल नहीं है। 'कठगुलाब' में नर्मदा है, उसकी संवेदनशीलता, नारीत्व, ममता, माया आदि को आप पश्चिमी नहीं कह सकते। असीमा की माँ के त्याग और क्षमा को आप भारतीय ही कहना चाहेंगे। विपिन के व्यक्तित्व के भीतर अर्द्धनारीश्वर की छवि आप आसानी से देख सकते हैं, उसका दुःखवाद बौद्ध दर्शन से उत्पन्न हुआ है। उसके भीतर दुःख के द्वारा उत्सर्ग की जो भावना है वह जापान में तो मिल जाएगी लेकिन पश्चिम में नहीं। कुछ दिनों पहले मैं जापान गई थी, वहाँ मैंने 'कठगुलाब' को पढ़ा, लोगों ने बहुत पसंद किया। 'कठगुलाब' के जापानी अनुवाद की भी बात चल रही है, तो इसमें भारतीयता बहुत गहरे रूप में विद्यमान है।

प्रत्यक्षतः स्त्री समस्या पर लिखे आपके तीन उपन्यासों–'उसके हिस्से की धूप', 'वितस्ता' और 'कठगुलाब' पर तो पर्याप्त चर्चा हुई है लेकिन अन्य सामाजिक मुद्दों पर केंद्रित अन्य तीन उपन्यासों–'अनित्य', मैं और मैं और 'वंशज' को ज़्यादा महत्त्व नहीं मिला। इसकी क्या वजह है?

यह जान बूझकर किया गया है। आरंभ में मुझसे हिंदी के गण्यमान्य आलोचकों को यही दिक्कत हुई कि उसे किस खाँचे में डाला जाए क्योंकि स्त्रीवादी विमर्श का उनका जो खाँचा था उसमें मैं आती नहीं थी। उनका आरोप है कि स्त्रियाँ केवल अपना रोना रोती हैं, राजनीति, इतिहास और संसार की अन्य समस्याओं पर नहीं लिखतीं, लेकिन जब वे लिखती हैं तो ये उन्हें उपेक्षित कर देते हैं। यह एक बड़े कैनवास को सीमित

करने की राजनीति है। इससे किसी की आलोचना आसान हो जाती है।

आपकी कहानियों के केंद्र में पर्यावरण और उससे जुड़ी समस्याएँ हैं। 'कठगुलाब' की नायिका स्मिता सामाजिक शोषण से मुक्ति की चाह में प्रकृति की गोद में ही जाती है, तो क्या आप स्त्रीवादी विमर्श और पर्यावरण संकट के बीच किसी प्रकार का अंतःसंबंध देखती हैं?

स्त्रियाँ पर्यावरण का ज़्यादा ख़्याल रखती हैं क्योंकि वे उन पर निर्भर हैं, लेकिन पर्यावरण का संकट तो केवल स्त्रियों का संकट नहीं है, यह तो पूरे समाज की समस्या है। और देखिए मैं स्त्रीवादी विमर्श को दिमाग में रखकर कोई रचना नहीं करती, आप चाहें तो उसमें स्त्रीवादी–विमर्श देख लें, चाहें तो पुरुषवादी विमर्श खोज लें। मैं स्त्रीवादी विमर्श और पुरुषवादी विमर्श जैसे शब्दों से परहेज़ करती हूँ। विमर्श का कोई लिंग नहीं होता, विमर्श विमर्श होता है, चाहे वह स्त्री करे या पुरुष। विमर्श से विषय निकलते हैं। आप किसी विषय पर विमर्श नहीं करते, हमारे यहाँ विमर्श को बेहद हल्के ढंग से लिया जाता है। हम यह मानकर चलते हैं कि यदि किसी रचना में स्त्री के शोषण की गाथा है तो उसमें स्त्रीवादी विमर्श है। किसी भी स्थिति के कार्य–कारण और परिणाम पर विचार करना विमर्श है। स्त्री होने के कारण किसी स्त्री के होने वाले शोषण के विषय में किया जाने वाला विमर्श स्त्रीवादी विमर्श कहलाएगा। इस विमर्श में बहुत सारी चीजें छूट जाती हैं क्योंकि आप इसमें स्त्रियों की समस्या को केवल स्त्रियों के संदर्भ में देखते हैं। श्रेष्ठ विमर्श तो वह होता है जो संपूर्णता में किया जाए। विमर्श में एक विषय से दूसरा विषय निकलता है।

कुछ लेखिकाएँ स्त्रीवादी विमर्श में पुरुषों के हस्तक्षेप को नकारती हैं, क्या आप इसके विरोध में हैं?

यह तो बिल्कुल गलत बात है। क्या स्त्रीवादी विमर्श केवल स्त्रियाँ करेंगी? वैसे मैंने तो किसी लेखिका को ऐसा कहते नहीं सुना है।

उनका तर्क है कि हमारी आत्मानुभूति को सहानुभूति से नहीं समझा जा सकता।

ठीक है अनुभूति को नहीं समझा जा सकता लेकिन विमर्श तो आप कर ही सकते हैं। दो स्त्रियों की अनुभूति में भी अंतर होता है। अनुभूति और विमर्श दो अलग चीजें हैं। विमर्श का संबंध विचारों से है, अनुभूति से नहीं। वैसी स्त्री और पुरुष के बीच मातृत्व को छोड़कर क्या अंतर है जिससे अनुभूतियों में भिन्नता होगी?

यह बात तो केवल जैविक स्तर पर लागू होती है, लेकिन सामाजिक स्तर पर तो उनके बीच बहुत अंतर है?

हाँ, सामाजिक स्तर पर कुछ अंतर समाज के विकास की प्रक्रिया में बन गए हैं और उसी अंतर को समाप्त करने के उद्देश्य से नारीवादी विमर्श का आरंभ हुआ। लेकिन अनुभूति और विमर्श में बहुत अंतर है। यह जरूरी नहीं कि आपके पास अनुभूति हो तो आप विमर्श भी करने लगें।

लेकिन यदि अनुभूति ही नहीं होगी तो विमर्श कैसे होगा? आप दुनिया के पिछले पाँच हजार वर्षों के इतिहास पर यदि नज़र डालें तो पाएँगी कि जब तक स्त्रियों ने स्वयं आगे आकर अपनी समस्याओं के खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठाई तब तक पुरुष–प्रधान समाज ने उनकी पीड़ा को नहीं समझा और आज भी समझने में आनाकानी कर रहा है।

नहीं ऐसा नहीं है। हिंदी में जैनेन्द्र हैं, टॉलस्टॉय ने 'अन्ना केरेनिना' लिखा।

लेकिन इनके लेखन में भी एक पुरुषवादी नज़रिया है?

देखिए रचनात्मक लेखन वादों में बँधकर नहीं लिखा जाता। उसमें अनेकार्थता होती है, श्लेष होता है, उसमें पात्र जीते हैं। उसमें स्त्री और पुरुष, दोनों की चेतना का मिला–जुला रूप अभिव्यक्त होता है। उससे आप जैसा निष्कर्ष निकालना चाहेंगे निकाल सकते हैं–चाहें तो स्त्रीवादी विमर्श, चाहें तो पुरुषवादी विमर्श। मैंने 'कफन' कहानी को स्त्रीवादी विमर्श की दृष्टि से देखने की माँग की थी। स्त्रीवादी विमर्श को सरलीकृत नहीं करना चाहिए। स्त्रियों को यह कहने का अधिकार नहीं है कि हमारी अनुभूतियाँ बिल्कुल निजी हैं इसलिए हम जो भी कहेंगे वह विमर्श हो

जाएगा। विमर्श करना पड़ता है। विमर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो महज अनुभूति से नहीं आती और ना ही सहानुभूति से आती है। आप क्या समझते हैं कि स्त्री–विचारक पुरुष–विचारकों की तुलना में स्त्रियों के शोषण को ज़्यादा बारीकी से समझेंगी?

मुझे तो ऐसा ही लगता है, आखिर सिमोन ने ही तो समग्रता में स्त्रियों की समस्याओं को समझा।

सिमोन ने यदि देखा तो इसलिए क्योंकि उनके पास सिमोन जैसा मस्तिष्क था। केवल स्त्री होने से ही कोई स्त्री अपने शोषण को समझ लेगी, यह तो संभव नहीं लगता। सार्त्र, रूसो, मिल आदि ने तो पुरुष होते हुए भी स्त्रियों की समस्याओं को जितनी गम्भीरतापूर्वक देखा वैसा तो कई प्रसिद्ध लेखिकाएँ भी नहीं देख पाईं।

डॉ. नामवर सिंह ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि पश्चिम में नारीवादी विमर्श के कारण तलाक की घटनाएँ बढ़ी हैं और यह उसकी बड़ी असफलता है। आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

देखिए, तलाक की घटनाओं का नारीवाद से कोई संबंध नहीं है, यह आर्थिक स्थितियों से जुड़ा है। भारत की तुलना में पश्चिम में स्त्रियाँ आर्थिक रूप से अधिक स्वतंत्र हैं इसलिए वहाँ तलाक बढ़ा है। यदि भारत में भी स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ेगी तो उनके पास विकल्प बढ़ेंगे और वे स्वतंत्र निर्णय लेंगी। देखिए, नारीवाद कोई युद्ध या मुहिम नहीं है। नारीवाद की विलक्षणता यह है कि वह जड़ या रूढ़ नहीं है, वह देश और काल के अनुरूप परिवर्तित या कहें, विकसित होता रहता है। नारीवादी अवधारणा की एक बड़ी उपलब्धि यह रही है कि इसने स्त्रियों के लेखन को स्वीकृति दिलाई है, लेकिन भारत में स्त्रीवादी लेखन का एक लम्बा चौड़ा जाल बिछ गया है जिसके कारण स्त्रियाँ जो भी लिख रही हैं उसे श्रेष्ठ लेखन मान लिया जा रहा है। यदि आप कह रहे हैं कि स्त्रियाँ सिर्फ स्त्रियों की समस्याओं पर लिखेंगी तो आप उन्हें उसी खाँचे में डाल रहे हैं जिसमें वे पिछले हजार वर्षों से पड़ी हुई हैं। मैं तो कहती हूँ कि स्त्रियों को समाज की प्रत्येक समस्या पर लिखना चाहिए।

तलाक की बढ़ती घटनाओं को हम समाज की जड़ताओं और रुढ़ियों के खिलाफ स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले विद्रोह के रूप में भी तो देख सकते हैं?

तलाक या कोई भी संबंध–विच्छेद कष्टकर होता है। बात–बात पर तलाक मजाक है और इसका यह भी मतलब है कि आपके संबंधों में भावनात्मक उन्मेष नहीं है। इन बातों को सतही और सरलीकृत रूप में नहीं देखना चाहिए। आप आंदोलन और अवधारणा में भी अंतर करें। पश्चिम में स्त्रीवादी आंदोलन एक तात्कालिक उद्देश्य के साथ पैदा हुआ था कि स्त्रियों को शोषणमुक्त कर उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किया जाए। लेकिन यह एक छोटा लक्ष्य है, असल में बड़ा लक्ष्य यह है कि समाज में किसी भी स्तर पर असमानता होनी ही नहीं चाहिए। जो समाज जितना विषम होगा उसमें स्त्री–पुरुष के बीच उतना ही अंतर होगा और वहाँ स्त्रियों का और अधिक शोषण होगा, या यूँ कहें कि जो भी कमजोर होगा वह शोषित होगा। अधिकतर परिवारों में स्त्रियों के साथ–साथ बच्चों का भी शोषण होता है जिसे हम अक्सर अनदेखा कर देते हैं। यदि किसी परिवार में पुरुष कमजोर होगा तो वह भी दबाया जाएगा। यदि स्त्री सत्ता में आएगी तो वह भी शोषण करेगी। आज तक वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं कि स्त्री–पुरुष के बीच कोई मूलभूत जैविक अंतर होता है और स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक संवेदनशील और ममतामयी होती है। जब भी स्त्रियाँ सत्ता में आई हैं उन्होंने शोषण किया है।

अपनी तमाम व्यस्तताओं के बीच आपने मुझे इतना समय दिया और मेरी अनेकानेक जिज्ञासाओं को शांत किया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

पंडित राजमन रामसाहा जी से बातचीत

—डॉ. उदय नारायण गंगू

पंडित राजमन रामसाहा जी का जन्म 6 जून 1844 को लालमाटी ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबूराम और माता का नाम जसमतिया था।

पंडित राजमन जी सन् 1966 में अध्यापक बने। आप सन् 1963 से वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार में लगे हुए हैं। इस लम्बी अवधि के दौरान आप वर्षों तक आर्य सभा के 'आर्य पुरोहित मण्डल' के प्रधानाचार्य के रूप में सेवा करते रहे है। आप आज के परिवेश मे भी आर्य–परम्पराओं की रक्षा में विश्वास करते है और मानते है कि वेद अपौरुषेय है। वैदिक मर्यादाओं मे जीकर आर्य–संतान होने का गौरव बढ़ाना चाहिए। ऐसा करने से हम अपने प्राचीन ऋषि–महर्षियों के प्रति अपनी श्रद्ध ाजलि अर्पित कर पाएँगे।

पंडित राजमन रामसाहा जी मॉरीशस की 'आकाशवाणी और दूरदर्शन से सैकड़ो वैदिक सन्देश दे चुके है। आपकी लेखन और प्रवचन में अभिरुचि सबके लिए अनुकरणीय है। अब तक आपकी 22 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आप वर्षों से 'आर्योदय' पत्र में अनवरत गति से लिखते रहे है। पंडित राजमन रामसाहा जी हिन्दी और भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार मे अनवरत प्रयास करते रहे है।

हिन्दी–सेवी पंडित राजमन रामसाहा जी ने मॉरीशस मे हिन्दी के प्रचार–प्रसार मे बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हाल में उनसे जो बातचीत हुई, उसे साक्षात्कार के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्रश्न – पंडित राजमन जी, कृपया आप अपने बाल्यकाल के बारे में कुछ बताइये।

उत्तर – बाल्यावस्था मे ही मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया। पिता की छत्र–छाया से वंचित हो जाने के कारण मेरा बाल–काल बड़े अभाव में व्यतीत हुआ। मैं जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बचपन से ही काम में लग गया। औपचारिक शिक्षा भी पा न सका। दैनिक काम से अवकाश मिलने पर हिन्दी–अंग्रेजी की शिक्षा पाने के लिए कई गुरुओं की शरण में जाता रहा। मेरे जन्म–स्थान – लालमाटी गाँव में श्री बलराम ठाकुर हिन्दी अध्यापक के रूप में प्रसिद्ध थे। उन्हीं के मार्गदर्शन में मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संचालित कुछेक परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। अन्य अध्यापकों से ट्यूशन लेकर अंग्रेजी, फ्रेंच और दूसरे विषयों मे लंदन विश्वविद्यालय की जी.सी.ई. परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। आर्य समाज के विद्वानो के ससर्ग मे आकर मैंने 'विद्या वाचस्पति' परीक्षा में सफलता प्राप्त की। इस तरह शारीरिक और मानसिक परिश्रम करते हुए मेरा बचपन बीत गया और देखते–देखते मै जवानी की चौखट पर आ खडा हुआ।

प्रश्न – आपने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए विद्यार्जन किया। फिर सरकारी अध्यापक बने। अपने अध्यापकीय जीवन पर थोड़ा प्रकाश डालिए।

उत्तर – सन् 1966 ई. में मैं छात्राध्यापक बना। प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रोफेसर रामप्रकाश सरीखे महान् शिक्षाशास्त्री द्वारा प्रशिक्षित होने का सौभाग्य पाया। फिर मॉरीशस के सबसे बड़े जिले – फ्लाक की अनेक सरकारी पाठशालाओं में अड़तीस वर्षों तक शिक्षण–कार्य में रत रहा। हजारों छात्र–छात्राओं को हिन्दी पढ़ाने का मौका मिला। सभी को हिन्दी की ओर आकृष्ट करता रहा। हिन्दी भाषी और गैर हिन्दी भाषियों के मन मे हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में कभी पीछे नहीं रहा। अन्त में डिप्युटी हेड टीचर पद से सेवा–मुक्त हुआ। आज जब मैं अपने शिष्यों को ऊँचे–ऊँचे पदों पर आसीन देखता हूँ तब बड़े गर्व का अनुभव होता है। जिन छात्र–छात्राओं के दिलों में मैंने विद्या का बीज बोया था और जो अंकुरित हुआ था, उन छात्रों ने अपने कठिन परिश्रम से उस अंकुरित बीज को पल्लवित, पुष्पित और फलित किया।

प्रश्न – इस समय बहुत से माता–पिता अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाने से कतरा रहे हैं। एक अनुभवी

शिक्षक के नाते ऐसे माँ–बाप को आप क्या सलाह देना चाहेंगे?

उत्तर – डॉक्टर साहब, सभी पढ़े–लिखे लोग जानते है कि भाषा संस्कृति की वाहिनी होती है। यदि हम अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहें तो हमें अपनी संस्कृति को बचाए रखना है। हिन्दी–ज्ञान के बिना हम अपनी संस्कृति से जुड़ नही पाएँगे। हमारे पूर्वजों ने अपनी भाषा–संस्कृति की रक्षा करने मे अपूर्व तप–त्याग किया और हमको बचाये रखा। यदि हम चाहें कि हमारे बच्चे बचे रहें तो माता–पिता को उन्हें अपनी भाषा–संस्कृति का महत्व बताना होगा। उन्हें यह पाठ पढ़ाना होगा कि संस्कृति के मिटने से आदमी अपनी पहचान खो देता है। इसलिए प्रत्येक को अपनी भाषा की रक्षा करनी चाहिए। बच्चों को यह भी बताना है कि हिन्दी विश्व भाषा के आसन पर आसीन हो रही है। इसके ज्ञान से जहाँ वे अपनी संस्कृति से जुड़ेंगे, वहीं विश्व से भी उनका जुड़ाव होगा। माता–पिताओं से मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि जिस तरह उनके बाप–दादे ने हिन्दी की रक्षा की, उसी प्रकार वे भी इस भाषा के महत्व को समझें और अपनी सन्तान को हिन्दी से जोड़ें। भले ही इस समय हिन्दी रोटी–रोजी की भाषा नहीं रही, परन्तु वह सदा हमारी संस्कृति की जननी बनी रहेगी।

प्रश्न – आप अध्यापन–कार्य के साथ ही वर्षों से पुरोहिताई भी करते हैं। इस क्षेत्र में उतरने की प्रेरणा आपको कैसे मिली ?

उत्तर – आज से लगभग आधी सदी पूर्व मै आर्य समाजी विद्वानो के सम्पर्क मे आया। भारत से आये कई तपस्वी संन्यासियों के प्रवचनों को सुनने का अवसर पाया, फलस्वरूप स्वाध्याय मे प्रावृत्त हो गया। मैं आर्य साहित्य का अध्येता बन गया। मेरे वेद–स्वाध्याय से प्रभावित होकर वयोवृद्ध आर्य नेता, मोहनलाल जी मोहित ने मुझे आर्यसभा का पुरोहित नियुक्त कर दिया। उनसे प्रेरणा प्राप्त करके मै अनेक स्थानों पर यज्ञ एवं वैदिक संस्कार सम्पन्न करने लगा। यजमानों ने मेरे कार्य को पसन्द किया। पुरोहित के रूप में मेरी लोकप्रियता बढ़ती गई। पुरोहित से मै कथा–वाचक और प्रवचनकर्ता के रूप मे प्रसिद्धि पाने लगा। श्रोतागण मेरे प्रवचनों में रस लेने लगे। इससे मैं बहुत ही प्रोत्साहित हुआ और वेद, शास्त्र, गीता आदि का गहन स्वाध्याय करने लगा। अततः मुझे आकाशवाणी और दूरदर्शन पर वर्षों तक वैदिक संदेश देने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस तरह पुरोहिताई करते–करते कई दशक बीत गए।

प्रश्न – धर्मोपदेश के साथ ही आपने नवोदित पुरोहितों को कई वर्षों तक प्रशिक्षण दिया। कर्मकाण्ड की भाषा संस्कृत है। क्या आपने संस्कृत के माध्यम से उन्हें प्रशिक्षित किया ?

उत्तर – सरस्वती देवी की कृपा से मुझे थोड़ी संस्कृत आती है। जहाँ तक कर्मकाण्ड में मंत्रों का उच्चारण होता है, वहाँ तक तो संस्कृत से ही मुझे काम लेना पड़ा। परंतु पूरा प्रशिक्षण–कार्य हिन्दी में होता रहा। जब पुरोहित यजमान के घर जाते है तब उन्हे हिन्दी के माध्यम से ही यज्ञ एवं संस्कार के महत्व को समझाना पड़ता है। नवोदित पुरोहित–पुरोहिताओं को प्रशिक्षित करते समय मैं उन्हें हिन्दी की उपयोगिता बताता रहा हूँ। उन्हें यह भी बताया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को 'आर्य भाषा' शब्द से अभिहित किया है। इसलिए पुरोहितों का परम कर्तव्य है कि वे इस भाषा के प्रचार–प्रसार में कमर कसाकर सदा तैयार रहे। हमारे समस्त पंडित–पुरोहित धर्म की शिक्षा हिन्दी द्वारा ही देते आए है। हिन्दी अध्यापकों ने मॉरीशस में हिन्दी का प्रचार तो किया ही है, परंतु उनसे कहीं अधिक इस देश के पंडित–पुरोहितों ने हिन्दी को जन–जन तक पहुँचाया है। वे यज्ञ–संस्कार सम्पन्न करने के निमित्त यजमानों के घर–घर में प्रवेश करके हिन्दी बोलते और लोगों से बुलवाते रहे हैं।

प्रश्न – पंडित जी, सुवक्ता के साथ ही आप हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। आपकी लेखन–यात्रा कब शुरू हुई और इस यात्रा की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली ?

उत्तर – जब मैं पुरोहिताई करने लगा तब मैने अनुभव किया कि यज्ञ एवं संस्कारों के प्रति यजमानों में बड़ी श्रद्धा

है, पर वे मंत्रों के अर्थों से नितांत अपरिचित हैं। मुझे लगा कि धर्म–पिपासुओं की पिपासा को शांत करने के लिए हिन्दी में कुछ पुस्तकें लिखनी चाहिए। यजमानों से प्रेरणा पाकर मैं सन् 1987 से अब तक लिखता आया हूँ। यदि हम कोई अच्छा काम करने के लिए ठान लें तो मनुष्य क्या, प्रकृति भी हमें प्रेरणा देती है और परोपकार का पाठ पढ़ाती है। मैंने सोचा कि जब पेड़ अपने फल स्वयं नहीं खाते तब मैं अपने स्वाध्याय से अर्जित ज्ञान अपने लिए ही क्यों रखूँ। क्यों न सरल हिन्दी के माध्यम से अपने यजमानों और आम जनता के लिए ऐसी पुस्तकें लिखूँ, जिन्हें पढ़कर कम–से–कम उन्हें यज्ञ और संस्कारों की महत्ता ज्ञात हो सके। अतः मैं लेखन–कार्य के लिए व्यस्तता के बावजूद कुछ समय निकालने लगा।

मेरी पहली पुस्तक का शीर्षक था – 'बहु–संदर्भीय यज्ञ', दूसरी पुस्तक थी 'विवाह संस्कार', तीसरी 'संध्या करें', और चौथी 'यज्ञों एवं संस्कारों पर एक दृष्टिकोण'। इस तरह लेखनी चलाते–चलाते अब तक 22 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं।मैं अपने यजमानों का आभारी हूँ, क्योंकि उनकी ही प्रेरणा से मैं लेखन–क्षेत्र में उतर पाया।

प्रश्न – पंडित राजमन जी,'शाश्वत वाणी' के संपादक – अशोक कौशिक जी आपकी चौथी पुस्तक – 'यज्ञों एवं संस्कारों पर एक दृष्टिकोण' के प्राक्कथन में लिखते हैं – "प्रस्तुत पुस्तक में 'कर्मकाण्डों' पर न केवल विस्तार से, अपितु वैज्ञानिक रूप से भी प्रकाश डाला गया है। पंडित जी महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य अनुयायी हैं। महर्षि प्रणीत 'संस्कार विधि' में जन्म से मरण पर्यन्त सोलह संस्कारों पर प्रकाश डाला गया है। संस्कार विधि में तो केवल कार्यविधि उल्लिखित है, किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में पंडित जी ने उसके कर्म–पक्ष की अपेक्षा ज्ञान–पक्ष की विस्तार से व्याख्या प्रस्तुत की है।"– पंडित राजमन जी, मुझे लगता है कि आपने महर्षि दयानंद कृत 'संस्कार विधि' में अधूरापन पाया है, इसलिए उक्त ग्रंथ पर आपको पुनः प्रकाश डालना पड़ा है। क्या आप मेरे इस विचार का समर्थन करेंगे?

उत्तर – बिलकुल नहीं। 'संस्कार विधि' के प्रणेता ऋषि थे और ऋषि होने के कारण वेद–मंत्रों के द्रष्टा थे। संस्कार विधि में महर्षि दयानन्द द्वारा उद्धृत मंत्रों की व्याख्या कई दूसरे विद्वानों ने भी की है। इसका अर्थ यह नहीं कि वे विद्वान् महर्षि से ऊपर हो गए हैं। महर्षि के तप–त्याग और अपार ज्ञान के सामने बड़े–बड़े विद्वान् नतमस्तक हैं।

महर्षि दयानन्द ने जिन सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है, मैंने बस निबंधों के माध्यम से उन संस्कारों की व्याख्या अपनी पुस्तक में की है। महर्षि दयानन्द ने 'संस्कार विधि' में जिन मंत्रों और गृह्यसूत्रों को उद्धृत किया है, उन्हीं के आधार पर मैंने हिन्दी निबंधों के द्वारा पाठकों को उन संस्कारों का महत्व दर्शाया है। मेरा तनिक भी यह विचार नहीं कि महर्षि की 'संस्कार विधि' कोई अपूर्ण ग्रंथ है।

प्रश्न – आपकी उपर्युक्त पुस्तकों का अवलोकन करने से विदित होता है कि आपने केवल 'धर्म' विषय पर ही लेखनी चलायी है। क्या अन्य विषयों में आपकी रुचि नहीं रही है ?

उत्तर – ऐसी बात नहीं है। मैंने धर्म के साथ ही समाज, संस्कृति, दर्शन, इतिहास आदि विषयों पर कई पुस्तकें लिखी हैं। जीवनी, निबंध, यात्रा–वृत्तांत, डायरी आदि लिखता रहा हूँ। 1988 में प्रकाशित – 'लालमाटी के पूजनीय' नामक रचना में लघु जीवनियाँ संकलित हैं। इस रचना में ऐसे व्यक्तियों की जीवनियाँ हैं, जो बड़े दरिद्र माता–पिता के घर में जन्मे, परंतु सदाचारी बनकर उन्होंने अपने विविध सुकर्मों के द्वारा अपने गाँव को विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे नर–रत्नों के जीवन हम सबके लिए आदर्श रहे हैं।

मैंने वर्ष 2001 में 'यजुर्वेद की सीख और शतकर्म' की रचना की। यजुर्वेद पढ़ते रहने से मेरे मन में आया कि मॉरीशस के लोगों के लिए वेद–मंत्रों तक पहुँचना बहुत कठिन है, क्योंकि यहाँ के हिन्दू संस्कृत से नितांत अपरिचित हैं, क्रिओली भाषा के देश में जीते हैं। उन हिंदुओं में जो त्यागी हैं, उन्हीं का वेद तक पहुँचना सम्भव है। मैंने सोचा क्यों न वेद–सूक्तियों पर हिन्दी में निबंध लिख दिये जाएँ? इस तरह यजुर्वेद के चालीस अध्यायों से सूक्तियों का चयन करके मैंने

चालीस निबंध लिखे। लोगों ने इस रचना का बड़ा स्वागत किया। इसकी हज़ारों प्रतियाँ बिक गईं। बस मेरे पास एक प्रति बची है। इस पुस्तक में मैंने यजुर्वेद के सौ मंत्र छाँटकर उनके शब्दार्थ भी दिये। इसलिए पुस्तक के शीर्षक में मुझे 'शतकर्म' शब्द जोड़ना पड़ा।

सन् 1998 में, अर्थात् आज से ठीक बीस वर्ष पूर्व मैंने 'मानस मोती और धर्मामृत' पुस्तक प्रकाशित करवाई। इस रचना में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' से चौपाइयों और दोहों का चयन करके बताया कि गोस्वामी तुलसीदास ने इस ग्रंथ का प्रणयन करके हिन्दू समाज और धर्म की रक्षा की। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि 'रामचरितमानस' ही वह ग्रंथ था, जिसे भारतवंशी हिन्दू इस देश में लिए आए थे और इसके ही पठन–पाठन से हमारे पूर्वजों ने अपने और अपनी सन्तानों के चरित्र का निर्माण किया। भारत से आए शर्तबंध श्रमिक इस द्वीप में नाना प्रकार से सताये गए, पर उन्होंने हार नहीं मानी। उनका सम्बल यही ग्रंथ था। मैंने 'मानस मोती और धर्मामृत' लिखकर एक प्रकार से गोस्वामी तुलसी को श्रद्धांजलि अर्पित की है।

भारत में कहीं धूप तो कहीं छाँव भी है'–एक यात्रा–वृत्तान्त है। इस कृति की प्रेरणा मुझे भारत के स्वामी मेघानन्द जी से मिली थी, मैं भारत यात्रा पर गया था। भारत में भ्रमणार्थ जहाँ भी जाता था, रात्रि में सोने से पहले दिन भर की यात्रा के बारे में डायरी में लिख लेता था। मैं स्वामी मेघानन्द जी के साथ रेल–यात्रा करता था। उन्होंने मेरे लिखे पन्ने पढ़ने की आज्ञा माँगी। मैंने सहर्ष दे दिये। पढ़ने के बाद वे बोले– "जब तुम अपनी यात्रा पूरा कर लोगे तब इस डायरी को मेरे पास छोड़ देना। मैं इसे पुस्तकाकार में छपवा दूँगा। इस यात्रा का वर्णन इस देश को भी चाहिए।"

उन महापुरुष की आज्ञा का पालन करते हुए मैंने अपनी डायरी उनके पास छोड़ दी और उन्होंने उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिया।

मेरी दूसरी पुस्तक, 'नौ महीनों की दिमागी कसरत' डायरी विधा पर आधारित है। मैं प्रतिदिन डायरी लिखता था और उसमें किसी एक सुन्दर विचार को अंकित करने का आनन्द लेता था। लगातार नौ महीने तक मेरे मस्तिष्क में जो उत्तम विचार उत्पन्न हुए, उन्हीं पर आधारित यह रचना है।

'दस किरणें', 'जीवन का मतलब', 'हमको चलाने वाला', दर्शन एवं धर्म विषयक रचनाएँ हैं।'भारतीय वंशजों का योगदान' तथा 'कुछ यादगार तारीखें' इतिहास से संबंधित हैं।

अतः यह कहना कि मैंने अपनी रचनाओं को केवल 'धर्म' विषय पर आधारित किया है, न्यायसंगत नहीं है। क्या कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, आदि की रचनाओं को साहित्य नहीं माना जाता ? उन्होंने तो न उपन्यास लिखा और ना ही कोई कहानी। मेरी दृष्टि में 'साहित्य' वही अच्छा माना जाना चाहिए, जिसमें सुंदरता से समाज के कल्याण के लिए मोती–से विचार व्यक्त किए जाते हों। मैं मानकर चलता हूँ कि लेखन सोद्देश्य होना चाहिए। यद्यपि मैंने अन्य मॉरीशसीय लेखकों की भाँति कहानी और उपन्यास नहीं लिखा है, तथापि कई अन्य साहित्यिक विधाओं में मैं पिछले तीन दशकों से लगातार लिखता आया हूँ। मुझे विदित है कि बहुत से पाठकों ने मेरी रचनाओं को पढ़कर जीवन में सही दिशा अपनाई है। यदि कोई लेखक अपनी लेखनी चलाकर समाज का कल्याण न कर सके तो फिर लिखने का क्या मतलब हुआ? यदि लेखक की रचनाओं में लोक मंगल की भावनाएँ निहित न हों तो फिर वह किस कोटि का साहित्य है ?

प्रश्न – पंडित जी, अब तक आपकी 22 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। किस कृति को लेकर आपको सर्वाधिक सन्तोष हुआ है ?

उत्तर – मैंने लालमाटी ग्राम में जन्म लिया। साठ–सत्तर वर्ष पहले का लालमाटी आज जैसा नहीं था। यहाँ के गरीब हिन्दू मजदूर बड़े आत्म निर्भर थे। चाहे अपने सिर छुपाने के लिए उन्हें घास–फूस की झोंपड़ियों में रहना पड़ता था, फिर

भी वे अपने ग्राम के विकास में ध्यान देते रहते थे। पूर्वजों को जीवन–यापन के लिए बड़ा कड़ा परिश्रम करना पड़ता था। उन्हें गृहस्थ जीवन का बोझ संभाल पाने में कभी रात के भी बहुतेरे घण्टे काम करते बिताने पड़ते थे। यह ग्राम एक आधे जंगल समान था। उस जंगल को नगर समान बनाने में ग्रामवासियों के परिश्रम बड़े काम आए। वे सब बड़े स्तुत्य हैं। उन्हीं लोगों के बलिदान से हमारा वर्तमान बना है। 'लालमाटी के पूजनीय' नामक पुस्तक में सताईस ऐसे कर्मठ व्यक्तियों की लघु जीवनियाँ संकलित हैं जिन्होंने इस ग्राम के विकास में अपूर्व तप–त्याग किया है। किसी ने विद्या–दान करके ग्रामवासियों का अज्ञान दूर किया तो किसी ने धन–दान करके बहुतों की दरिद्रता दूर की। जिसके पास न विद्या थी और ना ही धन, उन्होंने इस ग्राम को उन्नत करने में अपना श्रम–दान किया। गरीबी में बचपन बिताने वाले इन 27 व्यक्तियों की जीवनियों पर प्रकाश डालकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ।

प्रश्न – पंडित जी, आपने अपने लेखन द्वारा ही नहीं, बल्कि व्याख्यान द्वारा भी हिन्दी का खूब प्रचार–प्रसार किया। कुछ लोगों की शिकायत है कि आपकी भाषा में साहित्यिकता का अभाव है। क्या आप ऐसे लोगों से सहमत है?

उत्तर –मैं विद्वानों के लिए नहीं लिखता और न वह आचार्य बनना चाहता हूँ कि विद्वान् गण मुझे 'कठिन काव्य का प्रेत' कहकर सम्बोधित करें। मेरी भाषा प्रसादगुणयुक्त होती है। जिस तरह पूजा के पश्चात् प्रसाद सबको समान रूप से बाँटा जाता है, उसी प्रकार मैं ऐसी भाषा लिखता हूँ जो जनसाधारण भी पढ़ सकें। मेरी भाषा में व्यंग्यार्थ और लक्ष्यार्थ का अभाव पाया जाता है। प्रचलित मुहावरों का प्रयोग अवश्य करता हूँ। मैं ऐसा यत्न करता हूँ कि जो भोजपुरी शब्द हिन्दी में समा गए हैं, उनका प्रयोग किया जाए, ताकि भोजपुरी भाषी मेरी रचनाओं में व्यक्त विचारों को ग्रहण कर सकें। मैं अपनी भाषा को कठिन शब्द–जाल से मुक्त रखता हूँ।

प्रश्न – पंडित राजमन जी! आप लम्बे समय से शिक्षक, वर्षों से हिन्दी प्रचारक, युवावस्था से ही वैदिक धर्म के प्रबल समर्थक, भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक, दीर्घ काल से धर्मोपदेशक, कुशल वक्ता तथा हिन्दी के लेखक रहे हैं। कृपया बताइये कि आपने अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के निर्माण में किन–किन से प्रेरणाएँ ली है?

डॉक्टर जी, मेरे प्रेरणास्त्रोत कई महापुरुष रहे हैं। परन्तु मैंने सर्वाधिक प्रेरणा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से प्राप्त की है। मैं अपनी किशोरावस्था से ही सत्संगों में जाता रहा। भारत से पधारे कई विद्वानों द्वारा महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व के बारे में व्याख्यान सुनता रहा। उन सभी से प्रभावित होकर मैं वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट होता गया। कई जीवनीकारों द्वारा लिखी गई महर्षि की अलग–अलग जीवनियाँ पढ़ीं। जीवनियों में उनके घोर तप–त्याग द्वारा अर्जित अपार विद्वता, वैदिक संस्कृति के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा, प्राचीन ऋषि–महर्षियों के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा, आर्य–भाषा हिन्दी के प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम, उनकी मातृभूमि के प्रति भक्ति आदि पर पढ़कर मैं बड़ा प्रभावित हुआ। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के स्वाध्याय से मैं वैदिक धर्मी बना। मैं उन महापुरुष को अपना परम गुरु मानता हूँ।

मॉरीशस के महापुरुषों में पंडित वासुदेव विष्णुदयाल मेरे प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। मैंने अपने निवास–स्थान, लालमाटी में उनके बहुत सारे प्रवचन सुने। उन्हें सुनकर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वे ज्ञान के भण्डार हैं। उन्हें इस देश का एक ऋषि माना। मैं बता चुका हूँ कि पुराने ज़माने का लालमाटी आज जैसा नहीं था। यहाँ के गरीब हिन्दू मजदूर बड़े आत्मनिर्भर थे। जब गोकुल ग्राम का उद्धार होना था तब श्री कृष्ण चन्द्र को आना पड़ा था। इसी तरह जब लालमाटी का उद्धार करना हुआ तब आदरणीय प्रोफेसर वासुदेव विष्णुदयाल जी का आना हुआ। लालमाटी का सुधार पण्डित विष्णुदयाल जी से हुआ है। उन्हीं के मार्गदर्शन पर लालमाटी ग्राम मॉरीशस के नक्शे पर आ सका। वे 1925–1926 के दिनों में देबौदीन ऋतु की प्राथमिक पाठशाला में अंग्रेजी–फ्रेंच के अध्यापक बनकर आए थे। वे जिस झोपड़ी में रात बिताते थे, उसी में रात के समय हिन्दुओं को इकट्ठा करके हिन्दी की देवनागरी लिपि का ज्ञान निःशुल्क देते थे। पढ़ने वाले जब उनसे पारिश्रमिक की बात करते तो वे यह कहकर टाल जाते थे कि 'जिस दिन आप लोग दूसरों को यह ज्ञान दे देंगे, उस दिन समझना कि आप

लोगों ने मेरा पारिश्रमिक चुकता कर दिया।' उन्हीं से सीख पाने वाले लोग बैठकाओं में बच्चों को देव नागरी सिखाने लगे। पण्डित जी के आन्दोलन से लोग साहस लेकर आत्मनिर्भर होने लगे और सभी अपने–अपने बच्चों को हर हालत में पढ़ाने लगे। पण्डित जी ने ग्रामीणों को समझाया कि 'देखो, ये गोरे लोग और सरकारी लोग तुम लोगों की भाषा को नहीं मानते। तुम लोगों को अपनी भाषा के साथ–साथ अंग्रेजी–फ्रेंच भाषाओं में भी योग्यता लेनी चाहिए। तुम लोग यदि अपने अधिकार की रक्षा के लिए तैयार होना चाहते हो तो अपने बेटे–बेटियों को अंग्रेजी–फ्रेंच भाषाओं में ऊपर उठाओ।'

पढ़ाई लिखाई करके अंग्रेजी–फ्रेंच भाषाओं के स्नातक आज लालमाटी की लगभग हर सड़क में चलते दिखाई देते है। लालमाटी गाँव के 95 प्रतिशत् से अधिक लोग साक्षर हैं। बी०ए०, एम०ए०, प्रोफेशनल आदि की कमी नहीं हैं। संगीतकार, गायक, डॉक्टर, बैरिस्टर, डेन्टिस्ट, एकोनोमिस्त, आदि–आदि अनेकों हैं। गाँव में लगभग सभी लोग मिल–जुल कर जीना जानते हैं। यदि 1940 में यहाँ के लोगों को पण्डित विष्णुदयाल जी जैसे मार्गदर्शक नहीं मिलते तो पता नहीं हम किधर मुड़े होते। मॉरीशस के इस महापुरुष से मैंने इस देश में सर्वाधिक प्रेरणाएँ प्राप्त की हैं।

पंडित जी! इस बातचीत के लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूँ। धन्यवाद, हम फिर मिलेंगे।

सूरीनाम -

जो लिखा जाएगा वही रह जाएगा - सुरजन परोही

– श्रीमती भावना सक्सैना

जीवन की कठिन परिस्थितियों से तराशे हुए एक ऐसे कलाकार है जिनके हाथ मे जो भी आया उन्होंने उसे साँचे में ढालकर एक नया रूप दे दिया, फिर चाहे वह मिट्टी हो, शब्द हों या समाज का भविष्य मानी जाने वाली युवा पीढ़ी। 32 वर्ष से अधिक समय तक रेडियो से जुड़े रहकर आपने उभरती पीढ़ी को शिक्षा, ज्ञान और दिशा प्रदान की। अनेकों व्यक्तियों को अक्षर ज्ञान देकर रामायण और हिंदी की अन्य पुस्तकें पढ़ना सिखाया। आप 800 प्रकार के मिट्टी के बरतन बनाते है, कविता लिखते हैं और इन सब माध्यमों से दक्षिण अमेरिका के देश, सूरीनाम मे जीवन भर अपनी हिंदुस्तानी संस्कृति को मन–प्राण से सिंचित करते रहे हैं।

10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में इस कवि, कलाकार और हिंदी प्रचारक को विश्व हिंदी सम्मान प्रदान किया गया और इस समाचार को सुनकर मन से यही आवाज निकली थी कि यह बिलकुल सही चयन है। आपने सूरीनाम में हिंदी भाषा और हिंदुस्तानी संस्कृति को सुरक्षित रखा है।

2 फरवरी 1938 को रारमक्का जिले के एक निर्धन कुम्हार परिवार में जन्मे श्री सुरजन का नाम सूरीनाम के ज्ञानकोश के पृष्ठ 118 में दर्ज है क्योंकि ये सही मायने में सर्जक है जो न सिर्फ़ मिट्टी को रूप देते है अपितु मिट्टी से दीयों, बर्तनों की सर्जना करते–करते शब्दों को भी बुनते रहते हैं, जो कविताओं के रूप में उभरकर सामने आते हैं। सुरजन जी की कविताएँ राष्ट्रवादिता, धर्म, संस्कृति व समाज–सुधार विषयों पर है। श्री सुरजन ने रेडियो पर 30 वर्ष तक रोज बच्चों के लिए 'चन्दामामा' कार्यक्रम प्रसारित किया जो अत्यन्त लोकप्रिय रहा। विश्व हिंदी सम्मान से पहले इन स्वाध्यायी व्यक्ति को विभिन्न संस्थाओं से कुल मिलाकर 36 पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं जिनमें वे सूरीनाम के राष्ट्रपति सम्मान को प्रमुख मानते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ है– 'मोहिनी', 'पिंजरे के पंछी', 'यादगार'।

सूरीनाम प्रवास के दौरान कई बार उनसे मिलने, उन्हें जानने के बाद उनका एक साक्षात्कार लिया था। सूरीनाम में हिंदी के विकास की गाथा सुनाते साक्षात्कार के मुख्य अंश प्रस्तुत हैं –

प्रश्न – सुरजन जी, आज सूरीनाम में आप जानी मानी हस्ती हैं इसका आरंभ कहाँ से हुआ?

उत्तर – सबसे पहले पिताजी ने नाथूराम की पहली पुस्तक से हिंदी सिखाई, वह भी पूरी नहीं, किंतु उसको सीखकर मैं कुछ–कुछ पढ़ने लगा। मुझे याद है एक दिन हम लोग रास्ते पर बॉल खेल रहे थे, उस समय बहुत गाड़ियाँ नही होती थीं, ऐसे ही सड़क पर खेलते थे। तभी एक पंडित जी लकड़ी की खड़ाऊँ पहन कर वहाँ से निकले, हमें वहाँ खेलते देखकर बोले –

"बेटा ना खेलियो बॉल,
नहीं तो टूट जहिए गाल,
चले जइयो अस्पताल,
हो जइयो बेहाल।"

तब हम बहुत हँसे और उसके बाद हँसी–हँसी मे उनके शब्दों को दोहराने लगे और खुद भी तुकबंदी करने लगे। फिर मैंने कुछ कविताएँ लिखीं। उस समय मैं जहाँ भी जाता था, कविता कहता था और वह भी दारू के बारे में। उस समय लोग बहुत दारू पीने लगे थे। मै उसके बुरे प्रभाव के बारे मे बताता था।

1960 में बाबू महातम सिंह जी यहाँ आए और उन्होंने हिंदी व्याकरण सिखाना आरंभ किया। मैंने उन्हें अपनी कविताएँ सुनाई तो बाबूजी ने समझाया कि यह कविता नही, तुम्हारे मन की बात है। कविता में कुछ व्याकरण होता है, लय होती है।

उन्होंने कहा "देखो आगे बढ़ना है तो ऐसे नहीं चलेगा, हमने 'शांतिदूत' मासिक पत्र आरंभ किया है, उसके लिए नियमित रूप से लिखो", तो मैंने उसमें लिखना आरंभ किया। उस समय 'शांतिदूत' भारत भी जाता था।

बाबूजी ने उस समय इतना किया कि उन्होंने हमें कोविद तक पढ़ाई करवा दी। उसी समय फागू अवतार, पं सहतू, अमर सिंह रमण, इन सबने कोविद किया और बहुत से साथियों ने आने वाली पीढ़ियों को हिंदी सिखाई। कुछ ने भारत जाकर भी हिंदी की उच्चतर शिक्षा ग्रहण की। पंडित हरिदेव सहतू और अमरसिंह रमण ने बहुत काम किया हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए।

इस तरह से हिंदी सीखने–सिखाने की शुरुआत हुई।

प्रश्न – आपने हिंदी सिखाना कब से आरंभ किया?

उत्तर – मैं पहले गणेश मंदिर में रामायण पढ़ता था, प्रवचन करता था, तब मैंने देखा, छह सात लोग हैं जो सीखना चाहते हैं। मैंने एक अलग शुरुआत की। जो सीखना चाहते थे उन्हें अक्षर कॉपी करके दिया, अक्षर की पहचान हुई तब शब्द दिया, शब्द की पहचान हो गई तो वाक्य दिया, छोटे–छोटे वाक्य, फिर रामायण के कुछ पन्ने कॉपी करके दिए, जब वे इतना सीख गए, तब मैंने कहा – 'देखो भाई अब रामायण खरीद लो।' मैं सप्ताह में दो बार कक्षा लेता था और इस तरीके से तीन महीने में लोग रामायण पढ़ने लगे, गाने लगे। यदि मैं कहता पहली पुस्तक पढ़ो, दूसरी पढ़ो तब सब अटक जाते। इस तरह से लोग आसानी से पढ़ने लगे। हाँ बच्चों को पढ़ाना कुछ कठिन है, कभी परीक्षाएँ तो कभी अन्य अड़चनें आ जाती हैं। किंतु जो लोग पढ़ना चाहते हैं, उन्हें साधारणतया 3–4 महीने में पढ़कर अर्थ लगाना आ जाता है। तो इस तरह मैंने अपने माटी के काम के साथ–साथ रामायण पढ़ाना शुरू किया।

प्रश्न – माटी को सँवारने का आरंभ आपने कब से किया?

उत्तर – मैं 18 साल का था जब पिताजी का देहांत हुआ। उसके बाद मैं अकेला बेटा था, तो सोचा अब तो काम करना ही पड़ेगा। दो बहनें थीं जिनकी शादी करनी थी। लेकिन कुछ आता नहीं था, हॉलैंड में कुम्भकारी की तकनीकी शिक्षा ग्रहण की। सन 1962 में मैंने साधारण चाक को परिष्कृत कर पेडल वाला चाक बनाया और 1965 में एक बिजली से चलने वाला चाक बनाया जिसे कार के गियर बॉक्स का प्रयोग करके चाक की गति में परिवर्तन करना संभव हो सका। उस समय मैं कुछ नहीं बना पाता था, लेकिन पिताजी मेरे सपने में आकर बताते थे कैसे बरतन बनाना है, कैसे आवाँ लगाना है, कहाँ भारी लकड़ी रखनी है और कहाँ हल्की लकड़ी रखनी चाहिए ताकि बरतन जलें नहीं। इस तरह करते–करते काफ़ी सीख गया। फिर मैंने हॉलैंड जाकर कुम्भकारी की तकनीकी शिक्षा प्राप्त की। वहाँ बहुत नई तकनीक और उच्च कोटि की मशीनें थीं लेकिन यहाँ वापस आने पर वे सब उपलब्ध नहीं थे। यहाँ सब सामान बाहर से मंगाना पड़ता है जिससे बरतन का दाम बढ़ जाता है।

प्रश्न – आप कौन–कौन से बरतन बनाते हैं?

उत्तर – मेरे पास 800 मॉडल हैं। सब तरह के बर्तन हैं, दीया, फूलदान, सजावट के सामान सभी है।

प्रश्न – क्या आपने इन सब की कभी प्रदर्शनी लगाई?

उत्तर – हाँ, शुरू में एक दो बार, लेकिन प्रदर्शनी के स्थान का किराया बहुत होता है, इसलिए अब अपने घर में ही रखता हूँ। (हँसकर कहते हैं–क्यों अपनी ही मेहनत दिखाने के लिए अपना पैसा खर्च करूँ। लोग यहीं आते हैं, देखते हैं, सीखते हैं।) मिट्टी का काम मैं यहीं पर सिखाता हूँ, हाँ सूरीनाम हिंदी की कक्षा कहीं भी लगा लेता हूँ।

प्रश्न – सूरीनाम में बहुत से हिंदी शिक्षक हैं, क्या आप कोई नया तरीका अपनाते हैं, कक्षाओं को रोचक कैसे

बनाते हैं?

उत्तर – जब मैं खुद कक्षा लगाता हूँ तो सबसे पहले, यह देखता हूँ कि बच्चों की परीक्षाएँ तो नहीं हैं, ताकि उन्हें स्कूल में कठिनाई न हो। मैंने 17–18 स्कूलों में कक्षा लगाई है और यह महसूस किया कि बहुत से लोगों को बड़ा होने के बाद समझ आती है कि हिंदी कितनी जरूरी है, कोई डॉक्टर बने या वकील, उन्हें हिंदी में बोलना जरूरी हो जाता है। यहाँ राजनीति में भी जाना है तो हिंदी जरूरी है, क्योंकि भाषण तो हिंदी में ही देना पड़ेगा। पंडित लोगों को व्यास की गद्दी पर बैठना है तो हिंदी पढ़ना–लिखना जरूरी है। फिर भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो प्रवचन करते हैं तो तीन हिस्सा डच बोलते हैं।

प्रश्न – ऐसा क्यों?

उत्तर – वे अपनी विद्वता दिखाना चाहते हैं, जब आम लोग हिंदी समझते हैं, हिंदी में, सरनामी में बात करते हैं तो उन्हें डच में प्रवचन करने की आवश्यकता तो नहीं, फिर भी वे करते हैं। मंदिर में हिंदी या सरनामी में ही बात करनी चाहिए।

प्रश्न – आप कई वर्षों तक रेडियो कार्यक्रम 'चंदामामा' से जुड़े रहे, उसके बारे में कुछ बताएँ।

उत्तर – मैं 32 वर्ष से रेडियो से जुड़ा हूँ, पहले 30 वर्ष लगातार रेडियो कार्यक्रम 'चंदामामा' में बच्चों के लिए छोटी–छोटी कहानियाँ, बुझौनियाँ, पुरनियन (पुराने लोगों) के किस्से आदि बताता था, उस समय मैं कुछ भी सुन लेता था, उस से कहानी बना लेता था, पहेली बना लेता था। कुछ डच में पढ़ता था तो उसे हिंदी में उलट कर कह देता था। बच्चे बहुत शौक से सुनते थे। इस कार्यक्रम से हिंदी का काफी प्रचार हुआ और बहुत से लोगों ने हिंदी में बात करना सीखा। मैं अंत में एक पहेली देकर छोड़ देता था जिसके कारण अगले दिन वे बहुत उत्सुकता से कार्यक्रम के समय का इंतजार करते थे।

प्रश्न – यह कार्यक्रम बहुत रोचक रहा होगा। आपकी बातें सुनकर उत्सुकता हो रही यह जानने की कि आप बच्चों को क्या बताते थे। नमूने के तौर पर कुछ कविताएँ या कुछ बुझौनियाँ आप हमसे साझा करेंगे?

उत्तर – जी हाँ, ज़रूरी..... मैं अधिकतर एक प्रार्थना से आरंभ करता और जो भी उस समय से जुड़ा इतिहास या त्योहार होता, उसके बारे में बात करता। जैसे यदि आप्रवासी दिवस है तो इतिहास के बारे में बात करता, बताता कि कैसे पुरखन लोग यहाँ आए, लेकिन सीधे–सपाट शब्दों में नहीं, उसे कविता या थोड़ा नाटकीय रूप में। रक्षाबंधन, दिवाली, सब के बारे में बताता और अंत में एक पहेली देकर छोड़ देता जैसे –

"आप कहीं बैठे हैं, आपके पास एक सिगरेट है, एक मशाल और एक लालटेन और माचिस में एक ही तीली है, तो आप सबसे पहले किसे जलाएँगे?"

उत्तर जानने के लिए अगले दिन बच्चे बहुत उत्सुकता से बैठे रहते।

प्रश्न – आपने बताया इस कार्यक्रम के ज़रिए बहुत लोगों ने हिंदी बोलना सीखा। यह निस्संदेह एक बड़ी उपलब्धि है। मैं जानना चाहती हूँ कि लिपि के संदर्भ में आपका क्या विचार है?

उत्तर – लिखना जरूरी है, लिखना बहुत महत्वपूर्ण है। जो लिखा जाएगा वह रह जाएगा। बोले हुए शब्द खो जाते हैं। मैं सबसे कहता हूँ कि वह अपने अनुभव लिखें। भारत की और दूसरे देशों की जो यात्राएँ करते हैं, अपनी यात्रा के और अपने जीवन के बारे में लिखें। किंतु समस्या यह भी है कि जो वह लिखेंगे उसे कहाँ छपवाएँगे और फिर उसे पढ़ेगा कौन? अपने खर्च पर पुस्तक छपवाना यहाँ बहुत महँगी है और इसी कारण पुस्तकें भी महँगी होती हैं। लोग हिंदी की सरनामी रूप की पुस्तकें नहीं खरीदना चाहते।

सूरीनाम -

प्रश्न – सरनामी और हिंदी को क्या आप अलग मानते हैं? सरनामी है क्या?

उत्तर – हमारी बोलचाल की भाषा है। हमारे पुरखे जो गाँव से आए थे, भारत के अलग–अलग गाँवों से थे, उनकी भाषा मिलकर और साथ में कुछ डच मिलकर बोलचाल की सरनामी बन गई। विद्वान लोग तो शुद्ध हिंदी ही चाहते हैं।

सिर्फ सरनामी के पक्षधर कम हैं, एक समय पर सरनामी को लेकर आंदोलन चला, लेकिन कम लोगों का समर्थन मिलने के कारण बहुत लंबा नहीं चल पाया। यहाँ के अधिक लोग दोनों को साथ में लेकर चलना चाहते हैं। सरनामी बोलचाल भर की भाषा है, जबकि हिंदी पढ़ाई–लिखाई की भाषा है।

प्रश्न – सूरीनाम में हिंदी की मौजूदा स्थिति के बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर – हिंदी की स्थिति अब पहले से बेहतर हो रही है। परीक्षा में हर वर्ष 600 से अधिक लोग भाग लेते है लेकिन ऐसे भी बहुत से लोग है जो पढ़ते हैं किंतु परीक्षा नहीं देते। उनके लिए परीक्षा महत्वपूर्ण नहीं है, अपने पुरखों की भाषा जानना और बोलना महत्वपूर्ण है।

प्रश्न – इस संबंध में समय–समय पर बहुत से प्रयास किए जाते रहे हैं, गोष्ठियाँ और बैठकें हुई हैं। क्या आप उन समूहों में से किसी से जुड़े रहे हैं?

उत्तर – मैं सबके साथ रहा, लेकिन अपनी कविता पर ही मेरा ध्यान था। किसी विशेष समूह से नहीं जुड़ा। मेरा मानना है कि बातचीत से कुछ नहीं होता। सरकार को हमेशा कुछ लिखकर देना चाहिए ताकि हमारी माँग, हमारा आग्रह सरकार बदलने के बाद भी कागजों पर रहे।

इस संबंध में श्री फागू अवतार की संस्था 'उजाला' ने बहुत काम किया। उन्होंने सरकार को काफी पत्र लिखे। भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में परिवार गंगाराम पांडे ने बहुत काम किया है, वे हर जगह हर कार्य में उपस्थित रहते हैं। सहयोग करते हैं।

प्रश्न – आपने कहा आपका ध्यान अपनी कविता पर ही रहा। तो मैं आपसे जानना चाहूँगी कि आप कविता को कैसे देखते हैं?

उत्तर – कविता संवेदना और अनुभव से जुड़ी होती है। जिस बात को सीधा नहीं कह पाते उसे भी कविता में ढाल देते हैं, ताकि लोग घर पहुचकर सोचें।

प्रश्न – आने वाली पीढ़ियों को आप क्या सुझाव देंगे?

उत्तर – सबसे पहले तो यह कि सीखने वाले अपने ध्यान को केंद्रित करें और अभ्यास करें, लिखने का भी और बोलने का भी। शिक्षा देने वालों से मैं कहना चाहता हूँ कि सीखने वाला कभी गलत भी बोले तो उसका मज़ाक न उड़ाएँ, कभी नहीं, इससे उनकी प्रेरणा कम होती है। धीरे–धीरे वे अपने आप समझ जाएँगे कि उन्हें कहाँ सुधार करना है। कुछ भी सीखने के लिए कष्ट सहना पड़ता है। संतों की तरह। संत लोग कपास की तरह होते हैं, कपड़ा बनाने में कपास को क्या–क्या सहना पड़ता, कातना, बुनना, कपड़ा काटना, सिलना, धोना पटकना, इसी तरह कुछ करने से पहले बहुत मेहनत करनी पड़ती है।

प्रश्न – धन्यवाद सुरजन परोही जी, आपने आज यहाँ हमें बहुत सी जानकारियाँ उपलब्ध कराईं। क्या अपनी एक कविता हमसे साझा करेंगे..... ?

उत्तर – जी, मेरी एक प्रिय कविता आपको सुना रहा हूँ –

जीवन के संघर्षों में, दास–कबीर अकेला था
हिंदू–मुस्लिम के बीच चलाई, साखी–तीरो की बोली बानी

मिथ्या–विश्वास हटाकर, निर्मल कर दिया गंगा का पानी
जीवन के सुख–दुख में, एक अनोखा खेल रचाया था
जीवन के संघर्षों में , दास–कबीर अकेला था

गुरुकुल से बाहर, ईश्वरीय विद्या का ज्ञान पाया था
बड़ो ने जब ठुकराया, छोटों को मिलकर अपनाया था
निगुर्नियों को भजने मे जीवन–प्राण गँवाया था
जीवन के राघर्षों मे, दास–कबीर अकेला था

अविद्या के घेरे में, सच्चाई की विद्या ही उनके पास रही
स्वामी ऋषि–मुनि न बना, भक्त दासों का ही दास रहा
साथ निभानेवाला संगी–साथी ही उनका चेला था
जीवन के संघर्षों में, दास–कबीर अकेला था

जीवन की अंतिम बेला में, स्वयं फूलों का हार बना
चिता कब से ऊपर उठकर, सबके हृदय का हार हुई
अंतिम बिदाई में वह आगे–आगे, पीछे दुनिया का मेला था
जीवन के संघर्षों में, दास–कबीर अकेला था

सितंबर 2015 में दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारत आने पर सुरजन परोही जी से फोन पर बातचीत हुई तो उन्होंने कहा कि इस सम्मान से आने वाली पीढ़ी को प्रेरणा मिलेगी कि हिंदी का काम करना कितना महत्वपूर्ण है।

सूरीनाम

विश्व हिंदी सचिवालय

World Hindi Secretariat

इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस

Independance Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone : 00-230-6600800

इ-मेल/ E-mail : info@vishwahindi.com

वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications Pvt Ltd, Hindi Book Centre, New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com